कौटिल्य के राजदर्शन की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता

(RELEVANCE OF KAUTILYA'S POLITICAL PHILOSOPHY IN MODERN POLITICS)
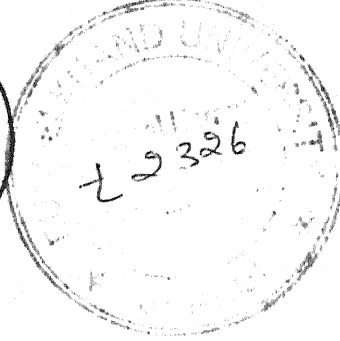
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी के
राजनीतिशास्त्र विषय में पी-एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध - 2006

निदेशक

डॉ. जयश्री पुरवार
रीडर एवं अध्यक्ष
राजनीतिशास्त्र विभाग

शोधार्थी

हरिओमशरण निरंजन
एम.ए. (राजनीतिशास्त्र)
वरिष्ठ शोध अध्येता (S.R.F.)

दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई (जालौन) उ.प्र.

प्रजासुखे सुखं राज्ञः, प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः, प्रजानां तु प्रियं हितम्।।

(कौ० अर्थ० 1/14/18)
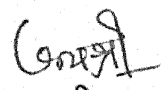
[प्रजा के सुख में राजा का सुख तथा प्रजा के हित में ही राजा का हित है। स्वयं को प्रिय लगने वाले कार्य करने में राजा का हित नहीं, अपितु उसका हित तो प्रजा को प्रिय लगने वाले कार्य करने में है।]

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि हरिओम शरण निरंजन पुत्र श्री डा0 पूरन सिंह निरंजन ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी के राजनीतिशास्त्र विषय में *"डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी"* उपाधि हेतु *'कौटिल्य के राजदर्शन की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता"* विषय पर मेरे निर्देशन में शोध कार्य किया है। इनका यह कार्य बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की परिनियमावली के अन्तर्गत निर्धारित अवधि (200 दिन) के अनुसार सम्पादित हुआ है। वे बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की शोध परीक्षा की नियमावली के सभी उपबन्धों की पूर्ति करते हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध उनका पूर्णतया मौलिक प्रयास है। इस शोध प्रबन्ध का कोई अंश अथवा पूर्ण शोध प्रबन्ध किसी अन्य विश्वविद्यालय की शोध उपाधि के विचारार्थ प्रस्तुत नहीं किया गया है।

जयश्री

(डा0 जयश्री पुरवार)
शोधनिदेशक / विभागाध्यक्ष
राजनीतिशास्त्र विभाग
डी0 वी0 कालेज, उरई

स्थान : उरई
दिनांक : 28.12.06

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन

प्राथमिक कक्षाओं में आचार्य कौटिल्य के संबंध में कुछ रोचक किम्बदन्तियाँ पढ़ने के बाद उनके चमत्कारी व्यक्तित्व ने मुझे वरवश अपनी ओर आकर्षित किया। यह आकर्षण धीरे धीरे बढ़ता ही गया। उनके महान व्यक्तित्व के प्रति बढ़ रहीं मेरी उत्कण्ठाओं और जिज्ञासाओं ने आखिर मुझे 'कौटिलीय अर्थशास्त्र' का अनुसिन्धित्सु बना दिया।

बचपन में सुनी एक किम्बदन्ती के अनुसार यूनान-नरेश का राजदूत मेगस्थनीज एक बार पाटलिपुत्र आया। उस समय वहाँ चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन था तथा चाणक्य उसके महामंत्री के रूप में कार्यरत थे। चाणक्य से मिलने की इच्छा होने पर उसे पता चला कि चाणक्य इतने विशाल मौर्य–साम्राज्य के महामंत्री होते हुए भी राजभवन में न रहकर किसी नदी–तट पर बनी एक साधारण सी कुटिया में रहते हैं। वह उसी चाणक्य–कुटी पर जा पहुँचा। वहाँ एक नौकर बाहर खड़ा था। मैगस्थनीज ने देखा कि चाणक्य एक दीपक के उजाले में कुछ कागजपत्र देख रहे थे। नौकर ने उन्हें मैगस्थनीज के आने की खबर दी। चाणक्य ने वह जलता हुआ दीपक बुझा दिया। दूसरा दीपक जलाया और तब मैगस्थनीज को अन्दर बुलाकर उसका अतिथि सत्कार किया। मैगस्थनीज ने उनसे पूछा– 'मेरे आने पर आपने यह जलता हुआ दीपक बुझाकर दूसरा दीपक क्यों जलाया ? चाणक्य का उत्तर था– 'जब आप पधारे थे तब मैं राजकाज के कागजात देख रहा था। इसलिए सरकारी दीपक और तेल का उपयोग कर रहा था। अब आपसे हो रही इस निजी भेंट में मैं अपने धन से अर्जित दीपक व तेल का उपयोग कर रहा हूँ।'

चाणक्य के इस आदर्श–चरित्र से प्रभावित होकर मेरे अन्दर उनके महान व्यक्तित्व को उत्तरोत्तर समझने और आत्मसात् करने की अनवरत लालसा बढ़ती गई। फलस्वरूप खाली समय में चाणक्य विषयक अनेक छोटे–बड़े ग्रन्थों के साथ साथ मूल ग्रन्थ 'कौटिलीय अर्थशास्त्र' का भी अध्ययन करने का अवसर मिला। जिससे मेरी कौटिल्य विषयक कतिपय जिज्ञासाओं का शमन हो सका। इसी क्रम में संयोगवश एक छोटा किन्तु महत्वपूर्ण

ग्रन्थ मेरे हाथ लगा— वरिष्ठ आई० ए० एस० अधिकारी तथा आधुनिक चिन्तक डा० धर्मवीर कृत 'कौटिल्य का सामाजिक वैर।' जैसा कि इसके शीर्षक से ही आभास मिलता है कि इसमें उन्होंने कौटिल्य की प्रशंसा नहीं, अपितु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उनकी कटुतम तथा तीव्रतम आलोचना की है। उनकी इस आलोचना की सीमा आचार्य कौटिल्य को 'समाज का शत्रु' तथा 'पापी' बताने तक जाती है। इस ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ने के बाद मेरी चिन्तन—दिशा को जैसे एक नया मोड़ मिला। मुझे लगा, जैसे मेरा अब तक का कौटिल्य विषयक अध्ययन एक ही दिशा की ओर बढ़ रहा था। लेकिन डा० धर्मवीर की कृति ने अब मुझे एक सजग समालोचक की नीर—क्षीर विवेकी दृष्टि प्रदान की। यद्यपि विद्वान लेखक के तर्कों और विचारों से मेरी पूर्ण सहमति नहीं बन सकी, फिर भी मुझे एक नये नजरिये से 'कौटिलीय अर्थशास्त्र' का पुनः गम्भीर अध्ययन, मनन तथा चिन्तन करने की अद्‌भुत प्रेरणा मिली। मैंने अनुभव किया कि मेरे लिए शोध-कार्य का यह एक अच्छा विषय—क्षेत्र बन सकता है।

अपने इन्हीं अनुभूति—जन्य विचारों के साथ मैं परम श्रृद्धेया डा० जयश्री पुरवार जिनका मुझे स्नातक कक्षाओं से ही शिष्य रहने का सौभाग्य प्राप्त है, के शोध—संरक्षण में जा पहुँचा। मेरी अभिरूचि को दृष्टिगत रखते हुए उन्होंने मेरा शोध—विषय निर्धारित किया— 'कौटिल्य के राजदर्शन की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता।' किसी भी प्राचीन चिन्तक को आधुनिकता की कसौटी पर कसना कोई सरल कार्य नहीं है। इसलिए इस क्लिष्ट एवं श्रमसाध्य अनुसन्धान-कार्य को पूर्ण करने में जिनसे मुझे अवर्णनीय बहुमूल्य सहयोग एवं सम्बल मिला है, उनका उल्लेख करते हुए इस अवसर पर मुझे सुखद कर्तव्यानुभूति हो रही है—

(i) शोध—निदेशक परमादरणीया डा० जयश्री पुरवार का वैदुष्यपूर्ण मार्गदर्शन।

(ii) देश के वे लब्धप्रतिष्ठ ग्रन्थालय जिनमें आचार्य कौटिल्य-विषयक दुर्लभ ग्रन्थ एवं शोध सामग्री सुलभ हो सकी।

(iii) संस्कृत भाषा में रचित 'कौटिलीय अर्थशास्त्र' जैसे दुरूह एवं क्लिष्ट ग्रन्थ के अर्थबोध हेतु मेरे द्वारा स्नातक स्तर तक अर्जित संस्कृत भाषा, व्याकरण और साहित्य का ज्ञान।

अतः यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करते हुए मैं अपने उपरोक्त श्रृद्धास्पद 'त्रिवर्ग' को सर्वात्मना श्रृद्धा–नमन करता हूँ। इसी बीच शोध–निदेशक महोदया की सम्प्रेरणा एवं मार्गदर्शन से मैं राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा (NET) उत्तीर्ण करने के बाद विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की दो वर्ष तक कनिष्ठ शोध अध्येतावृत्ति (J.R.F.) तथा उसके बाद एक वर्ष तक वरिष्ठ शोध अध्येतावृत्ति ((S.R.F.) प्राप्त कर सका। इन अध्येतावृत्तियों ने निश्चित रूप से मेरा पर्याप्त मनोबल बढ़ाया तथा मैं अपने शोध को यथासम्भव स्तरीय एवं मानकशील बनाने हेतु प्रयत्नशील रह सका। इस हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

अनुसन्धान–कार्य एक ऐसी श्रमसाध्य एवं सुविस्तृत परियोजना होती है जिसे पूरा करने में बहुपक्षीय सहयोग की अपेक्षा रहती है। अतः इस शोध–कार्य को पूर्ण करने में जिन सम्मानित विद्वज्जनों एवं आत्मीयजनों का प्रत्यक्षतः/परोक्षतः सहयोग प्राप्त हुआ है उन सभी का मैं ह्रदय से आभारी हूँ। विशेष रूप से शोध–निदेशक परमादरणीया डा0 जयश्री पुरवार तथा अपने श्रृद्धेय गुरुवर डा0 राजेन्द्र कुमार पुरवार का पग–पग पर जो बहुमूल्य सहयोग एवं मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है, उससे उऋण हो पाना मुझ जैसे ऋणी–शोधार्थी के लिए संभव नहीं है।

लगभग प्रत्येक पृष्ठ पर संस्कृत भाषा की अनेकानेक क्लिष्ट पादटिप्पणियों से युक्त इस शोध–प्रबन्ध का अल्प–समय में न्यूनतम त्रुटि–रहित टंकण कार्य करके श्री अनिल मिश्रा (काजल कम्प्यूटर, रामगनर, उरई) ने अपनी उत्कृष्ट टंकण–क्षमता प्रदर्शित की है। इस हेतु उन्हें आत्मिक साधुवाद एवं हार्दिक मंगलकामनाऐं।

आत्मानुभूति के इन्हीं शब्दों के साथ यह शोध–प्रबन्ध प्रस्तुत है।

हरिओम शरण निरंजन

(हरिओम शरण निरंजन)

शोध–छात्र

प्रस्तावना

प्रस्तावना

(क) भारतीय राजदर्शन का मूलस्रोत :

भारत में सभी प्रकार के ज्ञान–विज्ञान का मूलस्रोत वेदों में ढूँढ़ने का प्रयास किया जाता है। भारतीय राजदर्शन का मूल भी वेदों में ही प्राप्त होता है। वैदिक साहित्य का अध्ययन करने से हमें ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय राजदर्शन का मूलस्रोत वैदिक संहिताऐं (मूल वेद-मंत्र) हैं।[1] किन्तु ये संहिताऐं मुक्तक स्वरूपा ऋचाओं में उपलब्ध होने के कारण इनमें विषय–वस्तु की दृष्टि से परस्पर कोई संबंध नहीं है। प्रत्येक ऋचा स्वयं में स्वतंत्र तथा परिपूर्ण है। एक दूसरे के पूर्वापर तारतम्य की वहाँ कोई अपेक्षा नहीं है। इसलिए वैदिक संहिताऐं किसी भी विषय का क्रमबद्ध विवेचन प्रस्तुत नहीं करती हैं। फलस्वरूप राजदर्शन विषय का क्रमबद्ध इतिहास भी वहाँ उपलब्ध नहीं हो पाता है। हाँ, वैदिक संहिताओं में ऐसी कुछ ऋचाऐं यत्र तत्र जरूर विखरी पड़ी हैं जिनसे राजदर्शन विषयक कतिपय स्फुट सामग्री संकलित की जा सकती है। किन्तु यह सामग्री इतनी अपर्याप्त है कि उसके आधार पर प्राचीन भारतीय राजदर्शन के स्पष्ट स्वरूप का निर्धारण नहीं किया जा सकता।

वैदिक साहित्य के इतिहास–क्रम में संहिताओं के बाद आते हैं– ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रन्थ। लेकिन चूंकि ये सभी ग्रन्थ कर्मकाण्ड–प्रधान हैं, इसलिए इनकी सम्पूर्ण विषय–सामग्री भी कर्मकाण्डों से ही भरी पड़ी है। राजदर्शन के संबंध में वहाँ यत्र-तत्र कुछ स्फुट सामग्री ही संकलित की जा सकती है। यह सामग्री भी प्राचीन भारतीय राजदर्शन का स्पष्ट स्वरूप निर्धारित करने के लिए पर्याप्त नहीं मानी जा सकती है।

वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग के रूप में आते हैं– उपनिषद। लेकिन चूंकि सभी उपनिषद–ग्रन्थों में मुख्य रूप से ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति, उसके साध्य, साधक तथा साधनों के विस्तृत विवेचन को ही अधिक महत्व दिया गया है; इसलिए राजदर्शन संबंधी विषय–वस्तु को वहां भी कोई विशिष्ट स्थान प्राप्त नहीं हो सका। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता

---

1. ऋग्वेद 10/173/1, 10/191/3, 9/92/6, अथर्ववेद 6/87/1, 7/12/1–4

है कि संहिताओं से लेकर उपनिषदों तक सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में भारतीय राजदर्शन के छुटपुट वीज तो ढूँढने पर मिल जाते हैं, किन्तु राजदर्शन का स्पष्ट स्वरूप निर्धारित करने वाली सामग्री का वहाँ बहुकिञ्चित् अभाव है।[2]

(ख) भारतीय राजदर्शन का विकसित स्वरूप :

भारतीय वाङ्मय का विहंगावलोकन करने से यह महत्वपूर्ण तथ्य उभरकर सामने आता है कि राजदर्शन (राजशास्त्र, नीतिशास्त्र या राजनीतिशास्त्र) विषय का शास्त्रीय या साङ्गोपाङ्ग अध्ययन वैदिक काल में नहीं, अपितु वैदिक युग की समाप्ति के बाद ही प्रारंभ होता है। हमारे उत्तर वैदिक कालीन भारतीय मनीषियों ने अभीष्ट समाज कल्याण तथा पूर्ण मानव-विकास हेतु सम्पूर्ण ज्ञान को चार भागों में विभक्त किया। जिनको उन्होंने चार विद्याओं के नाम से सम्बोधित किया– आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति। इनमें से प्रथम तीन विद्याओं– आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्ता को मानवमात्र के उपयोग हेतु सुव्यवस्थित रूप में स्थापित करने के निमित्त चौथी विद्या (दण्डनीति) को अपरिहार्य एवं सर्वोपरि माना गया। इस प्रकार सुव्यवस्थित मानव जीवन तथा कल्याणकारी समाज की परिकल्पना के साथ प्राचीन भारतीय मनीषियों द्वारा 'दण्ड' की स्थापना की गई। इस 'दण्ड' का सम्यक् प्रयोग करने हेतु जो नीति हमारा मार्गदर्शन करती है, उसी को 'दण्डनीति' कहा गया तथा इसी दण्डनीति को आगे चलकर राजदर्शन (राज्यशास्त्र, नीतिशास्त्र अथवा राजनीतिशास्त्र) की संज्ञा दी गई।

(ग) 'राजदर्शन' के लिए 'अर्थशास्त्र' शब्द का प्रयोग :

भारत में 'राजदर्शन' के लिए 'अर्थशास्त्र' शब्द का प्रयोग अति प्राचीन काल से होता आया है। यह शब्द उतना ही पुरातन एवं सनातन है जितनी हमारी भारतीय संस्कृति। भारतीय संस्कृति में अति प्राचीन काल से मानव जीवन के तीन अर्थ (लौकिक उद्देश्य)– 'धर्म', 'अर्थ', 'काम' तथा एक परम–अर्थ (पारलौकिक उद्देश्य)– 'मोक्ष' निर्धारित किए गए हैं। मनीषियों ने इस परम-अर्थ को 'साध्य' तथा अन्य तीन अर्थों को 'साधन' कहा है। इन्हीं तीन

---

2. डॉ0 श्यामलाल पाण्डेय, भारतीय राजशास्त्र प्रणेता, पृष्ठ 1–2

'अर्थों' को कौटिल्य अपने अर्थशास्त्र में 'अर्थ त्रिवर्ग' की संज्ञा देते हैं।[3] यही 'अर्थ-त्रिवर्ग' मानव-जीवन किंवा सम्पूर्ण मानव-समाज का नीतिनिर्देशक, पथप्रदर्शक, नियंत्रक एवं प्रशासक रहा है। इसीलिए इन 'अर्थों' का स्वरूप निर्धारित करने, उनकी प्राप्ति, बृद्धि तथा उपयोग आदि के वर्णन हेतु हमारे प्राचीन चिन्तक मनीषियों ने अनेकविध धर्मशास्त्रों, अर्थशास्त्रों और कामशास्त्रों की रचना की थी। इस आशय के अनगिनत सन्दर्भ हमारे प्राचीन भारतीय वाङ्मय से संकलित किए जा सकते हैं।[3A]

कौटिलीयअर्थशास्त्र ही प्राचीनतम अर्थशास्त्र है, ऐसा कदापि नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि इससे पहले भी अनेक 'अर्थशास्त्र' अस्तित्व में रहे हैं, यह बात कौटिल्य स्वयं स्वीकार करते हैं। उनकी स्पष्ट स्वीकारोक्ति है- 'पूर्ववर्ती आचार्यो ने जितने भी अर्थशास्त्रों की रचना की है उन सभी के सार को सङ्ग्रहीत करके उन्होंने अपने इस 'अर्थशास्त्र' की रचना की है।[4] इन पूर्ववर्ती आचार्यो में भारद्वाज, विशालाक्ष, पराशर, पिशुन, कौणपदन्त, वातव्याधि, बाहुदन्तीपुत्र, कात्यायन, घोटमुख, दीर्घचारायण, पिशुनपुत्र तथा किंजल्क आदि आचार्यो का कौटिल्य ने स्पष्ट उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट होता है कि मानव मात्र के त्रिवर्ग-धर्म, अर्थ, काम की गम्भीर गवेषणा एवं विस्तृत विवेचना करने वाले राजदर्शन (राज्यशास्त्र) के लिए प्राचीनकाल में 'अर्थशास्त्र' शब्द का प्रयोग किया जाता था।

(घ) 'अर्थशास्त्र' शब्द की व्यापकता :

वर्तमान में जिस संकीर्ण अर्थ में 'अर्थशास्त्र' शब्द का प्रयोग किया जाता है, प्राचीनकाल में वह उतने संकीर्ण अर्थ में नहीं, अपितु एक व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता था। वर्तमान में 'अर्थशास्त्र' को केवल वित्त, सम्पत्ति तथा राजस्व आदि का विस्तृत एवं व्यापक विवेचन करने वाला शास्त्र माना जाता है। किन्तु प्राचीन काल में 'अर्थशास्त्र' का व्यवहार बड़े व्यापक अर्थ में किया जाता था। कौटिल्य ने 'अर्थ' तथा 'अर्थशास्त्र' इन दोनों शब्दों की

---

3. अर्थो धर्मः काम इत्यर्थत्रिवर्गः। कौ० अर्थ० 9/145-46/7 पृष्ठ 631
3A. डा० श्यामलाल पाण्डेय, कौटिल्य की राज्य-व्यवस्था, पृष्ठ 2
4. पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्थापितानि, प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम्। कौ० अर्थ० पृष्ठ 1

पृथक–पृथक परिभाषा करते हुए लिखा है–*'मनुष्य की जीविका के साधन को 'अर्थ' कहते हैं।'* उनके मतानुसार *'मनुष्य से युक्त पृथ्वी को ही 'अर्थ' कहते हैं।'* इस मानवयुक्त भूमि की प्राप्ति तथा उसकी रक्षा के साधन जो शास्त्र बताता है उसी को 'अर्थशास्त्र' कहते हैं।'[5]

इस प्रकार कौटिल्य 'अर्थ' तथा 'अर्थशास्त्र' शब्दों को व्यापक अर्थो में व्याख्यायित करते हैं। प्रथम तो उपरोक्त परिभाषा से कौटिल्य का यह 'मौलिक चिन्तन' स्पष्टतः प्रतिविम्बित होता है कि वह केवल उस भूमि को ही 'अर्थ' मानता है जहाँ मनुष्य या जनता रहती है तथा उस पर अपना श्रम करती है। कौटिल्य के अनुसार मानव रहित वह भूमि जहाँ मानव-श्रम संभव नहीं होता, 'अर्थ' कदापि नहीं कहला सकती। इस प्रकार कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' मूलरूप से मानव-श्रम पर आधारित है। उपरोक्त परिभाषा से एक दूसरी अर्थव्यापकता भी अभिव्यञ्जित होती है। मानवयुक्त भूमि की प्राप्ति तथा उसकी संरक्षा एक ऐसा बहुआयामी दायित्व है जिसके परिसीमन में दूसरे कई शास्त्र स्वयं आ सिमटते हैं। उदाहरणार्थ जब उसमें मानव-जीवन व मानव-समाज की विस्तृत विवेचना होती है तो वहाँ मानवशास्त्र तथा समाजशास्त्र जैसे विषय अन्तर्निविष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार मानवयुक्त भूमि की प्राप्ति तथा उसकी संरक्षा के विविध उपायों का जब विवेचन होता है तो उसमें 'राजनीतिशास्त्र' तथा 'सैन्यविज्ञान' आदि विषय अन्तर्भूत हो जाते हैं। जब कानून तथा न्याय की व्याख्या होती है तो विधिशास्त्र, एवं जब आर्थिक मामलों पर विचार होता है तो आधुनिक अर्थशास्त्र जैसे विषय उसके अन्तर्गत आ जाते हैं।

दूसरी ओर 'अर्थशास्त्र' को 'दण्डनीति' का भी पर्याय माना जाता है।[6] कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में 'दण्डनीति' को सर्वोच्च वरीयता देकर यही प्रमाणित किया है। उनके अनुसार दण्डनीति के मुख्य चार उद्देश्य है– (1) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति (2) प्राप्त वस्तु की संरक्षा, (3) रक्षित वस्तु का परिवर्द्धन (4) वर्धित वस्तु का सुपात्रों में वितरण एवं सदुपयोग।[7] इसके अतिरिक्त कुछ आचार्यो ने 'अर्थशास्त्र' तथा 'नीतिशास्त्र' को एक दूसरे का पर्याय माना

5. मनुष्याणां वृत्तिरर्थः, मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः, तस्याः पृथिव्या लामपालनोपायः शास्त्रमर्थशास्त्रमिति। कौ0 अर्थ0 15/180/1 पृष्ठ 765
6. पी. वी. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग–2, पृष्ठ 581
7. अलब्धलामार्था; लब्धपरिरक्षणी; रक्षितविवर्धनी; वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च। कौ0 अर्थ0 1/1/3 पृष्ठ 12

है। कामन्दक ने अपने नीतिसार में कौटिल्य के अर्थशास्त्र को 'नीतिशास्त्र' की ही संज्ञा दी है।[8] दूसरी ओर पौराणिक परम्परा के अनुसार महत्व की दृष्टि से 'अर्थशास्त्र' को वेदों के समकक्ष माना गया है। इसीलिए विष्णुपुराण[9], वायुपुराण[10], तथा ब्रह्मपुराण[11] इत्यादि पुराणों ने 'अर्थशास्त्र' की गणना चार उपवेदों (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद एवं अर्थशास्त्र) में की है।[12]

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'अर्थशास्त्र' शब्द का व्यवहार प्राचीन उपवेद, दण्डनीति एवं नीतिशास्त्र तथा अर्वाचीन मानवशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, विधिशास्त्र, सैन्यविज्ञान तथा अर्थशास्त्र जैसे अनेक शास्त्रों के व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है।

(ङ) प्रस्तावित शोध की पृष्ठभूमि, आवश्यकता तथा उपयोगिता :

कौटिल्य अर्थशास्त्र के अध्ययन से अनेक प्रश्न जिज्ञासु मस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं; जिनके उत्तर ढूँढने का विनम्र प्रयास प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में किया गया है। उन महत्वपूर्ण चिन्तन-बिन्दुओं का प्रस्तुतीकरण यहाँ पर अपरिहार्य है।

चिन्तन का प्रथम बिन्दु :

'अर्थशास्त्र' के सृजन के पीछे कौटिल्य के मुख्य रूप से तीन लक्ष्य दृष्टिगोचर होते हैं– (i) नन्द-साम्राज्य का उन्मूलन (ii) मौर्य-साम्राज्य की स्थापना (iii) नवस्थापित मौर्य साम्राज्य को स्थिरता प्रदान करना। अपने इस उद्देश्य में कौटिल्य पूर्णतः सफल भी रहा। 'अर्थशास्त्र' में निर्दिष्ट नीतियों तथा सिद्धान्तों का निष्ठापूर्वक क्रियान्वयन करते हुए कौटिल्य तथा चन्द्रगुप्त मौर्य संयुक्त रूप से नन्द-साम्राज्य का उन्मूलन करने में समर्थ हुए तथा मौर्य साम्राज्य की उन्होंने ऐसी सशक्त स्थापना की कि उसकी साम्राज्य पताका चन्द्रगुप्त मौर्य से प्रारंभ होकर बिन्दुसार तथा सम्राट अशोक सहित लगातार तीन पीढ़ियों तक निर्विघ्न एवं निर्विवाद रूप से फहराती रही।

---

8. कामन्दकीय नीतिसार 1/6 (काणे ।।, पृष्ठ 582)
9. विष्णुपुराण 3/6/29
10. वायुपुराण 61/79
11. ब्रह्मपुराण 35/88/89
12. काणे, पी0 वी0, धर्मशास्त्र का इतिहास (अनुवादक–अर्जुन चौवे कश्यप) द्वितीय भाग, पृष्ठ 583

इस प्रकार कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट विधानों का लगातार तीन पीढ़ियों तक अबाध एवं सफल प्रयोग हमें कुछ विचार मन्थन हेतु प्रेरित करता है। कोई भी शास्त्र या विधान अपनी देश–काल जन्य परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए ही तैयार किया जाता है। आवश्यक नहीं कि जो विधान हम आज बनाएं, वह हमारे लिए कल भी अनुकूल एवं उपयोगी हो। हो सकता है कि बदली हुई परिस्थिति के अनुसार हमें अपने आज के विधान को कल या तो बिल्कुल बदल देना पड़े या फिर उसमें आंशिक संशोधन या परिवर्तन करना पडे। उदाहरणार्थ हम अपने मौजूदा भारतीय संविधान को ही लें। डा0 भीमराव अम्बेडकर जैसे सुयोग्य, दूरदर्शी तथा समन्वयवादी संविधान-निर्माताओं द्वारा पर्याप्त विचार मंथन के बाद निर्मित भारतीय संविधान आधिकारिक तौर पर 1950 में लागू हुआ। लेकिन यह देखकर आश्चर्य होता है कि इतना सुविचारित एवं सुपरीक्षित संविधान लागू होने के मात्र एक वर्ष बाद ही उसमें संशोधन/परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। फलस्वरूप भारतीय संसद को 1951 में ही उसमें प्रथम संविधान संशोधन करना पड़ा। आज स्थिति यह है कि मात्र 56 वर्ष पुराने भारतीय संविधान में अब तक 100 संशोधन/परिवर्तन किए जा चुके हैं। इतना ही नहीं, अभी कुछ ही समय पूर्व भारतीय संविधान पर समग्र रूप से पुनर्विचार करने हेतु भारत सरकार द्वारा एक 'संविधान समीक्षा आयोग' का गठन किया गया था। भले ही संसद में अपेक्षित समर्थन के अभाव में वांछित 'संविधान-समीक्षा' संभव नहीं हो सकी। लेकिन इतना निश्चित है कि संविधान संशोधनों का यही क्रम जारी रहा तो सम्भव है कि वर्तमान इक्कीसवी सदी के अन्त तक हमारा भारतीय संविधान परिवर्तित होते होते कोई दूसरा स्वरूप ग्रहण कर ले। इसके विपरीत जब हम कौटिलीय अर्थशास्त्र पर दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि अब से लगभग दो–ढाई हजार वर्ष पूर्व लिखे गए इस शास्त्र के अधिकांश नियम–विधान आज भी हमारे लिए उतने ही युगानुकूल एवं उपयोगी हैं जितने कि कौटिल्य के युग में। इससे सिद्ध होता है कि कौटिलीय अर्थशास्त्र एक सार्वभौमिक, सार्वकालिक एवं सार्वजनीन कृति सिद्ध हुई है; जिससे प्रत्येक काल के अनुसिन्धित्सु अपनी स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान हेतु कुछ मार्गदर्शन ढूँढने का प्रयास कर सकते हैं। प्रस्तुत शोध विषय भी एक ऐसा ही विनम्र प्रयास है।

चिन्तन का दूसरा बिन्दु :

कौटिलीय अर्थशास्त्र के विधानों के आधार पर जिस सशक्त मौर्य-साम्राज्य की स्थापना की गई थी वह चिर-स्थाई न रह सका। अपितु सम्राट अशोक के बाद ही वह छिन्न–भिन्न होने लगा तथा बृहद्रथ के काल में आकर वह ध्वस्त हो गया। मौर्य-साम्राज्य के इस कारुणिक पतन के प्रमुख कारणों में इतिहासकार एक कारण यह भी खोजते हैं कि कलिंग विजय से द्रवीभूत हुए सम्राट अशोक जैसे उदार एवं दयालु शासक ने सैन्य–विजय की अपेक्षा धर्म–विजय को सर्वोच्च वरीयता प्रदान की। फलस्वरूप सैनिकों के शस्त्रबल तथा मनोबल को जंग लग गई तथा सैन्यबल में असहनीय कुण्ठा एवं विद्रोह उत्पन्न हो गया। यही कारण है कि अन्तिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ की हत्या उसके किसी शत्रु राजा ने नहीं, अपितु स्वयं उसी के सेनापति पुष्यमित्र ने की थी।[13] यह सब क्यों और कैसे हुआ ? उत्तर केवल एक ही है– कौटिलीय अर्थशास्त्र के महत्वपूर्ण निर्देशों की दयनीय उपेक्षा। 'अर्थशास्त्र' को हजार बार भी उलटने–पलटने पर उसमें ऐसा एक भी सन्दर्भ नहीं मिलता जब वह किसी भी परिस्थिति में सैन्य शक्ति की उपेक्षा करता दिखाई देता हो। बल्कि वह तो पग–पग पर सैन्य बल को सर्वोच्च वरीयता देता है। लेकिन यदि भारतीय नरेशों ने उसकी उपेक्षा की तो उसके गम्भीर तथा घातक परिणाम भी उन्हें भोगने पडे हैं। इस प्रकार कौटिलीय अर्थशास्त्र के निर्देशों की अवहेलना का गम्भीर दुष्परिणाम हमारा राष्ट्र अतीत में देख चुका है। लेकिन अब आगे ऐसा न हो, इसके लिए हमें निरन्तर सजग व सचेष्ट रहना है। हमें देखना होगा कि कौटिलीय अर्थशास्त्र के वे कौन से विधान हैं जो हमारे लिए आज भी कल्याणकारी हैं; राष्ट्रीय एकता, अखण्डता, सुरक्षा एवं विकास में सहायक हैं। उन विधानों की यदि कहीं किसी रूप में उपेक्षा हो रही है तो उनकी ओर ध्यान आकृष्ट कराना तथा उस उपेक्षा से होने वाली राष्ट्रीय क्षति की ओर इंगित करना वर्तमान अनुसिन्धित्सुओं का परम कर्तव्य है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध इसी श्रृंखला की एक छोटी सी कड़ी है।

---

13. डा0 सत्यकेतु विद्यालंकार, पाटलीपुत्र की कथा– पृष्ठ 205–208
एल0 मुखर्जी, (अनुवादक–उमापतिराय चन्देल), भारत का इतिहास (प्राचीन काल) पृष्ठ 94–95

चिन्तन का तीसरा बिन्दु :

वैदिक काल से लेकर कौटिल्य काल के पूर्व तक के उपलब्ध भारतीय वाङ्मय पर दृष्टिपात करने से एक विस्मयकारी तथ्य उभरकर सामने आता है। यह समग्र साहित्य केवल वेद, वेदाङ्ग, सूत्र साहित्य, व्याकरण साहित्य तथा दर्शन साहित्य संबंधी ग्रन्थों तक ही सीमित रहा, जो मुख्य रूप से कर्मकाण्ड, संस्कृति तथा साहित्य पर आधारित है। भारतीय वाङ्मय की इस विराट ग्रन्थ श्रृंखला में 'राजदर्शन' से संबंधित एक भी स्वतंत्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता जो राज्य संचालन के विधि विधान तथा शासन–प्रशासन के संबंध में विस्तारपूर्वक हमारा मार्गदर्शन करता हो। सौभाग्यवश कौटिल्य का अर्थशास्त्र ही ऐसा सर्वप्रथम प्राचीन भारतीय ग्रन्थ है जो राजदर्शन पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालता है। ऐसे दुर्लभ ग्रन्थ का अधिक से अधिक अध्ययन, मनन, चिन्तन एवं अनुसन्धान किए जाने की आवश्यकता है। लेकिन वस्तुस्थिति इसके ठीक विपरीत है। इस बात को लेकर कौटिल्यानुरागी विद्वज्जन बहुत चिन्तित हैं कि इतने उपयोगी ग्रन्थ के अनुसन्धान की बात तो दूर, इसके पठन–पाठन की परम्परा भी हमारे देश में समाप्तप्राय हो रही है। यहाँ तक कि अर्थशास्त्र के मूल ग्रन्थ को समझने वाले लोग भी अब गिने–चुने ही रह गए है।[14]

कुछ समय पूर्व समाचार पत्रों के माध्यम से इस महत्वपूर्ण तथ्य की जानकारी हुयी कि भारत सरकार के रक्षा मंत्रालय द्वारा संचालित 'रक्षा अनुसन्धान विकास संगठन' (Defence Research & Development Organisation)' कौटिल्य के अर्थशास्त्र से अत्यधिक प्रभावित हुआ है तथा उसके द्वारा भारतीय सेना की क्षमता बढ़ाने के लिए अर्थशास्त्र पर एक विशेष शोध परियोजना पूना विश्वविद्यालय के वरिष्ठ वैज्ञानिकों को सौंपी गई है।[15] यह वृत्त पढ़कर सुखद आश्चर्य हुआ कि कहाँ तो कौटिल्य काल की प्राचीन सेना और कहाँ विकसित शस्त्रास्त्र, लडाकू विमान तथा परमाणु क्षमता सम्पन्न आधुनिक सेना ? फिर भी उस प्राचीन

---

14. Radhavallabh Tripathi, Kautilya's Arthasastra and Modern World
(कृष्ण कुमार दवे, उद्घाटन सत्र का अध्यक्षीय भाषण पृष्ठ V)
15. दैनिक जागरण, कानपुर, दिनांक 01–08–2002
दैनिक जागरण, झाँसी, दिनांक 03–11–2002

सैन्यबल के कुछ उपयोगी गुण–सूत्रों की वर्तमान अत्याधुनिक सेना को भी आवश्यकता पड़ रही है। ऐसा ही एक और नवीन समाचार हमारे प्राचीन ग्रन्थों की वर्तमान प्रासंगिकता को स्वीकार्यता प्रदान करता है। भारतियार विश्वविद्यालय कोयम्बटूर के वरिष्ठ वैज्ञानिक प्रोफेसर वी० गणेशन हमारे प्राचीन ग्रन्थ 'महाभारत' से चक्रवात नियंत्रण का एक विलक्षण किन्तु सरल तरीका खोज रहे हैं। भारतियार विश्वविद्यालय तथा रक्षा अनुसन्धान एवं विकास संगठन (रक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार) द्वारा संचालित एक संयुक्त शोध परियोजना के संयोजक वी० गणेशन का मानना है कि महाभारत में उपलब्ध वर्णन के आधार पर खाड़ियों के तट पर भारी मात्रा में लकड़ियाँ जलाने से चक्रवाती प्रणालियों की कहर बरपाने वाली क्षमता को सरलतापूर्वक नष्ट किया जा सकता है।[16]

उपरोक्त सुखद वृत्तों से यह बात सत्यापित होती है कि महाभारत तथा अर्थशास्त्र जैसे हमारे प्राचीन ग्रन्थों की आज के इस वैज्ञानिक युग में भी बड़ी उपादेयता है; वशर्ते कि उनका आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति से पर्याप्त अध्ययन एवं अनुसन्धान हो। इस प्रकार कौटिलीय अर्थशास्त्र के विविध दृष्टिकोणों से वैज्ञानिक अध्ययन एवं अनुसन्धान की आज महती आवश्यकता है। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि उसका अध्ययन एवं अनुसन्धान न होकर उसकी उपेक्षा ही हो रही है। इस चिन्तनीय विसंगति को दूर करने का एक लघु प्रयास है यह शोध प्रबन्ध।

चिन्तन का चौथा विन्दु :

कौटिल्य राजतंत्र समर्थक था और आज उसी का भारत देश लोकतंत्र का अनुयायी एवं आराधक है। सैद्धान्तिक रूप से राजतंत्र की अपेक्षा लोकतंत्र अधिक जनहितैषी एवं लोककल्याणकारी आभासित होता है। लेकिन यदि गौर करें तो आज हमारे भारतीय लोकतंत्र की जो व्यावहारिक तस्वीर सामने है, वह कुछ बदरंग नजर आती है। वर्तमान लोकतंत्र की तस्वीर एक वर्तमान चिन्तक के ही शब्दों में – *"राजतंत्र प्रणाली को नकार कर*

---

16. दैनिक जागरण, लखनऊ, दिनांक 31–10–2003

हम उससे वेहतर हालातों की आशा में, अपनी आत्म सम्मानपूर्ण स्वतंत्र जीवन जीने की आकांक्षा में जनतांत्रिक प्रणाली के प्रति समर्पित हुए। राजतंत्र के बल वैभव के आतंक में वर्गभेद और शोषण से बदहाली की जिन्दगी जीता आम आदमी एक नई आस और उमंग लिए ही इस ओर बढ़ा। लेकिन दुर्भाग्यवश लोकतंत्र में नवागत अर्थयुग की अनिवार्यताओं ने जहाँ जीवन की वरीयताओं को उलट दिया, वहीं बढ़ते बाजारवाद ने हर चीज का एक स्वतंत्र बाजार खड़ा कर दिया है। कभी जमाना था कि बाजार में स्त्रियाँ और दास बिका करते थे। आज भले ही ऐसा न होता हो लेकिन आज तो जो नहीं बिकना चाहिए वह सब भी सरेआम बिक रहा है............. । बाजारवाद के इस खरतनाक आत्मघाती दौर ने आज हर चीज का एक स्वतंत्र बाजार तैयार कर दिया है। ऐसे में यह प्रश्न खुद–व–खुद उठता है कि लोकतंत्र का लोक कहाँ खड़ा है ? किस रूप में व किस हाल में है वह ? बिकाऊ या खरीददार ? जबाव भी सीधा साफ है। जेब में मुद्रा है तो सत्ता के गलियारों में चप्पल घिसने वालों का खरीदार है वह। नहीं तो मुद्रा के अभाव में स्वयं को बेचकर किसी 'दुर्जनलाल' को सत्ता सिंहासन पर बैठाने वाला प्रोडक्ट है वह।"[17]

लोकतंत्र की एक दूसरी तस्वीर भारत के मुख्य चुनाव आयुक्त जैसे उच्च पद पर आसीन रह चुके विद्वान अधिकारी के शब्दों में– *"अब आपको मालूम पड़ जाना चाहिए कि जिसे लोकतंत्र कहा जा रहा है, वह लोकतंत्र नहीं है। उसमें लोकतंत्र का कोई तत्व नहीं है। जनता की कोई इच्छा नहीं है। न्याय का कोई शासन नहीं है। और जहाँ तक सभी लोगों का संबंध है, न्याय की दृष्टि में सब समान भी नहीं हैं। आम आदमी के मन से तथाकथित लोकतंत्र के प्रति विश्वास घटता जा रहा है।"*[18] आज भारत का संविधान एक नाजुक दौर में है और हमारा प्रतिनिधित्व करने के लिए जनप्रतिनिधियों को चुनने की लोकतंत्रीय प्रणाली यदि आज जैसी ही बनी रही, तो पूरी तरह गलत समझे जाने का खतरा उठाकर भी मै कहूँगा कि आगामी 10 या 15 वर्षो में यह देश भी सोवियत संघ या यूगोस्लाविया जैसा हो जायेगा टूट जायेगा............ ।[19]

---

17. चन्द्ररेखा सिंह, कबीरा खड़ा बाजार में......... (दैनिक जागरण, झाँसी में प्रकाशित लेख) दिनांक 11–04–2004
18. टी0 एन0 शेषन, बोझिल मन की व्यथा कथा, पृष्ठ 33
19. वही पृष्ठ 48

लोकतंत्र समर्थक हम भारतीयों का लोकतंत्र की उपरोक्त भयावह तस्वीर से चिन्तित होना स्वाभाविक है। हमारी यह चिन्ता तब और अधिक बढ़ जाती है जब किसी संगठन की सर्वेक्षण रिपोर्ट यह बताती है कि इस कलुषित–प्रदूषित लोकतंत्र से अब आम जनमानस का विश्वास उठ गया है तथा यहाँ की 58 प्रतिशत जनता तानाशाही के पक्ष में है।[20] प्रश्न उठता है कि ऐसी स्थिति में हम क्या करें ? उत्तर बहुत सोच समझकर खोजना होगा। ऐसी विषम परिस्थिति में न तो हमारे द्वारा निराशावादी दृष्टिकोण अपनाया जाना उचित होगा और न यथार्थ के प्रति आँख मूँद कर बैठ जाना ही समीचीन होगा। बल्कि एक समन्वयवादी मध्यमार्ग यह निकालना श्रेयस्कर होगा कि हमारे वर्तमान लोकतंत्र में जो कमियाँ, विकृतियाँ आ गई हैं उनको दूर करने में कौटिल्य का राजतंत्रीय ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' हमारी क्या सहायता कर सकता है ? ताकि हमारा विकृत लोकतंत्र पुनः परिष्कृत हो सके तथा वह हमें यथार्थ रूप में एक जनकल्याणकारी राज्य प्रदान कर सके। इसी मध्य मार्ग को ढूँढ़ने–टटोलने का प्रयास है यह शोध प्रबन्ध।

चिन्तन का पाँचवाँ बिन्दु :

कौटिलीय अर्थशास्त्र का सर्वेक्षण हमें मानव–इतिहास की दो प्रमुख विकृतियों की ओर सचेत करता है। पहली विकृति है भौतिकतावादी विकृति जो किसी भी ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, अमरता या नित्यता को नकार देती है। यह विकृति पश्चिमी देशों में अधिक पाई जाती है। इसमें भौतिक प्रगति तो होती है परन्तु मनुष्य अन्दर से खोखला हो जाता है और अन्त में टूट जाता है। रोम साम्राज्य के पतन का कारण कुछ ऐसा ही रहा है। वे लोग आर्थिक, तकनीकी एवं राजनीतिक दृष्टि से तो विश्व में सर्वश्रेष्ठ थे परन्तु उनका आत्मबल क्षीण हो चुका था। और बर्बरों के आक्रमण को वे नहीं झेल सके थे। दूसरी विकृति आध्यात्मिक है। इस विकृति में संसार को भ्रम मात्र कहा जाता है। तथा सब कुछ ईश्वर और भाग्य पर छोड़ दिया जाता है। यह विकृति अकर्मण्यता को जन्म देती है। दुर्भाग्यवश हमारा भारतीय समाज इसी दूसरी विकृति का शिकार होता रहा है। फलस्वरूप इस आध्यात्मिक

20. टी0 एन0 शेषन, बोझिल मन की व्यथा कथा, पृष्ठ 78

विकृति से ग्रस्त होकर हम केवल राम और कृष्ण के गीत गाते रहे; जबकि हम पर सशक्त विदेशी आक्रमण होते रहे। अंत में हम गुलाम हो गए और हमको यूनान तथा इंग्लैण्ड का इतिहास पढ़ाया जाने लगा।[21] इस विकृति की ओर हमारे धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में भी हमारा गम्भीरतापूर्वक ध्यान आकृष्ट किया गया है। उदाहरणार्थ 'ईशावास्योपनिषद में स्पष्ट कहा गया है कि *''जो केवल भौतिक संसार में रत रहते हैं वे घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं और जो केवल आध्यात्मिक संसार में रत रहते हैं वे उससे भी अधिक अंधकार में प्रवेश करते हैं।''*[22] इस प्रकार उक्त उपनिषद भौतिकतावादी विकृति की तुलना में अध्यात्मवादी विकृति को अधिक घातक मानता है। क्योंकि भौतिकतावादी विकृति से निकलना तो आसान है किन्तु अध्यात्मवादी विकृति से निकल पाना बहुत कठिन है। सौभाग्यवश, कौटिलीय अर्थशास्त्र में इन दोनों विकृतियों से वचने का कुशल और सफल प्रयोग किया गया है। दूसरे शब्दों में कहें तो कौटिल्य ने उन दोनों विकृतियों को परिष्कृत कर उन्हें एक अनुकरणीय संस्कृति के रूप में प्रस्तुत कर एक सराहनीय कार्य किया है। वस्तुतः कौटिल्य का चिन्तन न तो एकान्तिक भौतिकतावादी है और न एकान्तिक अध्यात्मवादी। अपितु वह दोनों के मध्यमार्ग का चमत्कारी अनुसरण करता है। राष्ट्रहित में कौटिल्य के इस स्पृहणीय मध्यमार्ग को प्रकाश में लाने हेतु सतत् प्रयासरत है यह शोध प्रबन्ध।

चिन्तन का छठवाँ बिन्दु :

क्या हमारी वर्तमान हर समस्या का हल कौटिलीय अर्थशास्त्र में है ? अथवा इसके सभी सिद्धान्त आज भी स्वीकार करने योग्य हैं ? इस संबंध में जिज्ञासा उठती है कि अर्थशास्त्र के वह कौन से नियम व सिद्धान्त हैं जो वर्तमान राजनीति के लिए प्रासंगिक नहीं हैं। इसी जिज्ञासा का शमन करते हुए 'अर्थशास्त्र' के उन्हीं अप्रासंगिक सिद्धान्तों को इंगित करने का प्रयास है यह शोध प्रबंध। ताकि उनके अन्धानुकरण की भावी त्रुटि से बचा जा सके।

21. डा0 भरत झुनझुनवाला, भारत के पतन का कारण, (दैनिक जागरण, झाँसी, दिनांक 14-04-2004 में प्रकाशित लेख)
22. अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो ये उ विद्यायां रताः।।9।। ईशावास्योपनिषद

चिन्तन का सातवाँ और अन्तिम बिन्दु :

कौटिलीय अर्थशास्त्र के अध्ययन एवं अनुसन्धान से हमें राष्ट्रहित एवं समाज हित में क्या क्या सम्प्रेरणाऐं मिल सकती हैं ? इसी राष्ट्रीय जिज्ञासा के शमन का यत्किञ्चित् प्रयास है यह शोध कार्य।

यों तो कौटिल्य के राजदर्शन पर अनेक अनुसंधान कार्य अब तक हो चुके हैं। किन्तु वे सभी शोध केवल प्राचीन सन्दर्भों तक ही सीमित रहे हैं। कौटिल्य के राजनीतिक विचारों की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता से संबंधित शोध कार्य आज भी राजनीतिशास्त्र के क्षेत्र में नगण्य ही हैं। इसलिए प्रस्तुत शोध का उद्देश्य कौटिल्य के राजदर्शन की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिता का अन्वेषण करना है। कौटिल्य के किन राजनीतिक विचारों की वर्तमान राजनीति में प्रासंगिकता है, आधुनिक राजनीति कौटिल्य के राजनीतिक चिन्तन का कितना अनुगमन तथा कितना प्रतिगमन करती है; आधुनिक राजनीति में आए ह्रास को रोकने में कौटिल्य के राजनीतिक चिन्तन का क्या योगदान हो सकता है; कौटिल्य के राजदर्शन से आधुनिक राजनीति को क्या रचनात्मक दिशा बोध मिल सकता है, आदि परिकल्पनाओं को प्रकाश में लाना ही प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य है। कौटिल्य व उनका अर्थशास्त्र जितना उपयोगी प्राचीन काल में था, कमोवेश उतना ही महत्वपूर्ण वर्तमान में भी है। इस रूप में वह एक सार्वकालिक ग्रन्थ सिद्ध हुआ है। लेकिन इसके साथ ही आधुनिक राजनीति विकासवाद की लम्बी यात्रा के बाद कौटिल्य के कतिपय राजनीतिक विचारों को पीछे छोड़ते हुए उन्हें तिलाञ्जलि भी दे चुकी है। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि हम कौटिलीय अर्थशास्त्र के राजदर्शन की वर्तमान राजनीति में प्रासंगिकता/ अप्रासंगिकता को अपने संज्ञान में लेते हुए इस बात का पर्याप्त चिन्तन, मनन एवं अन्वेषण करें कि कौटिल्य के राजनीतिक विचारों का वर्तमान राजनीति में कैसे अधिकाधिक उपयोग करते हुए उसे लोक कल्याणकारी राजनीति का स्वरूप प्रदान किया जा सके। राजनीति एवं कूटनीति का वृहदकोश 'अर्थशास्त्र' हमारे राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान में एक प्रकाश स्तम्भ का काम किस प्रकार कर सकता है ? ऐसी ही कुछ नवीन तथा मौलिक परिकल्पनाऐं इस शोध प्रबन्ध में समाहित करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

(च) शोध पद्धति :

कौटिल्य अर्थशास्त्र के जितने भी संस्करण अब तक प्रकाशित हुए हैं उनमें वाचस्पति गैरोला द्वारा सम्पादित तथा चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी द्वारा प्रकाशित कौटिलीय अर्थशास्त्र का चतुर्थ संस्करण (सन् 2000) अपेक्षाकृत कुछ अधिक सरल, बोधगम्य तथा प्रामाणिक प्रतीत होता है। इस कारण उपरोक्त संस्करण को ही प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का मूल आधार बनाया गया है। कौटिलीय अर्थशास्त्र संबंधी सभी मूल उद्धरण उपरोक्त संस्करण से ही उद्घृत किए गए हैं।[23] यत्र–तत्र शब्दार्थ एवं भावार्थ संबंधी भ्रम–निवारण के लिए आवश्यकतानुसार आर० शाम शास्त्री, गणपति शास्त्री, प्राणनाथ वेदालंकार, उदयवीर शास्त्री, डा० रघुनाथ सिंह तथा आर० पी० कॉगले आदि विद्वद्वर्ग द्वारा सम्पादित संस्करणों का भी यथेष्ट उपयोग किया गया है। प्रस्तुत कार्य की शोध पद्धति में कौटिल्य के राजनीतिक चिन्तन के सभी महत्वपूर्ण पक्षों की तथ्यात्मक, तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं गवेषणात्मक पद्धति द्वारा विवेचना प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है: तथा प्रत्येक पक्ष की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता/अप्रासंगिकता को इंगित करने का यथासम्भव प्रयास किया गया है। ऐसा करते समय किसी भी पूर्वाग्रह/दुराग्रह युक्त मत की स्थापना के लोभ से बचते हुए सर्वथा निष्पक्ष, समीचीन एवं सर्वग्राही विवेचना प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध कार्य के अन्तर्गत विवेचित सामग्री का विवरण अध्याय क्रम के अनुसार निम्न प्रकार है–

प्रथम अध्याय को ''कौटिलीय अर्थशास्त्र: एक परिचय'' नामक शीर्षक के अन्तर्गत रखते हुए उसे मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग में 'प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तक के रूप में कौटिल्य : परिचय तथा महत्व'; एवं द्वितीय भाग में 'कौटिल्य के राजदर्शन का मूल स्रोत– अर्थशास्त्र : नामकरण, रचनाकाल, वर्ण्यविषय एवं वैशिष्ट्य' पर प्रकाश डाला गया है।

23. कौटिलीय अर्थशास्त्र के मूल उद्धरण– अधिकरण संख्या/प्रकरण संख्या/अध्याय संख्या के क्रम में उद्घृत किये गए हैं, तथा पाठकों की सुविधा हेतु अन्त में उपरोक्त गैरोला संस्करण की पृष्ठ संख्या भी वहीं पर दे दी गई है।

द्वितीय अध्याय में 'राज्य की उत्पत्ति तथा प्रकृति संबंधी कौटिलीय सिद्धान्त' की विवेचना प्रस्तुत की गई है। इसको भी पुनः पाँच भागों में उपविभाजित करते हुए प्रथम भाग में 'राज्योत्पत्ति संबंधी सिद्धान्त' तथा द्वितीय भाग में 'राज्य–प्रकृति संबंधी सिद्धान्त–सप्ताङ्ग सिद्धान्त' की समीक्षा प्रस्तुत की गई है। सप्ताङ्ग सिद्धान्त के अन्तर्गत राज्य की सात प्रकृतियों–स्वामी, अभात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड तथा मित्र, पर प्रकाश डाला गया है। तृतीय भाग में 'राज्य के उद्देश्य,' चतुर्थ भाग में 'राजतन्त्रः एक आदर्श शासन व्यवस्था' तथा पञ्चम भाग में 'राज्य की उत्पत्ति तथा प्रकृति संबंधी कौटिलीय सिद्धान्त की आधुनिक युग में प्रासंगिकता' को प्रदर्शित किया गया है।

तृतीय अध्याय में कौटिल्य कालीन 'प्रशासनिक व्यवस्था' का अध्ययन किया गया है। इसके प्रथम भाग में 'प्रशासनिक विभाग व उनके पदाधिकारी' को अध्ययन का विषय बनाया गया है। इसके अन्तर्गत राज्य के अठारह मुख्य पदाधिकारियों जिन्हें कौटिल्य ने 'अष्टादश तीर्थ' कहा है– (i) पुरोहित, (ii) सेनापति (iii) युवराज (iv) दौवारिक (v) अन्तर्वशिक (vi) प्रशास्ता (vii) समाहर्ता (viii) सन्निधाता (ix) प्रदेष्टा (x) नायक (xi) पौर (xii) व्यावहारिक (xiii) कार्मान्तिक (xiv) मन्त्रिपरिषदध्यक्ष (xv) दण्डपाल (xvi) दुर्गपाल (xvii) अन्तपाल (xviii) आटविक; तथा उपरोक्त उच्च अधिकारियों के अधीन कार्यरत अन्य अनेक महत्वपूर्ण उप अधिकारियों से संबंधित शोधाध्ययन करने का प्रयास किया गया है। अध्याय के द्वितीय भाग में 'वित्तीय प्रशासन' पर प्रकाश डाला गया है, जिसमें मुख्य रूप से आय के विभिन्न स्रोत तथा व्यय की विभिन्न मदें प्रदर्शित की गई है। तृतीय भाग में कौटिल्य कालीन 'प्रशासनिक व्यवस्था एवं वित्तीय प्रशासन की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता' का मूल्यांकन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में 'कानून, दण्ड, न्याय एवं सुरक्षा व्यवस्था' पर शोधमूलक दृष्टिपात किया गया है। इसके प्रथम भाग में मुख्य रूप से 'कानून एवं दण्ड' पर विचार करते हुए फौजदारी कानून तथा दण्ड; दीवानी कानून तथा दण्ड; संवैधानिक एवं प्रशासनिक कानून

तथा दण्ड; एवं अन्तर्राष्ट्रीय कानून का अध्ययन किया गया है। द्वितीय भाग में 'न्याय' विषय पर विचार करते हुए 'न्याय की व्यवहार प्रक्रिया', 'न्याय की कण्टकशोधन प्रक्रिया', तथा 'न्यायालय एवं न्यायाधीश' आदि विषयों का अध्ययन किया गया है। तृतीय भाग में 'सुरक्षा' विषय की समीक्षा करते हुए 'राजा के सुरक्षा उपाय' 'राज्य के सुरक्षा उपाय' तथा 'प्रजा के सुरक्षा उपाय' का अध्ययन किया गया है। चतुर्थ भाग में कौटिल्यकालीन कानून, दण्ड, न्याय एवं सुरक्षा की 'आधुनिक राजनीति मे प्रासंगिकता' पर विचार किया गया है।

पञ्चम अध्याय में 'अन्तर्राज्य संबंध' पर प्रकाश डाला गया है। पाँच भागों में विभक्त इस अध्याय के प्रथम भाग में 'मण्डल सिद्धान्त' की समीक्षा की गई है। जिसमें 'द्वादश राजमण्डल' के अन्तर्गत आने वाले बारह राजाओ– (i) विजिगीषु राजा (ii) अरिराजा (iii) मित्र राजा (iv) अरिमित्र राजा (v) मित्र मित्र राजा (vi) अरिमित्र मित्र राजा (vii) पार्ष्णिग्राह राजा (viii) आक्रन्द राजा (ix) पार्ष्णिग्राहासार राजा (x) आक्रान्दासार राजा (xi) मध्यम राजा तथा (xii) उदासीन राजा, पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय भाग में 'षाड्गुण्य सिद्धान्त' पर चर्चा करते हुए उसके छैः गुणो– (i) सन्धि (ii) विग्रह (iii) आसन (iv) यान (v) संश्रय (vi) द्वैधीभाव, की परिचर्चा प्रस्तुत की गई है। तृतीय भाग में 'उपायचतुष्टय' के अन्तर्गत चार प्रकार के राजनीतिक एवं कूटनीतिक उपायों– (i) साम (ii) दान (iii) भेद तथा (iv) दण्ड पर प्रकाश डाला गया है। चतुर्थ भाग में 'दूत एवं गुप्तचर व्यवस्था' तथा पञ्चम भाग में 'कौटिलीय अन्तर्राज्य सम्बन्धों की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता' को सुस्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

षष्ठम अध्याय में 'कौटिलीय राजदर्शन में उपलब्ध व्यसन एवं आपदा चिन्तन' संबंधी तथ्य संकलित किए गए हैं। छैः भागों में विभक्त इस अध्याय के प्रथम भाग में 'राज्य की विभिन्न प्रकृतियों के व्यसन', द्वितीय भाग में 'राजा और राज्य के व्यसन', तृतीय भाग में 'सामान्य जनों के व्यसन', चतुर्थ भाग में 'सेना व्यसन एवं मित्र व्यसन', पञ्चम भाग में 'आपदाऐं, आर्थिक अवरोध एवं वित्तीय घोटाले' तथा षष्ठम भाग में 'कौटिल्य के व्यसन एवं आपदा चिन्तन की आधुनिक युग में प्रासंगिकता' को दर्शाया गया है।

सप्तम अध्याय में 'कौटिल्य के राजदर्शन का आधुनिक सन्दर्भ में मूल्यांकन' प्रस्तुत किया गया है। पाँच भागों में विभक्त इस अध्याय के प्रथम भाग में 'कौटिल्य की कूटनीति', द्वितीय भाग में 'कौटिल्य एवं मैकियावली', तृतीय भाग में 'कौटिल्य के राजनीतिक व्यक्तित्व में आदर्शवाद एवं यथार्थवाद का समन्वय', चतुर्थ भाग में 'अर्थशास्त्र : एक सार्वकालिक राजनीतिक ग्रन्थ' तथा पञ्चम भाग में 'मूल्यांकन' प्रस्तुत किया गया है।

उपरोक्त तथ्यों का विश्लेषण करते समय कौटिल्य कालीन इतिहास को अनिवार्य रूप से अपनी शोध दृष्टि में रखा गया है। क्योंकि ऐतिहासिक तथ्यों की कसौटी पर कसे बिना किसी भी ग्रन्थ से कोई निष्कर्ष निकालना तथा कोई मान्यता स्थापित करना एक जोखिमपूर्ण कार्य होता है। इस दृष्टि से हमारे पास इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोत उपलब्ध रहे है। ऐतिहासिक साहित्य में मगध तथा मौर्य साम्राज्य का प्रसिद्ध इतिहास, विदेशी राजदूत वर्णनों में यूनानी राजदूत मेगस्थनीज का भारत वर्णन, पौराणिक साहित्य में विष्णुराण, लौकिक संस्कृत साहित्य में विशाखदत्त का मुद्राराक्षस नामक संस्कृत नाटक, सोमदेव का कथा सरितसागर तथा क्षेमेन्द्र की वृहत्कथामञ्जरी, बौद्ध/पालि साहित्य में दीपवंस, महावंस तथा महावोधवंस जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ हमारे लिए अत्यधिक सहायक सिद्ध हुए हैं। क्योंकिं उपरोक्त सभी ग्रन्थों में से अधिकांश या तो कौटिल्य के समकालीन रहे हैं या थोड़ा बहुत आगे पीछे रहे हैं। इस रूप में 'देहली दीपक न्याय' से उपरोक्त सभी ग्रन्थ 'कौटिल्य कालीन ऐतिहासिक तथ्यों की पुष्टि' में अपनी अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कौटिल्य के राजदर्शन की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता प्रदर्शित करने के लिए आधुनिक राजनीति से संबंधित आवश्यक सामग्री तद्विषक विभिन्न ग्रन्थों तथा सामयिक पत्र–पत्रिकाओं से जुटाई गई है। इस प्रकार उपरोक्त शोध पद्धति का अनुसरण करते हुए कौटिल्य के राजदर्शन की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता एवं अप्रसांगिकता को रेखांकित करने का शोधानुकूल प्रयास किया गया है।

═══

प्रथम अध्याय– कौटिलीय अर्थशास्त्र : एक परिचय

एका केवलमेव साधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका।
नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम।।

(मुद्राराक्षस 1/26)

[मुझ चाणक्य का सर्वस्व चला जावे, किन्तु सैकड़ों सेनाओं से भी अधिक शक्तिशाली तथा विशाल नन्दवंश का उन्मूलन करने में समर्थ मेरी एकमात्र बुद्धि न जावे।]

प्रथम अध्याय (कौटिलीय अर्थशास्त्र : एक परिचय)

(क) प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तक के रूप में कौटिल्य : परिचय तथा महत्व :

परिचय : अनेक पाश्चात्य विद्वान तथा कुछ भारतीय विद्वान भी बहुत समय तक यही मानते रहे कि प्राचीन भारत में अर्थशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र विषयक ज्ञान नगण्य था। क्योंकि उनके मतानुसार प्राचीन भारतीय चिन्तकों ने केवल धार्मिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन को ही प्रमुखता दी है। इसलिए उनका अन्य भौतिक विषयों जैसे– अर्थशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र से संबंधित चिन्तन या ज्ञान की ओर विशेष ध्यान नहीं गया। फलस्वरूप प्राचीन भारत में इन विषयों का पर्याप्त विकास संभव नहीं हो सका। कतिपय विद्वानों का मत यह भी रहा है कि राजनीतिक विषयों का यहाँ पर जो कुछ थोड़ा बहुत विचार हुआ भी है वह केवल धर्म के अंगीभूत विषय के रूप में ही हुआ है; एक स्वतंत्र विषय के रूप में नहीं। इसलिए यहाँ का राज्यशासन अधिकतर धर्ममूलक ही रहा है। वह विशुद्ध राजनीतिक सिद्धान्तों के अनुसार विकसित नहीं हो सका है।

लेकिन डा० आर० शामाशास्त्री ने अपने अथक प्रयत्नों से प्राचीन भारतीय राजशास्त्र प्रणेता आचार्य कौटिल्य के बहुमूल्य ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' का 1905 ई. में अन्वेषण किया तथा 1909 ई. में उसका आंग्लभाषा में सानुवाद प्रकाशन करके उपरोक्त विद्वानों की भ्रान्त धारणाओं का सप्रमाण उन्मूलन करने में महती सफलता प्राप्त की। इस ग्रन्थ के सर्वेक्षण से प्राचीन भारत का जो चित्र उभरकर सामने आता है उसमें ज्ञान–विज्ञान की अनेक विधाओं, शास्त्रों, कलाओं, शिल्पों और पदार्थों से संबंधित सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक ज्ञान अपने विकसित स्वरूप में देखने को मिलता है। 'अर्थशास्त्र' के उपलब्ध हो जाने से इस बात का जीवन्त प्रमाण मिल गया है कि अब से लगभग दो–ढाई हजार वर्ष पूर्व जबकि विश्व के अनेक आधुनिक राष्ट्रों का उदय भी नहीं हुआ था, भारतवर्ष अपनी सभ्यता और संस्कृति की तथा राजनीतिक और आर्थिक चरमोन्नति की पताका फहरा रहा था।[1] यह एक मात्र ग्रन्थ

1. भगवान दास केला व जगनलाल गुप्ता, कौटिल्य के आर्थिक विचार, प्रस्तावना, पृष्ठ 1

स्वयं को प्राचीन भारतीय राजदर्शन विषयक स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में तथा अपने रचयिता आचार्य कौटिल्य को एक महान प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तक के रूप में प्रतिष्ठापित करता है।

आचार्य कौटिल्य के जीवन वृत्त के संबंध में पर्याप्त एवं प्रामाणिक सामग्री का सर्वथा अभाव है। स्थापित परम्परा के अनुसार उनके तीन नाम– विष्णुगुप्त, कौटिल्य तथा चाणक्य, बहुप्रचलित रहे हैं। इनमें से प्रथम दो नाम– विष्णुगुप्त एवं कौटिल्य, की पुष्टि तो 'अर्थशास्त्र' के अन्तर्साक्ष्यों से ही हो जाती है। क्योंकि अर्थशास्त्र के प्रारंभ में ही कहा गया है कि इस शास्त्र की रचना कौटिल्य के द्वारा की गई है– 'कौटिल्येन कृतं शास्त्रं'।[2] इसके अतिरिक्त ग्रन्थ में सैकड़ों स्थलों पर प्रयुक्त 'इति कौटिल्यः' तथा 'नेति कौटिल्यः' जैसी उक्तियों की बारम्बारता रचनाकार के 'कौटिल्य' नाम को सत्यापित करती है। इसी प्रकार ग्रन्थ के अन्त में कहा गया है कि 'अर्थशास्त्र के सूत्रों तथा उनके भाष्य का निर्माण स्वयं विष्णुगुप्त ने किया है।'[3] यह उक्ति रचनाकार के दूसरे प्रचलित नाम–'विष्णुगुप्त' को प्रमाणित करती है। तीसरे नाम–'चाणक्य' की पुष्टि का अवश्य कोई प्रामाणिक आधार अब तक नहीं मिल सका है। इसलिए केवल अनुमान ही लगाया जाता है कि सम्भवतः 'चणक' गोत्रीय ब्राह्मण[4] होने के कारण अथवा 'चणक' नामक स्थल[5] पर जन्म होने के कारण उसका नाम 'चाणवय' पड़ा। कौटिल्य के काल निर्धारण के संबंध में आगे स्पष्ट किया गया है कि अधिकांश विद्वान समीक्षकों ने अन्य विद्वानों द्वारा उठाई गई आपत्तियों का प्रामाणिक खण्डन करते हुए उसका काल 400 ई0पू0 निर्धारित किया है, जिसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति प्रतीत नहीं होती है। कौटिल्य के कुटुम्ब–वृत्त के संबंध में केवल इतनी ही पारम्परिक जानकारी अब तक मिल सकी है कि उसके पिता का नाम 'चणक' था।[6]

---

2. सुखग्रहणविज्ञेयं तत्वार्थपदनिश्चितम्।
   कौटिल्येन कृतं शास्त्रं विमुक्त ग्रन्थ विस्तरम्।। कौ0 अर्थ0 'प्रकरणाधिकरण समुद्देशः' पृष्ठ 7
3. दृष्ट्वा विप्रतिपत्तिं बहुधा शास्त्रेषु भाष्यकाराणाम।
   स्वयमेव विष्णुगुप्तश्चकार सूत्रं च भाष्यं च।। कौ0 अर्थ0 15/180/1, पृष्ठ 771
4. डॉ0 आनन्द प्रकाश अवस्थी, भारतीय राजनीतिक विचारक, पृष्ठ 42
5. डॉ0 एम0 बी0 कृष्णराव, कौटिलीय अर्थशास्त्र का सर्वेक्षण, पृष्ठ 2
6. वात्स्यायनो मल्लनागः कौटिल्यश्चणकात्मजः।
   द्रामिलः पक्षिलस्वामी विष्णुगुप्तोऽङ्गुलश्च सः।।
   हेमचन्द्र कृत 'अभिधान चिन्तामणि' (Kautilya Arthasastra : N. P. Unni पृष्ठ–6 पर उद्धृत)

हाँ, इस संबंध में कौटिल्य अर्थशास्त्र की एक महत्त्वपूर्ण उक्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसमें कहा गया है कि 'आचार्य कौटिल्य ने समस्त शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन करके तथा उनका प्रायोगिक परीक्षण करके ही राजा के लिए इस (अर्थशास्त्र रूपी) शासन विधि का सृजन किया है।[7] यह महत्वपूर्ण उक्ति कौटिल्य जीवन के वृहद ऐतिहासिक वातायन को खोलती हुई सी प्रतीत होती है। कुछ समीक्षकों के अनुसार उपरोक्त उक्ति में प्रयुक्त राजा (नरेन्द्र) शब्द संभवतः चन्द्रगुप्त मौर्य के लिए ही सम्बोधित है।[8] इस रूप में चन्द्रगुप्त मौर्य तथा उनके मौर्य साम्राज्य से जुड़ी आचार्य कौटिल्य की अन्तरङ्ग ऐतिहासिक सम्बद्धता को यहाँ रेखाङ्कित किया जा सकता है।

ऐतिहासिक विवरण के अनुसार भारतवर्ष के मगध राज्य पर नन्दवंश का साम्राज्य था। नन्दवंश के अन्तिम सम्राट 'महानन्द' की अपने अमात्य 'शकटार' से किसी कारणवश अनबन हो गई। सम्राट महानन्द ने रुष्ट होकर मंत्री शकटार का अपमान कर दिया। फलस्वरूप शकटार हमेशा अपने अपमान का बदला लेने की जुगत में रहता। इसी बीच उसने एक ऐसे ब्राह्मण को देखा जो कटीली घास को जड़ से उखाड़ रहा था; क्योंकि इस घास से उसके पैर जख्मी हुए थे। शकटार उस ब्राह्मण के 'कण्टक–उन्मूलन' रूपी दृढ़ संकल्प से प्रभावित हुआ तथा उसे विश्वास हुआ कि ऐसी संकल्पशक्ति वाले व्यक्ति का नन्दवंश के उन्मूलन में उपयोग करना सार्थक हो सकता है। वह ब्राह्मण कोई और नहीं, अपितु चाणक्य (कौटिल्य) ही था, जो अत्यधिक विद्वान होने के साथ कुरूप तथा क्रोधी भी था। शकटार ने कौटिल्य को अपने साथ लिया। एक सोची–समझी रणनीति के तहत एक दिन उसने राजा की ओर से कौटिल्य को राजदरबार में श्राद्ध के अवसर पर आमंत्रित कर सबसे प्रतिष्ठित आसन पर बैठा दिया। सुबन्धु नामक दूसरे ब्राह्मण ने जब राजा के सामने कौटिल्य जैसे कुरूप व्यक्ति के उच्चासन पर बैठने पर आपत्ति की तो राजा ने उसे अपमानित करते हुए

7. सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च।
कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः।। कौ0 अ0 2/26/10, पृष्ठ 124

8. डॉ0 एम0 वी0 कृष्णराव (अनुवादक–जी0 विश्वेश्वरय्या); कौटिल्यीय अर्थशास्त्र का सर्वेक्षण, पृष्ठ 12

वहाँ से निकाल दिया। इस असहनीय अपमान से क्रुद्ध होकर कौटिल्य ने प्रतिज्ञा की कि जब तक राजा नन्द का वंश नाश नहीं कर दूँगा, अपना शिखाबन्ध नहीं करूँगा। शक्टार ने उसे अपना संरक्षण प्रदान किया।[9]

एक दिन कौटिल्य को जंगल में घूमते समय कुछ बालक 'बाल क्रीड़ा' करते हुए दिखाई दिए। बालक जो खेल खेल रहे थे वह बडा रोमाञ्चक था। एक बालक राजा बना था और उसके सामने कोई प्रकरण न्याय हेतु लाया गया था। राजा अपना फैसला सुनाता हुआ दोषियों के हाथ पैर काटने की सजा देता है और कहता है कि चूँकि न्याय और दण्ड में किसी प्रकार का विलम्ब नहीं होना चाहिए, इसलिए इन मुल्जिमों को अभी मेरे सामने ही सजा दी जाय। जब अन्य बालक अपनी असमर्थता दिखाते हुए कहते है कि चूँकि इस समय हमारे पास कुल्हाड़ी इत्यादि औजार नहीं है, इसलिए आपकी आज्ञा का पालन अभी संभव नहीं है। इस पर राजा कहता है कि मैं 'असंभव' शब्द सुनने का आदी नहीं हूँ, इसलिए जाओ, जंगल से ढूँढकर लकड़ी के डण्डे लाओ और उनमें मृत पशुओं के सींग फँसाकर कुल्हाड़ी बनाओ. . . . . .।[10] कौटिल्य उस बालक की 'साधनविपन्नता को भी साधनसम्पन्नता में बदल देने की तथा असंभव को भी संभव कर दिखाने की वह विलक्षण इच्छाशक्ति एवं 'संकल्प शक्ति' देखकर दंग रह गया। नन्दवंश के उन्मूलन हेतु दूसरे सहयोगी के रूप में कौटिल्य ने उस बालक को अपने साथ लिया। वह बालक कोई और नहीं, स्वयं चन्द्रगुप्त था। इतिहास साक्षी है कि आगे चलकर कौटिल्य की प्रखरमति तथा चन्द्रगुप्त की अदम्य शक्ति ने मिलकर न केवल कौटिल्य के अपमान का बदला लिया; अपितु पूरा इतिहास ही बदल कर रख दिया। नन्दवंश का उन्मूलन तथा मौर्यवंश का प्रतिस्थापन करके उन्होंने भारतवर्ष का नक्शा ही बदल दिया।

---

9. डॉ0 आनन्द प्रकाश अवस्थी : भारतीय राजनीतिक विचारक, पृष्ठ 43–44
10. डॉ0 सत्यकेतु विद्यालंकार : पाटलीपुत्र की कथा, पृष्ठ 101–102

महत्व :

शामशास्त्री द्वारा 1909 में प्रथम वार कौटिलीय अर्थशास्त्र के आंग्लभाषा में सानुवाद प्रकाशन से भारत को एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय उपलब्धि हुई। जिस कौटिल्य (चाणक्य) के विषय में देशवासियों को केवल कुछ अप्रामाणिक किम्वदन्तियाँ एवं दन्तकथाऐं ही सुनने–पढ़ने को मिलती थीं, अब उसी महान चिन्तक के इस अनूठे ग्रन्थ से उन्हें उत्कृष्ट ज्ञान–विज्ञान संबंधी बहुआयामी प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध हो रही थी। इस ग्रन्थ का देश के अन्दर तथा बाहर ज्यों–ज्यों प्रचार–प्रसार, अध्ययन–अध्यापन तथा अनुसन्धान प्रारंभ हुआ, त्यों–त्यों इसका उत्तरोत्तर महत्व उजागर हुआ। सुधी अध्येताओं ने इसके अध्ययन से यह अनुभव किया कि राजनीतिक दर्शन में कौटिलीय अर्थशास्त्र का वही महत्व है जो व्याकरणशास्त्र में पाणिनीय अष्टाध्यायी का है।[11] प्लेटो और अरस्तु को जो स्थान यूनानी राजनीति में प्राप्त है, उससे कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण स्थान कौटिल्य को भारतीय राजनीति में प्राप्त है।[12] यह ग्रन्थ केवल राजनीति ही नहीं, अपितु समाजनीति, युद्धनीति, कूटनीति, सुरक्षानीति, अर्थनीति, खनिजनीति, विदेशनीति तथा दण्डनीति आदि विविध विषयों का एक अगाधागार है। जीवन के विविध–पक्षों पर आचार्य कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में जिस प्रकार से अपने विद्वत्तापूर्ण विचार व्यक्त किए हैं उनसे उनका महान ऐतिहासिक व्यक्तित्व उनके समकक्ष कहलाने वाले पाश्चात्य चिन्तक 'मैकियावली' जैसे कूटनीतिज्ञों से भी श्रेष्ठ प्रमाणित होता है। इतना ही नहीं, दण्डी जैसे प्राचीन भारतीय आचार्यो की भी यह मान्यता रही है कि 'आचार्य विष्णुगुप्त (कौटिल्य) प्रणीत उस दण्डनीति का अध्ययन करो जिसको उन्होंने चन्द्रगुप्त मौर्य के लिए छैः हजार श्लोकों में संक्षिप्त किया था। जो भी इस उत्तम ग्रन्थ को पढ़ेगा उसको उत्तम फल प्राप्त होगा।[13]

---

11. प्रो0 अनन्त सदाशिव अलतेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृष्ठ 11
12. डॉ0 सुरेन्द्र कुमार जायसवाल, हिन्दू राजशास्त्र, पृष्ठ 39
13. अधीष्व तावद्दण्डनीतिम्। तदिदमिदानीमाचार्यविष्णुगुप्तेन मौर्यार्थे षड्भिः। श्लोकसहस्रैः संक्षिप्ता। सैवेयमधीत्य सम्यगनुष्ठीयमानयथोक्त कार्यक्षमेति। कौटिलीय अर्थशास्त्र–वाचस्पति गैरोला, भूमिका पृष्ठ 71 पर उद्घृत (दशकुमार० 2/8)

आचार्य कौटिल्य और उनके 'अर्थशास्त्र' का समुचित महत्व समझने के लिए हमें उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर यत्किञ्चित् दृष्टिपात करना होगा। आचार्य कौटिल्य से पूर्व भारत में बौद्धधर्म तथा जैनधर्म द्वारा उपदिष्ट 'अहिंसा' के सिद्धान्त ने देश के जनमानस को एक ऐसी दिशा की ओर मोड़ दिया था जिसके फलस्वरूप शस्त्र तथा शास्त्र की उपेक्षा होने लगी थी। लोग अपने जीवन के दायित्वों का निर्वाह करने की वजाय धर्म के नाम पर असमय में ही वैराग्य और सन्यास धारण करने लगे थे। शस्त्र का स्थान 'अंहिसा' द्वारा ग्रहण कर लिए जाने के कारण राष्ट्र की सैन्य-क्षमता एक चिन्ताजनक सीमा तक प्रभावित हुई थी। दुर्भाग्यवश इन्हीं विषम परिस्थितियों में सिकन्दर जैसे विश्वविजयी आक्रान्ता द्वारा भारत पर आक्रमण कर दिया गया। अहिंसा के उपासक भारतीय जनमानस द्वारा डटकर मुकावला करने की वजाय उसके सामने घुटने टेक दिए गये तथा देखते-देखते भारत पर यूनानी सत्ता का आधिपत्य स्थापित हो गया। कौटिल्य जैसे राष्ट्रभक्त चिन्तक का इन राष्ट्रघाती परिस्थितियों से विक्षुब्ध होना स्वाभाविक था। इसलिए राष्ट्रहित में उसने गहन चिन्तन मनन के बाद संन्यास, वैराग्य तथा अहिंसा के सिद्धान्त को सीमित करते हुए शस्त्र तथा शास्त्र को पुनः सशक्त बनाने तथा उनका पुनरुद्धार करने के उद्देश्य से अपने 'अर्थशास्त्र' ग्रन्थ का प्रणयन किया।[14] फलस्वरूप भारत की प्रशासनिक तथा सैन्य-क्षमता में ऐसा क्रान्तिकारी परिवर्तन आया कि जब कुछ ही समय बाद सिकन्दर महान के सेनापति सेल्यूकस ने दुबारा भारत पर आक्रमण किया तो उसने यहाँ का नजारा बिल्कुल बदला हुआ पाया। यहाँ की रणविजयी सेना ने अजेय एवं अपराजेय बनकर सिन्धु नदी के तट पर सेल्युकस को मुँहतोड जबाव दिया था। इस सन्दर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय तथ्य यह है कि 'अर्थशास्त्र' जैसे विलक्षण ग्रन्थ में निर्दिष्ट नीति-नियमों को निष्ठापूर्वक क्रियान्वित करते हुए आचार्य कौटिल्य तथा सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के संयुक्त प्रयासों से एक ऐसे सुदृढ़ एवं सशक्त भारत का निर्माण हुआ कि उसके बाद एक लम्बी अवधि तक किसी विदेशी आक्रान्ता को भारत देश पर आक्रमण करने का साहस नहीं हो सका।

---

14. येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः ।
अमर्षणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्।। कौ0 अर्थ0 15/180/1 पृष्ठ 771

केवल राजनीतिक तथा प्रशासनिक क्षेत्र में ही नहीं अपितु सामाजिक क्षेत्र में भी कौटिलीय अर्थशास्त्र ने भारतीय इतिहास में पहली बार एक क्रान्तिकारी परिवर्तन की पहल प्रारंभ की थी। यह एक परम सन्तुष्टि का विषय है कि प्राचीन भारतीय वर्ण व्यवस्था के अधिकार विहीन शूद्र वर्ग को कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्रथम बार कुछ अधिकार देने की अनुकरणीय चेष्टा की गई है। मनु जैसे विभिन्न पुरातन धर्मशास्त्रकारों ने शूद्रों की जीविका का एकमात्र साधन द्विज–सेवा निर्धारित किया है। इस परम्परा के अनुसार शूद्र किसी स्वतंत्र आजीविका का साधन नहीं अपना सकते थे। किन्तु कौटिलीय अर्थशास्त्र में शूद्रों को दस्तकारी, नृत्य, संगीत और नाटक मंडलियो में अभिनय आदि के रूप में विभिन्न जीविका साधनों के अधिकार प्रदान किए गए हैं।[15] तथा भूमि व्यवस्था में भी उन्हें कुछ स्थान दिया गया है।[16] इस प्रकार शूद्रों को जीविका के नये क्षेत्रों तथा अधिकारों का सर्वप्रथम प्राविधान करके कौटिल्य ने उन्हें अजीविका हेतु केवल द्विज–सेवा की पराधोनता से बचाने का स्तुत्य प्रयास किया है। इतना ही नहीं आचार्य कौटिल्य ने शूद्रों को सेना में भर्ती किए जाने को भी अनुमन्य करने का अभूतपूर्व साहस दिखाया।[17] इस संबंध में आचार्य दीपंकर का मन्तव्य निर्विवाद रूप से स्वीकार्य प्रतीत होता है कि 'ज्यों–ज्यों राजतंत्रों को अपनी दुर्दमनीयता की स्थापना करने के लिए और साम्राज्य विस्तार हेतु नित नये–नये राज्यों को अपने में आत्मसात् करने के लिए विशाल सेनाओं की आवश्यकता अनुभव होने लगी त्यों–त्यों सेनाओं के संबंध में मनुकालीन दृष्टिकोण रद्दी की टोकरी में फेका जाने लगा। कौटिल्य द्वारा शूद्रों को सेना में भर्ती का प्राविधान किया जाना तथा अपवाद के अवसरों पर उन्हें उच्चकोटि की सेना सिद्ध किया जाना तथा विभिन्न कूटनीतिक विभागों में प्रवेश के लिए शूद्र पुरुषों तथा महिलाओं को प्राथमिकता दिया जाना इस बात का प्रमाण है कि क्रूर सामाजिक बन्धन तथा कुप्रथाऐं कुशल

---

15. शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा वार्ता कारुकुशीलवकर्म च। कौ0 अर्थ0 1/1/2, पृष्ठ 10
16. शूद्रकर्षकप्रायं कुलशतावरं पञ्चशतकुलपरं ग्रामं क्रोशद्विक्रोशसीमानमन्योन्यारक्षं निवेशयेत्।
    कौ0 अर्थ0 1/17/1, पृष्ठ 77
17. नेति कौटिल्यः। प्रणिपातेन ब्राह्मणबलं परोऽमिहारयेत्। प्रहरणविद्याविनीतं तु क्षत्रियबलं श्रेयः, बहुलसारंवा वैश्यशूद्रबलमिति। कौ0 अर्थ0 9/137–139/2, पृष्ठ 600

शूद्र जातियों को अपनी ऐतिहासिक भूमिका अदा करने से अधिक दिनों तक रोक नहीं सकते।[18]

आचार्य कौटिल्य के द्वारा दूसरा महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन दास–प्रथा के संबंध में किया गया। यह देखकर आश्चर्य होता है कि कौटिल्य पूर्व भारत में जहाँ दास–प्रथा राष्ट्रीय उत्पादन का मूल–आधार थी वहीं दुर्भाग्यवश यह वर्ग समाज में पूर्णतः अधिकार च्युत था। इस वर्ग को यदि कोई अधिकार प्राप्त था तो वह था दूसरों की वेगार तथा गुलामी करना। लेकिन आचार्य कौटिल्य ने इस अधिकार विहीन दास–वर्ग को भी समाज में कुछ अधिकार देने का एक महान सामाजिक कार्य किया।[19]

सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत अनेक छोटे–छोटे राज्यों के रूप में विखण्डित था। भारतीय नरेश पारस्परिक ईर्ष्या व कलह के शिकार थे। वे शत्रु का सामूहिक मुकाबला करने की बजाय एक दूसरे पर हमला करने में ही अपनी सारी शक्ति का क्षय–व्यय कर रहे थे। इस कारण हमारा राष्ट्र हर दृष्टि से हीन व निर्बल हो चुका था; विदेशी आक्रान्ताओं का सफलतापूर्वक सामना करने की उसकी शक्ति क्षीण हो चुकी थी। ऐसे में आचार्य कौटिल्य ने भारत के सभी राजाओं और सामन्तों का चन्द्रगुप्त मौर्य के नेतृत्व में एकीकरण किया; देशवासियों के समक्ष राष्ट्रीय एकता और अखण्डता का एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया; तथा अशक्त भारत को एक सशक्त राष्ट्र के रूप में सृजित करके दिखाया। इस दृष्टि से आचार्य कौटिल्य के महत्व का मूल्यांकन करने पर वह हमारे देश के प्रथम राष्ट्रपिता सिद्ध होते हैं।[20]

किन्तु खेद है कि एक सशक्त एवं समृद्ध भारत की सुदृढ़ नींव का शिलान्यास करने वाले तथा जीवन की अन्तिम श्वास एक राष्ट्रीय हितों के लिए पूर्णतः समर्पित आचार्य कौटिल्य की प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान काल तक के विद्वत्समुदाय द्वारा प्रशस्ति कम तथा

---

18. आचार्य दीपंकर, कौटिल्य कालीन भारत, भूमिका पृष्ठ XXXXIX
19. कौ0 अर्थ0 3/69/13 ('दासकर्मकरकल्पम्' नामक अध्याय)
20. आचार्य दीपंकर, कौटल्य कालीन भारत, भूमिका पृष्ठ XXXXX

आलोचना अधिक की गई है। उदाहरणार्थ बाणभट्ट जैसे प्राचीन संस्कृत महाकवि कौटिलीय अर्थशास्त्र को एक नृशंस तथा निकृष्ट शास्त्र की संज्ञा देते हैं[21] तो डा0 धर्मवीर जैसे कुछ आधुनिक विद्वान आचार्य कौटिल्य को 'समाज का शत्रु' तथा 'पापी' तक कहने में कोई संकोच नहीं करते हैं।[22] इन आलोचनाओं का संभावित मूल–आधार प्रतीत होता है–कौटिलीय अर्थशास्त्र के व्यापक सर्वेक्षण की जगह उसका केवल एकांगी अनुशीलन। इसलिए आज आवश्यकता है कौटिलीय अर्थशास्त्र के व्यापक एवं सर्वांगीण पर्यवेक्षण की; तथा उसकी सामयिक उपयोगिता एवं उपादेयता को प्रकाशित करने की।

(ख) कौटिल्य के राजदर्शन का मूल स्रोत– अर्थशास्त्र : नामकरण, रचनाकाल, वर्ण्यविषय एवं वैशिष्ट्य :

(i) नामकरण :

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि भारतीय संस्कृति के मूलतत्व के रूप में पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के प्रति सम्पूर्ण मानव जीवन लक्ष्यबद्ध रहा है। हमारे चिन्तन परायण आचार्यो के द्वारा एक सफल मानव जीवन के लिए तीन–अर्थ (धर्म, अर्थ, काम) तथा एक परम–अर्थ (मोक्ष) का निर्धारण किया गया है। प्रारंभिक तीन पुरुषार्थो को अन्तिम 'मोक्ष' नामक पुरुषार्थ की प्राप्ति का साधन माना गया है। साधन स्वरूप उपरोक्त तीनों पुरुषार्थों के संयत एवं समन्वित सेवन हेतु यहाँ पर तीन वृहत शास्त्रों का सृजन हुआ– धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, तथा कामशास्त्र। आचार्य वात्स्यायन ने अपने प्रख्यात ग्रन्थ 'कामसूत्र' में इसी तथ्य की ओर इंगित किया है– 'प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि रचना के उपरान्त एक लाख अध्याय वाले एक विशाल ग्रन्थ की रचना सृष्टि की स्थिति एवं त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की स्थापना हेतु की। उस विशाल ग्रन्थ में से स्वयंभू मनु ने धर्मशास्त्र, वृहस्पति ने अर्थशास्त्र और

---

21. किं वा तेषां साम्प्रतं येषामतिनृशंसप्रायोपदेशे कौटिल्यशास्त्रप्रमाणम। कौ0 अ0 भूमिका पृष्ठ 71 पर उदधृत
22. डॉ0 धर्मवीर, कौटिल्य का सामाजिक वैर, पृष्ठ 25–35

महादेव के अनुचर नन्दी ने एक सहस्र अध्याय वाले कामशास्त्र (कामसूत्र) को पृथक कर लिया।[23]

उक्त तीनों शास्त्रों के विषय क्षेत्र भीसामान्यतः पृथक्–पृथक् निर्धारित हैं। धर्म–अध्यात्म की वृहत् समीक्षा करने वाले ग्रन्थ 'धर्मशास्त्र' तथा काम की सुव्याख्या प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ 'कामशास्त्र' है। इन दोनों शास्त्रों के वर्ण्य विषयों के अतिरिक्त अन्य जितने भी लौकिक विषय है वे सभी सामान्यतः 'अर्थशास्त्र' में अन्तर्निहित होते हैं। इस प्रकार 'अर्थशास्त्र' नामकरण एक व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जिसकी पुष्टि के लिए हमारे पास पर्याप्त प्रमाण है। 'महाभारत' जैसे प्राचीन ग्रन्थ में अर्जुन को 'अर्थशास्त्र विशारद'[24] के रूप में सम्बोधित करके इस शब्द की व्यापकता अभिव्यञ्जित की गई है। आचार्य कौटिल्य भी यही संकते देते हैं। 'अर्थ' तथा 'अर्थशास्त्र' इन दोनों शब्दों को पृथक–पृथक् परिभाषित करते हुए कौटिल्य कहते है कि मनुष्यो की आजीविका को तथा मानव–युक्त भूमि को 'अर्थ' कहते है; तथा इस प्रकार की 'भूमि' को प्राप्त करने और उसके रक्षक उपायों का निरूपण करने वाले शास्त्र को 'अर्थशास्त्र' कहते है।[25] इस प्रकार आचार्य कौटिल्य द्वारा प्रस्तुत 'अर्थ' तथा 'अर्थशास्त्र' शब्दों की उपरोक्त परिभाषा से कौटिलीय अर्थशास्त्र की क्षेत्र–व्यापकता पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। उसके अन्तर्गत मानव जीवन की सामाजिक, आर्थिक, तथा राजनीतिक आदि विभिन्न स्थितियों की विवेचना होने के कारण आधुनिक समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, तथा सैन्यविज्ञान आदि अनेक महत्वपूर्ण विषयों का समावेश हो जाता है।

(ii) रचनाकाल :

आचार्य कौटिल्य के संबंध में यह एक बड़ी विडम्बना है कि जिस महान चिन्तक ने विश्व के लिए 'अर्थशास्त्र' जैसा गौरवशाली ग्रन्थ प्रदान किया हो, उसके जीवनवृत्त तथा

---

23. प्रजापतिर्हि प्रजां सृष्ट्वा तासां स्थितिनिबन्धनं त्रिवर्गस्य साधनमध्यायानां
    शतसहस्रेणाग्रे प्रोवाच. . . . . . .महादेवानुचरश्च नन्दी सहस्रेणाध्यायानां
    पृथक कामसूत्रं प्रोवाच।
    वात्स्यायन कामसूत्र(डॉ0 श्यामलाल पाण्डेय, कौटिल्य की राज्यव्यवस्था, पृष्ठ 4 पर उद्‌धृत)
24. समाप्तवचने तस्मिन्नर्थशास्त्र विशारदः।
    पार्थो धर्मार्थतत्वज्ञो जगौ वाक्यमनन्द्रितः।। महा0 12/161/9
    मणिशंकर प्रसाद,कौटिल्य के राजनीतिक एवं सामाजिक विचार,पृष्ठ 4
25. मनुष्याणां वृत्तिरर्थः, मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः, तस्याः पृथिव्याः
    लाभपालनोपायः शास्त्रमअर्थशास्त्रमिति। कौ0 अर्थ0 15/180/1 पृष्ठ 765

काल–निर्धारण के लिए हमे केवल 'कुछ' दन्तकथाओं/किम्बदन्तियों/लोकोक्तियों पर ही अधिक निर्भर रहना पड़ता है। इस संबंध में किसी सन्तोषजनक प्रामाणिक सामग्री का अभाव पग–पग पर अखरता है। 'आत्मश्लाधा परित्याग' के पुरातन परम्परानुकरण ने जहाँ स्वयं कौटिल्य को अपने जीवनवृत्त पर पृथक रूप से लेखनी चलाने की अनुमति नहीं दी, वहीं समकालीन या परवर्ती विद्वानों ने भी उसके साथ न्याय नहीं किया। कौटिल्य के समकालीन विख्यात यूनानी राजदूत मैगस्थनीज ने अपने विस्तृत यात्रा–वर्णन में पाटलिपुत्र सहित भारत की पर्याप्त नक्शा–नवीशी तो की, किन्तु कौटिल्य (चाणक्य) जैसे लब्धप्रतिष्ठ राजनीतिक चिन्तक के वर्णन में वहाँ भी आपत्तिजनक कृपणता ही परिलक्षित होती है। इसके अतिरिक्त समकालीन पुराण साहित्य, जैन साहित्य, बौद्ध साहित्य में भी यत्र तत्र कौटिल्य या चाणक्य का नामोल्लेख तो हुआ है; किन्तु कोई विशेष उपयोगी या प्रामाणिक जानकारी वहाँ भी नहीं दी गई है।

इन निराशाजनक परिस्थितियों में कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने तो आचार्य कौटिल्य तथा कौटिलीय अर्थशास्त्र के अस्तित्व को ही चुनौती दे डाली और कहा कि कौटिल्य नाम का कोई वास्तविक व्यक्ति हुआ ही नहीं। यह एक कल्पित नाम है तथा 'अर्थशास्त्र' नाम की यह एक जाली रचना है। विद्वानो के बीच यह दुःखद भ्रान्ति कई वर्षो तक कायम रही। लेकिन डॉ0 आर0 शामाशास्त्री, टी0 गणपति शास्त्री तथा डॉ0 काशीप्रसाद जायसवाल जैसे विद्वानो के प्रति भारतीय मनीषा सदैव ऋणी रहेगी जिन्होंने अपनी अथक श्रम साधना के साथ कौटिलीय अर्थशास्त्र के अन्तःसाक्ष्यों तथा बहिर्साक्ष्यों का युक्तियुक्त विवेचन एवं विश्लेषण करके अपना यह बहुमान्य निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि संस्कृत साहित्य का 'अर्थशास्त्र' जैसा महान ग्रन्थ जाली नहीं है। उसका रचयिता आचार्य कौटिल्य एक कल्पित व्यक्ति न होकर सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य का महामात्य था। अर्थशास्त्र उसी की कृति है जो प्रामाणिक रूप में सम्प्रति उपलब्ध है और जिसकी रचना 400 ई0 पू0 में हुई है।[26] अतः कौटिलीय अर्थशास्त्र के रचनाकाल के संबंध में अधिक विस्तार से न जाकर उपरोक्त विद्वत–सम्मति को स्वीकार करने में कोई आपत्ति प्रतीत नहीं होती।

---

26. डॉ0 काशीप्रसाद जायसवाल, हिन्दू राजतन्त्र, (परिशिष्ट 'ग' प्रथम खण्ड के अतिरिक्त नोट पृष्ठ 367)

(iii) वर्ण्य विषय :–

कौटिलीय अर्थशास्त्र के वर्ण्य विषय के संबंध में आचार्य कौटिल्य ने स्वयं कहा है कि इसमें कुल 15 अधिकरण, 150 अध्याय, 180 प्रकरण तथा 6000 श्लोक है।[27] जिनका विवरण निम्न प्रकार है :

अधिकरण	प्रकरण	अध्याय	शीर्षक (हिन्दी अर्थ सहित)
1	1	1	विद्यासमुद्देशः आन्वीक्षकी स्थापना (विद्या विषयक विचारः आन्वीक्षकी विद्या वर्णन)
		2	त्रयी स्थापना (त्रयी विद्या का वर्णन)
		3	वार्तादण्डनीति स्थापना (वार्ता विद्या तथा दण्डनीति विद्या का वर्णन)
	2	4	वृद्धसंयोगः (वृद्धजनो की संगति)
	3	5	इन्द्रियजयः अरिषड्वर्गत्यागः (इन्द्रियो पर विजय प्राप्त करना तथा कामक्रोधादि छैः शत्रुओ का परित्याग)
		6	राजर्षिवृत्तम (एक राजर्षि की जीवनचर्या)
		7	अमात्यनियुक्तिः (अमात्यों की नियुक्ति)
	4	8	मन्त्रि–पुरोहितयोर्नियुक्तिः (मन्त्री और पुरोहित की नियुक्ति)
	5	9	उपधामिः शौचाशौचज्ञानममात्यानाम् (गुप्त उपायों के द्वारा अमात्यों के शौच–अशौच (ईमानदारी–बेइमानी) की जानकारी करना)
	6	10	गूढ़पुरुषोत्पत्तिः [(गुप्तचरों (स्थाई गुप्तचरों) की नियुक्ति]
	7	11	गूढपुरुषप्रणिधिः [गुप्तचरों (भ्रमणशील गुप्तचरों) की नियुक्ति]
	8	12	स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणम् (अपने देश में कृत्य–अकृत्य पक्ष की सुरक्षा करना)

27. शास्त्रसमुद्देशः पञ्चदशाधिकरणानि. . . . . .सहस्राणीति। कौ0 अर्थ0 प्रकरणाधिकरण समुद्देशः, पृष्ठ 7

अधिकरण	प्रकरण	अध्याय	शीर्षक (हिन्दी अर्थ सहित)
1	9	13	परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः (शत्रु देश के कृत्य–अकृत्य पक्ष को मिलाना)
	10	14	मंत्राधिकारः (गुप्त मंत्रणा करने का अधिकार)
	11	15	दूतप्रणिधिः (राजदूतों को शत्रु देश में भेजना)
	12	16	राजपुत्ररक्षणम् (राजपुत्रों से राजा की रक्षा करना)
	13	17	अवरुद्धवृत्तम्, अवरुद्धे च वृत्तिः (नजरवन्द राजकुमार का राजा के प्रति व्यवहार तथा नजरबन्द राजकुमार के प्रति राजा का व्यवहार)
	14	18	राजप्रणिधिः (राजा के कार्य व्यापार)
	15	19	निशान्त प्रणिधिः (राजभवन के कारोवार)
	16	20	आत्मरक्षितकम् (आत्मरक्षा का प्रबन्ध करना)
2	17	01	जनपदनिवेशः (जनपदों की स्थापना करना)
	18	02	भूमिच्छिद्रविधानम् [ऊसर भूमि को उपयोगी (उपजाऊ) बनाना]
	19	03	दुर्गविधानम् (दुर्गों का निर्माण करना)
	20	04	दुर्गनिवेशः (दुर्ग से संबंधित राजभवनों तथा नगर के प्रमुख स्थानों का निर्माण)
	21	05	सन्निधातृनिचयकर्म (कोषागार का निर्माण तथा कोषाध्यक्ष के कार्य)
	22	06	समाहर्तृसमुदयप्रस्थापनम (समाहर्ता के कर–संग्रह कार्य)
	23	07	अक्षपटले गाणनिक्याधिकारः (अक्षपटल में गाणनिक के कार्यो का निरूपण)
	24	08	समुदयस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यानयनम् (अध्यक्षों द्वारा गवन किए गए धन की पुनः प्राप्ति)

अधिकरण	प्रकरण	अध्याय	शीर्षक (हिन्दी अर्थ सहित)
2	25	09	उपयुक्त परीक्षा (राजकीय उच्चाधिकारियों के चाल चलन की उपयुक्त परीक्षा)
	26	10	शासनाधिकारः (शासनादेशों / राजाज्ञाओं का लिखा जाना)
	27	11	कोषप्रवेश्यरत्नपरीक्षा (कोष में रखने योग्य रत्नों की परीक्षा)
	28	12	आकरकर्मान्तप्रवर्तनम् (खान / खनिज की पहिचान तथा उनके विक्रय की व्यवस्था)
	29	13	अक्षशालायां सुवर्णाध्यक्षः (अक्षशाला में सुवर्णाध्यक्ष के कार्य)
	30	14	विशिखायां सौवर्णिक प्रचारः (सराफा बाजार में स्वर्णकारों के कर्तव्य)
	31	15	कोष्ठागाराध्यक्षः (कोष्ठागार का अध्यक्ष)
	32	16	पण्याध्यक्षः (व्यापार निरीक्षक)
	33	17	कुप्याध्यक्षः (वन संरक्षक)
	34	18	आयुधागाराध्यक्षः (आयुधागार का अध्यक्ष)
	35	19	तुलामानपौतवम् (माप–तौल का अध्यक्ष)
	36	20	देशकालमानम् (देश और काल का मापन)
	37	21	शुल्काध्यक्षः (शुल्क विभाग का अध्यक्ष)
	38	22	शुल्क व्यवहारः (कर वसूली के नियम)
	39	23	सूत्राध्यक्षः (सूत व्यवसाय का अध्यक्ष)
	40	24	सीताध्यक्षः (कृषि विभाग का अध्यक्ष)
	41	25	सुराध्यक्षः (आवकारी विभाग का अध्यक्ष)

अधिकरण	प्रकरण	अध्याय	शीर्षक (हिन्दी अर्थ सहित)
2	42	26	सूनाध्यक्षः (वधस्थान का अध्यक्ष)
	43	27	गणिकाध्यक्षः (वेश्यालयों का अध्यक्ष)
	44	28	नावध्यक्षः (नौकाध्यक्ष)
	45	29	गोऽध्यक्षः (पशु विभाग का अध्यक्ष)
	46	30	अश्वाध्यक्षः (अश्व विभाग का अध्यक्ष)
	47	31	हस्त्यध्यक्षः (गजशाला का अध्यक्ष)
	48	32	हस्त्यध्यक्षः हस्तिप्रसारश्च (हाथियों की श्रेणियाँ तथा उनके कार्य)
	49–50	33	रथाध्यक्षः पत्त्यध्यक्षः सेनापतिप्रचारः (रथसेना तथा पैदल सेना के अध्यक्षों और सेनापति के कार्यों का निरूपण)
	51–52	34	मुद्राध्यक्षः विवीताध्यक्षः (मुद्रा विभाग तथा चारागाह विभाग के अध्यक्ष)
	53–54	35	समाहर्तृप्रचारः गृहपतिवैदहक तापसव्यञ्जनाः प्रणिधयः (समाहर्ता, तथा गृहस्थ, व्यापारी एवं तपस्वी वेषधारी गुप्तचरों के कार्यों का निरूपण)
	55	36	नागरिकप्रणिधिः (नागरिक के कार्य)
3	56–57	01	व्यवहारस्थापना विवादपदनिबन्धाश्च (इकरारनामा /शर्तनामा आदि व्यवहार संबंधी कार्य तथा तत्संबंधी विवादों का निर्णय)
	58	02	विवाहसंयुक्तं, विवाहधर्मः, स्त्रीधनकल्पः, आधिवेदनिकम (विवाह संबंध, धर्मविवाह, स्त्रीधन विषयक नियम, पुरुष के द्वारा दूसरा विवाह करते समय स्त्री को दिए जाने वाले धन संबंधी नियम)

अधिकरण	प्रकरण	अध्याय	शीर्षक (हिन्दी अर्थ सहित)
3	59	03	विवाह संयुक्तं, शुश्रषाभर्मपारुष्यद्वेषातिचारोपकार व्यवहार प्रेतिषेधाश्च (विवाहसम्बन्ध, स्त्री की सेवा–शुश्रूषा, कठोर स्त्री के साथ व्यवहार, पति–पत्नी का द्वेष, पति–पत्नी का अतिचार और अतिचार पर प्रतिषेध)
	60	04	विवाहसंयुक्तं, निष्पतनं, पथ्यनुसरणं, ह्रस्वप्रवासो, दीर्घप्रवासश्च (विवाहसम्बन्ध, परिणीता का निष्पतन, रास्ते में किसी परपुरुष का अनुसरण, अल्पकालीन पति–प्रवास तथा दीर्घकालीन पति प्रवास)
	61	05	दायविभागे दायक्रमः (दाय विभाग में उत्तराधिकार का सामान्य नियम)
	62	06	दायविभागे अंशविभागः (दाय विभाग में पैतृक हिस्सेदारी)
	63	07	दायविभागे पुत्रविभागः (दाय विभाग में पुत्र का उत्तराधिकार)
	64	08	वास्तुके गृहवास्तुकम् (वास्तुशास्त्र में गृह निर्माण)
	65	09	वास्तुके वास्तुविक्रयः (वास्तुशास्त्र में वास्तु संबंधी सामग्री–मकान आदि का विक्रय)
	66	10	वास्तुके विवीतक्षेत्रपथहिंसा समयस्यानपाकर्म च [वास्तुशास्त्र में गोचरभूमि (चारागाह), खेतों और रास्तों को पहुंचायी जाने वाली क्षति तथा सार्वजनिक कार्यो में सहभागिता न करने वालों पर दण्ड]
	67	11	ऋणादानम् (ऋण लेना)
	68	12	औपनिधिकम् (धरोहर/अमानत संबंधी नियम)
	69	13	दासकर्मकरकल्पम् (दास और श्रमिक संबंधी नियम)
	70	14	कर्मकरकल्पः, सम्मूयसमुत्थानम् (मजदूरी के नियम तथा साझेदारी का हिस्सा)
	71	15	विक्रीतक्रीतानुशयः (क्रय–विक्रय हेतु वयाना)

अधिकरण	प्रकरण	अध्याय	शीर्षक (हिन्दी अर्थ सहित)
3	72–73	16	दत्तस्यानपाकर्म, अस्वामिविक्रयः, स्वस्वामिसम्बन्धश्च (दान किए हुए धन को न देना, किसी वस्तु का स्वामी न होते हुए भी उस वस्तु को बेचना, किसी वस्तु पर अपने स्वामित्व संबंधी नियम)
	74	17	साहसम् (खुले आम गम्भीर अपराध करना)
	75	18	वाक्पारुष्यम् (कठोर वाणी जन्य अपराध)
	76	19	दण्डपारुष्यम् (शारीरिक दण्ड)
		20	द्यूतसमाह्वयम्, प्रकीर्णकानि (द्यूतगृह, तद्विषयक शेष विषय)
4	76	01	कारुकरक्षणम् (शिल्पियों से प्रजा की रक्षा)
	77	02	वैदेहकरक्षणम् (व्यापारियों से प्रजा की रक्षा)
	78	03	उपनिपात प्रतीकारः (दैवी आपदा–प्रबन्धन)
	79	04	गूढाजीविनां रक्षा (गुप्त षडयंत्रकारियों से प्रजा की रक्षा)
	80	05	सिद्धव्यञ्जनैर्माणव–प्रकाशनम् (सिद्ध वेषधारी गुप्तचरों द्वारा दुष्टों का दमन)
	81	06	शङ्कारूपकर्माभिग्रहः (शङ्कित पुरुष, चोरी के माल तथा चोर की पहचान)
	82	07	आशुमृतक परीक्षा (अकस्मात् मृत व्यक्ति का शव परीक्षण)
	83	08	वाक्य कर्मानुयोगः (जाँच और यातना के द्वारा चोरी को स्वीकार कराना)
	84	09	सर्वाधिकरणरक्षणम् (सरकारी अधिकारियों/कर्मचारियों की निगरानी)
	85	10	एकाङ्गवधनिष्क्रयः (एकाङ्गवध दण्ड अथवा उसकी जगह द्रव्य दण्ड)

अधिकरण	प्रकरण	अध्याय	शीर्षक (हिन्दी अर्थ सहित)
4	86	11	शुद्धश्चित्रश्च दण्डकल्पः (शुद्ध दण्ड और चित्रदण्ड)
	87	12	कन्याप्रकर्म (कुँवारी कन्या से संभोग करने का दण्ड)
	88	13	अतिचारदण्डः (निषिद्ध आचरण करने पर दण्ड)
5	89	01	दाण्डकर्मिकम (राजद्रोही उच्चाधिकारियों के संबंध में दण्ड व्यवस्था)
	90	02	कोशाभिसंहरणम् (कोष का अधिकाधिक संग्रह)
	91	03	भृत्यभरणीयम् (भृत्यों का भरण पोषण अर्थात् अधिकारियों /कर्मचारियों का वेतनभत्ता)
	92	04	अनुजीविवृत्तम (राजकर्मचारियों का राजा के प्रति व्यवहार)
	93	05	समयाचारिकम् (व्यवस्था का यथोचित पालन)
	94–95	06	राज्यप्रतिसन्धानमेकैश्वर्यं च (विपत्तिकाल में राजपुत्र का अभिषेक और एकछत्र राज्य की प्रतिष्ठा)
6	96	01	प्रकृतिसम्पदः (सात प्रकृतियों के गुण)
	97	02	शमव्यायामिकम् [शम (शान्ति) तथा व्यायाम कर्म]
7	98–99	01	षाड्गुण्यसमुद्देशः, क्षयस्थानवृद्धिनिश्चयश्च (छैः गुणों का उद्देश्य तथा क्षय, स्थान व वृद्धि का निश्चय)
	100	02	संश्रयवृत्तिः (बलवान् राजा का आश्रय लेना)
	101–102	03	समहीनज्यायसा गुणाभिनिवेशो हीनसन्धयश्च (सम्, हीन तथा बलवान राजाओं के चरित्र एवं हीन राजा के द्वारा सन्धि करना)
	103–107	04	विगृह्यासनं, सन्धायासनं, विगृह्ययानं, सन्धाययानं, सम्भूयप्रयाणं च (विग्रह करके आसन का अवलम्बन लेना, सन्धि करके आसन का अवलम्बन लेना, विग्रह करके यान का अवलम्बन लेना, सन्धि करके यान का अवलम्बन लेना, अन्य राजाओं के साथ गठबन्धन करके प्रयाण का अवलम्बन लेना)

अधिकरण	प्रकरण	अध्याय	शीर्षक (हिन्दी अर्थ सहित)
7	108–110	05	यातव्यामित्रयोरभिग्रहचिन्ता, क्षयलोभविरागहेतवः, प्रकृतीनां सामवायिकविपरिमर्शश्च (यातव्य और शत्रु पर आक्रमण संबंधी विचार; प्रकृतिमण्डल के क्षय, लोभ तथा विराग के हेतु; एवं सहयोगी सामवायिकों का हिस्सा)
	111	06	संहितप्रयाणिकं परिपणितापरिपणितापसृतसन्धयश्च (सामूहिक प्रयाण तथा परिपणित सन्धि, अपरिपणित सन्धि, व अपसृत सन्धि)
	112	07	द्वैधीभाविकाः सन्धिविक्रमाश्च (द्वैधीभाव संबंधी सन्धि और विक्रम)
	113–114	08	यातव्यवृत्तिः, अनुग्राह्यमित्रविशेषाश्च (यातव्य संबंधी व्यवहार और अनुग्रह करने वाले मित्रों के प्रति कर्तव्य)
	115	09	मित्रहिरण्यभूमिकर्मसन्धयः (मित्र, हिरण्य, भूमि और कर्म के आधार पर की जाने वाली सन्धियाँ)
	116	10	भूमि सन्धि (भूमि के आधार पर की जाने वाली सन्धि)
		11	अनवसित सन्धि [आवास रहित (शून्य) भूमि के आधार पर की जाने वाली सन्धि]
		12	कर्म सन्धि (किसी कार्य निर्माण के आधार पर की जाने वाली सन्धि)
	117	13	पार्ष्णिग्राहचिन्ता (पीछे से आक्रमण करने वाले राजा संबंधी विचार)
	118	14	हीनशक्तिपूरणम् (दुर्बलविजिगीषु के लिए शक्ति संचय के साधन)
	119–120	15	बलवता विगृह्योपरोधहेतवः दण्डोपनतवृत्तं च [वलवान राजा के द्वारा विग्रह किये जाने पर उसके रोकने के हेतु तथा पराजित शत्रु का (विजेता शत्रु के साथ) व्यवहार]

अधिकरण	प्रकरण	अध्याय	शीर्षक (हिन्दी अर्थ सहित)
7	121	16	दण्डोपनायिवृत्तम् [विजेता राजा का (पराजित राजाओं के साथ) व्यवहार]
	122–23	17	सन्धिकर्म, सन्धिमोक्षश्च (सन्धि करना तथा सन्धि तोडना)
	124–26	18	मध्यमचरितोदासीनचरितमण्डलचरितानि (मध्यम चरित, उदासीन चरित और मण्डल चरित)
8	127	01	प्रकृतिव्यसनवर्ग (प्रकृतियों के व्यसन)
	128	02	राजराज्ययोर्व्यससनचिन्ता (राजा और राज्य के व्यसन संबंधी विचार)
8	129	03	पुरुषव्यसनवर्गः (सामान्य पुरुषों के व्यसन)
	130–132	04	पीडनवर्गः, स्तम्भवर्गः, कोशसङ्गवर्गश्च (दैवी आपदाऐं, आर्थिक अवरोध, कोषागार में पहुंचने से पहले ही बीच में धन नष्ट करने वाली व्याधियाँ)
	133–134	05	बलव्यवसनवर्गः मित्रव्यसनवर्गश्च (सेना व्यसन और मित्र व्यसन)
9	135–136	01	शक्तिदेशकालबलाबलज्ञानं यात्राकालाश्च (शक्ति, देश और काल के बल–अबल का ज्ञान, तथा आक्रमण का समय)
	137–139	02	बलोपादानकालाः, सन्नाहगुणाः, प्रतिबलकर्म च [सैन्य संग्रह का समय, सेना को युद्ध के लिए तैयार करना (सैन्य संगठन) तथा शत्रु सेना से मुकाबला]
	140–141	03	पश्चात्कोपचिन्ता, बाह्यान्तरप्रकृतिकोपप्रतीकारश्च (पार्ष्णिग्राह आदि द्वारा किये जाने वाले अनिष्ट संबंधी विचार; तथा बाह्य एंव आभ्यन्तर प्रकृति के कोप का प्रतीकार)
	142	04	क्षयव्ययलाभविपरिमर्शः (क्षय, व्यय और लाभ का विचार)
	143	05	बाह्याभ्यन्तराश्चापदः (बाह्य और आभ्यन्तर आपत्तियाँ)

अधिकरण	प्रकरण	अध्याय	शीर्षक (हिन्दी अर्थ सहित)
9	144	06	दूष्य शत्रुसंयुक्तः (राजद्रोही तथा शत्रुजन्य आपत्तियाँ)
	145–146	07	अर्थानर्थसंशययुक्ताः तासामुपायविकल्पजाः सिद्धयश्च (अर्थ, अनर्थ तथा संशय संबंधी आपत्तियाँ और उनके प्रतीकार--उपायो से प्राप्त होने वाली सिद्धियाँ)
10	147	01	स्कन्धावारनिवेशः (छावनी का निर्माण)
	148–149	02	स्कन्धावारप्रयाणां बलव्यसनावस्कन्दकालरक्षणं च (छावनी का प्रयाण तथा आपत्ति और आक्रमण के समय सेना की रक्षा)
10	150–152	03	कूटयुद्धविकल्पाः, स्वसैन्योत्साहनं, स्वबलान्यबल-व्यायोगश्च (कूटयुद्ध के भेद, अपनी सेना का प्रोत्साहन तथा अपनी व शत्रु की सेना का प्रयोग)
	153–154	04	युद्धभूमयः पत्त्यश्वरथहस्तिकर्माणि च (युद्धयोग्य भूमि तथा पैदल, अश्व, रथ व गजसेनाओं के कार्य)
	155–157	05	पक्षकक्षोरस्यानां बलाग्रतो व्यूहविभागः, सारफल्गुबलविभागः, पत्त्यश्वरथहस्ति युद्धानि च [पक्ष, कक्ष तथा उरस्य आदि विशेष व्यूहों का सैन्य संख्या के अनुसार व्यूह विभाग; सारबल (सबल सेना) तथा फल्गु बल (दुर्बल सेना) का विभाजन; पैदल, अश्व, रथ तथा गजसेना के युद्ध]
	158–159	06	दण्डभोगमण्डलासंहतव्यूहव्यूहनं तस्य प्रतिव्यूह स्थापनं च (दण्डव्यूह, भोगव्यूह, मण्डलव्यूह तथा असंहतव्यूह की स्थापना करना तथा इन व्यूहों के प्रतिकार हेतु प्रतिव्यूह की स्थापना करना)
11	160–161	01	भेदोपादानानि, उपांशुदण्डश्च [भेदक प्रयोग तथा उपांशुदण्ड (गुप्तवध)]
12	162	01	दूतकर्माणि (दूतकर्म)
	163	02	मन्त्रयुद्धम् (मन्त्रयुद्ध)

अधिकरण	प्रकरण	अध्याय	शीर्षक (हिन्दी अर्थ सहित)
12	164–165	03	सेनामुख्यवधः मण्डलप्रोत्साहनं च (सेनापतियों का वध तथा राजमण्डल को प्रोत्साहन)
	166–167	04	शस्त्राग्निरसप्रणिधयः, वीवधासारप्रसारवधश्च [शस्त्र, अग्नि तथा रसों का गूढ़ प्रयोग, वीवध (खाद्यान्न), आसार (मित्र सेना) तथा प्रसार (लकड़ी, घास, चारा आदि वनोपज) को नष्ट करना]
	168–170	05	योगातिसन्धानं, दण्डातिसन्धानं, एकविजयश्च (कपट–योग द्वारा आक्रमण, तथा दण्ड प्रयोग द्वारा आक्रमण करके विजय प्राप्त करना)
13	171	01	उपजापः (शत्रु देश की प्रजा को बहला फुसला कर राजा के विरूद्ध करना)
	172	02	योगवामनम [कपट उपायों द्वारा शत्रु राजा को लुभाना (नष्ट करना)]
	173	03	अपसर्पप्रणिधिः (गुप्तचरों का शत्रु देश में निवास)
	174–175	04	पर्युपासनकर्म, अवमर्दश्च [(शत्रु दुर्ग पर) घेरा डालना तथा उसे नष्ट करना (अपने अधिकार में लेना)]
	176	05	लब्धप्रशमनम् (विजित देश में शान्ति की स्थापना)
14	177	01	परघातप्रयोगः (शत्रुवध के प्रयोग)
	178	02	प्रलम्भने .अद्‌भुतोत्पादनम् [प्रलम्भन योग (छल–कपट) में अद्‌भुत उत्पादन]
		03	प्रलम्भने भैष्ज्यमन्त्रप्रयोगः [प्रलम्भन योग (छल–कपट) में औषधि तथा मन्त्र का प्रयोग]
	179	04	स्वबलोपघातप्रतीकारः [(शत्रु द्वारा) अपनी सेना पर किए गए घातक प्रयोगों का प्रतीकार]
15	180	01	तन्त्रयुक्तयः (अर्थशास्त्र की युक्तियाँ)

(iv) वैशिष्ट्य :

कौटिलीय अर्थशास्त्र में अगणित विशेषताऐं हैं जिनकी विद्वानों ने अनेक रूपों में मुक्तकण्ड प्रशस्ति की है। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं को यहाँ पर रेखांकित किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है। ताकि उन्हें दृष्टिगत रखते हुए कौटिलीय अर्थशास्त्र का अध्ययन करने स उसके अभिव्यञ्जित भाव तथा गर्म को समझने में कुछ सरलता हो सके–

1) ऐतिहासिक दृष्टि से कौटिलीय अर्थशास्त्र में मौर्यकालीन भारत के अनेक महत्वपूर्ण इतिहास–स्रोत उपलब्ध होते है। इसीलिए एफ0 डब्ल्यू0 टामस जैसे विद्वानों ने अपना यह मन्तव्य व्यक्त किया है कि इस प्रकार की ऐतिहासिक जानकारी प्रदान करने वाला महत्वपूर्ण ग्रन्थ बहुत बाद में जाकर अकबर के काल में हमें *'आइन–ए–अकबरी'* के रूप में प्राप्त होता है।[28]

2) कौटिल्य काल तक भारतीय वर्ण व्यवस्था इतनी रूढिवद्ध हो चुकी थी कि अन्त्यजों (शूद्रों) को शासन करने का कोई नैतिक या विधिक अधिकार नहीं था। यदि संयोगवश कोई शूद्र राजसिंहासन पर बैठ भी गया तो उसे छल–बल–कपट पूर्वक सत्ताच्युत कर दिया गया। कौटिल्य और चन्द्रगुप्त ने नन्दवंश का उन्मूलन भी महज इसीलिए किया था; क्योंकि वह शूद्रवंशीय था।[29]

3) अर्थशास्त्र में यथार्थवाद तथा आदर्शवाद के समन्वय के अनेक उदाहरण सुलभ होते हैं।

4) अर्थशास्त्र में राजा को राज्य से पृथक न मानकर उन दोनों के बीच तादात्म्य स्थापित किया गया है।

5) अर्थशास्त्र 'अर्थ, धर्म और काम' में समन्वय स्थापित करता है तथा इन तीनों में वह अर्थ को प्रथम बार सर्वोच्च वरीयता प्रदान करता है[30] जबकि उससे पूर्व भारतीय परम्परा में अर्थ को नहीं, अपितु धर्म को वरीयता प्रदान की जाती थी।

---

28. एफ0 डब्ल्यू0 टामस, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृष्ठ 474
    राधाकुमुद मुखर्जी, चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, पृष्ठ 18
29. राधाकुमुद मुखर्जी, चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, पृष्ठ 22
    येन शास्त्रं च . . . . .शास्त्रमिदं कृतम्।। कौ0 अर्थ0 15/180/1 पृष्ठ 771
30. अर्थ एवं प्रधान इति कौटिल्य :, अर्थमूलौ हि धर्मकामाविति। कौ0 अर्थ0 1/3/6 पृष्ठ 19

6) अर्थशास्त्र की मान्यता के अनुसार राजनीति का अध्ययन धर्म, अध्यात्म तथा नैतिकता को पृथक रखकर किया जाना चाहिए।

7) अर्थशास्त्र में कौटिल्य के अपने निजी कल्पित एवं मनगढन्त विचार नहीं है अपितु उसमें पूर्ववर्ती अर्थशास्त्रों के चिन्तन–मनन से निःसृत सारभूत विचार है।[31]

8) कौटिलीय अर्थशास्त्र में तत्कालीन समस्याओं का समाधान केवल राजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र संबंधी ग्रन्थों के सहारे ही नहीं अपितु स्वयं के द्वारा अनुभूत तथा भुक्त तथ्यों के सहारे भी किया गया है।

9) कौटिलीय अर्थशास्त्र राजतंत्र समर्थक होकर भी प्रजा–हित को उच्च वरीयता देता है;[32] तथा राजा के लिए भी यह ग्रन्थ दण्ड का प्राविधान करता है।[33] इस प्रकार उसके राजतंत्र के मूल में प्रजातंत्र का भी बीज-वपन हुआ है।

10) अर्थशास्त्र में कर्मवाद/पुरुषार्थवाद को सबसे आगे तथा भाग्यवाद को पीछे एक कोने में रखा गया है।[34]

11) अर्थशास्त्र में प्राचीन वर्णव्यवस्था में आंशिक संशोधन करते हुए शूद्रों को आजीविका के कुछ नये क्षेत्र तथा नये अधिकार सृजित किए गए। जिन्हें उस रूढ़िवादी युग में सामाजिक क्रान्ति का एक सूत्रपात कहा जा सकता है।

12) कौटिलीय अर्थशास्त्र प्राचीन धर्मशास्त्रीय नियमों की अपेक्षा विधि एवं न्याय के नियमों को वरीयता देता है।

13) अर्थशास्त्र में सत्ता के विकेन्द्रीकरण के विरुद्ध आवाज उठाई गई तथा केन्द्रीकृत शासन की प्रथम बार सार्थक पहल की गई।

14) कौटिल्य ने धर्म की कीमत पर राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति को उचित ठहराया है। इस हेतु उसमें छल–बल–कपट तथा हिंसा को भी उचित माना गया है।

---

31. पृथ्व्या लाभे पालने च. . . . . . .संह्रत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम। कौ0 अर्थ0 पृष्ठ 1
32. प्रजासुखे सुखं. . . . . .प्रजानान्तु प्रियं हितम्।। कौ0 अर्थ0 1/14/18 पृष्ठ 64
33. अदण्ड्यदण्डने राज्ञो . . . . ब्राह्मणेभ्यस्ततः परम्।। कौ0 अर्थ0 4/88/13 पृष्ठ 402
34. नक्षत्रमतिपृच्छन्तं. . . . . किं करिष्यन्ति तारकाः। कौ0 अर्थ0 9/142/4 पृष्ठ 612

15) कौटिल्य अन्धविश्वासों तथा रूढियों की अपेक्षा तर्क एवं बुद्धि को अधिक महत्व देता है।

16) अर्थशास्त्र में धर्मयुद्ध की अपेक्षा कूटयुद्ध तथा तूष्णी युद्ध को अधिक महत्व दिया गया है।

17) अर्थशास्त्र में शत्रुघात के लिए बड़े–बड़े युद्धों की मारकाट तथा नरसंहार के वजाय अनेक चमत्कारी युद्धेतर उपाय सुझाए गए हैं।

18) कौटिल्य अपने विचारों पर सदैव अडिग रहने के पक्ष में दिखाई नहीं देता है। अपितु देश, काल, परिस्थिति की माँग के अनुसार वह अपने विचार बदलने में कभी कोई संकोच नहीं करता है। इसलिए कुछ विद्वानों ने उसके विचारों को 'मौसमी विचार' (Seasoned ideas) की संज्ञा दी है।[35]

---

35. Prof. R. K. Choudhary, Kautilya's Political Ideas and Institutions. p- 9

द्वितीय अध्याय– राज्य की उत्पत्ति तथा प्रकृति सम्बन्धी कौटिलीय सिद्धान्त

तस्मान्नित्योत्थितो राजा कुर्यादर्थानुशासनम्।
अर्थस्य मूलमुत्थानमनर्थस्य विपर्ययः।।

(कौ० अर्थ० 1/14/18)

[राजा को चाहिए कि वह सदैव उद्यमशील होकर, श्रेष्ठ राजकीय/प्रशासनिक अनुशासन स्थापित करे। क्योंकि उद्यमशीलता 'अर्थ' का मूल तथा उद्यमहीनता 'अनर्थ' का मूल होती है।]

द्वितीय अध्याय (राज्य की उत्पत्ति तथा प्रकृति संबंधी कौटिलीय सिद्धान्त)

(क) राज्योत्पत्ति संबंधी सिद्धान्त :

आचार्य कौटिल्य का मुख्य उद्देश्य राजनीतिशास्त्र के अन्तर्गत शासन–प्रबन्ध जैसे प्रायोगिक एवं व्यावहारिक पक्षों का विश्लेषण करना था। राज्योत्पत्ति जैसे सैद्धान्तिक पक्षों की गहराई में जाना उनका अभीष्ट प्रतीत नहीं होता है। फिर भी कौटिलीय अर्थशास्त्र में यत्र तत्र कुछ ऐसे स्फुट सन्दर्भ सुलभ होते हैं जिनके आधार पर हम आचार्य कौटिल्य की राज्योत्पत्ति विषयक अवधारणा को सरलतापूर्वक समझ सकते हैं। अर्थशास्त्र के अध्ययन से विदित होता है कि आचार्य कौटिल्य राज्योत्पत्ति के संबंध में 'सामाजिक समझौता सिद्धान्त' का समर्थक था। इस संबंध में आचार्य कौटिल्य का निम्न कथन एक प्रामाणिक तथ्य के रूप में उद्घृत किया जा सकता है– 'जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, वैसे ही प्राचीनकाल में बलवान लोगों ने निर्बल लोगों का रहना दूभर कर दिया था। इस अन्याय से बचने के लिए प्रजा ने मिलकर विवस्वान् के पुत्र मनु को अपना राजा बनाया। तभी से अनाज का छठवाँ भाग, व्यापारिक लाभ का दसवाँ भाग, तथा थोड़ा सा सोना राजा के लिए कर रूप में निर्धारित कर दिया गया।' प्रजा के द्वारा निर्धारित कर को पाकर राजा ने प्रजा के 'योगक्षेम' का दायित्व अपने ऊपर ले लिया। इस प्रकार ये निर्धारित दण्ड एवं कर प्रजा उत्पीड़न को दूर करने में सहायक होते हैं तथा प्रजा की भलाई एंव कल्याण के कारण सिद्ध होते है।' यही कारण है कि जंगलो में एकान्त जीवन बिताने वाले ऋषि मुनि भी दान–दाना करके बीने हुए अन्न का छठवाँ भाग राजा को देते हैं, यह जानकर कि राजा का इस पर सनातन हक है, जिसके बदले में वह हमारी रक्षा करता है। इन्द्र और यम के समान ये राजा लोग भी प्रजाजनों का प्रत्यक्ष निग्रह एवं उन पर अनुग्रह करने वाले होते हैं। इसलिए जो उनका तिरस्कार करता है, उस पर निश्चित ही दैवी विपत्तियाँ टूटती हैं। यही कारण है जिनको दृष्टि में रखकर राजा का अपमान नहीं करना चाहिए।'[1]

1. मात्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा. . . . . इति क्षूद्रकान् प्रतिषेधयेत्। कौ० अर्थ० 1/8/12 पृष्ठ 37–38

इसी प्रकार कौटिलीय अर्थशास्त्र का एक दूसरा उद्धरण भी यहाँ पर उल्लेखनीय है– 'यदि दण्ड व्यवस्था का प्रयोग न किया जाय तो उसका दुष्परिणाम यह होगा कि जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है; वैसे ही बलवान व्यक्ति निर्बल व्यक्ति का रहना दूभर कर देगा।' 'दण्डव्यवस्था के अभाव में सर्वत्र ही अराजकता फैल जाती है तथा बलवान निर्बल को सताने लगता है। किन्तु दण्डधारी राजा से रक्षित दुर्बल भी बलवान बना रहता है।'[2] कौटिलीय अर्थशास्त्र के उपरोक्त दोनों उद्धरणों से निम्नांकित तीन महत्वपूर्ण तथ्य उभर कर सामने आते हैं–

(i) राज्योत्पत्ति के पूर्व समाज में एक मात्स्यन्याययुक्त प्राकृतिक अवस्था थी।

(ii) मात्स्यन्याय की स्थिति से मुक्ति पाने के लिए लोगों ने एक समझौता किया।

(iii) समझौते के फलस्वरूप राज्य का निर्माण हुआ (जिसके अन्तर्गत सर्वप्रथम एक बलवान व्यक्ति को राजा चुना गया। प्रजा ने राजा को कर देना निर्धारित किया और इसके बदले में राजा ने प्रजा के कष्टो को दूर कर प्रजा–हित करने का वायदा किया)।

आचार्य कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट उपरोक्त प्राकृतिक अवस्था की पुष्टि अन्य प्राचीन भारतीय ग्रन्थों– मनुस्मृति[3] तथा महाभारत[4] आदि से भी होती है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक दशा विषयक अन्यान्य उद्धरण भी महाभारत में सुलभ होते है।[5]

इस प्रकार कौटिलीय अर्थशास्त्र में राज्योत्पत्ति से पूर्व जिस प्राकृतिक दशा का उल्लेख किया गया है उसकी पुष्टि हमारे अन्य प्राचीन भारतीय ग्रन्थ भी करते हैं। किन्तु कौटिलीय अर्थशास्त्र उनसे कुछ भिन्नता रखता है। महाभारत जैसे प्राचीन ग्रन्थों की मान्यता के अनुसार राज्योत्पत्ति से पूर्व समाज में एक सुखी एवं शान्तिपूर्ण दशा थी। कालान्तर में इस सामाजिक दशा में कुछ अवांछनीय विकार उत्पन्न हुए। फलस्वरूप मात्स्यन्याय की स्थिति

---

2. अप्रणीतो हि. . . . . गुप्तः प्रभवतीति। कौ0 अर्थ0 1/1/3 पृष्ठ 13
3. अराजके हि. . . . . राजानमसृजत्प्रभुः। मनु0 7/3
4. न वै राज्यं न . . . . ब्रह्माणं शरणं ययुः। शा0 प0 59/14–22
5. (i) अराजकेषु . . . . .इव जले कृशान। शा0 प0 67/3–17
   (ii) यथा ह्यनुदये. . . . . धनं न परिग्रहः। शा0 प0 68/10–15

उत्पन्न हुई। लेकिन कौटिल्य के मतानुसार राज्योत्पत्ति से पूर्व यहाँ पर शान्तिपूर्ण एवं व्यवस्थित सामाजिक दशा नहीं थी। अपितु मात्स्यन्याय की अराजकतापूर्ण स्थिति थी। जिसे बाद में राजा और उसके राज्य ने व्यवस्थित एवं शान्तिपूर्ण बनाया। इसी प्रकार सामाजिक समझौता संबंधी कौटिलीय मत के अन्य दो बिन्दुओं– (i) मात्स्यन्याय वाली अराजकतापूर्ण प्राकृतिक अवस्था से छुटकारा पाने हेतु प्रजा और राजा के बीच एक समझौता होना तथा (ii) उस समझौते के फलस्वरूप राज्य की उत्पत्ति होना, की पुष्टि भी हमारे प्राचीन भारतीय ग्रन्थो से होती है।[6]

(ख) राज्य–प्रकृति सम्बन्धी सिद्धान्त : सप्ताङ्ग सिद्धान्त :

वैदिक साहित्य एवं अन्य प्राचीन धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में राज्य, राजा एवं राजनीति का उल्लेख केवल धार्मिक, आध्यात्मिक एवं पारम्परिक दृष्टि से किया गया है। जिसे राजनीतिक दृष्टि से सन्तुलित एवं तार्किक नहीं माना जा सकता है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में कौटिलीय अर्थशास्त्र ही एकमात्र ऐसा पहला ग्रन्थ है जिसमें उपरोक्त विषयो पर पारम्परिक पद्धति से अलग हटकर पूर्णतया राजनीतिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से गम्भीर विवेचन किया गया है।[7] कौटिलीय अर्थशास्त्र में राज्य की सांगोपांग परिभाषा उपलब्ध होती है। जिसके अनुसार स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड और मित्र, इन सात प्रकृतियों का संयुक्त समूह ही राज्य है।[8] आचार्य कौटिल्य के उपरोक्त कथन से स्पष्ट होता है कि उसने राज्य का आवयिव स्वरूप माना है। इसीलिए उसने उपरोक्त सात प्रकृतियों को राज्य के अवयव/अङ्ग कहकर सम्बोधित किया है।[9] उसके अनुसार राज्य एक ऐसा अवयवी है जिसका निर्माण उपरोक्त सात अवयवों के संयोग से हुआ है।

आचार्य कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित राज्य की उपरोक्त परिभाषा अन्य प्राचीन हिन्दू ग्रन्थों से भी मेल खाती है। मनुस्मृति में स्वामी, अमात्य, पुर, राष्ट्र, कोष, दण्ड तथा सुहृत, इन सात अंगो से युक्त व्यवस्था को राज्य कहा गया है।[10] याज्ञवल्क्य स्मृति में भी राज्य की

---

6. शा0 प0 67/17–28, 69/20–21, मनु 7/3, दीघ निकाय 3/84–95
7. R. S. Sharma- Aspects of Political Ideas and Institutions in Ancient India p. 20
8. स्वाम्यामात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः। कौ0 अर्थ0 6/96/1 पृष्ठ 441
9. प्रकृत्यवयवानां . . . . . .वा कार्यसाधकः। कौ0 अर्थ0 8/127/1 पृष्ठ 560
10. स्वाम्यमात्यौ पुरं. . . . . . . .राज्यमुच्यते। मनुस्मृति 9/294

सप्ताङ्गयुक्त परिभाषा की गई है।[11] इसी प्रकार महाभारत में भी आत्मा, अमात्य, कोष, दण्ड, मित्र, जनपद और पुर नामक सात अंगों के योग को राज्य कहा गया है।[12] कामन्दकीय नीतिसार में स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, बल और सुहृत, नामक सात प्रकृतियों के योग को राज्य कहा गया है।[13] शुक्रनीति में भी स्वामी, अमात्य, सुहृत, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और बल के संयुक्त समूह को राज्य के रूप में परिभाषित किया गया है।[14]

प्राचीन ग्रन्थों में प्रतिपादित राज्य की उपरोक्त परिभाषाओ से यह स्पष्ट होता है कि कौटिल्यकृत राज्य की परिभाषा में निर्दिष्ट सात प्रकृतियों को नाम और क्रम में यत्किञ्चित् परिवर्तन के साथ प्रायः अन्य सभी प्राचीन भारतीय चिन्तकों ने स्वीकार किया है। इस प्रकार आचार्य कौटिल्य ऐसे प्रथम चिन्तक सिद्ध होते हैं जिन्होंने राज्य की पूर्ण एवं स्पष्ट परिभाषा प्रस्तुत की; जिसे परवर्ती काल में एक सर्वमान्य सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया गया। इस विषय के और अधिक स्पष्टीकरण के लिए कौटिल्य द्वारा प्रस्तुत राज्य की सप्त प्रकृतियों का क्रमवद्ध विवेचन यहाँ पर अपेक्षित है। यह विवेचन इसलिए भी आवश्यक है; क्योंकि कुछ विद्वानों ने यह आशंका व्यक्त की है कि कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित राज्य के आवयिव सिद्धान्त का स्वरूप क्या था, इस विषय का निरूपण करने के लिए अर्थशास्त्र में प्रामाणिक सामग्री का अभाव है; अतः इस विषय का ठीक–ठाक निरूपण करना असम्भव है।[15]

(i) स्वामी :

प्राचीन भारतीय राज्य विषयक सभी ग्रन्थो में 'स्वामी' का अर्थ 'राज्य–प्रधान' किया गया है।[16] इस संदर्भ में यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि 'राज्य–प्रधान' के लिए प्रायः इन सभी चिन्तकों ने बड़ी गहरी सोच के तहत –'राजा' नहीं अपितु 'स्वामी' शब्द का प्रयोग उपयुक्त समझा है। केवल महाभारत में 'स्वामी' के स्थान पर 'आत्मा' शब्द का

---

11. स्वाम्यमात्यो जनोदुर्गं . . . . राज्यं सप्तांगमुच्यते। याज्ञ0 1/353
12. राज्ञा सप्तैव . . . . .प्रयत्नतः। शान्ति पर्व 69/64–65
13. स्वाम्यमात्यश्च . . . . .सत्वबुद्धिव्यपाश्रयः। कामन्दक 1/16
14. स्वाम्यमात्यसुहृत्कोश . . . . .मूर्धानृपः स्मृतः। शुक्र 1/61
15. डा0 श्याम लाल पाण्डेय, भारतीय राजशास्त्र प्रणेता, पृष्ठ 111
16. कौ0 अर्थशास्त्र 6/1/1, मनु0 9/294, शुक्रनीति 1/16, शान्तिपर्व 69/64, कामन्दक 1/16, याज्ञ0 1/353

प्रयोग किया गया है। 'स्वामी' शब्द के प्रयोग के पीछे उनका जनकल्याण की भावना पर आधारित एक महान राजनीतिक मन्तव्य अभिव्यञ्जित होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि चूंकि 'राजा' शब्द से एक निरंकुश तानाशाही का भाव अभिव्यञ्जित होता है, जबकि 'स्वामी' शब्द से जनसेवा एंव प्रजावत्सलता का भाव प्रतिविम्बित होता है, संभवतः इसीलिए कौटिल्य जैसे प्राचीन भारतीय चिन्तकों द्वारा 'राजा' शब्द कें स्थान पर 'स्वामी' शब्द को वरीयता प्रदान करना समीचीन समझा गया।

प्राचीन भारत की राज्य संस्था में स्वामी (राजा) का महत्वपूर्ण स्थान था तथा राज्य के सप्ताङ्गों में उसका मूर्धन्य स्थान था। आचार्य कौटिल्य ने राज्य की सात प्रकृतियों में 'स्वामी' को प्रथम स्थान दिया है।[17] उसके अनुसार चूंकि 'स्वामी' को समाज के सभी क्रियाकलापों का आधार माना जाता है तथा उसके ऊपर प्रजा के 'योगक्षेम' का बड़ा भारी दायित्व है, इसलिए उसमें कुछ विशिष्ट अर्हताएं होना आवश्यक है। आचार्य कौटिल्य के अनुसार 'स्वामी' को निम्नांकित पांच प्रकार के उत्तम गुणों से युक्त होना चाहिए–

(क) **अभिगामिक गुण** : स्वामी का उच्चकुलीन, दैवबुद्धि, शक्तिसम्पन्न, बृद्धजनों की वार्ता (परामर्श) सुनने वाला, धार्मिक, सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ, कृतज्ञ, उच्चाभिलाषी, अत्यधिक उत्साही, शीघ्र कार्य करने वाला, सामन्तों को वश में रखने वाला, दृढबुद्धि, बड़ी परिषद वाला, तथा विनयशील होना, ये उसके अभिगामिक गुण हैं।[18]

(ख) **प्रज्ञा गुण** : जानने व सुनने की इच्छा, सुने हुए को ग्रहण व धारण करने की क्षमता, वैज्ञानिक सोच, तर्कशक्ति, तथा यथार्थ के प्रति दृढता होना, ये 'स्वामी' के प्रज्ञा गुण हैं।[19]

(ग) **उत्साह गुण** : शौर्य, अमर्ष (क्रोध), निर्णय लेने व कार्य करने में शीघ्रता तथा दक्षता होना, ये उसके उत्साह गुण हैं।[20]

(घ) **आत्मसम्पत् गुण** : बाग्मी, प्रगल्भ, स्मृतिवान, बलवान, उन्नतमन, संयमी, समस्त कलाओ में निपुण, विपत्तिग्रस्त शत्रु पर आक्रमण करने वाला, उपकार और अपकार का बदला

17. स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः। कौ0 अर्थ0 6/96/1 पृष्ठ 441
18. महाकुलीनो दैवबुद्धिसत्वसम्पन्नो. . . . . . . .इत्यभिगामिका गुणाः। कौ0 अर्थ0 6/96/1 पृष्ठ 441
19. शुश्रुषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहतत्वाभिनिवेशाः प्रज्ञागुणाः। कौ0 अर्थ0 6/96/1 पृष्ठ 441
20. शौर्यममर्षः शीघ्रता दाक्ष्यं चोत्साहगुणाः। कौ0 अर्थ0 6/96/1 पृष्ठ 441

लेने में समर्थ, लज्जाशील, प्राकृतिक प्रकोपों के समय अन्न आदि का उचित विनियोग करने वाला, दीर्घदर्शी, दूरदर्शी, देशकाल के अनुसार पुरुषार्थ करने में अग्रणी, शक्ति सम्पन्न, सन्धि–विग्रह के रहस्यों का ज्ञाता, त्यागी, संयमी, प्रणपालक, शत्रु के कमजोर रहस्यों का उपयोगकर्ता, अपने मन्त्र को गुप्त रखने वाला, दीनों की हंसी न उड़ाने वाला, टेढी भृकुटि से न देखने वाला, काम–क्रोध–लोभ–मोह–चपलता–उपताप और चुगलखोरी आदि दुर्गुणों से रहित, मृदुभाषी, प्रसन्नचित्त, उदारभाषी और बृद्धजनो के उपदेशों एवं आचारों को मानने वाला, ये 'स्वामी' के 'आत्मसम्पत् गुण' हैं।[21]

(ङ) इन्द्रिय–जय गुण : कौटिल्य के अनुसार राजा को उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त 'जितेन्द्रिय' होने का एक और आवश्यक गुण अर्जित करना चाहिए। वस्तुतः कौटिलीय अर्थशास्त्र में 'इन्द्रियजय' को अतिशय महत्व दिया गया है। इसीलिए उसमें सम्पूर्ण शास्त्रो का मूल 'इन्द्रिय जय' को माना गया है।[22] तथा विद्या और विनय का हेतु भी 'इन्द्रिय जय' को ही बताया गया है।[23] कौटिलीय अर्थशास्त्र में इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के तीन उपाय निर्दिष्ट किए गए हैं। प्रथम उपाय को 'अरिषड्वर्ग त्याग' कहा गया है। इसके अन्तर्गत काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष, इन छैः अन्तः शत्रुओं का त्याग (उन्मूलन) करने से इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की जा सकती है।[24] द्वितीय उपाय के रूप में कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा तथा नासिका नामक इन्द्रियों की उनके अपने–अपने विषय क्रमशः– शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध के प्रति अनासक्ति से भी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की जा सकती है।[25] इन्द्रिय जय का तीसरा उपाय है–शास्त्र विहित कर्तव्यों का विधिवत् पालन करना।[26] कौटिल्य के अनुसार उपरोक्त उपायों द्वारा राजा को अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना चाहिए तथा जितेन्द्रिय होकर ही उसे शासन चलाना चाहिए। उसके अनुसार वही राजा सफल शासक हो सकता

21. वाग्मी प्रगल्भः . . . . .बृद्धोपदेशाचार इत्यात्मसम्पत्। कौ0 अर्थ0 6/96/1 पृष्ठ 441–42
22. शास्त्रानुष्ठानं वा कृत्स्नं हि शास्त्रमिदमिन्द्रियजयः। कौ0 अर्थ0 1/3/5 पृष्ठ 16
23. विद्या विनयहेतुरिन्द्रियजयः। कौ0 अर्थ0 1/3/5 पृष्ठ 16
24. कामक्रोधलोभमानमदहर्षत्यागात्कार्यः। कौ0 अर्थ0 1/3/5 पृष्ठ 16
25. कर्णत्वगक्षिजिह्वघ्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेष्वविप्रतिपत्तिरिन्द्रियजयः। कौ0अर्थ0 1/3/5 पृष्ठ16
26. शास्त्रानुष्ठानं वा कृत्स्नं हि शास्त्रमिदमिन्द्रियजयः। कौ0 अर्थ0 1/3/5 पृष्ठ 16

है जिसने अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली हो। इस सम्बन्ध में अनेक ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए वह कहता है कि अतीत में जो राजा इन्द्रिय–जयी नहीं अपितु इन्द्रिय–लोलुप रहे हैं वे चारों समुद्र पर्यन्त पृथ्वी के स्वामी होते हुए भी अपने 'बन्धु–बान्धवों और राष्ट्र' के साथ यथाशीघ्र नष्ट हो गये। जबकि इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाले जितेन्द्रिय राजाओं ने चिरकाल तक पृथ्वी पर निष्कण्टक राज्य किया।[27] इस प्रकार कौटिल्य की दृष्टि में राजा का जितेन्द्रिय होना परम आवश्यक है। प्राचीन भारत के अन्य चिन्तकों मनु[28] तथा शुक्राचार्य[29] आदि ने भी राजा को इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना आवश्यक बताया है। इस प्रकार राजा का जितेन्द्रिय होना प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन की एक सुस्थापित परम्परा रही है।

आचार्य कौटिल्य ने राजा के लिए उपरोक्त गुणों की अनिवार्यता यों ही निर्धारित नहीं की है। अपितु इसके पीछे उसका गम्भीर चिन्तन–मनन है। इस तथ्य को वह सम्यक् रूपेण जानता है कि 'स्वामी' राज्य की सप्त–प्रकृतियो का केन्द्र बिन्दु है, सिरमौर है। इसलिए राज्य की अन्य प्रकृतियों की अपेक्षा 'स्वामी' का गुण सम्पन्न होना नितान्त आवश्यक है। क्योंकि आत्मसम्पत् गुण सम्पन्न राजा राज्य की शेष गुणहीन प्रकृतियों को भी गुणी बना सकता है, जबकि उपरोक्त गुणों से हीन राजा राज्य की अन्य समृद्ध एवं अनुरक्त प्रकृतियों को भी नष्ट कर सकता है।[30] आचार्य कौटिल्य की स्पष्ट मान्यता है कि एक दुष्ट प्रकृति राजा चारों समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का अधिपति होता हुआ भी या तो अपनी प्रकृतियों द्वारा नष्ट हो जाता है या फिर वह शत्रु के अधिकार में चला जाता है।[31] किन्तु आत्मसम्पत् गुणों से सम्पन्न नीतिज्ञ राजा अल्प भूमि का स्वामी होता हुआ भी अपनी प्रकृतियों द्वारा सारी पृथ्वी का आधिपत्य प्राप्त कर लेता है और वह कभी भी क्षीण नहीं होता।[32]

---

27. एते चान्ये च ....चिरं महीम्। कौ० अर्थ० 1/3/5 पृष्ठ 17
28. इन्द्रियाणां जये .... स्थापयितुं प्रजाः। मनुस्मृति 7/44
29. विषयामिषलोभेन मनः........तस्मिञ्जितेन्द्रियः। शुक्रनीति 1/98
30. सम्पादयत्यसम्पन्नाः .... प्रकृतीर्हन्त्यनात्मवान्। कौ० अर्थ० 6/96/1 पृष्ठ 444
31. ततः स ....द्विषतां वशम्। कौ० अर्थ० 6/96/1 पृष्ठ 444
32. आत्मवांस्त्वल्पदेशोऽपि .... जयत्येव न हीयते। कौ० अर्थ० 6/96/1 पृष्ठ 444

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कौटिलीय अर्थशास्त्र में राज्य की सात प्रकृतियों में 'स्वामी' (राजा) को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। इतना ही नहीं, उसके अनुसार राज्य की अन्य प्रकृतियों का अस्तित्व भी 'स्वामी' (राजा) पर ही निर्भर है।

(ii) अमात्य :

प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में वर्णित राज्य की सप्त–प्रकृतियों में 'अमात्य' को द्वितीय स्थान प्रदान किया गया है।[33] इससे यह तथ्य स्वतः प्रमाणित होता है कि प्राचीन राज्य व्यवस्था में 'अमात्य' का अति विशिष्ट स्थान था। सामान्यतः 'अमात्य' और 'मन्त्री' शब्दों को एक ही अर्थ में प्रयुक्त करने की परम्परा रही है। किन्तु कौटिल्य इन दोनों में भेद करता है; जो उसके इस कथन से स्पष्ट होता है कि– 'अमात्योचित गुण, देश, काल और कार्य का विचार करके ही अमात्यों की नियुक्ति की जाय; किन्तु उन्हें मन्त्री कदापि न बनाया जाय।[34] एक अन्य स्थल पर आचार्य कौटिल्य ने अमात्यों मे से ही मन्त्रियों की नियुक्ति हेतु उनका परीक्षण किए जाने का निर्देश देते हुए कहा है कि– 'जो अमात्य धर्मोपधा, अर्थोपधा, कामोपधा एवं भयोपधा नामक सभी चार परीक्षा प्रणालियों के माध्यम से परीक्षित किए जा चुके हो उन्हें ही मन्त्री नियुक्त करना चाहिए।[35] उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि अमात्य और मन्त्री दोनों भिन्न–भिन्न पद थे। मन्त्री पद अमात्य–पद से बड़ा और महत्वपूर्ण था। इसलिए अमात्य होने के लिए मन्त्री होना आवश्यक नहीं था, लेकिन मन्त्री होने के लिए अमात्य होना आवश्यक था। महाभारत में भी अमात्यों और मन्त्रियों की संख्या क्रमशः सैंतीश और आठ बताकर उनके पारस्परिक भेद को स्पष्ट किया गया है।[36] कामन्दकीय नीतिसार का यह कथन भी 'अमात्य' और 'मंत्री' शब्द में अर्थभेद की ओर इंगित करता है कि– कोष और दण्ड से युक्त राजा को दुर्ग में स्थित होकर अमात्यों और मन्त्रियों के समक्ष मण्डल का विचार

---

33. कौ0 अर्थ0 6/96/1 पृष्ठ 441, मनु 9/294, शान्ति पर्व 69/64, शुक्रनीति 1/61, कामन्दक 1/16
34. विभज्यामात्यविभवं. . . . . न तु मन्त्रिणः। कौ0 अर्थ0 1/3/7 पृष्ठ 22
35. सर्वोपधाशुद्धान्मन्त्रिणः कुर्यात्। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 27
36. वर्जितं चैव . . . . राजोपधारयेत्। शान्ति पर्व 85/7–11

करना चाहिए।[37] ऐसा प्रतीत होता है क अमात्य राजकर्मचारियों की एक ऐसी कोटि थी जिसमें से अनेक उच्च प्रशासनिक अधिकारी जैसे प्रधानमंत्री, पुरोहित, न्यायाधीश, मंत्री, समाहर्ता, सन्निधाता एवं विभिन्न विभागों के अध्यक्ष आदि की नियुक्ति की जाती थी।[38]

अमात्य की योग्यता निर्धारित करने के पूर्व आचार्य कौटिल्य ने पूर्ववर्ती आचार्यो के तद्विषयक मतमतान्तरों का सविस्तार उल्लेख किया है। सर्वप्रथम आचार्य भारद्वाज का उल्लेख करता हुआ वह लिखता है कि उनके मतानुसार राजा को अपने सहपाठियों को ही अमात्य नियुक्त करना चाहिए। क्योंकि वह उनके सामर्थ्य एवं आचरण को भलीभाँति जान चुका होता है; इस कारण वे राजा के विश्वासपात्र होते है।[39] लेकिन आचार्य विशालाक्ष इस मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि एक साथ खेलने तथा उठने–बैठने के कारण सहपाठी अमात्य राजा का अपमान कर सकते हैं। इसलिए सहपाठियों को नहीं, अपितु ऐसे लोगों को अमात्य बनाना चाहिए जिन्होंने गुप्तकार्यो में राजा का साथ दिया हो। क्योंकि वे समानशील एवं समान व्यसन के कारण गुप्तकार्यो का भेद खुल जाने के डर से राजा का कभी अपमान नहीं कर सकते।[40] लेकिन आचार्य पाराशर इस मत से सहमत नहीं है। क्योंकि राजा अपने मर्मज्ञ अमात्यों से गुप्त कार्यो का भेद खुल जाने के डर से सदैव भयभीत रहेगा। तथा उन्हें अपनी गुप्त बात बताकर वह शक्तिहीन हो जायेगा। अतः राजा को वही व्यक्ति अमात्य पद पर नियुक्त करना चाहिए जिन्होंने प्राणघातक विपत्तियों में उसकी रक्षा की हो।[41] लेकिन आचार्य पिशुन इस मत से भी सहमत नहीं है। क्योंकि उनके अनुसार यह तो भक्तिगुण हुआ, न कि बुद्धिगुण; जो अमात्य के लिए परमावश्यक है। अतः अमात्य पद पर उन्हीं लोगों को नियुक्त करना चाहिए जो राज्य कार्यो में नियुक्त होकर अपनी विशिष्ट योग्यता के साथ उन्हें सम्पन्न कर सकें। क्योंकि उनकी बुद्धि परीक्षा हो जाती है।[42]

---

37. उपेतः कोषदण्डाभ्यां ....मण्डलाधिपः। कामन्दक0 8/1
38. विस्तृत विवरण कौ0 अर्थ0 के 'विनयाधिकारिक' तथा 'अध्यक्ष प्रचार' नामक प्रथम दो अधिकरणों में उपलब्ध।
39. सहाध्यायिनोऽमात्यान् कुर्वीत........ ते ह्यस्य विश्वास्या भवन्तीति। कौ0 अर्थ0 1/3/7 पृष्ठ 20
40. नेति विशालाक्षः........ ते ह्यस्य मर्मज्ञभयान्नापराध्यन्तीति। कौ0 अर्थ0 1/3/7 पृष्ठ 20
41. साधारण एष दोष इति पाराशरः.........दृष्टानुरागत्वादिति। कौ0 अर्थ0 1/3/7 पृष्ठ 20–21
42. नेति पिशुनः .... दृष्टगुणात्वादिति। कौ0 अर्थ0 1/3/7 पृष्ठ 21

आचार्य कौणपदन्त उक्त मत से इस आधार पर सहमत नहीं हैं कि ऐसे लोग अमात्योचित गुणों से शून्य होते हैं। अतः अमात्य पद पर उन्हीं को नियुक्त करना चाहिए जिनको वंशानुगत परम्परा से वह पद प्राप्त होता आ रहा हो। वे न तो राजा का उपकार करते हैं और न उसका साथ छोडते हैं।[43] आचार्य वातव्याधि उक्त मत से असहमत हैं। क्योंकि ऐसे अमात्य राजा का सर्वस्व अपने अधीन करके राजा के समान स्वतंत्रवृत्ति हो जाते हैं। अतः राजा को नये व्यक्ति ही अमात्य पद पर नियुक्त करना चाहिए। क्योंकि वे राजा को यम का दूसरा अवतार मानकर उसका अपमान कभी नहीं करते।[44] किन्तु आचार्य बाहुदन्तीपुत्र इस मत पर आपत्ति करते हैं। उनके अनुसार नीतिशास्त्र में पारंगत किन्तु क्रियात्मक अनुभव से शून्य व्यक्ति राज्यकार्यो को भलीभाँति सम्पन्न नहीं कर सकते हैं। अतः कुलीन, बुद्धिमान, सदाचारी, वीर तथा अनुरागी व्यक्तियों को ही अमात्य बनाना चाहिए।[45]

आचार्य कौटिल्य ने भारद्वाज से लेकर बाहुदन्तीपुत्र तक के उपरोक्त सभी मतों को अपने–अपने स्थान पर उचित माना है। क्योंकि सभी में न्यूनाधिक सत्यांश है।[46] इसलिए भलीभाँति विचार करने के बाद कौटिल्य अपना मत प्रतिपादित करते हुए लिखता है कि किसी भी पुरुष के सामर्थ्य की स्थिति उसके कार्यो की सफलता पर निर्भर करती है और उसकी यह कार्य क्षमता उसके विद्या–बुद्धि के बल पर आंकी जा सकती है।[47] अतः राजा को किसी व्यक्ति के अमात्योचित गुण, देश, काल और कार्य का विचार करके ही उसे अमात्य नियुक्त करना चाहिए।[48]

---

43. नेति कौणपदन्तः. . . . . . . सगन्धेष्वेवावतिष्ठन्ते इति। कौ0 अर्थ0 1/3/7 पृष्ठ 21
44. नेति वातव्याधिः. . . . .नवास्तु यमस्थाने दण्डधरं मन्यमाना नापराध्यन्तीति। कौ0 अर्थ0 1/3/7 पृष्ठ 21
45. नेति बाहुदन्तीपुत्रः . . . . .गुणप्राधान्यादिति। कौ0 अर्थ 1/3/7 पृष्ठ 22
46. सर्वमुपपन्नमिति कौटिल्यः। कौ0 अर्थ0 1/3/7 पृष्ठ 22
47. कार्यसामर्थ्याद्धि पुरुषसामर्थ्यं कल्प्यते सामर्थ्यतश्च। कौ0 अर्थ0 1/3/7 पृष्ठ 22
48. विभज्यामात्यविभवं . . . . .स्युर्न तु मन्त्रिणः। कौ0 अर्थ0 1/3/7 पृष्ठ 22

अमात्यों की उपधा परीक्षा :

आचार्य कौटिल्य के अनुसार राजा को चाहिए कि अमात्यों को उनके सामान्य पदों पर नियुक्त करने के बाद वह प्रधानमंत्री और पुरोहित के सहयोग से उनके आचरण की परीक्षा गुप्त उपायों द्वारा करे।[49] इन विलक्षण गुप्त उपायों को कौटिल्य ने चार भागों[50] में विमक्त कर उनका निम्न प्रकार प्रतिपादन किया है–

(क) धर्मोपधा परीक्षा : गुप्त धार्मिक उपायों द्वारा अमात्य की परीक्षा को 'धर्मोपधा परीक्षा' कहा गया है। कौटिल्य के अनुसार इस परीक्षा की अनूठी विधि यह है कि राजा सर्वप्रथम पुरोहित को किसी नीच व्यक्ति के यहाँ यज्ञादि कार्य करने को कहे। पुरोहित के द्वारा ऐसा करने से मना करने पर वह उसे पदच्युत कर दे। उसके बाद वह पुरोहित प्रत्येक अमात्य से अलग–अलग मिलकर कहे कि यह राजा तो बडा अधार्मिक है। हम पुराहितों से नीच व्यक्तियों के यहाँ यज्ञ कार्य करने के लिए कहता है। चलो, हम लोग मिलकर इस अधार्मिक राजा को हटाऐं और इसके स्थान पर किसी दूसरे धार्मिक व्यक्ति को राजा बनाऐं। मेरे इस प्रस्ताव को अन्य सभी ने स्वीकार कर लिया है। बताओ, तुम्हारी क्या राय है ? यदि वह अमात्य पुरोहित की इन बातों में नहीं आता है और उसकी बात को अस्वीकार कर देता है तो समझना चाहिए कि वह अमात्य अपनी इस 'धर्मोपधा परीक्षा' में उत्तीर्ण (शुद्ध) हो चुका है।[51]

(ख) अर्थोपधा परीक्षा : कौटिल्य के अनुसार इस परीक्षा की विलक्षण विधि यह है कि राजा सर्वप्रथम सेनापति को किसी दुराचारी/अपूज्य व्यक्ति का मान–सम्मान करने के लिए आदेश दे। सेनापति जब राजा की इस बात से रुष्ट हो जाय तो राजा उस सेनापति को भी पदच्युत कर दे। तब वह पदच्युत/अपमानित सेनापति गुप्तचरों द्वारा अमात्य को आर्थिक प्रलोभन देकर उसे पूर्वोक्त विधि से राजा के विनाश के लिए उकसाये। यदि वह अमात्य सेनापति की

---

49. मन्त्रिपुरोहितसखः सामान्येष्वधिकरणेषु स्थापयित्वाऽमात्यानुपधाभिः शोधयेत्। कौ0अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 25
50. कौटिलीय अर्थशास्त्र का 'उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानाम्' नामक अध्याय (1/5/9 पृष्ठ 25–28)
51. पुरोहित . . . . प्रत्याख्याने शुचिरिति धर्मोपधा। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 25

इन बातों में नहीं आता है और उसकी बात का विरोध करता है तो समझना चाहिए कि वह अमात्य अपनी इस 'अर्थोपधा' परीक्षा में उत्तीर्ण (शुद्ध) हो चुका है।[52]

(ग) **कामोपधा परीक्षाः** इस विधि के अनुसार राजा किसी संन्यासिनी का वेष धारण करने वाली गुप्तचर स्त्री को अन्तःपुर में ले जाकर उसका अच्छा स्वागत सत्कार करे। फिर वह गुप्तचर स्त्री एक–एक अमात्य के निकट जाकर कहे– 'महात्मात्य ! महारानी जी आप पर आसक्त हैं। आपके समागम के लिए उन्होंने पूरी व्यवस्था कर रखी है। यदि आपने उनकी इच्छा पूरी की तो वह आपको मनचाहा धन भी देंगी।' यदि वह अमात्य उस गुप्तचर स्त्री की इन बातों में नहीं आता है और उसका विरोध करता है तो समझना चाहिए कि वह अमात्य अपनी इस 'कामोपधा' परीक्षा में उत्तीर्ण (शुद्ध) हो चुका है।[53]

(घ) **भयोपधा परीक्षा :** इस विधि के अन्तर्गत कोई एक अमात्य अन्य अमात्यों को नौका विहार के लिए आमन्त्रित करे। इस प्रस्ताव पर राजा उत्तेजित होकर उन सब अमात्यों को दण्डित करे। उसके बाद एक छात्र का कपट वेषधारी गुप्तचर उन दण्डित/तिरस्कृत अमात्यों के पास जाकर प्रत्येक से अलग–अलग कहे– 'यह राजा तो बड़ा दुराचारी है। चलिए, हम लोग इसका वध करके किसी सदाचारी व्यक्ति को राजा बनाएं। अन्य सभी अमात्यों को मेरी यह बात स्वीकार है। कहिए, आपकी क्या राय है ? यदि वह अमात्य उस गुप्तचर की बातों में नहीं आता है और उसका विरोध करता है तो समझना चाहिए कि वह अमात्य अपनी इस 'भयोपधा' परीक्षा में उत्तीर्ण (शुद्ध) हो चुका है।[54] किन्तु उपरोक्त परीक्षाऐं सम्पन्न करने में आचार्य कौटिल्य कुछ सतर्कता वरतने का निर्देश देता है। उसके अनुसार– 'अमात्यों की परीक्षा अवश्य ली जाय परन्तु उस परीक्षा का माध्यम राजा स्वयं को तथा महारानी को कभी न बनाये।[55] इसके पीछे वह कुछ ठोस कारण बताता है। उसके मतानुसार– "कभी–कभी किसी निर्दोष अमात्य को इन छल–प्रपञ्चयुक्त 'उपधा' परीक्षाओं से

---

52. सेनापति. . . . . . . प्रत्याख्याने शुचिरित्यर्थोपधा। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 25
53. परिव्राजिका. . . . . . प्रत्याख्याने शुचिरिति कामोपधा। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 26
54. प्रवहणनिमित्तम् . . . . . प्रत्याख्याने शुचिरिति भयोपधा। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 26
55. न त्वेव कुर्यादात्मानं . . . . . . .कौटिल्यदर्शनम्। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 27

वंचित करना, पानी में विष घोलने के समान हो जाता है। सम्भव है, उक्त रीतियों से बिगड़ा हुआ अमात्य फिर कभी भी न सुधर सके।[56] क्योंकि छल–छद्म जैसे कपट उपायों के द्वारा ठगे गए सच्चरित्र व्यक्ति की बुद्धि प्रतिशोध रूपी अभीष्ट की प्राप्ति तक चैन से नहीं बैठती है।[57] इसलिए कौटिल्य के अनुसार सर्वोत्तम यही है कि उपरोक्त चारों उपायों से परीक्षण के लिए राजा किसी बाह्य वस्तु को माध्यम बनाए तथा गुप्तचरों द्वारा अमात्यों के चरित्र की परीक्षा करे।[58]

परीक्षाओ में सफल एवं असफल अमात्यों की विभिन्न पदों पर नियुक्ति :

उपरोक्त चारों प्रकार से अमात्यों की परीक्षा कर उन्हें उपयुक्त पदों पर नियुक्त किया जाता था। आचार्य कौटिलय के निर्देशानुसार जो अमात्य 'धर्मोपधा' परीक्षा में खरे उतरें उन्हें धर्मस्थानीय (दीवानी) न्यायालय तथा कण्टकशोधन (फौजदारी) न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त करे।[59] 'अर्थोपधा' परीक्षा में उत्तीर्ण अमात्यों को समाहर्ता (कर आयुक्त) तथा सन्निधाता (कोषाध्यक्ष) के रूप में नियुक्त करे।[60] 'कामोपधा' में परीक्षित अमात्यों को बाह्य तथा आन्तरिक विलास–स्थानों (विहारों) का रक्षक नियुक्त करे।[61] तथा 'भयोपधा' परीक्षा में उत्तीर्ण अमात्यों को राजा अपना अङ्गरक्षक नियुक्त करे।[62] लेकिन जो अमात्य उपरोक्त सभी परीक्षाओं में असफल रहें उन्हें खदानों, हाथियों और जंगलों के श्रमसाध्य कार्यो में नियुक्त करना चाहिए।[63]

मन्त्री की नियुक्ति :

आचार्य कौटिल्य के अनुसार जो अमात्य उपरोक्त चारों परीक्षाओं में सफल हों उन्हीं को 'मन्त्री' पद पर नियुक्त करना चाहिए।[64] इससे यह स्पष्ट होता है कि मन्त्रियों के

56. न दूषणमदुष्टस्य ....नाधिगम्येत भेषजम्। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 27
57. कृता च ....सत्ववतां धृतौ। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 27
58. तस्माद बाह्यमधिष्ठानं .... मार्गेत सत्त्रिभिः। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 28
59. तत्र धर्मोपधाशुद्धान् धर्मस्थीयकण्टकशोधनेषु स्थापयेत्। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 26
60. अर्थोपधाशुद्धान् समाहर्तृसन्निधातृनिचयं कर्मसु। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 27
61. कामोपधाशुद्धान् बाह्याभ्यन्तरविहाररक्षासु। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 27
62. भयोपधाशुद्धानासन्नकार्येषु राज्ञः। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 27
63. सर्वत्राशुचीन् खनिद्रव्यहस्तिवनकर्मान्तेषूपयोजयेत्। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 27
64. सर्वोपधाशुद्धान् मन्त्रिणः कुर्यात्। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 27

लिए निर्धारित अमात्योचित अन्य अर्हताओं के साथ–साथ 'उपधा–परीक्षा' में सफल होना भी अपरिहार्य था। 'मन्त्री' जैसे महत्वपूर्ण पद के लिए यह आवश्यक भी था। इस प्रकार कौटिल्य द्वारा 'अमात्य' तथा 'मन्त्री' में भेद एवं मन्त्रियों के लिए 'उपधा परीक्षित' होने की एक अतिरिक्त अर्हता का निर्धारण राजदर्शन के क्षेत्र में उनका एक विशिष्ट योगदान माना जा सकता है।

प्रधानमन्त्री– पद : योग्यता, परीक्षा एवं नियुक्ति :

कौटिलीय शासन व्यवस्था में प्रधानमंत्री का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था जिसका कौटिलीय अर्थशास्त्र में मन्त्री[65],अमात्य[66], तथा महामात्य[67] आदि विविध नामों से उल्लेख किया गया है। प्रशासन में यह पद सबसे ऊँचा माना जाता था तथा उसके बाद राजा के अन्य मन्त्रियों एवं अधिकारियों का स्थान आता था। इसलिए कौटिलीय अर्थशास्त्र में राज्य की शासन प्रणाली के जो अठारह महत्वपूर्ण अधिकारी (अष्टादश तीर्थ)[68] निर्दिष्ट किए गए हैं उनमें प्रधानमंत्री का पद सर्वोपरि है।[69] आचार्य कौटिल्य ने प्रधानमन्त्री की अनिवार्य योग्यताओं को 'अमात्यसम्पत्' के रूप में वर्णित किया है। जिनके अन्तर्गत स्वदेशोत्पन्न, उच्चकुलीन, अवगुण शून्य, शिल्पकला में निपुण, बुद्धि–विवेक से युक्त, स्मरणशक्ति सम्पन्न, चतुर, वाक्पटु, प्रगल्भ, प्रतिवाद तथा प्रतिकार करने में समर्थ, उत्साही, प्रभावशाली, सहिष्णु, पवित्र, मित्रता के योग्य, दृढ़, स्वामिभक्त, सुशील, समर्थ, स्वस्थ, धैर्यवान, जडता एवं चपलता से रहित, प्रियदर्शी तथा द्वेषवृत्तिरहित[70] होना आदि गुणों को समाहित किया गया है। जिस प्रधानमंत्री में उपर्युक्त सभी गुण विद्यमान हों वह उत्कृष्ट, जिसमें तीन चौथाई गुण हों वह मध्यम तथा जिसमे आधे गुण हों उसे आचार्य कौटिल्य ने निकृष्ट मन्त्री माना है।[71]

---

65. कौ० अर्थ० 1/4/8 पृष्ठ 23
66. कौ० अर्थ० 5/94–95/6 पृष्ठ 432
67. कौ० अर्थ० 1/8/12 पृष्ठ 37
68. एवं शत्रौ च मित्रे. . . . . . .तीर्थेष्वष्टादशस्वपि। कौ० अर्थ० 1/7/11 पृष्ठ 35
69. तान् राजा स्वविषये मन्त्रिपुरोहितसेनापति. . . . . . दुर्गान्तपालाटविकेषु। कौ० अर्थ० 1/7/11 पृष्ठ 33
70. जानपदोऽभिजातः. . . . . . . वैराणामकर्तत्यमात्यसम्पत्। कौ० अर्थ० 1/4/8 पृष्ठ 23
71. अतः पादार्धगुणहीनौ मध्यमावरौ। कौ० अर्थ० 1/4/8 पृष्ठ 23

कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्रधानमंत्री पद पर नियुक्ति के पूर्व उसके उपरोक्त सभी गुणों की परीक्षा का प्राविधान किया गया है। उसके स्वदेशोत्पन्न, कुलीनता तथा अवगुणशून्यता की परीक्षा राजा के विश्वस्त पुरुषों के द्वारा, योग्यता एवं शास्त्र प्रवेश की परीक्षा सहपाठियों के द्वारा; बुद्धि, स्मृति एवं निपुणता की परीक्षा नूतन–कार्य–प्रयोगों के द्वारा; वाक्पटुता, प्रगल्भता एवं प्रतिमा की परीक्षा व्याख्यानों एवं सभाओं के माध्यम से; उत्साह, प्रभाव तथा सहिष्णुता की परीक्षा आपत्तियों में; पवित्रता, मित्रता एवं दृढ़ स्वामिभक्ति की परीक्षा व्यवहार के द्वारा; शील, बल, स्वास्थ्य, गौरव, अप्रमाद तथा स्थिरवृत्ति की परीक्षा सहवासियों एवं पड़ौसियों के द्वारा; तथा मृदुभाषिता एवं द्वेषरहित प्रकृति की परीक्षा स्वयं राजा के द्वारा ली जाना चाहिए।[72]

प्रधानमंत्री सहित अन्य सभी मन्त्री राजा के वेतनभोगी कर्मचारी होते थे जिनका वेतन निर्धारित था। प्रधानमंत्री को अड़तालीस हजार पण और अन्य मन्त्रियों को बारह हजार पण वार्षिक वेतन देने का प्राविधान था।[73]इस संबंध में यह तथ्य रेखाङ्कित करने योग्य है कि आचार्य कौटिल्य ने राज्य की सामर्थ्य के अनुसार ही मन्त्रियों/अधिकारियों/कर्मचारियों को रखने का निर्देश दिया है तथा उनके वेतन भत्तो पर होने वाला व्यय किसी भी सूरत में राजस्व प्राप्ति के चौथाई भाग से अधिक नहीं होना चाहिए।[74] आचार्य कौटिल्य के इस गुण–सूत्र की आधुनिक युग में बड़ी प्रासंगिकता प्रतीत होती है। उसके निर्देशों का अनुपालन करके वित्तीय संकट से जूझ रहे अनेक आधुनिक राज्य सन्तुलित वित्तीय अनुशासन के विकास मार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं।

मन्त्रि–परिषद एवं मन्त्र–परिषद :

प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था में मन्त्रि परिषद एक महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य संस्था थी। इसीलिए कौटिल्य जैसे राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था के समर्थक आचार्यो ने भी राज्य–कार्य के संचालन हेतु मन्त्रि परिषद की अनिवार्यता स्वीकार की है। उनके अनुसार

72. तेषां जनपदमवग्रहं. . . . . प्रत्यक्षतः संप्रियत्वमवैरित्वं च। कौ0 अर्थ0 1/4/8 पृष्ठ 23
73. ऋत्विगाचार्यमन्त्रिपुरोहित. . . . . . द्वादशसाहस्राः। कौ0 अर्थ0 5/91/3 पृष्ठ 420
74. दुर्गजनपदशक्त्या मृत्यकर्मसमुदयपादेन स्थापयेत्। कौ0 अर्थ0 5/91/3 पृष्ठ 420

जिस प्रकार एक पहिया से रथ नहीं चल सकता है उसी प्रकार बिना मन्त्रियों की सहायता के राज्य का संचालन अकेले राजा से नहीं हो सकता है। अतएव उसे मन्त्रियों को नियुक्त कर उनके परामर्श से राज्य–कार्य संचालित करना चाहिए।[75] मन्त्रिगण ही राजा की मर्यादा को निर्धारित करते हैं; उसे अनर्थकारी कार्यो से रोकते हैं; तथा प्रमाद करने पर उसे सचेत एवं सावधान करते हैं।[76] इतना ही नहीं, राजा को निर्देश दिया गया है कि वह सभी कार्य प्रारंभ करने से पूर्व मन्त्रिपरिषद से परामर्श अवश्य करे।[77] अन्य प्राचीन भारतीय आचार्यो ने भी मन्त्रिपरिषद की आवश्यकता पर बल दिया है।[78]

मन्त्रिपरिषद की सदस्य–संख्या के बारे में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक कभी कोई मतैक्य स्थापित नहीं हो सका है। इस संबंध में राजनीतिक आचार्यो में कौटिल्य के काल तक पर्याप्त मतभेद रहा है जिसको कौटिलीय अर्थशास्त्र में स्पष्ट रूप से इंगित किया गया है। मन्त्रिपरिषद की सदस्य संख्या मनु के अनुयायियों के अनुसार बारह, वृहस्पति के अनुयायियों के अनुसार सोलह, शुक्राचार्य के अनुयायियों के अनुसार बीस होना चाहिए।[79] इसके अतिरिक्त कौटिलीय अर्थशास्त्र में इन्द्र की विराट मन्त्रिपरिषद का भी उल्लेख किया गया है जिसमें एक हजार सदस्य–ऋषि थे तथा इसी कारण इन्द्र को दो आँखो वाला होते हुए भी 'सहस्राक्ष' (हजार आँखो वाला) कहा जाता था।[80] उपरोक्त सभी मतमतान्तरों के बीच आचार्य कौटिल्य ने निर्दिष्ट किया है कि मन्त्रिपरिषद की सदस्य संख्या यथासामर्थ्य होना चाहिए।[81] इससे स्पष्ट होता है कि कौटिल्य मन्त्रि–परिषद की सदस्य संख्या को एक निश्चित सीमा में बाँधने के पक्ष में नहीं थे; अपितु आवश्यकतानुसार मन्त्रियों की संख्या में कमी/वृद्धि की जा सकती थी। आचार्य कौटिल्य का यह मत अपेक्षाकृत अधिक तार्किक एवं व्यावहारिक प्रतीत होता है।

---

75. सहायसाध्यं, राजत्व च श्रृणुयान्मतम्। कौ0 अर्थ0 1/3/6 पृष्ठ 19
76. मर्यादां स्थापयेत्. . . . . .प्रमाद्यन्तममितुदेयु:। कौ0 अर्थ0 1/3/6 पृष्ठ 19
77. मन्त्रपूर्वा: सर्वारम्भा। कौ0 अर्थ0 1/10/14 पृष्ठ 43
78. मनु0 7/55, महाभारत 5/37/32, याज्ञवल्क्य , 1/311, शुक्रनीति 2/1–2, 7,
79. मन्त्रिपरिषदं द्वाशामात्यान् . . . . . . वार्हस्पत्या:, विंशतिमित्यौशनसा:। कौ0अर्थ0 1/10/14 पृष्ठ 47
80. इन्द्रस्य हि मन्त्रिपरिषदृषीणां सहस्रम। स तच्चक्षु:। तस्मादिमं द्वयक्षं सहस्राक्षमाहु:। उपरोक्त
81. यथासामर्थ्यमिति कौटिला:। कौ0 अर्थ0 1/10/14 पृष्ठ 47

उक्त मन्त्रिपरिषद के कुछ विशिष्ट मन्त्रियों की एक छोटी सी अन्तरङ्ग मन्त्रि–परिषद भी होती थी जो राजा के साथ अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं गोपनीय मुद्दों पर गुप्त मन्त्रणा करती थी। विशिष्ट मन्त्रियों की इस परिषद को 'मन्त्र–परिषद' की संज्ञा दी जा सकती है जिसका परिवर्तित स्वरूप आधुनिक राज्यों की Kitchen cabinet के रूप में देखा जा सकता है। इसकी सदस्य संख्या संबंधी अपना मत प्रतिपादित करने से पूर्व आचार्य कौटिल्य ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यो का मतोल्लेख किया है। आचार्य भारद्वाज के मतानुसार– 'गुप्त मन्त्रणा के प्रकट हो जाने पर राजा और उसके सलाहकारों की सुरक्षा खतरे मे पड़ जाती है। इसलिए इस प्रकार की गुप्त मन्त्रणाओं पर राजा अकेला ही विचार करे। चूंकि मन्त्रियों के भी अपने सलाहकार होते हैं और उन सलाहकारों के भी कई दूसरे परामर्शदाता होते हैं, इसलिए मन्त्रणा की इस दीर्घ/अनन्त परम्परा के कारण गुप्त बातों के प्रकट हो जाने का सदैव भय बना रहता है। इसलिए गुप्त मन्त्रणाओं को राजा के अतिरिक्त अन्य कोई न जानने पाये। केवल कार्यारम्भ करने वाले व्यक्ति ही उसके आभास को जान सके और उसका परिणाम उन्हें भी कार्य–समाप्ति के बाद ही ज्ञात हो सके।[82]

लेकिन आचार्य विशालाक्ष की भारद्वाज के इस मत पर सहमति नहीं है। उनके मतानुसार– एक ही व्यक्ति द्वारा सोचा विचारा हुआ मन्त्र सिद्धिदायक नहीं हो सकता। सभी राजकार्य प्रत्यक्ष और परोक्ष दो प्रकार के होते हैं; जिनके लिए मन्त्रियों से मन्त्रणा करने की अपेक्षा होती है। न जाने हुए कार्य को जानना, जाने हुए कार्य का निश्चय करना, निश्चित कार्य को दृढ़ करना, किसी कार्य में सन्देह उत्पन्न होने पर विचार–विमर्श द्वारा उस संशय का निराकरण करना तथा आंशिक कार्य को पूर्णतया सम्पन्न करना आदि सभी बातें मन्त्रियों से मन्त्रणा करके ही पूरी की जा सकती हैं। इसलिए बिजिगीषु राजा को अत्यन्त बुद्धिमान और पर्याप्त अनुभवी व्यक्तियों के साथ बैठकर मन्त्रणा करना चाहिए। मन्त्रणा करते समय राजा किसी को अपमानित न करे, बल्कि सब की बातों को ध्यानपूर्वक सुने; यहाँ तक कि वह एक बालक की भी सारगर्भित बात को ग्रहण करे।[83]

---

82. मन्त्रभेदो ह्ययोगक्षेमकरो. . . . . . जानीयुरारब्धं कृतमेव वा। कौ0 अर्थ0 1/10/14 पृष्ठ 44
83. नैकस्य मन्त्रसिद्धिरस्तीति विशालाक्षः. . . . . .वाक्यमुपयुञ्जीत पण्डितः। कौ0अर्थ0 1/10/14 पृ0 44–45

लेकिन आचार्य पराशर के अनुयायियों की इस पर मतभिन्नता है। उनके मतानुसार 'आचार्य विशालाक्ष' के उक्त कथन से मन्त्र का ज्ञान भले ही हो जाय, किन्तु उससे मन्त्र की रक्षा नहीं हो सकती। इसलिए राजा को जिस कार्य के लिए सलाह लेनी हो उस कार्य के समान ही दूसरे कार्य के सम्बन्ध में वह अपने मन्त्रियों से मन्त्रणा करे। राजा किसी ऐतिहासिक घटना का हवाला देते हुए कहे कि अमुक कार्य इस ढंग से किया गया था; उसी कार्य को यदि इस ढंग से करना होता तो कैसे किया जाना चाहिए था। इस पर मन्त्री जो राय दें उसके अनुसार ही तत्समान अपने अभीष्ट कार्य को सम्पन्न करे। ऐसा करने से मन्त्र का ज्ञान भी हो जाता है और मन्त्र की रक्षा भी।[84]

लेकिन आचार्य पिशुन के लिए उपरोक्त मत स्वीकार्य नहीं है। उनके मतानुसार– 'इस तरह प्रकारान्तर से राजा के द्वारा मन्त्रियों के सम्मुख किसी अन्य बात को रखे जाने से वे समझने लगते हैं कि राजा को हम पर विश्वास नहीं है और वह हमारी सलाह नहीं मानता है। इसलिए वे पूर्व में घटित एवं अघटित मुद्दों पर लापरवाही से उत्तर देते हैं तथा उस बात को प्रकाशित भी कर देते हैं। मन्त्र के लिए यह एक बड़ा दोष है। इसलिए राजा को चाहिए कि जो लोग जिन–जिन कार्यो के लिए नियुक्त तथा जिन–जिन विचारों के लिए उपयुक्त हैं उन्हीं के साथ तद्विषयक मन्त्रणा करे। ऐसा करने से मन्त्रणा में परिमार्जन होता है और उसकी सुरक्षा भी होती है।[85]

आचार्य पिशुन के उक्त मत से अपनी असहमति व्यक्त करते हुए आचार्य कौटिल्य ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है– 'आचार्य पिशुन द्वारा निर्दिष्ट युक्तियों के अनुसार 'मन्त्र' कभी व्यवस्थित नहीं हो सकता। इसलिए राजा को तीन–चार मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करना चाहिए। क्योंकि केवल एक ही मन्त्री से सलाह करता हुआ राजा कोई कठिनतम कार्य पड़ जाने पर उसका समुचित समाधान नहीं कर पाता और वह मन्त्री उसके

---

84. एतन्मन्त्रज्ञानं नैतन्मन्त्ररक्षणमिति पाराशराः. . . . . . एवं मन्त्रोपलब्धिः संवृतिश्च भवतीति। कौ0अर्थ0 1/10/14 पृष्ठ 45

85. नेतिपिशुनः . . . . . तैर्मन्त्रयमाणो हि मन्त्रबुद्धिं गुप्तिं च लभते इति। कौ0 अर्थ0 1/10/14 पृष्ठ 45

प्रतिद्वन्द्वी के रूप में मनमानी करने लगता है। यदि वह दो मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करता है तो संभव है, कि वे दोनों मिलकर राजा को अपने वश में कर लें अथवा दोनों लड़ने लग जायें तो सारी मन्त्रणा ही चौपट हो जायेगी। लेकिन यदि तीन–चार मंत्री सलाहकार होंगे तो ऐसा कोई महान अनर्थकारी दोष उत्पन्न नहीं हो सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी दोष उसमें सहसा उत्पन्न नहीं हो सकता है। लेकिन यदि मन्त्रणा करने वाले मन्त्री चार से अधिक हों तो कार्य का निश्चय करना कठिन हो जाता है तथा ऐसी स्थिति मे 'मन्त्र' की सुरक्षा भी सन्दिग्ध हो जाती है। अतः आचार्य कौटिल्य अपने मत को निष्कर्ष रूप में इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि– देश, काल और कार्य के अनुसार राजा एक या दो मन्त्रियों के साथ भी मन्त्रणा कर सकता है। तथा अपनी विचार शक्ति के अनुसार वह कुछ कार्यो का निर्णय अकेले भी कर सकता है।[86]

आचार्य कौटिल्य मन्त्रणा के संबंध में कुछ विशेष सावधानियाँ बरतने का निर्देश देता है। उसके अनुसार राजा मन्त्रियों के साथ की गई मन्त्रणा को भली–भाँति समझ कर अविलम्ब ही उस पर अपना अन्तिम निर्णय ले। क्योंकि किसी कार्य/मन्त्रणा पर अधिक समय तक सोच–विचार करते रहना उचित नहीं है। इसके अतिरिक्त राजा को चाहिए कि जिन लोगों का उसने कभी अपकार किया हो उनके साथ या उनके सहयोगियों के साथ वह कभी भी मन्त्रणा न करे।[87] आचार्य कौटिल्य के अनुसार मन्त्रणा को गुप्त रखा जाना चाहिए और यदि कोई इसके भेद को उजागर करता है तो उसे तत्काल मरवा देना चाहिए।[88] मन्त्रणा स्थल इस प्रकार बन्द एवं सुरक्षित होना चाहिए कि वहाँ कोई परिन्दा (पक्षी) भी न झाँक सके।[89] कुल मिलाकर राजा को चाहिए कि वह बडी सावधानीपूर्वक अपने मन्त्रणा– रहस्यो की रक्षा करे।[90] मन्त्रणा उपरान्त निर्णय लेने के संबंध में आचार्य कौटिल्य एक महत्वपूर्ण

---

86. नेति कौटिल्यः. . . . . .यथासामर्थ्यं मन्त्रयेत। कौ0 अर्थ0 1/10/14 पृष्ठ 46
87. अवाप्तार्थः कालं नातिक्रामयेत्. . . . . . .न च तेषां पक्ष्यैर्येषामपकुर्यात्। कौ0 अर्थ0 1/10/14 पृष्ठ 46
88. उच्छिद्येत् मन्त्रभेदी। कौ0 अर्थ0 1/10/14 पृष्ठ 43
89. तदुद्देशः संवृतः. . . . . .तस्मान्मन्त्रोद्देशमनायुक्तो नोपगच्छेत्। उपरोक्त
90. तस्माद रक्षेन्मन्त्रम्। कौ0 अर्थ0 1/10/14 पृष्ठ 44

निर्देश देता है कि बहुमत प्राप्त तथा शीघ्र ही कार्यसिद्ध कर देने वाली मन्त्रणा को स्वीकार कर उसी के अनुसार कार्य–सम्पन्न करना चाहिए।[91] यहाँ पर यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि आधुनिक युग में तो मन्त्रिमण्डल के निर्णय केवल बहुमत के आधार पर लिए जाते हैं, कार्यसिद्धि को कोई विशेष महत्व नहीं दिया जाता है। इसीलिए प्रायः देखा जाता है कि मन्त्रिमण्डल में पारित निर्णयों का जब क्रियान्वयन होता है तो उसके अभीष्ट परिणाम प्राप्त नहीं होते। परिणाम स्वरूप उन निर्णयों को कालान्तर में वापस भी लेना पडता है। लेकिन आचार्य कौटिल्य ने बहुमत के साथ–साथ 'कार्यसिद्धि' की अवधारणा को जोड़कर राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में अपना एक विशेष योगदान किया है।

कौटिलीय अर्थशास्त्र में उपलब्ध सन्दर्भो से ऐसा प्रतीत होता है कि मंत्र–परिषद एवं मन्त्रिपरिषद का पृथक–पृथक अस्तित्व था। इसकी पुष्टि आचार्य कौटिल्य के उस कथन से हो जाती है जिसमें उन्होने कहा है कि अत्यावश्यक कार्य पड़ने पर मन्त्रियो के साथ मन्त्रि–परिषद को भी बुलाया जाना चाहिए।[92] यद्यपि अर्थशास्त्र में ऐसा कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि मन्त्र–परिषद में कौन–कौन सदस्य होते थे। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें प्रधानमंत्री, पुराहित, सेनापति और युवराज जैसे अति विशिष्ट लोग अवश्यक रहते होंगे। क्योंकि राज्य के महत्वपूर्ण कार्यसम्पादन में राजा के पश्चात इन्हीं चारों का नाम आया है तथा सभी कर्मचारियों में इन्हीं का वेतन सर्वाधिक है।[93] इसके अतिरिक्त अमात्यों तथा मन्त्रियों की उपधा–परीक्षा में भी प्रधानमन्त्री, पुरोहित तथा सेनापति ही राजा की सहायता करते थे।[94] 'अष्टादश तीर्थो' में भी प्रधानमन्त्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज के नाम सर्वोपरि हैं।[95] इतना ही नहीं, इन चारों उच्चाधिकारियों द्वारा उत्पन्न उपद्रव को 'आभ्यन्तर कोप'[96] कहा गया है जिसका शमन सर्वप्रथम किया जाना चाहिए। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कौटिल्य

91. तत्र यद् भूयिष्ठाः कार्यसिद्धिकरं वा ब्रूयुस्तत् कुर्यात्। कौ0 अर्थ0 1/10/14 पृष्ठ 47
92. आत्ययिके कार्ये मन्त्रिणो मन्त्रिपरिषदं चाहूय ब्रूयात्। उपरोक्त पृष्ठ 47
93. ऋत्विगाचार्य. . . . . .अष्टचत्वारिंशत्साहस्राः। कौ0 अर्थ0 5/91/3 पृष्ठ 420
94. कौटिः अर्थ 1/5/9 पृष्ठ 25–28
95. तान् राजा स्वविषये . . . . . .सामर्थ्ययोगाच्चापसर्पयेत्। कौ0 अर्थ0 1/7/11 पृष्ठ 33
96. मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजानामन्यतमकोपोऽभ्यन्तरकोपः। कौ0 अर्थ0 9/140–141/3 पृष्ठ 603

की राज्य–व्यवस्था में प्रधानमन्त्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान था। आचार्य कौटिल्य के द्वारा राजा को केवल तीन–चार विशिष्ट मन्त्रियो से मन्त्रणा करने के निर्देश[97] से ऐसा इंगित होता है कि उपरोक्त चारों उच्चाधिकारी ही मन्त्र–परिषद के सदस्य होते थे।

यहाँ पर यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि राजतंत्रीय शासन व्यवस्था के समर्थक आचार्य कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट उपरोक्त मन्त्र–परिषद आधुनिक युग की लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था में भी 'अन्तरङ्ग मन्त्रिमण्डल' (Kitchen cabinet) के रूप में पायी जाती है। प्रत्येक मन्त्रिमण्डल में चार पाँच ऐसे प्रभावशाली मन्त्री अवश्य होते हैं जो प्रधानमन्त्री के अधिक विश्वासपात्र होते हैं तथा किसी भी विचारणीय विषय पर वे पहले ही निर्णय कर लेते हैं तथा बाद में अपने प्रभाव से वे उस पर मन्त्रिमण्डल का अनुमोदन भी ले लेते हैं।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि आचार्य कौटिल्य राजतंत्रीय व्यवस्था के समर्थक थे फिर भी उन्होंने अपनी राज्य व्यवस्था में अमात्यों/मन्त्रियों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। इसीलिए राजा मंत्रियो से मन्त्रणा किए बिना कोई कार्य प्रारंभ नहीं कर पाता था।

(iii) जनपद :

आचार्य कौटिल्य ने राज्य की सप्त प्रकृतियो में 'जनपद' को तीसरा स्थान प्रदान किया है।[98] उनके 'जनपद' में जनसंख्या और भूमि दोनों अन्तर्निहित हैं। आचार्य कौटिल्य के अनुसार राजा को चाहिए कि वह दूसरे देशों के मनुष्यों को बुलाकर अथवा अपने देश की जनसंख्या को बढ़ाकर प्राचीन या नवीन जनपद को वसाये।[99] इससे यह स्पष्ट होता है कि 'जनपद' नामक राज्य की प्रकृति के लिए जनता का होना अनिवार्य है। इसी सन्दर्भ में कौटिल्य आगे लिखते हैं कि 'नदी, पर्वत, वन, बेर के वृक्ष, खाई, तालाब, शाल्मली, शमी और

---

97. मन्त्रिभिस्त्रिभिश्चतुर्भिर्वा सह मन्त्रयेत्। कौ0 अर्थ0 1/10/14 पृष्ठ 46
98. स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः। कौ0 अर्थ0 6/96/1 पृष्ठ 441
99. भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा जनपदं. . . . . .वा निवेशयेत। कौ0 अर्थ0 2/17/1 पृष्ठ 77

वरगद-आदि के वृक्ष लगाकर उन वसाये हुये गाँवो (जनपद) की सीमा निर्धारित करना चाहिए।[100] कौटिल्य के इस निर्देश से यह स्पष्ट होता है कि 'जनपद' नामक राज्य–प्रकृति के लिए जनसंख्या के साथ–साथ भूमि का होना भी आवश्यक है। इस प्रकार कौटिलीय अर्थशास्त्र में उपलब्ध उपरोक्त वर्णन से रंगास्वामी आयंगर जैसे कुछ आधुनिक विद्वानों की यह अवधारणा स्वतः खण्डित हो जाती है कि 'कौटिल्य का जनपद से अभिप्राय केवल जनसमूह से था, भूमि के लिए उनके दर्शन में कोई स्थान नहीं था। 'भूमि' तत्व का विकास बाद के ग्रन्थों में हुआ है न कि कौटिलीय अर्थशास्त्र जैसे प्रारंभिक ग्रन्थों में।[101]

उत्कृष्ट जनपद के गुणों को 'जनपद सम्पत्' की संज्ञा देते हुए आचार्य कौटिल्य ने जनपद में निम्नांकित गुणों को वांछनीय बताया है– मध्य तथा सीमान्त पर किलों से युक्त, इतने विशाल क्षेत्रफल से युक्त कि वह आपत्ति के समय अपना और बाह्य जनता का पालन अपनी पैदावार से कर सके, आत्मरक्षा के प्रचुर साधनों से युक्त, आत्मनिर्भर, शत्रुओं का पराभव करने की क्षमता से युक्त, सामन्तों को वश में रखने की सामर्थ्य से युक्त, दलदल, पथरीली, ऊसर तथा ऊबड़ खावड़ जमीन से रहित, चोर, विद्रोही, सर्प तथा हिंसक पशुओं से रहित, सुन्दर, कृषि योग्य, खान, हाथियो एवं इमारती लकड़ी के जंगलो से युक्त, चारागाह से युक्त, अच्छी जलवायु से युक्त, जल तथा थल मार्गो से युक्त, उपयोगी पशुओं से युक्त, सिंचाई के लिए केवल वर्षा पर निर्भर न रहने वाला, बहुमूल्य वस्तुओं से युक्त, दण्ड और कर को सहन करने वाला, कार्यशील किसानों वाला, बुद्धिमान स्वामी (राजा) वाला, नीच वर्ण की अधिक आबादी वाला, राज्य के प्रति निष्ठावान एवं सदाचारी जनता वाला होना 'जनपद सम्पत्' कहलाता है।[102]

कौटिलीय अर्थशास्त्र में 'जनपद' का प्रयोग राज्य के सम्पूर्ण भूभाग, दुर्गरहित शेष भाग तथा स्थानीय क्षेत्रो के लिए किया गया है। उसके अनुसार जनसंख्या राज्य का

---

100. नदीशैलवनगृष्टिदरीसेतुवन्ध. . . . . सीम्नां स्थापयेत्। कौ0 अर्थ0 2/17/1 पृष्ठ 77
101. Ayangar, Ranga Swamy - Some Aspects of Ancient Indian Polity, p. 78-79
102. मध्ये चान्ते च स्थानवानात्मधारण;. . . . . .इति जनपदसम्पत्। कौ0 अर्थ0 6/96/1 पृष्ठ 442

परमावश्यक तत्व है। जनसंख्या के बिना जनपद का अस्तित्व असम्भव है और जनपद के बिना राज्य का अस्तित्व असम्भव है।[103] इसलिए कौटिल्य निर्देश देता है कि प्रत्येक जनपद में कम से कम सौ घर और अधिक से अधिक पाँच सौ घर वाले ऐसे गाँव बसाये जायें जिनमें प्रायः शूद्र तथा किसान अधिक हों। एक गाँव से दूसरे गाँव की दूरी एक–दो कोस से अधिक नहीं होना चाहिए, ताकि आवश्यकता पडने पर वे एक दूसरे की सहायता कर सके।[104] आठ सौ गाँवो के बीच में एक 'स्थानीय', चार सौ गाँवो में एक 'द्रोणमुख'; दो सौ गाँवो में एक 'खार्वटिक'; तथा दस गाँवो में एक 'संग्रहण' नामक स्थान की स्थापना की जाना चाहिए।[105] पूरे जनपद को चार भाँगो में बाँटकर उसके एक भाग के अधिकारी को 'स्थानीय' या 'स्थानिक'[106] कहा गया है जिसे आठ सौ गाँवो के प्रबन्धन का दायित्व सौपा गया था।[107]

कौटिलीय अर्थशास्त्र के 'जनपद निवेश' नामक अध्याय में आचार्य कौटिल्य ने कुछ ऐसे महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख किया है जो आज भी प्रासंगिक प्रतीत होते हैं तथा समाज कल्याण एवं लोक कल्याणकारी राज्य की हमारी अवधारणा को साकार करने में सहायक हो सकते हैं। आचार्य कौटिल्य के अनुसार राज्य की सीमा पर अन्तपाल नामक दुर्गरक्षक के संरक्षण में एक दुर्ग की स्थापना की जाना चाहिए। जनपद की सीमा पर अन्तपाल की अध्यक्षता में ही द्वारभूत स्थानों का भी निर्माण कराया जाना चाहिए। जिनके भीतरी भागों की रक्षा का दायित्व व्याध, शबर, पुलिन्द, चाण्डाल आदि वनचर जाति के लोगों को सौंपा जाना चाहिए।[108] आचार्य कौटिल्य की उपरोक्त व्यवस्था का अनुसरण करते हुए आज यदि हमारे देश की समुद्री, पहाड़ी एवं स्थलीय सीमाओं पर तैनात रहने वाले तटरक्षक बल एवं सीमा सुरक्षा बलो में कोल, भील, किरात जैसी आदिवासी एवं जंगली जाति के लोगों को समुचित आरक्षण का प्राविधान कर दिया जाय तो देश को उससे बहुमुखी लाभ हो सकते

---

103. न ह्यजनो जनपदो राज्यमजनपदं वा भवतीति कौटिल्यः। कौ0 अर्थ0 13/174–75/4 पृष्ठ 722
104. शूद्रकर्षकप्रायं कुलशतावरं. . . . . .अन्योन्यारक्षं निवेशयेत्। कौ0 अर्थ0 2/17/1 पृष्ठ 77
105. अपटशतग्राम्या मध्ये स्थानीयं. . . . .दशग्रामीसङ्ग्रहेण सङ्ग्रहणं स्थाययेत्। उपरोक्त
106. समाहर्ता चतुर्धा . . . . स्थानिकः चिन्तयेत्। कौ0अर्थ0 2/53–54/35 पृष्ठ 241–242
107. अष्टशतग्राम्या मध्ये स्थानीयं. . . . . सङ्ग्रहणं स्थापयेत्। कौ0 अर्थ0 2/17/1 पृष्ठ 77
108. अन्तेष्वन्तपालदुर्गाणि. . . . .चण्डालारण्यचर रक्षेयुः। कौ0 अर्थ0 2/17/1 पृष्ठ 77

हैं। एक तो इन जातियों के शारीरिक रूप से बलिष्ठ तथा चारित्रिक दृष्टि से निष्ठावान होने के कारण हमारे देश की सीमा–सुरक्षा और अधिक सुदृढ़ हो सकेगी, दूसरे सदियों–सहस्राब्दियों से वंचित इन आदिवासी एवं जंगली जातियों को राष्ट्र की मुख्य धारा से जुडने का एक स्वर्णिम अवसर प्राप्त हो सकेगा।

इसी तरह आचार्य कौटिल्य आगे लिखता है कि ऐसी ऊसर–बंजर जमीन जिसको किसान ने अपना खून–पसीना लगाकर खेती योग्य बनाया है, राजा को चाहिए कि ऐसी जमीन पर उस किसान को उसका पूर्ण स्वामित्व दे दे जिसे फिर वह कभी वापस न ले। तथा अन्न, बीज, बैल और धन आदि देकर वह उन किसानों की सहायता भी करता रहे।[109] आचार्य कौटिल्य की यह व्यवस्था आज भी बड़ी प्रासंगिक प्रतीत होती है। देश में जो हजारों लाखों एकड़ भूमि ऊसर–बंजर पड़ी है उसे उपरोक्त व्यवस्था के तहत सरलतापूर्वक कृषि योगय बनाया जा सकता है। प्रत्येक गाँव में कुछ भूमिहीन किन्तु कर्मठ एवं परिश्रमी किसान चिन्हित किए जायें जिनमें उस गाँव की ऊसर–बंजर पड़ी जमीन को कृषि योग्य बनाने की इच्छा शक्ति हो। उन्हें भूमि–सुधार के लिए शासन की ओर से कुछ साधन एवं सुविधाऐं प्रदान की जायें तथा यह आश्वासन दिया जाय कि यदि इस भूमि को खेती योग्य बना लिया गया तो फिर उस पर उन्हीं का स्थायी स्वामित्व होगा। इस व्यवस्था को एक राष्ट्रीय परियोजना का स्वरूप देकर तथा उस का निष्ठा एवं ईमानदारी से क्रियान्वयन करके कृषि क्षेत्र में बड़ी क्रान्ति लाई जा सकती है। 'जनपद निवेश' से ही सम्बद्ध 'भूमिच्छिद्रविधान[110] एवं 'कुप्याध्यक्ष'[111] नामक दो अध्यायों में आचार्य कौटिल्य ने 'जनपद' में पर्याप्त पेड़–पौधे एवं वन लगाने तथा पशुओं के लिए चारागाह आदि बनवाने के महत्वपूर्ण निर्देश दिए हैं। जो पर्यावरण संरक्षण एवं पशुपालन जैसे लघु उद्योगों के विकास की दृष्टि से आज भी पूरी तरह उपयोगी एवं प्रासंगिक हैं।

---

109. अकृषतामाच्छिद्यान्येभ्यः प्रयच्छेत्....... धान्यपशुहिरण्यैश्चैनाननुगृह्णीयात्। कौ० अर्थ० 2/17/1 पृष्ठ 78
110. कौ० अर्थ० 2/18/2 पृष्ठ 82 से 84 तक
111. कौ० अर्थ० 2/33/17 पृष्ठ 167 से 169 तक

लेकिन दूसरी ओर कौटिलीय अर्थशास्त्र के कुछ सन्दर्भ ऐसे भी हैं जो आधुनिक युग के लिए प्रासंगिक प्रतीत नहीं होते। उदाहरणार्थ 'जनपद निवेश' नामक अध्याय में ही वह लिखता है कि गाँवो में कोई भी नाट्यगृह, विहार तथा क्रीड़ा–शाला इत्यादि नहीं होना चाहिए। क्योंकि नट, नर्तक, गायक, वादक, भाण और कुशीलव आदि लोग गाँवो में अपना खेल दिखाकर कृषि आदि कार्यो में विघ्न उत्पन्न करते हैं। जबकि गाँवो में नाट्यशालाऐं आदि न होने से ग्रामवासी अपने–अपने कृषि कार्य में संलग्न रहते हैं जिससे कि राजकोष की अभिवृद्धि होती है और सारा देश धन–धान्य से समृद्ध होता है।[112] लेकिन खेल, कला एवं संगीत आदि हमारे सांस्कृतिक जीवन का अविभाज्य अंग होने के कारण आज किसी भी रूप में उनकी उपेक्षा संभव नहीं हैं। अपितु राष्ट्रीय स्तर से लेकर ग्रामीण स्तर तक उनके विकास हेतु चतुर्दिक प्रयास हो रहे हैं। क्योंकि इनके प्रदर्शन से कोई हानि नहीं अपितु अनेक लाभ होते हैं। यह एक अनुभवजन्य सत्य है कि जो ग्रामीण युवा खेलकूद, कला तथा संगीत आदि गतिविधियो में भाग नहीं लेते हैं वे अपने खाली समय में जुआ, मदिरापान एवं नशाखोरी जैसे दुर्व्यसनों के शिकार हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक मेधावी एवं प्रतिभावान युवकों के लिए खेलकूद, कला तथा संगीत आदि जीविकोपार्जन के साधन भी बन जाते हैं। इसलिए आचार्य कौटिल्य का उपरोक्त मत आधुनिक युग के लिए प्रासंगिक प्रतीत नहीं होता है।

इसी प्रकार 'जनपद निवेश' से सम्बद्ध 'भूमिच्छिद्रविधान' नामक अध्याय[113] में हाथियों को राजा की विजय का प्रधान साधन बताया गया है। तदनुसार हाथियों को पर्याप्त मात्रा में रखने तथा उनके संरक्षण एवं पालन पोषण हेतु निर्देशित किया गया है।[114] लेकिन परमाणु युद्ध तथा साइबर युद्ध वाले आधुनिक युग में हाथी और उनकी गजसेना असामयिक एवं अप्रासांगिक हो चुकी है। दूसरी ओर जनसंख्या दबाव के कारण आज की इस सिमतटती–सिकुडती धरती पर मानव के लिए गाय/बकरी जैसे लघुकाय पशुओं को रख

---

112. न तत्रारामा विहारार्थाः शालाः स्युः. . . . . धान्यरसवृद्धिर्भवतीति। कौ0 अर्थ0 2/17/1 पृष्ठ 81
113. कौ0 अर्थ0 2/18/2 पृष्ठ 82 से 84 तक
114. हस्तिप्रधानो हि विजयो राज्ञाम्. . . . हस्तिनः इति। कौ0 अर्थ0 2/18/2 पृष्ठ 83

पाना भी दुष्कर कार्य हो रहा है तो फिर हाथी जैसे भीमकाय पशुओं का पर्याप्त मात्रा में रखरखाव कैसे संभव हो सकता है।

(iv) दुर्ग :

कौटिलीय अर्थशास्त्र में राज्य की सात प्रकृतियो में 'दुर्ग' को वरीयताक्रम में चतुर्थ स्थान प्रदान किया गया है।[115] उसके 'दुर्ग विधान'[116] तथा 'दुर्गनिवेश'[117] नामक दो अध्याय इसी 'दुर्ग' नामक राज्य प्रकृति को लक्ष्य करके ही लिखे गए हैं। 'दुर्ग' से आचार्य कौटिल्य का तात्पर्य उन सुरक्षित स्थानो एवं व्यवस्थित नगरों से है जिनसे आपाकाल में राज्य की रक्षा करने में सहायता प्राप्त होती है। सर्वप्रथम 'दुर्गविधान' नामक अध्याय में दुर्ग निर्माण की विस्तृत कार्य योजना निर्देशित की गई है। कौटिल्य के अनुसार राजा को चाहिए कि वह जनपद सीमाओं की चारों दिशाओं में युद्धोचित प्राकृतिक दुर्गो का निर्माण करवाये।[118] मुख्य रूप से चार प्रकार के दुर्ग बनवाये जाने का उल्लेख किया गया है– (1) औदक दुर्ग (2) पार्वत दुर्ग (3) धान्वन दुर्ग (4) वन दुर्ग। चारों ओर पानी से घिरा हुआ, टापू के समान, तथा गहरे तालाबो से आवृत स्थल प्रदेश 'औदक दुर्ग' कहलाता है। बड़ी–बड़ी चट्टानों अथवा पर्वत कन्दराओं के बीच निर्मित दुर्ग 'पार्वतदुर्ग' है। जल तथा घास आदि से रहित अथवा सर्वथा ऊसर भूमि में निर्मित दुर्ग 'धान्वन दुर्ग' है। चारों ओर दलदल से घिरा हुआ अथवा काँटेदार सघन झाड़ियों से परिवृत दुर्ग 'वनदुर्ग' कहलाता है।[119] इनमें से प्रथक दो 'औदक दुर्ग' तथा 'पार्वत दुर्ग' आपातकाल में जनपद की रक्षा के उपयोग में लाये जाते हैं जबकि अन्तिम दो– 'धान्वनदुर्ग' तथा 'वनदुर्ग' वनवासियों एवं वनपालों की रक्षा के लिए उपयोगी होते हैं। अथवा आपातकाल में राजा भागकर इन दुर्गो में अपनी रक्षा भी कर सकता है।[120]

जनपद की सीमा सुरक्षा के लिए दुर्ग–निर्माण का प्राविधान करने के साथ ही आचार्य कौटिल्य ने जनपद की आन्तरिक सुरक्षा के उपायों का भी उल्लेख किया है। उनके

115. स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः। कौ0 अर्थ0 6/96/1 पृष्ठ 441
116. कौ0 अर्थ0 2/19/3 पृष्ठ 85 से 90 तक
117. कौ0 अर्थ0 2/19/3 पृष्ठ 91 से 94 तक
118. चतुर्दिशं जनपदान्ते साम्परायिकं दैवकृतं दुर्ग कारयेत्। कौ0 अर्थ0 2/19/3 पृष्ठ 85
119. अन्तर्द्वीपं स्थलं वा निम्नावरुद्धमौदकं. . . . . . खञ्जनोदकं स्तम्भगहनं वा वनदुर्गम। उपरोक्त
120. तेषां नदीपर्वतदुर्गं. . . . . आपद्यपसारो वा। उपरोक्त

अनुसार जनपद के बीच धनोत्पादन के मुख्य केन्द्र बडे–बडे स्थानीय नगरों का निर्माण कराया जाना चाहिए। वास्तुवेत्ता जिस प्रदेश को श्रेष्ठ बताऐं वहीं पर नगर बसाया जाना चाहिए। अथवा किसी नदी के संगम पर बडे बडे तालाबों के किनारों पर या कमलयुक्त जलाशयों के तट पर भी नगर बसाये जा सकते हैं। नगर का निर्माण भू–आकार के अनुसार गोल, लम्बा अथवा चौकोर जैसा भी उचित हो, किया जा सकता है। उसके चारों ओर नहरों के माध्यम से जलापूर्ति की व्यवस्था हो। दैनिक उपयोगी वस्तुओं का संग्रह एवं उनके विक्रय का प्रबन्ध हो। नगर में आने जाने के लिए स्थलमार्ग एवं जलमार्ग की सुविधा हो। नगर के चारो ओर एक–एक दण्ड (चार हाथ) की दूरी पर तीन खाइयाँ खुदवायी जायें जो क्रमशः चौदह, वारह और दस दण्ड चौडी हों। तथा वे अपनी चौडाई के चौथाई, तीसरे या आधे भाग तक गहरी हों। उनकी तलहटी बराबर चौरस एवं मजबूत पत्थरों से बंधी हो। उनकी दीवारें ईंटों तथा पत्थरों से मजबूत बनी हों। वे कहीं–कहीं इतनी कम गहरी हों कि आवश्यकता पडने पर उन्हें दूसरी नदियों के जल से भरा जा सके या उनसे जल निकासी की जा सके। उनमें कमल के फूल तथा मगर आदि जलचर जीव भी हों।[121]

'दुर्गविधान' नामक अध्याय में ही कौटिल्य ने जनपद के चारों ओर एक ऊँची तथा चौडी वप्र (प्राकार), उसके आगे अट्टालिकाऐं, दो अट्टालिकाओ के बीच एक प्रतोली (गृह विशेष), अट्टालिका और प्रतोली के बीच धनुर्धारी सन्तरियों को बैठने के लिए एक 'इन्द्रकोष' (सुरक्षा चौकी), प्राकार के समानान्तर एक देवपथ (गुप्त मार्ग या सुरंग), प्राकार पर चढ़ने–उतरने के लिए एक 'चार्या' (जीना), प्राकार के सर्वोच्च शिखर पर एक 'प्रधावितिका' (बाहर से छोडे गए वाण आदि से सुरक्षित रहने के लिए छिपने योग्य आड़) तथा 'प्रधावितिका' के पास ही एक 'निष्कुहद्वार' (बाहरी शत्रु में निशाना मारने के लिए बनाया गया छिद्र) बनाये जाने का प्राविधान किया है।[122] इस प्रकार कौटिलीय अर्थशास्त्र के उक्त प्राविधानों से आधुनिक युग के वास्तुशास्त्र अभियन्ताओं को हमारी राजधानी तथा राजभवन जैसे अति विशिष्ट स्थलों के सुरक्षात्मक निर्माण हेतु बहुमूल्य प्रेरणा एवं वैज्ञानिक दिशा निर्देश प्राप्त हो सकते हैं।

121. जनपदमध्ये समुदयस्थानं. . . . . सपरिवाहाः पद्मग्राहवतीः। कौ0 अर्थ0 2/19/3 पृष्ठ 85–86
122. चतुर्दण्डावकृष्टपरिखायाः. . . . . प्रधावितिकां निष्कुहद्वारं च। कौ0 अर्थ0 2/19/3 पृष्ठ 86–87

कौटिलीय अर्थशास्त्र के 'दुर्गनिवेश'[123] नामक अध्याय में नगरदुर्गो तथा नगर के प्रमुख स्थानों के निर्माण की सुविचारित कार्ययोजना प्रस्तुत की गई है। वास्तुवेत्ताओं के निर्देशानुसार जिस भूमि को नगर निर्माण के लिए चुना जाय उसमें पूरब से पश्चिम की ओर तथा उत्तर से दक्षिण की ओर जाने वाले तीन–तीन राजमार्ग हों। इन छः राजमार्गो में नगर निर्माण या गृह निर्माण हेतु भूमि का विभाजन करना चाहिए। चारों दिशाओं में कुल मिलाकर बारह द्वारा हों जिनमे जल, थल व गुप्त मार्ग बनाए गए हों।[124] उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि आचार्य कौटिल्य ने अपनी नगर निर्माण योजना में राजमार्गो को प्रमुखता प्रदान की है। हम देखते हैं कि आधुनिक युग में भी आवास–विकास संबंधी सभी परियोजनाओं में राजमार्गो को ही प्रमुखता दी जाती है। आम नागरिक अपना आवास बनाने के लिए सर्वप्रथम उसी भूखण्ड को वरीयता देता है जहाँ आवागमन हेतु पर्याप्त चौडा राजमार्ग हो। इस प्रकार आचार्य कौटिल्य द्वारा बड़ी दूरदर्शिता के साथ हजारों वर्ष पूर्व सुझाई गई नगर निर्माण योजना आज भी प्रासंगिक बनी हुई है, यह उनका एक उल्लेखनीय योगदान है। राजमार्गो एवं सड़कों को प्रमुखता देते हुए आचार्य कौटिल्य ने राजधानी नगर को केन्द्र मानकर वहाँ से प्रमुख महत्वपूर्ण स्थानों तक जाने वाली सडकों का विशेष प्राविधान किया है। उनके अनुसार नगर में चार दण्ड (24 फीट) चौडी गलियाँ होनी चाहिए। राजमार्ग, द्रोणमुख (चार सौ गाँवों का मुख्य केन्द्र), स्थानीय (आठ सौ गाँवों का मुख्य केन्द्र), चारागाह, संयानीय (व्यापारिक मण्डियाँ), सैनिक छावनियाँ, श्मशान तथा गाँवों की ओर जाने वाली सभी सडकों की चौडाई आठ दण्ड (48 फीट या 16 गज) होना चाहिए। जलाशयों तथा जंगलों की ओर जाने वाले मार्गो की चौडाई चार दण्ड; हाथियों के आवागमन और खेतों तक जाने वाले मार्ग की चौडाई दो दण्ड होना चाहिए। रथों, पशुओं, मनुष्यों तथा भेड–बकरी आदि छोटे पशुओं के लिए क्रमशः पाँच हाथ (ढाई गज), चार हाथ (दो गज), तथा दो हाथ (एक गज) चौड़ा मार्ग होना चाहिए।[125]

राजभवनों के निर्माण के संबंध में आचार्य कौटिल्य व्यवस्था देते हैं कि नगर के सुदृढ़ भू–भाग में राजभवन का निर्माण कराना चाहिए। इस संबंध में यह भी ध्यान में रखना

---

123. कौ0 अर्थ0 2/20/4 पृष्ठ 91 से 94 तक
124. त्रयः प्राचीना राजमार्गाः. . . . . .युक्तोदकमूमिच्छन्नपथः। कौ0 अर्थ0 2/20/4 पृष्ठ 91
125. चतुर्दण्डान्तरा रथ्याः. . . . . . . .द्वौ क्षुद्रपशुमनुष्यपथः। उपरोक्त

चाहिए कि वह भूमि समाज के चारों वर्णो– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, के जीवोकोपार्जन के लिए उपयोगी हो। राजभवन के मध्य से उत्तर की ओर नवें भाग में नियमानुसार अन्तःपुर का निर्माण कराया जाना चाहिए। जिसका द्वार पूरब या उत्तर की ओर हो। अन्तःपुर के पूर्वोत्तर भाग में आचार्य, पुरोहित, यज्ञशाला, जलाशय और मन्त्रियों के आवास बनवाना चाहिए। अन्तःपुर के पूर्व–दक्षिण भाग में पाकशाला, हस्तिशाला और भण्डारागार होना चाहिए। उसके आगे पूरब दिशा में इत्र, तेल, फूलमाला, अन्न, घी, तेल आदि की दूकानें तथा प्रधान कारीगरों एवं क्षत्रियों के आवास रहना चाहिए। दक्षिण–पूर्व में भण्डारागार, राजकीय पदार्थो के आय व्यय का स्थान और सोने चाँदी की दूकानें होना चाहिए। दक्षिण–पश्चिम में शस्त्रागार तथा सोने–चाँदी के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं के रखने का स्थान होना चाहिए। उसके आगे दक्षिण दिशा में नगराध्यक्ष, धान्याध्यक्ष, व्यापाराध्यक्ष, खदानों तथा कारखानों के निरीक्षक, सेनाध्यक्ष, भोजनालय, माँस–मदिरा की दूकानें, वैश्या, नट और वैश्य आदि के आवास होना चाहिए। पश्चिम–दक्षिण भाग में ऊँटो एवं गधों के गुप्तिस्थान (तबेले) तथा उनके व्यापार के लिए एक अस्थायी घर बनवाना चाहिए। पश्चिम–उत्तर की ओर रथ तथा पालकी आदि वाहन रखने के लिए स्थान बनवाना चाहिए। उसके आगे पश्चिम दिशा में ही ऊन, सूत, बाँस और चमड़े का कार्य करने वाले, शस्त्र और म्यान बनाने वाले तथा शूद्रो के आवास बनाना चाहिए। उत्तर पश्चिम में राजकीय पदार्थो के क्रय–विक्रय हेतु बाजार तथा औषधालय का निर्माण कराना चाहिए। उत्तर–पूर्व में कोषगृह तथा गाय, बैल, तथा घोडों के स्थान बनवाना चाहिए। उसके आगे उत्तर की ओर नगर–देवता, कुल देवता, लुहार, मनिहार और ब्राह्मणों के स्थान वनवाये जायें। नगर के ओर–छोर खाली पडी भूमि में धोबी, दर्जी, जुलाहे तथा विदेशी व्यापारियों को बसाया जाय।[126]

इसके अतिरिक्त कौटिलीय अर्थशास्त्र में नगर के मध्य में, कोष्ठागार में, प्रत्येक दिशा के मुख्य द्वार पर तथा नगर के बाहर विभिन्न देवी–देवताओं की स्थापना का प्राविधान

126. प्रवीरे वास्तुनि राजनिवेशः . . . . . .श्रेणीप्रवहणिकनिकाया। कौ0 अर्थ0 2/20/4 पृष्ठ 91–92

किया गया है।[127] उसके अनुसार नगर के उत्तर या पूरब में श्मशान होना चाहिए। लेकिन *छोटी जाति के लोगों का शमशान दक्षिण दिशा में होना चाहिए*। इस संबंध में कुछ कठोर प्राविधान करता हुआ कौटिल्य लिखता है कि जो भी इस नियम का उल्लंघन करे उसे प्रथम साहस दण्ड (48 से 96 पण तक का अर्थ दण्ड) दिया जाय।[128] लेकिन समता एवं समभाव की उच्च–अवधारणा के साथ आगे बढ़ रहे आधुनिक युग में आचार्य कौटिल्य का उपरोक्त मत प्रासंगिक प्रतीत नहीं होता है और न ही उसे वैधानिक अनुमोदन प्राप्त हो सकता है। लेकिन 'दुर्गनिवेश' नामक इसी अध्याय में आचार्य कौटिल्य एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्राविधान करता है, जो आधुनिक युग के लिए पूरी तरह प्रासंगिक एवं उपयोगी प्रतीत होता है। वह लिखता है कि दशकुलीबाट (बीस हलों से जोती जाने वाली कृषि भूमि) में सिंचाई के लिए एक कुआँ होना चाहिए।[129] यहाँ पर यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि उपरोक्त मानक के अनुसार यदि किसानों को सिंचाई सुविधा उपलब्ध करा दी जाय तो हमारा भारतीय कृषक देश में एक दूसरी हरित–क्रान्ति ला सकता है। क्योंकि हमारे कृषक–समुदाय की दयनीय दशा का मूल कारण है– सिंचाई संसाधनो का अभाव। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य के रूप में आचार्य कौटिल्य निर्देश देता है कि उन असामाजिक एवं अराक तत्वों को नगर में न बसने दिया जाये जिनसे राष्ट्र तथा नगर को किसी प्रकार की क्षति या शान्ति भङ्ग हो। यदि इनको बसाना ही हो तो किसी सीमा प्रान्त में बसाया जाय तथा उनसे राज्य कर वसूल किया जाय।[130] समाज में बढ रहे जघन्य अपराधों तथा राजनीति के अपराधीकरण से त्रस्त भारत को ही नहीं अपितु समूचे विश्व को आचार्य कौटिल्य की उपरोक्त युक्ति कुछ राहत प्रदान कर सकती है। यदि राज्य सरकारें आचार्य कौटिल्य के बताये मार्ग पर चलकर अपराधियों एवं असामाजिक तत्वों को दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ चिन्हित करके उन्हें नगर के बीच बसने की अनुमति नहीं दें, अपितु कतिपय सख्त कानूनी अनुबन्धों–प्रतिबन्धों के साथ नगर के बाहर

---

127. अपराजिताप्रतिहतजयन्त. . . . . यथादिशं .च दिग्देवताः। कौ0 अर्थ0 2/20/4 पृष्ठ 93
128. उत्तरः पूर्वो वा श्मशानवाटः. . . . . . तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः। कौ0 अर्थ0 2/20/4 पृष्ठ 93
129. दशकुलीवाटं कूपस्थानम। उपरोक्त
130. न च वाहिरिकान्कुर्यात्पुर. . . . . सर्वान्वादापयेत्करान्। कौ0 अर्थ0 2/20/4 पृष्ठ 94

वसने को विवश करें तथा उनकी गतिविधियों पर प्रशासन की पैनी नजर रहे तो अपराधीकरण की विकराल समस्या का बहुत कुछ समाधान संभव हो सकता है।

(v) कोश :

आचार्य कौटिल्य ने राज्य की सात प्रकृतियो में कोश को वरीयता क्रम में पाँचवा स्थान प्रदान किया है।[131] अच्छे कोश के लक्षणों को 'कोश सम्पत्' की संज्ञा देते हुए उन्होंने है कि जिसमें पूर्वजों की तथा स्वयं अपनी धर्म की कमाई संचित हो, जो धान्य, सुवर्ण, चाँदी, अनेक प्रकार के बहुमूल्य रत्नों तथा सिक्कों से भरापूरा हो, तथा जो दीर्घकालीन दुर्भिक्ष आदि आपदाओं में आय के अभाव को सहन करने में समर्थ हो उस कोश को 'कोशसम्पत्' कहते हैं।[132] आचार्य कौटिल्य के अनुसार– 'चूँकि सभी कार्य कोश पर ही निर्भर हैं, इसलिए राजा को सर्वप्रथम कोश पर ही ध्यान देना चाहिए।[133] कोश की समृद्धि से शक्तिशाली सेना तैयार की जा सकती है, तथा कोष और सेना के बल पर इस कोषगर्भा पृथिवी को प्राप्त किया जा सकता है।[134] सेना का मूल भी कोष ही है। कोश के अभाव में या तो सेना शत्रु के अधीन हो जाती है या वह अपने ही स्वामी का वध कर डालती है। सभी सामन्तों के साथ सेना राजा का भी विरोध करा सकती है; क्योंकि धन देकर सभी को वश में किया जा सकता है। कोश धर्म का भी मूल है।[135] कोश को सेना से भी अधिक महत्वपूर्ण मानता हुआ कौटिल्य कहता है कि सेना तो केवल कोश की रक्षा करती है लेकिन कोश से सेना और कोश दोनों की रक्षा हो जाती है।[136] कौटिलीय राज्य–व्यवस्था में कोश के आय–व्यय संबंधी प्रबन्धन के लिए समाहर्ता और सन्निधाता नामक दो प्रमुख अधिकारियों का प्रावधान था जिनके अधीनस्थ अनेक कर्मचारी तैनात रहते थे।[137]

कौटिलीय अर्थशास्त्र में कोश–वृद्धि हेतु दो प्रकार के आय–स्रोतों का प्राविधान करते हुए उन्हें क्रमशः 'आयशरीर'[138] एवं 'आयमुख'[139] की संज्ञा दी गई है। उसके अनुसार

131. स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः। कौ0 अर्थ0 6/96/1 पृष्ठ 441
132. धर्माधिगतः पूर्वैः स्वयं वा. . . . . सहेतेति कोशसम्पत्। कौ0 अर्थ0 6/96/1 पृष्ठ 443
133. कोषपूर्वाः सर्वारम्भाः। तस्मात् पूर्वं कोषमवेक्षेत्। कौ0 अर्थ0 2/24/8 पृष्ठ 109
134. आकरप्रभवः कोषः . . . . प्राप्यते कोषभूषणा। कौ0 अर्थ0 2/28/12 पृष्ठ 142
135. कोशमूलो हिं दण्डः. . . . . .कोशो धर्महेतुः। कौ0 अर्थ0 8/127/1 पृष्ठ 559
136. लम्भपालनो हि दण्डः कोशस्य। कोशः कोशस्य दण्डस्य च भवति। उपरोक्त
137. विस्तृत विवरण के लिए देखे– कौ0 अर्थ0 में 'सन्निधातृनिचयकर्म' तथा 'समाहर्तृसमुदयप्रस्थापनम्' नामक अध्याय।

'आयशरीर' के अन्तर्गत दुर्ग, राष्ट्र, खनि, सेतु, वन, ब्रज, और व्यापार मार्ग आय के प्रमुख स्रोत हैं। जिनसे समाहर्ता (कर संग्रह अधिकारी) को कर संग्रह करना चाहिए।[140] उक्त आय स्रोतों को आचार्य कौटिल्य ने निम्न प्रकार परिभाषित किया है–

(i) दुर्ग : शुल्क (चुङ्गी), दण्ड (जुर्माना), पौतव (तराजू–वाट), नगराध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष (पटवारी, अमीन, कानूनगो), मुद्राध्यक्ष, सुराध्यक्ष (आबकारी अधिकारी), सूनाध्यक्ष (फॉसी देने वाला), सूत्राध्यक्ष, तेल–घी आदि का विक्रेता, सुवर्णाध्यक्ष, दूकान, वैश्या, द्यूत, वास्तुक (शिल्पी), बढई, लुहार, सुनार, मन्दिरों के निरीक्षक, द्वारपाल और नटनर्तक आदि से लिया जाने वाला कर (शुल्क) 'दुर्ग' कहलाता है।[141]

(ii) राष्ट्र : सीता (खेती), भाग (धान्य का षष्ठांश), बलि (उपहार), कर (फल, वृक्ष आदि का टैक्स) वणिक (व्यापार कर) नदीपाल स्तर (नदी पार करने का टैक्स), नौका–कर, पट्टन (कस्बो की आय), विवीत (चरागाहों की आय), वर्तनी (मार्गकर), रज्जू (भूमि निरीक्षकों द्वारा प्राप्तव्य धन) तथा चोर रज्जू (चोरों को पकडने के लिए ग्रामीणों से प्राप्त धन) के रूप में लिया जाने वाला कर 'राष्ट्र' कहलाता है।[142]

(iii) खनि : सोना, चाँदी, हीरा, मणि, मोती, मूँगा, शंख, लोहा, लवण, भूमि, पत्थर और खनिज पदार्थो से मिलने वाला कर 'खनि' कहलाता है।[143]

(iv) सेतु : फूल, फल, केला, सुपारी, अन्न के खेत, अदरख और हल्दी के खेतों से प्राप्त होने वाली आय को 'सेतु' कहते है।[144]

(v) वन : हरिण आदि पशु, लकडी आदि द्रव्य तथा हाथियों के जंगल से प्राप्त होने वाली आय 'वन' कहलाती है।[145]

---

138. इत्यायशरीरम्। कौ0 अर्थ0 2/22/6 पृष्ठ 100
139. . . . . . . रूपिकमत्ययश्चायमुखम्। उपरोक्त
140. समाहर्ता दुर्गं राष्ट्रं खनिं सेतुं वनं व्रजं वणिक्पथं चावेक्षेत। कौ0 अर्थ0 2/22/6 पृष्ठ 99
141. शुल्कं दण्डः पौतवं. . . . . . .द्वारवाहिरिकादेयं च दुर्गम। उपरोक्त
142. सीता भागो बलिः . . . . .रज्जूश्चोररज्जूश्च राष्ट्रम्। उपरोक्त
143. सुवर्णरजतवज्रमणि. . . . . प्रस्तररसधातवः खनिः। उपरोक्त
144. पुष्पफलवाटषण्डकेदारमूलवापाः सेतुः। उपरोक्त पृष्ठ 100
145. पशुमृगद्रव्यहस्तिवनपरिग्रहो वनम्। कौ0 अर्थ0 2/22/6 पृष्ठ 100

(vi) ब्रज : गाय, भैंस, बकरी, भेड, गधा, ऊँट, घोडा और खच्चर आदि जानवरों से होने वाली आय 'ब्रज' कहलाती है।[146]

(vii) वणिक्पथः स्थलमार्ग और जलमार्ग, व्यापार के इन दो मार्गो से होने वाली आय को 'वणिक्पथ' कहते है।[147]

'आयमुख' नामक स्रोतों के अन्तर्गत मूल (अनाज, सागशब्जी आदि से होने वाली आय) भाग (पैदावार का षष्ठांश), व्याजी (कपटी व्यापारियों से दण्ड रूप में प्राप्त होने वाली आय), परिघ (लावारिस माल से होने वाली आय), क्लृप्त (नियत कर), रूपिक (नमक कर), अत्यय (जुर्माने का धन) आदि आय स्रोत निर्धारित किए गए है।[148] कोष का अधिकाधिक संग्रह करने हेतु आचार्य कौटिल्य ने तीन प्रकार के कर–संग्रह का परामर्श दिया है– कृषि[149], व्यापार कर[150], एवं पशुपालन कर।[151] कृषि कर के संबंध में आचार्य कौटिल्य का निर्देश है कि कृषि उपज का चौथा भाग, वनोपज तथा रूई, लाख, जूट, छाल, कपास, ऊन, रेशम, औषधि, गन्ध, पुष्प, फल, शाक, लकडी, वाँस, सूखा माँस आदि का छठवाँ भाग, हाथी दाँत और गाय आदि के चमड़े का आधा भाग कर के रूप में लेना चाहिए।[152] व्यापार कर के संबंध में उसका निर्देश है कि सोना, चाँदी, हीरा, मणि, मोती, मूँगा, घोड़े और हाथी इत्यादि व्यापारिक वस्तुओं पर उनकी लागत का पचासवाँ भाग; सूत, कपडा, ताँवा, पीतल, काँसा, गन्ध, जडी–बूटी, और मदिरा पर चालीसवाँ भाग; खाद्यान्न, घी, तेल, लोहा और वैलगाडियों पर तीसवाँ भाग; काँच के व्यापारियों तथा बडे–बडे कारीगरों पर बीसवाँ भाग; छोटे–छोटे कारीगरों तथा कुलटा स्त्रियों को अपने घर में रखने वालो से दसवाँ भाग; लकडी, वाँस, पत्थर, मिट्टी के वर्तन, पकवान, तथा हरी शाक आदि के व्यापारियों पर पाँचवा भाग कर के

---

146. गोमहिषमजाविकं खरोष्ट्रमश्वाश्वतराश्च व्रजः। उपरोक्त
147. स्थलपथो वारिपथश्च वणिक्पथः। उपरोक्त
148. मूलं भागो व्याजी परिघः क्लृप्तं रूपिकमत्ययश्चायमुखम्। उपरोक्त
149. इति कर्षकेषु प्रणयः। कौ0 अर्थ0 5/90/2 पृष्ठ 413
150. इति व्यवहारिषु प्रणयः। उपरोक्त पृष्ठ 414
151. इति योनिपोषकेषु प्रणयः। उपरोक्त
152. चतुर्थमंशं धान्यानां. . . . . . दन्ताजिनस्यार्धम्। उपरोक्त पृष्ठ 413

रूप में लेना चाहिए।[153] आचार्य कौटिल्य ने नट नर्तक, गायक तथा वैश्याओं को भी व्यापारियों की श्रेणी में रखते हुए उनसे अपनी आय का आधा भाग कर के रूप में देने का निर्देश दिया है।[154] पशुपालन कर के संबंध में आचार्य कौटिल्य का प्राविधान है कि मुर्गे और सुअर पालने वाले अपनी आय का आधा भाग; भेड–बकरी पालने वाले छठवाँ भाग; गाय, भैस, खच्चर, गधा तथा ऊँट पालने वाले दसवाँ भाग कर के रूप में दें।[155]

आचार्य कौटिल्य की उपरोक्त कर व्यवस्था आधुनिक युग के लिए प्रासंगिक नहीं मानी जा सकती। विशेष रूप से नट नर्तक, गायक तथा वेश्याओं को व्यापारियों की श्रेणी में रखते हुए उनसे जो आय का आधा भाग कर के रूप में देने का प्राविधान किया गया है वह वर्तमान में किसी भी रूप में तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता है।

किन्तु इसी सन्दर्भ में आचार्य कौटिल्य का यह निर्देश आज भी पूर्णतः प्रासंगिक एवं उपयोगी है कि 'देवताध्यक्ष (मन्दिरो के पुजारी/अधिकारी) दुर्ग तथा राष्ट्र के देवमन्दिरों की आय को एक स्थान पर जमा करके रखें। उसको फिर राजा को दे दें।[156] वर्तमान में उपरोक्त निर्देश का अनुपालन करके समाज कल्याण की दिशा में कुछ महत्वपूर्ण कदम आगे बढाये जा सकते हैं। हमारे देश की धर्म–प्राण जनता मन्दिरो में प्रतिदिन लाखो रूपये दान–दक्षिणा के रूप में चढाती है जिसे मन्दिरों के पण्डे–पुजारी ही हजम कर जाते हैं तथा उसका लेखा–जोखा लेने का समाज या राज्य किसी को कोई अधिकार नहीं है। लेकिन आचार्य कौटिल्य के निर्देशानुसार मन्दिरों की आय को यदि राजकोष में जमा किया जाय तथा उसे गरीबों, वृद्धों, विकलांगों, असहायों के कल्याण में व्यय किया जाय तो एक बहुत बडा राष्ट्रीय परमार्थ सिद्ध हो सकता है।

कौटिलीय अर्थशास्त्र में जनता की धार्मिक भावनाओं को उभाड़कर धन संग्रह करने के अनेक उपाय सुझाये गए हैं। जैसे– किसी स्थान में देवी–देवता के प्रकट होने की

---

153. सुवर्णरजतवज्रमणि. . . . . . . .पक्वान्न हरितपण्याः पञ्चकराः। उपरोक्त पृष्ठ 413–414
154. कुशीलवा रूपाजीवाश्च वेतनार्धं दद्युः। उपरोक्त पृष्ठ 414
155. कुक्कुटसूकरमर्धं दद्यात्. . . . . . .खरोष्ट्राश्च दशमागम्। उपरोक्त
156. देवताध्यक्षो. . . . . .तथैव चाहरेत्। कौ0 अर्थ0 5/90/2 पृष्ठ 415

अफवाह फैलाकर वहाँ एक वेदी बनवाकर तथा मेला लगवाकर उस पर खूब दान–दक्षिणा चढवायी जाय। बाद में उस धन को राजकोष में जमा करा दिया जाय।[157] इसी तरह गुप्तचरों के माध्यम से भी छल–प्रपञ्च द्वारा राजकोष बढाने के कुछ निर्देश दिए गए हैं। जैसे–व्यापारी के वेष में वैदेहक नामक गुप्तचर प्रचुर वस्तुओं और अनेक सहायकों को लेकर अपना व्यापार करना आरम्भ कर दे। लोगों के बीच जब उसकी अच्छी साख बन जाय और अमानत के रूप में लोग उसके पास जब काफी पूँजी और जेवरात इत्यादि जमा कर दें, तब वह अकस्मात् चोरी हो जाने का ढिंढोरा पीट कर सारा माल राजकोष में जमा करा दें।[158] लेकिन सञ्चार क्रान्ति के इस युग में इन उपायों का अनुपालन न तो प्रासंगिक माना जा सकता है और न ही अनुकरणीय।

उपरोक्त आयस्रोत निर्धारित करने के साथ ही आचार्य कौटिल्य ने व्यय की विभिन्न मदों को भी निर्धारित करते हुए उन्हें व्यय शरीर की संज्ञा दी है।[159] जिसके अन्तर्गत देवपूजा, पितृपूजा, दान, स्वस्तिवाचन आदि धार्मिक कार्य, अन्तःपुर, रसोईघर, दूतप्रेषण, कोष्ठागार, शस्त्रागार, पण्यग्रह, कुप्यग्रह का व्यय, कर्मान्त (कृषि, व्यापार) विष्टि (बेगारी का व्यय), पैदल, हाथी, घोड़ा तथा रथ आदि चारों प्रकार के सेना–संग्रह का व्यय, गाय, भैंस, बकरी आदि उपयोगी पशुओं का व्यय, हिरण, पक्षी तथा अन्य हिंसक, जंगली जानवरों की रक्षा संबंधी व्यय, लकडी, घास आदि के जंगलो की सुरक्षा हेतु किया जाने वाला व्यय आदि मदें निर्धारित की गई हैं।[160]

कौटिलीय अर्थशास्त्र में वित्तीय संकट आने पर कोष–वृद्धि हेतु कुछ अतिरिक्त संसाधन जुटाने का प्राविधान किया गया है।[161] कोष में कमी आने पर छोटे बडे ऐसे जनपदों से अन्न का तीसरा–चौथा हिस्सा राज्यकर के रूप में प्रजा की अनुमति से वसूल किया जाय,

157. दैवतचैत्यं सिद्धपुण्यस्थान. . . . . . .यात्रासमाजाम्यामाजीवेत्। उपरोक्त
158. वैदेहक व्यञ्जनो वा. . . . . .तदैनं रात्रौ मोषयेत्। कौ0 अर्थ0 5/90/2 पृष्ठ 416
159. . . . . . . .इति व्ययशरीरम्। कौ0 अर्थ0 2/22/6, पृष्ठ 100
160. देवपितृपूजादानार्थं . . . . . . .व्ययशरीरम्। उपरोक्त
161. कोशमकोशः प्रत्युत्पन्नार्थकृच्छ्रः संग्रहणीयात्। कौ0 अर्थ0 5/90/2 पृष्ठ 412

जहाँ का जीवन वर्षा पर निर्भर हो और जहाँ काफी अनाज पैदा हो। इसी प्रकार मध्यम या निम्न श्रेणी के जनपदों से भी अन्न संग्रह किया जाय।[162] किन्तु यह राज्यकर उन जनपदों से न लिया जाये जो दुर्ग, सेतु, कारखानों, व्यापारिक मार्गों, खाली मैदानों, खानों तथा लकड़ी एवं हाथी के जंगलों द्वारा राजा तथा प्रजा का उपकार करते हों, जो राज्य की सीमा पर बसे हों और जिनके पास अन्न आदि बहुत थोडा हो।[163] खेतिहर जनता से वित्तीय संकट में उनकी उपज का तीसरा–चौथा हिस्सा राज्य कर के रूप में बसूल किया जाना कौटिल्य–काल में भले ही न्यायसंगत रहा हो किन्तु आधुनिक युग में इसे प्रासंगिक नही माना जा सकता है। क्योंकि किसानों की वर्तमान दयनीय दशाा से आज सारा राष्ट्र चिन्तित है। गत दिनों आन्ध्र प्रदेश में किसानों द्वारा बडे पैमाने पर की गई आत्महत्याओं को स्मरण कर हम सभी आज भी सिहर उठते हैं।[164]

किन्तु दूसरी ओर आचार्य कौटिल्य का यह निर्देश आज भी पूरी तरह प्रासंगिक एवं उपयोगी है कि सरकार की ओर से नये वसने वाले किसानों को अन्न, बैल, पशु और धन इत्यादि सहायता के रूप में दिया जाय। उन किसानों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु राजा उनकी उपज का चौथा हिस्सा खरीद ले और फिर बीज तथा उनके गुजारे लायक छोडकर उनका बाकी अनाज भी खरीद ले।[165] कौटिल्य की उपरोक्त व्यवस्था का अनुसरण करके किसानो की वर्तमान दयनीय दशा में अभीष्ट सुधार लाया जा सकता है।

(vi) दण्ड :

कौटिलीय अर्थशास्त्र की राज्य प्रकृतियो में छठवी प्रकृति के रूप में 'दण्ड' को रखा गया है।[166] दण्ड से कौटिल्य का तात्पर्य सेना से है। उसके अनुसार आभ्यन्तर कोप एवं बाह्य कोप दोनों ~~[illegible]~~ के शमन हेतु राजा को सम्पूर्ण सैन्य–बल अपने ही हाथ में रखना चाहिए।[167] जिसके पास अच्छा सैन्यबल होता है उसके मित्र तो मित्र होते ही हैं, शत्रु भी मित्र

162. जनपदं महान्तमल्पप्रमाणं वा. . . . . .मध्यमवरं वा। कौ0 अर्थ0 5/90/2 पृष्ठ 412
163. दुर्गसेतुकर्मवणिक्पथ. . . . . वा न याचते। उपरोक्त
164. दीक्षित, ह्रदयनारायण: 'उपेक्षित कृषि और किसान' दैनिक जागरण, झाँसी दि. 2.12.05 में प्रकाशित लेख
165. धान्यपशुहिरण्यादि. . . . . . . हिरण्येन क्रीणीयात्। कौ0 अर्थ0 5/90/2, पृष्ठ 412
166. स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि पृकृतय:। कौ0 अर्थ0 6/96/1 पृष्ठ 441
167. राज्ञ: आभ्यन्तरो बाह्यो वा. . . . . . दण्डशक्तिमात्मसंस्थां कुर्वीत। कौ0 अर्थ0 8/128/2 पृष्ठ 562

बन जाते हैं।[168] आचार्य कौटिल्य ने अच्छी सेना के गुणों को 'दण्डसम्पत्' की संज्ञा देते हुए वंशानुगत, स्थायी एवं वश में रहने वाले, राजवृत्ति से सन्तुष्ट स्त्री–पुत्र वाले, युद्धोपयोगी सामग्री से युक्त, अपराजेय, दुःखों को सहन कर सकने वाले, सभी प्रकार की युद्धविद्याओं में पारंगत, राजा के लाभ–हानि में सहभागी तथा क्षत्रियों की अधिकता वाले सैनिकों से युक्त सेना को 'दण्डसम्पत्' कहा है।[169] आचार्य कौटिल्य से पूर्ववर्ती आचार्यो के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारो वर्णो की सेनाओ में तेज की अतिशयता को ध्यान में रखते हुए परवर्ती सेना की अपेक्षा पूर्ववर्ती सेना अधिक श्रेष्ठ है। अर्थात शूद्र सेना से श्रेष्ठ वैश्य सेना, वैश्य सेना से श्रेष्ठ क्षत्रिय सेना तथा क्षत्रिय सेना से श्रेष्ठ ब्राह्मण सेना मानी गई है।[170]

लेकिन आचार्य कौटिल्य अपने पूर्वाचार्यो के उपरोक्त मत से असहमति व्यक्त करते हुए कहते हैं कि ब्राह्मण सेना को सर्वश्रेष्ठ सेना नहीं माना जा सकता है। चूंकि शत्रुपक्ष ब्राह्मण सेना के समक्ष नमस्कार करके या सिर झुका करके उसको अपने वश में कर लेता है, इसलिये युद्ध विद्या में निपुण क्षत्रिय सेना को ही सर्वश्रेष्ठ सेना समझना चाहिए।[171] इतना ही नहीं, आचार्य कौटिल्य का तो यहाँ तक कहना है कि यदि वैश्य सेना और शूद्र सेना में वीर पुरुषों की अधिकता हो तो फिर वैश्य सेना एवं शूद्र सेना को भी श्रेष्ठ मानना चाहिए।[172] इस प्रकार आचार्य कौटिल्य ने उस प्राचीन परम्परा का खण्डन करके एक महान कार्य किया है जिसमें वैश्यों और शूद्रों के परम्परागत कार्य क्रमशः व्यापार एवं द्विजसेवा निर्धारित करके उन्हें सेना में भर्ती योग्य नहीं समझा गया था। जबकि यह एक राष्ट्रीय दुर्बलता थी। विदेशी आक्रमणकारियों के समक्ष भारतीय नरेशों की पराजय के मुख्य कारणो में एक कारण यही राष्ट्रीय दुर्बलता रही है। विभिन्न समीक्षकों एवं इतिहासकारों ने अपना यह तर्कसंगत निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि प्राचीन भारतीय वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत चार वर्णो में से केवल एक वर्ण–

---

168. दण्डवतो मित्रं मित्रभावे तिष्ठत्यमित्रो वा मित्रभावे। कौ० अर्थ० 8/127/1 पृष्ठ 560
169. पितृपैतामहो नित्यो. . . . . क्षत्रप्राय इति दण्डसम्पत्। कौ० अर्थ० 6/96/1 पृष्ठ 443
170. ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रसैन्यानां. . . . . . . इत्याचार्याः। कौ० अर्थ० 9/137–39/2 पृष्ठ 600
171. प्रणिपातेन ब्राह्मणबलं. . . . . . . क्षत्रियबलं श्रेयः। उपरोक्त
172. बहुलसारं वा वैश्यशूद्रबलमिति। उपरोक्त

'क्षत्रिय' को ही सेना के उपयुक्त समझा गया है। इस कारण समाज के शेष तीन वर्ण राष्ट्रीय सैन्यशक्ति के प्रति सदैव तटस्थ एवं उदासीन रहे। इस प्रकार राष्ट्र–रक्षा का गुरुतर दायित्व केवल चौथाई जनता के हाथो में रहा तथा तीन चौथाई जनता इस राष्ट्रीय दायित्व से अलग रही। जिसके पराजयोन्मुखी परिणाम भारतीय इतिहास के दुःखद अध्याय बने।[173]

कौटिलीय अर्थशास्त्र में जिस चतुरंगिणी सेना– गज, अश्व, रथ, तथा पैदल सेना[174] का उल्लेख हुआ है उसमें से तीन प्रकार की सेना– गज सेना, अश्व सेना, तथा रथ सेना, तो इस परमाणु अस्त्र–युग में अप्रासंगिक हो चली है। पैदल सेना की प्रासंगिकता अवश्य ही कभी समाप्त नहीं हो सकती। आचार्य कौटिल्य ने जल सेना का उल्लेख किया है जो सम्भवतः नावध्यक्ष[175] के नेतृत्व में कार्य करती थी। चोर, डाकुओं की नौकाओं, शत्रु देश की ओर जाने वाली नौकाओं तथा व्यापार नियमों का उल्लंघन करने वाली नौकाओं को नष्ट करने का दायित्व जलसेना का ही था।[176] सेना, सेन्य सामग्री और गुप्तचरों को पार उतारना भी जलसेना का ही कार्य था।[177] जलसेना की बड़ी नौकाओं को ठहरने के लिए नियत बन्दरगाह होने चाहिए और उन पर पूरी निगरानी रखी जानी चाहिए जिससे किसी शत्रु राजा के गुप्तचर उनमें प्रवेश न कर सकें।[178] इस सब के बावजूद कौटिलीय अर्थशास्त्र में कहीं भी युद्ध में जलसेना के प्रयोग का उल्लेख नहीं मिलता है। इससे इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि कौटिल्य काल में जलसेना का अस्तित्व अवश्य था किन्तु उसका प्रयोग सीधा युद्ध में न करके युद्धोपयोगी सामग्री पहुँचाने तथा अन्य सुरक्षात्मक कार्यो के निमित्त किया जाता होगा।[179]

कौटिलीय अर्थशास्त्र के एक अन्य सन्दर्भ में सात प्रकार की सेनाओं का उल्लेख मिलता है– मौलबल (राजधानी की रक्षा करने वाली सेना), भृतक बल (वैतनिक सेना),

173. C. V. Vaidya, History of Medieval Hindu India, Vol. III, P. 352
174. वर्मिणो वा हस्तिनोऽश्वा वा. . . . .चतुरङ्गबलस्य प्रतिबलम। कौ0 अर्थ0 9/137–139/2 पृष्ठ 601
175. विस्तार के लिए देखे–कौ0 अर्थ0 का 'नावध्यक्षः' नामक अध्याय 2/44/28 पृष्ठ 212–215
176. हिंस्रिका निर्घातयेद, अमित्रविषयातिगाः पण्यपत्तनचारित्रोपघातिकाश्च। कौ0अर्थ0 2/44/28 पृष्ठ 213
177. सेनामाण्डप्रचारप्रयोगाणां च। उपरोक्त
178. बद्धतीर्थाश्चैताः कार्याः राजद्विष्टकारिणां तरणभयात्। उपरोक्त
179. मिश्र, डा0 भुवनेश्वरीदत्त, कौटिलीय राजनीति,पृष्ठ 84

श्रेणीबल (विभिन्न कार्यों में नियुक्त शस्त्रास्त्र में निपुण सेना) मित्रबल (मित्र राजा की सेना), अमित्रबल (शत्रु राजा की सेना), अटवीवल (आटविक सेना)[180] तथा औत्साहिक बल।[181] उक्त सात प्रकार की सेना में क्रमानुसार पहले वाली सेनाऐं बाद वाली सेना से श्रेष्ठ होती हैं।[182] सेना में एक अनुरक्षण एवं अभियांत्रिकी विभाग (Maintenance & Engineering Deptt.) भी था जिसे 'विष्टि' कहा गया है। सैन्य–शिविर बनाना, सैनिक मार्ग, नदी–पुल, बाँध, कुएँ, घाट आदि तैयार कराना, घास आदि उखाड़कर मैदान साफ करना, युद्ध की मशीनें, अस्त्र–शस्त्र, कवच आदि युद्धोपयोगी सामान पहुंचाना, हाथी–घोडों के लिए घास ढोना, उनकी रक्षा का प्रबन्ध करना, युद्ध भूमि में कवच तथा हथियार आदि ले जाना, घायल सैनिकों को दूसरी जगह ले जाना आदि कार्य 'विष्टिकर्म' कहलाते हैं।[183] सेना में एक स्वास्थ्य–चिकित्सा विभाग (Medical Deptt.) भी था जिसमें सैनिकों के स्वास्थ्य संरक्षण हेतु चिकित्सक, चीड़फाड़ करने वाले औजार, चिमटी, दवा, घी, तेल, मरहम–पट्टी से युक्त सह चिकित्सक, खाद्य सामग्री की रक्षा करने वाली तथा सैनिको को प्रसन्न करने वाली स्त्रियाँ (नर्स) रहती थीं, जिन्हें सेना के पिछले भाग में रखा जाता था।[184]

विभिन्न प्रकार की सेनाओं के प्रबन्धन की आचार्य कौटिल्य ने समुचित व्यवस्था की है। पैदल, रथ, अश्व, गज तथा जलसेना के कुशल प्रबन्धन हेतु उन्होने क्रमशः पत्यध्यक्ष[185], रथाध्यक्ष,[186] अश्वाध्यक्ष[187] हस्त्यध्यक्ष[188] तथा नावध्यक्ष[189] पद निर्धारित करते हुए उनका स्पष्ट कार्य विभाजन किया है। इन विभिन्न सेनाओं के अध्यक्षों के ऊपर एक सेनापति होता था जो सभी प्रकार के युद्धों और अस्त्र–शस्त्र चलाने में निपुण; आन्वीक्षकी आदि विद्याओं

---

180. मौलभृतकश्रेणीमित्रामित्राटवीबलानां समुद्दानकालाः। कौ0 अर्थ0 9/137–139/2 पृष्ठ 595
181. सैन्यमनेकमनेकजातीयस्थम्. . . . . . . तदौत्साहिकम्। उपरोक्त पृष्ठ 598
182. पूर्वं पूर्वं चैषां श्रेयः सन्नाहयितुम। उपरोक्त पृष्ठ 599
183. शिविरमार्गसेतुकूप. . . . . . . .विष्टिकर्माणि। कौ0 अर्थ0 10/153–154/4 पृष्ठ 654
184. चिकित्सकाः शस्त्रयन्त्र. . . . . . . पृष्ठतस्तिष्ठेयुः। कौ0 अर्थ0 10/150–152/3 पृष्ठ 649
185. एतेन पत्यध्यक्षो व्याख्यातः . . . . आयोगमयागं च कर्मसु। कौ0 अर्थ0 2/49–50/33 पृष्ठ 237
186. रथाध्यक्षो व्याख्यातः . . . . .रक्षानुष्ठानमर्थमानकर्म च। उपरोक्त पृष्ठ 236–237
187. देखें–कौटि0 अर्थ0 का 'अश्वाध्यक्षः' नामक अध्याय। 2/46/30 पृष्ठ 222–228
188. देखें–कौटि0 अर्थ0 का 'हस्त्यध्यक्षः' नामक अध्याय। 2/47/31 पृष्ठ 229–231
189. देखें–कौटि0 अर्थ0 का 'नावध्यक्षः' नामक अध्याय। 2/44/28 पृष्ठ 212–215

में पारंगत हाथी, घोड़े और रथ चलाने में निपुण, चतुरंगिणी सेना के कार्य तथा स्थान का ज्ञाता होना चाहिए।[190] उसमें अपनी भूमि, युद्धकाल, शत्रुसेना, शत्रुव्यूह–भेदन, विखरी हुई सेना को समेटना, विखरी हुई शत्रु सेना का मर्दन करना, दुर्ग तोडना, तथा उचित समय पर युद्ध के लिए प्रस्थान करना आदि को समझने–करने की पूरी क्षमता होना चाहिए।[191]

(vii) मित्र :

कौटिलीय अर्थशास्त्र में राज्य की सप्त प्रकृतियों में 'मित्र' को सातवाँ और अन्तिम स्थान प्रदान किया गया है।[192] आचार्य कौटिल्य ने अच्छे मित्र के गुणों को 'मित्रसम्पत्' की संज्ञा देते हुए वंशपरम्परागत, स्थायी, नित्यवश में रहने वाले, कभी विरोध न करने वाले, तथा छोटे–बड़े सभी कार्यो को सम्पन्न कराने में सहायक मित्रो को 'मित्रसम्पत्' कहा है।[193] मित्र भेद की चर्चा प्रारंभ करते हुए आचार्य कौटिल्य ने लिखा है कि 'विजिगीषु राजा के चारों ओर के राजा अरिप्रकृति तथा उन अरिप्रकृति राजाओं की सीमाओं से लगे हुए राजा मित्रप्रकृति कहलाते हैं।[194] मित्र राजा भी तीन प्रकार के होते हैं– (1) विजिगीषु राजा के राज्य से लगे हुए एक राज्य को छोड़कर उसके बाद वाले राज्य का राजा 'स्वाभाविक मित्र', (2) माता–पिता के सम्बन्ध पर आधारित ममेरे/फुफेरे भाई के रूप में स्थित राजा 'सहज मित्र' तथा (3) धन और आजीविका हेतु विजिगीषु राजा का आश्रय लेने वाला राजा 'कृत्रिम मित्र' कहलाता है।[195]

इसके अतिरिक्त गुणभेद के आधार पर आचार्य कौटिल्य ने मित्र के छैः भेद किए है– (i) नित्य (ii) वश्य (iii) लघुत्थान (iv) पितृ पैतामह (v) महत् (vi) अद्वैध्य।[196] निस्वार्थ भाव से पुराने संबंधों के कारण स्नेहवश विजिगीषु राजा जिसकी रक्षा करता है और जो विजिगीषु राजा की रक्षा करता है वह 'नित्य मित्र' कहलाता है।[197] वश्य मित्र तीन प्रकार का होता है–

---

190. तदेव सेनापतिः....... बलस्यानुष्ठानाधिष्ठानं विधात्। कौ0 अर्थ0 2/49–50/33 पृष्ठ 237
191. स्वमूमिं युद्धकालं...... यात्राकालं च पश्येत्। उपरोक्त।
192. स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः। कौ0 अर्थ0 6/96/1 पृष्ठ 441
193. पितृपैतामहं नित्यं वश्यमद्वैध्यं महल्लघुसमुत्थमिति मित्रसम्पत्। उपरोक्त पृष्ठ 443
194. तस्य समन्ततो....... मित्रप्रकृतिः। कौ0 अर्थ0 6/97/2 पृष्ठ 446
195. भूम्येकान्तरं प्रकृतिमित्रं....... कृत्रिमिति। उपरोक्त पृष्ठ 447
196. नित्यं वश्यं लघुत्थानं........ मित्रं षडगुणमुच्यते। कौ0 अर्थ0 7/115/9 पृष्ठ 496
197. ऋते यदर्थं प्रणयाद्रक्ष्यते...... नित्यमुच्यते। उपरोक्त

(i) सर्वभोग वश्यमित्र (ii) चित्रभोग वश्यमित्र (iii) महाभोग वश्यमित्र। 'सर्वभोग वश्यमित्र' वह है जो सेना, धन, भूमि आदि सभी तरह से विजिगीषु राजा की सहायता करता है। 'चित्रभोग वश्यमित्र' वह है जो रत्न, ताँबा तथा जंगल की लकडी आदि से विजिगीषु राजा की सहायता करता है। जबकि 'महाभोग वश्यमित्र' उसे कहते हैं जो केवल सेना एवं धन से विजिगीषु का उपकार करता है।[198] अनर्थ निवारण की दृष्टि से आचार्य कौटिल्य ने 'वश्यमित्र' के तीन भेद और किए हैं–

(i) एकतोभोगी वश्यमित्र : जो केवल शत्रु का प्रतीकार करे।

(ii) उभयतोभोगी वश्यमित्र : जो शत्रु, तथा शत्रुमित्र दोनों का प्रतीकार करे।

(iii) सर्वतोभोगी वश्यमित्र : जो शत्रु, शत्रुमित्र तथा आटविक आदि सभी का प्रतीकार करे।[199]

इस प्रकार आचार्य कौटिल्य के द्वारा वश्यमित्र के कुल छः भेद निर्दिष्ट किए गए हैं।

कौटिलीय अर्थशास्त्र में मित्रों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हुए इस बिन्दु पर सम्यक् विचार किया गया है कि विभिन्न मित्रो में कौन सा मित्र श्रेष्ठ है। सर्वप्रथम नित्यमित्र और अनित्यमित्र के संबंध में जिज्ञासा व्यक्त की गई है कि वश में न रहने वाले नित्यमित्र और वश में रहने वाले अनित्यमित्र में कौन श्रेष्ठ है। इस संबंध में कुछ पूर्ववर्ती अचार्यो का मत है कि वशीभूत अनित्यमित्र की अपेक्षा वश में न रहने वाला नित्यमित्र श्रेष्ठ होता है। क्योंकि यदि वह उपकार नहीं करता है तो अपकार भी कभी नहीं करता है।[200] लेकिन इससे भिन्न मत व्यक्त करते हुए आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि वशीभूत अनित्यमित्र ही श्रेष्ठ है। क्योंकि वह जब तक उपकार करता है तभी तक मित्र कहलाता है। मित्र का लक्षण तो उपकार करना ही होता है।[201]

---

198. सर्वचित्रमहाभोगं त्रिविधं वश्यमुच्यते। कौ0 अर्थ0 7/115/9 पृष्ठ 496
199. एकतोभोग्यमुभयतः सर्वतोभोगि चापरम्। उपरोक्त पृष्ठ 497
200. मित्रकृच्छ्रेऽपि. . . . . . . .इत्याचार्याः। उपरोक्त पृष्ठ 493
201. नेति कौटिल्य. . . . . . उपकारलक्षणं मित्रमिति। उपरोक्त पृष्ठ 494

तदनन्तर इस बिन्दु पर विचार किया गया है कि 'अपने वश में रहने वाले दो मित्रों में से थोडे समय के लिए अधिक कर देने वाला मित्र अच्छा है या हमेशा थोडा–थोडा कर देने वाला मित्र अच्छा है। इस विषय में पूर्वाचार्यो का मत है कि थोडे दिन तक अधिक कर देने वाला मित्र श्रेष्ठ है। क्योंकि वह थोडे ही समय में बहुत अधिक धनादि देकर विजिगीषु का महान उपकार कर देता है तथा अपनी सहायता से राजकीय व्यय–छिद्रों का भी प्रतीकार कर देता है।[202] किन्तु आचार्य कौटिल्य इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका मत है कि सदा के लिए थोडा–थोडा कर देने वाला मित्र श्रेष्ठ है। क्योंकि एक साथ अधिक कर देने के भय से मित्रता भी टूट जाती है और फिर वह अपने दिए गए धन को वापस लेने के लिए भी प्रयत्न करने लगता है। जबकि हमेशा के लिए थोडा थोडा कर देने वाला मित्र विजिगीषु राजा का बडा उपकार करता है।[203]

इसके बाद आचार्य कौटिल्य ने इस विषय पर विचार किया है कि 'बडी कठिनाई और बडा यत्न करने पर शत्रु से युद्ध करने के लिए तैयार होने वाला सबल मित्र श्रेष्ठ है या सरलता से शीघ्र ही तैयार हो जाने वाला निर्बल मित्र श्रेष्ठ है। इस विषय पर पूर्वाचार्यो का मत है कि कठिनता से तैयार होने वाला सबल मित्र अच्छा है। क्योंकि एक तो वह शत्रुओं का दमन कर सकेगा और दूसरे वह कार्य को भी पूरा कर सकेगा।[204] किन्तु आचार्य कौटिल्य इस मत से असहमति प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि सरलता से शीघ्र तैयार हो जाने वाला निर्बल मित्र ही श्रेष्ठ है। क्योंकि ऐसा मित्र हरेक आवश्यकता पर काम आता है और इच्छानुसार उसको किसी भी काम में लगाया जा सकता है। इसके विपरीत ये सभी बाते दूसरे मित्र मे नहीं होती, विशेष रूप से जब वह दूर देश में रहता है।[205]

अनेक स्थानों में विखरी हुई वश्य सेना वाला मित्र–राजा श्रेष्ठ है या वश में न रहने वाली किन्तु समीपस्थ सेना वाला मित्र–राजा श्रेष्ठ है ? इस बिन्दु पर पूर्वाचार्यो का मत

202. वश्ययोरपि महाभोगम. . . . . इत्याचार्याः। कौ0 अर्थ0 7/115/9 पृष्ठ 494
203. नेति कौटिल्यः . . . . .महदुपकरोति। उपरोक्त।
204. गुरुसमुत्थं महन्मित्रं. . . . . इत्याचार्याः। उपरोक्त।
205. नेति कौटिल्यः. . . . . .नेतरत् प्रकृष्टभौमम। उपरोक्त।

है कि विखरी हुई वश्य सेना वाला मित्र–राजा श्रेष्ठ है। क्योंकि विखरी हुई सेना शीघ्र ही एकत्र की जा सकती है।[206] किन्तु आचार्य कौटिल्य को यह मत स्वीकार्य नहीं है। उनके मतानुसार वश में न रहने वाली किन्तु समीपस्थ सेना वाला मित्र–राजा ही श्रेष्ठ है। क्योंकि साम, दाम आदि उपायों के द्वारा उस 'अवश्य सेना' को अपने वश में किया जा सकता है और शीघ्र ही उसको इच्छित कार्यो में लगाया जा सकता है। जबकि इधर–उधर विखरी हुई सेना को तत्काल एकत्र कर अपने कार्यो में नहीं लगाया जा सकता है।[207]

सैनिक पुरूषों की सहायता देने वाला मित्र श्रेष्ठ है या सुवर्ण–सहायता देने वाला? इस विषय पर पूर्वाचार्यो ने आदमियों की सहायता देने वाले मित्र को ही श्रेष्ठ माना है। क्योंकि उसके पास मानव शक्ति होती है; इस कारण वह शक्तिशाली होता है। जब भी वह किसी कार्य को करने के लिए तैयार होता है तो वह उस कार्य को पूरा भी कर डालता है।[208] किन्तु आचार्य कौटिल्य की इस मत पर सहमति नहीं है। उनके अनुसार सुवर्ण आदि की सहायता देने वाला मित्र ही श्रेष्ठ है। क्योंकि सुवर्ण–धन की आवश्यकता तो आए दिन बनी रहती है, जबकि सेना की आवश्यकता कभी–कभी ही होती है। और फिर धन के द्वारा सेना–संग्रह तथा अन्य अभीष्ट कार्य भी पूर्ण किए जा सकते है।[209] सुवर्ण देने वाला मित्र श्रेष्ठ है या भूमि देने वाला ? इस पर पूर्वाचार्यों का मत है कि सुवर्ण देने वाला मित्र ही श्रेष्ठ है। क्योंकि धन को जहाँ चाहें वहाँ इच्छानुसार लगाया जा सकता है और उससे हर तरह की व्ययपूर्ति की जा सकती है।[210] किन्तु इसके विपरीत आचार्य कौटिल्य का मत है कि भूमि देने वाला मित्र ही श्रेष्ठ है। क्योंकि भूमि से मित्र और सुवर्ण दोनों प्राप्त किये जा सकते हैं।[211] इसी प्रकार आचार्य कौटिल्य का मत है कि यदि कोई दो मित्र समान रूप से सैनिक–पुरूषों की सहायता देने वाले हो तो उनमें वही मित्र श्रेष्ठ है जो पराक्रमी, कष्ट सहन करने वाली,

---

206. विक्षिप्तसैन्यम. . . . . इत्याचार्याः। उपरोक्त पृष्ठ 495
207. नेति कौटिल्यः। अवश्यसैन्यं श्रेयः. . . . . प्रतिसंहर्तुम। कौ0 अर्थ0 7/115//9 पृष्ठ 495
208. पुरुषभोगं हिरण्यभोगं वा. . . . . इत्याचार्याः। उपरोक्त।
209. नेति कौटिल्यः। हिरण्यभोगं मित्रं श्रेयः. . . . . प्राप्यन्त इति। उपरोक्त।
210. हिरण्यभोगं भूमिभोगं वा. . . . . .इत्याचार्याः। उपरोक्त पृष्ठ 496
211. नेति कौटिल्यः।. . . . . .भूमिभोगं मित्रं श्रेय इति। उपरोक्त।

अनुरागी और मौलभृत आदि सभी प्रकार की सेनाओं से सहायता करने वाला हो।[212] यदि कोई दो मित्र समानरूप से सुवर्ण आदि की सहायता देने वाले हों तो उनमें वही मित्र श्रेष्ठ है जो थोडा ही कहने पर बहुत धन दे और निरन्तर देता रहे।[213] कौटिलीय अर्थशास्त्र में सहायता के समय उदासीन हो जाने वाले मित्रों के प्रति आगाह करते हुए कहा गया है कि दूरस्थ, सन्तुष्ट, बलवान, आलस्य और व्यसनों के कारण तिरस्कृत हुए मित्र उपकार करने के समय उदासीन हो जाया करते हैं।[214] बिना किसी प्रयोजन और कारण के मित्रता स्थापित करने वाले और मित्रता समाप्त करने वाले मित्र के प्रति सचेत करता हुआ आचार्य कौटिल्य कहता है कि 'अकारण गत और अकारण आगत मित्र को जो प्रश्रय देता है, वह निश्चय ही अपनी मौत को आमंत्रण देता है।[215]

(ग) राज्य के उद्देश्य :

भारत के प्राचीनतम वैदिक वाङ्मय में राज्य के उद्देश्यों पर स्वतन्त्र रूप से विचार नहीं किया गया है। परन्तु उसमें उपलब्ध स्फुट सन्दर्भो से ज्ञात होता है कि समाज में शान्ति, सुरक्षा, सुव्यवस्था एवं न्याय स्थापित करना ही राज्य के मुख्य उद्देश्य थे। इस संबंध में विद्वानो का यह निष्कर्ष तथ्याधारित प्रतीत होता है कि वैदिक काल से लेकर 600 ई. पूर्व तक प्रजा का सर्वांगीण कल्याण ही राज्य का मुख्य लक्ष्य समझा जाता था।[216] किन्तु जब राज्यशास्त्र पर स्वतंत्र ग्रन्थ--प्रणयन का कार्य प्रारंभ हो गया तो राज्य का लक्ष्य--धर्म, अर्थ और काम का संयमित तथा सन्तुलित सेवन एवं संबर्द्धन निर्धारित किया गया। कौटिलीय अर्थशास्त्र में तद्विषयक स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध हैं। उसमें राज्य के उद्देश्य के रूप में राजा को धर्म, अर्थ और काम-- इस त्रिवर्ग का सन्तुलित उपभोग करने हेतु निर्दिष्ट किया गया है।[217] कौटिल्य का स्पष्ट मत है कि धर्म, अर्थ और काम में से यदि एक का भी अधिक सेवन किया गया तो वह अतिसेवित लक्ष्य तो नष्ट होता ही है, उसके साथ शेष दो लक्ष्य भी नष्ट हो जाते हैं।[218]

---

212. तुल्ये पुरुषभोग. . . . . .मित्रकुलाद्विशेषः। उपरोक्त।
213. तुल्ये हिरण्यभोगे. . . . . सातत्यं च विशेषः। उपरोक्त।
214. प्रकृष्टभौमं सन्तुष्टं . . . . .भवत्येतद्वयसनाद्वमानितम्। उपरोक्त पृष्ठ 498
215. कारणाकरणध्वस्तं. . . . . मृत्युमुपगूहति। उपरोक्त
216. प्रो0 अनन्त सदाशिव अलतेकर; प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृष्ठ 35
217. समं वा त्रिवर्गमन्योन्यानुबन्धम्। कौ0 अर्थ0 1/3/6, पृष्ठ 18
218. एको ह्यत्यासेवितो धर्मार्थकामानामात्मानमितरौ च पीडयति। उपरोक्त

उपरोक्त 'त्रिवर्ग' के अन्तर्गत प्रत्येक अंग को कौटिल्य ने पृथक–पृथक रूप में परिभाषित किया है। 'धर्म' का अर्थ है– अहिंसा (मन, वचन और कर्म से किसी को भी पीडा न पहुँचाना), सत्य, शुचिता, अनसूया (किसी से ईर्ष्या द्वेष न रखना), दयालुता और क्षमाशीलता आदि गुणों से युक्त होना।[219] 'अर्थ' का तात्पर्य है– कृषि, पशुपालन, एवं उद्योग–व्यापार के क्षेत्र में सम्पन्नता प्राप्त करना।[220] 'काम' का अर्थ है– 'धर्म और 'अर्थ' को क्षति पहुँचाये बिना सभी प्रकार के जीवन–सुखों का उपभोग करना।[221] उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि धर्म, अर्थ और काम के संतुलित संबर्द्धन के माध्यम से मानव मात्र के धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक एवं भौतिक विकास सहित उसका सर्वांगीण विकास करना ही राज्य का मुख्य उद्देश्य था। उपरोक्त मुख्य उद्देश्य की सम्पूर्ति के साथ 'प्राणीमात्र का कल्याण' जैसे गौण लक्ष्य की पूर्ति स्वतः ही हो जाया करती थी। संभवतः इसीलिए कौटिल्य ने राजा को 'सर्वभूतहिते रतः' कहा है।[222] इससे प्रतीत होता है कि राज्य का दूसरा उद्देश्य था– प्राणीमात्र के हित साधन में तत्पर रहना।

राज्य का तीसरा उद्देश्य था– धर्म, व्यवहार, चरित्र और न्यायपूर्वक शासन करना। इसीलिए कौटिलीय अर्थशास्त्र में कहा गया है कि धर्म, व्यवहार, चरित्र और न्यायपूर्वक शासन करने वाला राजा सम्पूर्ण पृथ्वी पर विजय प्राप्त करता है।[223] प्रजा के लिये 'योगक्षेम' का सम्पादन करना राज्य का चौथा उद्देश्य था। कौटिलीय अर्थशास्त्र में 'योगक्षेम' के दो कारण निर्दिष्ट किए गए हैं– शम तथा व्यायाम।[224] इनको परिभाषित करते हुए कौटिल्य कहता है कि सन्धि आदि कार्यो में कुशल व्यक्तियों को नियुक्त करना 'व्यायाम' कहलाता है तथा सन्धि आदि कर्मफल प्राप्ति में आने वाली व्याधियों के निवारण उपाय 'शम' कहलाते है।[225] इस

---

219. सर्वेषामहिंसा सत्यं शैचमनसूयाऽऽनृशंस्यं क्षमा च। कौ० अर्थ० 1/1/2, पृष्ठ 11
220. अर्थानर्थौ वार्तायां। कौ० अर्थ० 1/1/1, पृ० 8
     कृषि पाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता। कौ० अर्थ० 1/1/3, पृष्ठ 12
221. धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत। न निःसुखः स्यात्। कौ० अ० 1/3/6, पृष्ठ 18
222. विद्याविनीतो राजा हि. . . . . सर्वभूतहिते रतः। कौ० अर्थ० 1/2/4, पृष्ठ 15
223. अनुशासद्धि धर्मेण. . . . . .चतुरन्तां महीं जयेत्। कौ० अर्थ० 3/56–57/1, पृष्ठ 259
224. शमव्यायामौ योगक्षेमयोर्योनिः। कौ० अर्थ० 6/97/2, पृष्ठ 445
225. कर्मारम्भाणां योगाराधनो व्यायामः। कर्मफलोपभोगानां क्षेमाराधनः शमः। उपरोक्त

प्रकार कुशल अधिकारियों/कर्मचारियों की नियुक्ति करके राज्य एवं प्रजा की नानाविध व्याधियों को दूर करते हुए 'योगक्षेम' सम्पन्न करना भी राजा का एक उद्देश्य था।

यथोचित दण्ड–प्रयोग द्वारा सभी की रक्षा करना राज्य का पाँचवाँ उद्देश्य था। निष्पक्ष दण्ड–प्रयोग के आदर्श की पराकाष्ठा यह थी कि राजा के द्वारा अपने पुत्र और शत्रु–दोनों को एक समान दण्ड दिया जाता था।[226] इसीलिए यथोचित रीति से प्रयुक्त दण्ड को प्रजा के 'योगक्षेम' का साधक माना जाता था।[227] कौटिलीय अर्थशास्त्र में निर्दिष्ट किया गया है कि राजा के दण्ड प्रयोग से रक्षित चारो वर्ण और चारो आश्रम तथा सारा संसार अपने अपने धर्म–कर्मो में प्रवृत्त होकर निरन्तर अपनी–अपनी मर्यादा पर स्थित रहते हैं।[228] राज्य का छठवाँ उद्देश्य था– प्रजा को शिक्षित एवं अनुशासित बनाना।[229] इसके लिए आचार्य कौटिल्य ने आत्मसंयम तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना आवश्यक माना है।[230]

उपरोक्त विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि राज्य के सभी उद्देश्य जनहित एवं प्रजा–सुख को केन्द्रीकृत करके ही निर्धारित किए गए थे। इसका सशक्त प्रमाण आचार्य कौटिल्य का यह महत्वपूर्ण निर्देश है कि 'प्रजा के सुख में राजा का सुख तथा प्रजा के हित में ही राजा का हित है। स्वयं को अच्छे लगने वाले कार्य करने में राजा का हित नहीं है। बल्कि उसका हित तो प्रजा को अच्छे लगने वाले कार्य सम्पादित करने में है।[231] इस प्रकार कौटिल्य ने एक राजतन्त्र को आदर्श मानते हुये ही कल्याणकारी राज्य का समर्थन किया है।

(घ) राजतन्त्र : एक आदर्श शासन व्यवस्था :

वर्तमान युग प्रजातन्त्र का युग है। वर्तमान विश्व राजनीति में प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली ही आम जनता के लिए कल्याणकारी मानी जाती है। इसलिए सैद्धान्तिक रूप में आज विश्व के अधिकांश देशो में प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली ही प्रचलित है। परन्तु प्राचीन भारत में

226. राज्ञा पुत्रे च शत्रौ च यथादोषं समं धृतः। कौ0 अर्थ0 3/56–57/1, पृष्ठ 259
227. विनयमूलो दण्डः प्राणभृतां योगक्षेमावहः। कौ0 अर्थ0 1/2/4, पृष्ठ 14
228. चतुर्वर्णाश्रमो लोको . . . . स्वेषु वेश्मसु। कौ0 अर्थ0 1/1/3, पृष्ठ 13
229. विद्याविनीतो राजा हि. प्रजानां विनये रतः। कौ0 अर्थ0 1/2/4, पृष्ठ 15
230. विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजयः। कौ0 अर्थ0 1/3/5, पृष्ठ 16
231. प्रजासुखे सुखं राज्ञः . . . . तु पियं हितम्। कौ0 अर्थ0 1/14/18, पृष्ठ 64

राजतन्त्र ही बहुप्रचलित एवं लोकप्रिय शासन प्रणाली भी। उस समय प्रजातन्त्रीय विचारों का भारत में उल्लेख कम ही पाया जाता है। यद्यपि महाभारत में गणराज्य एवं उसके बाद बौद्धकाल में भी गणतन्त्रों का प्रचलन रहा, परन्तु कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए राजतन्त्र को ही एक आदर्श तन्त्र के रूप में स्वीकार किया।

वस्तुतः किसी भी देश का जनमानस तथा प्रशासनतंत्र जितना अधिक सुशिक्षित, चरित्रवान, निष्ठावान, उद्यमी तथा सद्गुणी होगा, उस देश की शासन प्रणाली उतनी ही अधिक सफल होगी। जबकि इसके विपरीत परिस्थितियों वाले देश में अच्छी से अच्छी शासन प्रणाली भी विफलताओं के असह्य दंश से कराह उठेगी। इस दृष्टि से जब हम प्राचीन भारतीय राजतंत्र, विशेषतः कौटिल्य कालीन राजतंत्र पर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि तत्कालीन राजतंत्र व्यवहार में भी एक आदर्श एवं सफल शासन प्रणाली थी। प्राचीन ग्रन्थों में राजा को एक वृक्ष–मूल का भव्य प्राकृतिक रूपक प्रदान करते हुए कहा गया है कि 'राजा राज्यरूपी वृक्ष की जड़ है, मन्त्रिपरिषद उसका धड, सेनापति उसकी शाखाऐं, सैनिक उसके पत्ते, प्रजा उसके फूल, देश की सम्पन्नता उसके फल तथा सारा देश उसका बीज है।[232] यद्यपि राजतंत्रीय शासन प्रणाली में राजा को सर्वोच्च एवं सर्वाधिक अधिकार प्राप्त थे; फिर भी इन व्यापक अधिकारों के साथ उस पर इतना अधिक दायित्व एवं कर्तव्य भार लाद दिया गया था कि वह कभी स्वयं को निरंकुश अनुभव कर ही न पाये। वस्तुतः उसके जीवन में न तो उसका अपना कोई सुख था और न अपना कोई हित। प्रजा का सुख ही उसके लिए अपना सुख था तथा प्रजा का हित ही उसके लिए अपना हित था।[233] अपने निजी सुख और इच्छाओं का तो दमन करने हेतु उसे निर्दिष्ट किया गया था कि जिस प्रकार कोई गर्भवती स्त्री अपने गर्भस्थ शिशु को हानि पहुँचने की आशंका से अपनी यौन संबंधी इच्छाओं का दमन और सुखों का त्याग करती है उसी प्रकार राजा को अपनी प्रजा की भलाई के सामने अपने निजी सुख और इच्छाओं को सर्वथा त्याग देना चाहिए।[234] राजा की जो शास्त्रीय दिनचर्या

232. राज्यवृक्षस्य नृपतिर्मूलं. . . . . भूमिः प्रकल्पिता। शुक्रनीति 5/12–13
233. प्रजासुखे सुखं राज्ञः, प्रजानां च हिते हितम्। कौ0 अर्थ0 1/14/18, पृष्ठ 64
234. नित्यं राज्ञा तथा भाव्यं. . . . . .सुखमावहेत्। अग्निपुराण 222–28

निर्धारित की गई थी, उसमें दिन में तो उसे सोने अथवा विश्राम करने का कहीं कोई प्राविधान था ही नहीं; केवल रात में 4–5 घण्टे ही सोने का विधान था। दिनचर्या के शेष 19–20 घण्टे उसे प्रजा के हित चिन्तन एवं हितकारी कार्यों में ही लगाने पडते थे।[235] अनौपचारिक भाषा में कहा जाय तो प्रजा–हित के लिए उसे दिन–रात कोल्हू के बैल की तरह जुतना पड़ता था। कदाचित् यही कारण रहा होगा कि चन्द्रगुप्त मौर्य जैसे महान शक्तिशाली सम्राट को भी अपनी इस उबाऊ दिनचर्या से ऊबकर यह कहना पडा था कि 'राज्य तो कर्तव्य–पालन करने में तत्पर राजा के लिए महान दुःख का कारण होता है।[236] इसी क्रम में उसकी एक दुःखद अनुभूति यह भी उल्लेखनीय है कि राजा तो एक पराधीन (प्रजा के अधीन) व्यक्ति होता है और पराधीन व्यक्ति को सुख की अनुभूति आखिर कैसे हो सकती है।[237]

राजतंत्र के अन्तर्गत केवल राजा में देवत्व स्वीकार करके ही उसे सर्वगुण सम्पन्न नहीं मान लिया गया। अपितु उसे गुण सम्पन्न बनाने के लिए एक दीर्घकालीन शैक्षिक संस्कार साधना की आवश्यकता पर बल दिया गया। राज्याभिषेक के पहले युवराज की अपेक्षित शिक्षा–दीक्षा के प्रति हमारे प्राचीन चिन्तक अत्यधिक चिन्तित रहे हैं। उनकी यह चिन्ता इस कथन में स्पष्ट रूप से झलकती है कि जिस प्रकार घुन लगी हुई लकडी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है उसी प्रकार अशिक्षित राजकुमारों वाले राजकुल भी बिना किसी युद्ध आदि के ही नष्ट हो जाते हैं।[238] अपनी इस चिन्ता को दूर करने हेतु उन्होंनें राजकुमारों की समुचित शिक्षा–दीक्षा के लिए एक सुविचारित शिक्षा–नीति तैयार की थी। इस संबंध में एक विस्मयकारी तथ्य उभर कर सामने आता है कि जनसामान्य के लिए निर्धारित शिक्षा–योजना तो प्रायः उसके जन्म के बाद प्रारम्भ होती है। किन्तु युवराज की शिक्षा योजना उसके जन्म के बाद नहीं, अपितु जन्म से बहुत पहले अर्थात् उसके गर्भ में आने से पहले ही प्रारंभ हो जाती है। इस प्रकार युवराज के लिए निर्धारित शिक्षा योजना एक अजन्मा शिशु की जननी

---

235. तत्र पूर्वे दिवसस्य. . . . . प्रदक्षिणीकृत्योपस्थान गच्छेत्। कौ० अर्थ० 1/14/18, पृष्ठ 61–62
236. राज्यं हि नाम राजधर्मानुवृत्तिपरस्य नृपतेर्महदप्रीतिस्थानम। मुद्राराक्षस 3/4 का पूर्ववर्ती सुभाषित, पृ. 153
237. हन्त परवान्, परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः। मुद्राराक्षस 3/4
238. काष्ठमिव हि घुणजग्धं राजकुलमविनीतपुत्रमभियुक्तमात्रं भज्येत। कौ० अर्थ० 1/12/16, पृष्ठ 54–55

के ऋतुकाल (रजस्वला) एवं गर्भकाल से प्रारंभ होकर विभिन्न संस्कारों तथा कठोर अनुशासन की छत्रछाया में बढ़ती हुई सभी शास्त्रों एवं विद्याओं का सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक ज्ञान कराती हुई उस (युवराज) के जीवन की अन्तिम श्वास तक अपना विधेय धर्म निभाती है। कुल मिलाकर पूरी की पूरी शिक्षा व्यवस्था का अर्जुन–लक्ष्य यही होता था कि अयोग्य राजकुमार पैदा ही न होने पाये तथा जन्म से ही होनहार पैदा हुए युवराज में यथासम्भव सभी मानवीय, राजनीतिक एवं प्रशासनिक गुण समाविष्ट कर दिए जायें।[239] उपरोक्त अनूठे शिक्षा–दर्शन के तहत शिक्षित–दीक्षित युवराज जब राज्याभिषिक्त होता था तो राज्य के स्वामी के रूप में उसके अन्दर पाँच प्रकार के महान गुणों– अभिगामिक गुण, प्रज्ञा गुण, उत्साह गुण, आत्मसम्पत् गुण,[240] तथा इन्द्रिय जय गुण[241] की अपरिहार्य अपेक्षा की जाती थी। यहाँ पर उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि जनता उपरोक्त गुणों से सम्पन्न राजा में ही देवत्व स्वीकार करने को तैयार थी। उसके गुणहीन एवं अवगुणी होने पर उसे परमेश्वर का अवतार नहीं अपितु राक्षस का अवतार एवं नरक का पात्र माना जाता था।[242] यही कारण है कि 'वेण' नहुष, सुदास, सुमुख तथा नेमि जैसे अनेक प्राचीन राजाओं के दुष्टता धारण करने पर प्रजा द्वारा उनका वध कर दिए जाने के विस्मयकारी उदाहरण भी इतिहास–सुलभ हैं।[243] इतना ही नहीं महाभारत जैसे प्राचीन ग्रन्थों में अत्याचारी राजा का वध करने की शास्त्रीय अनुमति तक प्रदान की गई है।[244] इसलिए प्राचीन राजतंत्र में राजा के देवत्व का अर्थ यह नहीं था कि वह सर्वथा निर्दोष था और कभी कोई गलती नहीं करता था। बल्कि जनसामान्य की तुलना में उसके द्वारा गलती किए जाने की सम्भावना और आशंका अधिक रहती थी; क्योंकि उसके सामने प्रलोभन भी बहुत बडे होते थे। इसलिए उससे हमेशा यही अपेक्षा की जाती थी कि वह काम, क्रोध ओर लोभजन्य अवगुणों से बचने हेतु सर्वथा, सर्वदा सचेष्ट रहे।[245] राजतंत्र

239. देखिए– आचार्य कौटिल्य का शिक्षा दर्शन– हरिओम शरण निरंजन (राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन संस्थान (नीपा) नई दिल्ली की चतुर्मासी हिन्दी पत्रिका 'परिप्रेक्ष्य' दिसम्बर 2004, पृष्ठ 119–31)
240. तत्र स्वामिसम्पत्–महाकुलीनो. . . . . इत्यात्मसम्पत्। कौ0 अर्थ0 6/96/1, पृष्ठ 441–42
241. देखे– कौ0 अर्थ0 का 'इन्द्रियजयः अरिषड्वर्गत्यागः' नामक अध्याय 1/3/5, पृष्ठ 16–17
242. गुणिजुष्टस्तु यो . . . . सवै नरकभाजनः। शुक्रनीति 1/85–86
243. प्रो0 अनन्त सदाशिव अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृष्ठ 67 व 73
244. अरक्षितारं हर्तारं . . . . संनह्यनिर्घृणम्। महामारत अनुशासन पर्व 86.35.6
245. प्रो0 अनन्त सदाशिव अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृष्ठ 68

के अन्तर्गत राजा के संबंध में दूसरी महत्वपूर्ण अवधारणा यह थी कि उसे प्रजा का स्वामी और सेवक दोनों समझा जाता था। यह माना जाता था कि चूँकि प्रजा 'कर' के रूप में राजा को भरपूर वेतन देती है अतः उसे भी एक वेतनभोगी भृत्य और दास के रूप में प्रजा की सेवा करना चाहिए।[246]

राजकोष के उपयोग के संबंध में राजा के ऊपर अनेक नैतिक प्रतिबन्ध लगाए गए थे। उसे निर्दिष्ट किया गया था कि राजकोष उसकी कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है बल्कि वह जनता की धरोहर है। इसलिए वह उसका उपयोग केवल सार्वजनिक हित के लिए कर सकता था। यदि वह राजकोष का दुरुपयोग करता है अथवा अपने निजी काम में लगाता है तो वह नरक का भागी माना जाता था।[247] इस संबंध में *प्रो0 अनन्त सदाशिव अल्तेकर* जैसे आधुनिक विद्वानों की यह सम्मति पूर्णतः तार्किक प्रतीत होती है कि चूँकि प्राचीन भारत में धार्मिक और पारलौकिक दण्डों का बड़ा भय था; इसलिए हमारे विधिशास्त्रियों ने राजा की शक्ति पर अंकुश लगाने के लिए इस भावना का भरपूर उपयोग किया है। यही कारण है कि प्रायः सभी शास्त्रकारों ने यह घोषणा की है कि प्रजा का पीड़न करने वाला तथा सार्वजनिक धन का अपव्यय करने वाला राजा घोर पाप करता है और निश्चय ही वह नरक का भागी होता है।[248]

इसके अतिरिक्त प्राचीन राजतंत्र में राजा की शक्ति पर सबसे बड़ा अंकुश व्यापक विकेन्द्रीकरण व्यवस्था का था। नीतिकारों और शास्त्रकारों ने ग्राम, नगर और प्रादेशिक पंचायतों तथा सभाओं को व्यापक प्रशासनिक अधिकार देकर सत्ता के विकेन्द्रीकरण की दिशा में स्तुत्य प्रयास किया था। इन संस्थाओं का संचालन सीधा जनता के हाथ में था। इसका परिणाम यह था कि राजा चाहे जितने कर लगा दे, पर वसूली केवल उन्हीं की हो पाती थी जिसे ग्राम सभा वसूल करने को तैयार होती थी। इसके अतिरिक्त इन स्थानीय संस्थाओं को

---

246. सर्वतः फलभुग् भूत्वा दासवत् स्यान्तु रक्षणें। शक्रनीति 4.2.128 पृष्ठ 221
247. बलप्रजारक्षणार्थं यज्ञार्थं कोशसंग्रहः . . . . . .परत्र सुखप्रदः। शुक्रनीति 4.2.3–4 पृष्ठ 201
248. प्रो0 अनन्त सदाशिव अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृष्ठ 72

न्याय के भी पर्याप्त अधिकार मिले हुए थे। उन्हें अपनी सीमा में वसूल किए जाने वाले विभिन्न करों के कुछ अंश पर भी अधिकार प्राप्त था। इस विकेन्द्रीकरण का प्रभाव यह होता कि यदि कोई अत्याचारी राजा भूले–विसरे राजगद्दी पर बैठ भी जाता तो उसका शासन फिर राजधानी के परे इन स्थानीय संस्थाओं में नहीं चल पाता था।[249]

आचार्य कौटिल्य यद्यपि राजतंत्रीय शासन प्रणाली का समर्थक रहा है जिसमें राजा ही सर्वेसर्वा होता; किन्तु उसने राजतंत्र में भी मन्त्रिपरिषद की अपरिहार्यता को निःसंकोच स्वीकार किया है। उसका स्पष्ट निर्देश है कि राजा को अपने सभी महत्वपूर्ण कार्य मन्त्रिपरिषद के परामर्श से ही करना चाहिए तथा सन्दिग्ध या विवादग्रस्त प्रकरणों में बहुमत के आधार निर्णय लेना चाहिए।[250] इन्द्र का उदाहरण देते हुए उसने कहा है कि मन्त्रीगण तो राजा के नेत्र होते हैं।[251] अन्यत्र वह कहता है कि राजा और मन्त्री तो राज्य रूपी एक ही गाडी के दो पहिए हैं। जैसे अकेले एक पहिए के सहारे कोई गाडी नहीं चल सकती है, उसी तरह मन्त्रियों की सहायता के बिना अकेला राजा कभी राज्य नहीं चला सकता है।[252] राजा और मन्त्रियों के अटूट संबंधो को आचार्य भारद्वाज के मत के आधार पर स्पष्ट करता हुआ वह कहता है कि अमात्यों के अभाव में राजा की स्थिति तो एक विकलांग (परकटे) पक्षी के समान होती है।[253] उपरोक्त प्रतिबन्धों से यह स्पष्ट होता है कि शास्त्रकारों ने प्राचीन राजतंत्र को कभी भी तानाशाही का पर्याय नहीं बनने दिया।

राजतंत्रीय शासन प्रणाली में राजा के द्वारा प्रजा का पालन अपने पुत्र की तरह किया जाता था।[254] जनता का 'योगक्षेम' राजा का परम कर्तव्य माना जाता था।[255] जिन प्राणियों के भरण पोषण का अन्य कोई साधन नहीं है, उन अनाथ एवं असहाय प्राणियों की

---

249. प्रो0 अनन्त सदाशिव अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृष्ठ 72
250. आत्ययिके कार्ये मन्त्रिणो. . . . . . . .कार्यसिद्धिकरं वा ब्रूयुस्तत् कुर्यात्। कौ0 अर्थ0 1/10/14, पृष्ठ47
251. इन्द्रस्य हि मन्त्रिपरिषदृषीणां सहस्रम। स तच्चक्षुः। उपरोक्त
252. सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते। . . . . . .च श्रृणुयान्मतम्। कौ0 अर्थ0 1/3/6, पृष्ठ 19
253. तेषाममावे तदभावः। छिन्नपक्षस्येव राज्ञश्चेष्टानाशः। कौ0 अर्थ0 8/127/1, पृष्ठ 556
254. पितेवानुगह्णीयात। कौ0 अर्थ0 2/17/1 पृष्ठ 78, 4/78/3, पृष्ठ 360
255. शमव्यायामौ योगक्षेमयोर्योनिः. . . . . . .तस्मिन् योगक्षेमनिष्पत्तिर्नयः। कौ0 अर्थ0 6/97/2, पृष्ठ 445

सहायता करने का दायित्व भी उसी का था। इसी प्रकार बालक, वृद्ध, रोगी तथा आपदग्रस्त लोगों के भरण पोषण का महान दायित्व भी उसी के कन्धों पर था।[256] इसके अतिरिक्त राजा के द्वारा किसानों को बीज, बैल और धन आदि देकर तथा बाँध, जलाशय और नहर आदि के द्वारा सभी प्रकार की सिंचाई सुविधाऐं देकर कृषि विकास हेतु पर्याप्त सहायता दी जाती थी।[257]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'अर्थशास्त्र' जैसे प्राचीन राज्यशास्त्रीय ग्रन्थों में उदघृत राजतन्त्र एक आदर्श शासन व्यवस्था थी; जिसमें राजा को सर्वगुण सम्पन्न बनाने हेतु उसके जन्म लेने से पूर्व तथा गर्भ में आने से पूर्व ही अनेकानेक कारगर उपाय प्रारम्भ कर दिए जाते थे। इन उपायों के अन्तर्गत सर्वप्रथम उसके गर्भ में आने से पूर्व उसके ऐश्वर्य, विद्या एवं बुद्धि के निमित्त पुरोहितों द्वारा हविदान कराया जाता था। इसके बाद उसके गर्भ में आने पर 'गर्भविद्या' में पारंगत शिशु चिकित्सकों के निर्देशन में गर्भ की पुष्टि तथा सुखद प्रजनन हेतु प्रयास किये जाते थे। तदनन्तर उसके जन्म ले लेने के बाद विद्वान पुरोहित विधिपूर्वक उसका संस्कार कराते थे। जब वह पढ़ने–समझने योग्य हो जाता था तो विभिन्न विषयों के पारंगत शिक्षक उसे सभी विषयों की सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक शिक्षा देते थे। इस संबंध में विशेष रूप से उल्लेखनीय तथ्य यह है कि उपरोक्त औपचारिक शिक्षा पूर्ण होने के बाद भी उसका शिक्षा ग्रहण करने का क्रम कभी टूटता नहीं था। अपितु उसे अनवरत रूप से कुछ न कुछ सीखते रहने के लिए विद्यावृद्ध लोगों की संगति में रहना पडता था।[258] इसी संगति में रहकर वह अपनी सभी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करता हुआ 'जितेन्द्रिय' बनता था तथा अपने अन्दर विद्यमान षड्रिपुओं– काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष का परित्याग करता था। ऐसे सुशिक्षित, सुसंस्कारित एवं सुदीक्षित राजा में कहीं से भी कोई अवगुण आने की कोई सम्भावना दिखाई नहीं देती। फिर भी उसके गुरुजन एवं अमात्य वर्ग उस पर निरन्तर अपनी पैनी नजर रखते थे। यदि राजा से जाने–अनजाने में कोई अवांछनीय कार्य होने लगता तो उन्हें राजा को तत्काल रोकने का पूरा अधिकार था।

---

256. बालवृद्धव्याधितव्यसन्यनाथांश्च राजा बिभृयात्। कौ0 अर्थ0 2/17/1, पृष्ठ 79
257. धान्यपशुहिरण्यैश्चैनानुग्रह्णीयात्. . . . . भूमिमार्गवृक्षोपकरणानुग्रहं कुर्यात्। उपरोक्त पृष्ठ 78–79
258. ब्रह्मचर्य चाषोडशाद्वर्षात् . . . . .तन्मूलत्वाद्विनयस्य। कौ0 अर्थ0 1/2/4, पृष्ठ 14

इस प्रकार अपने अठारह उच्च प्रशासनिक अधिकारियों (अष्टादशतीर्थों) की सहायता से राजा के द्वारा दिन–रात प्रजा–सुख, प्रजा–हित एवं राज्य–हित के लिए समर्पित 'राजतन्त्र' को एक आदर्श शासन व्यवस्था कहने में किसी को कोई आपत्ति नहीं, अपितु, गर्वानुभूति होना ही सहज स्वाभाविक है।

(ङ) राज्य की उत्पत्ति तथा प्रकृति संबंधी कौटिलीय सिद्धान्त की आधुनिक युग में प्रासंगिकता :

(i) राज्य की उत्पत्ति संबंधी प्रासंगिकता : राज्योत्पत्ति संबंधी 'सामाजिक समझौता सिद्धान्त' की आधुनिक अवधारणा प्रस्तुत करने वाले तीन पाश्चात्य राजनैतिक चिन्तक मुख्य हैं–

(1) हाब्स (1588–1679 ई)

(2) लॉक (1632–1704 ई.)

(3) रूसो (1712–1778 ई.)

उपरोक्त तीनों आधुनिक चिन्तकों की राज्योत्पत्ति संबंधी अवधारणा को संक्षेप में स्पष्ट करना यहाँ पर समीचीन होगा। ताकि कौटिलीय मत की आधुनिक युग में तद्विषयक प्रासंगिकता को आत्मसात् किया जा सके।

(1) हॉब्स का आधुनिक समझौता सिद्धान्त :

थामस हाब्स ने अपने प्रख्यात ग्रन्थ लिवायथन (Leviathan) में राज्योत्पत्ति विषयक 'सामाजिक समझौता सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया है। वह अपने इस सिद्धान्त का आरम्भ प्राकृतिक अवस्था से करता है। हॉब्स मानव को स्वभाव से बुरा और असामाजिक प्राणी मानता हुआ लिखता है कि– 'प्राकृतिक अवस्था में सभी मनुष्य एक दूसरे से लड़ते थे। उनमें उचित–अनुचित, न्याय–अन्याय का कोई स्थान नहीं था। धोखा और शक्ति ही मुख्य गुण समझे जाते थे और मनुष्यों का जीवन सदैव खतरे में रहता था। ऐसी अवस्था में मनुष्य का मार्ग दर्शन करने वाला एक मात्र सिद्धान्त यही था कि जिसे मार सको मारो और जिसे

लूट सको लूटो।' मनुष्यों में निरन्तर संघर्ष की प्रवृत्ति होने के हॉब्स तीन प्राकृतिक कारण मानता है– (i) प्रतिस्पर्द्धा, (ii) पारस्परिक अविश्वास (iii) वैभव। उसके अनुसार प्रतिस्पर्द्धा लाभ के लिए, अविश्वास रक्षा के लिए, तथा वैभव प्रसिद्धि के लिए मानव की प्राकृतिक अवस्था में आवश्यक गुण माने गये हैं।

हॉब्स के अनुसार उपरोक्त दयनीय प्राकृतिक अवस्था से छुटकारा पाने के लिए मनुष्यों ने आपस में एक समझौता करने का निश्चय किया। इस समझौते के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कहता है– 'मैं अपने ऊपर शासन करने का अपना अधिकार इस व्यक्ति अथवा व्यक्ति–समूह को सौंपता हूँ, वशर्ते कि तुम भी अपने इस अधिकार को मेरी तरह ही इस व्यक्ति या व्यक्ति–समूह को सौंप दो और मेरे समान ही इसके प्रत्येक कार्य का समर्थन करो।' हॉब्स के उपरोक्त सामाजिक समझौता सिद्धान्त से जो राज्य का स्वरूप प्रादुर्भूत हुआ वह पूर्णतया निरंकुश है। क्योंकि उसमें व्यक्तियों को शाासन के विरुद्ध कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। व्यक्तियों का कार्य केवल शासक की आज्ञा का पालन करना ही है। चूँकि शासक समझौते में शामिल नहीं था, इसलिए शासन के कोई दायित्व भी नहीं हैं और किसी भी दशा में उसे हटाया नहीं जा सकता है। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हाब्स का सामाजिक समझौता सिद्धान्त एक 'निरकुंश–राज्य' पर केन्द्रित है।[259] राजा उपरोक्त सामाजिक समझौते का कोई पक्ष नहीं है।

(2) लॉक का समझौता सिद्धान्त :

जॉन लॉक का यह सिद्धान्त उसके प्रख्यात ग्रन्थ 'शासन पर दो निबन्ध' (The Two Treatises on Government) में प्रतिपादित है। लॉक मनुष्य को हॉब्स की तरह असामाजिक प्राणी नहीं अपितु वह उसे एक अराजनैतिक प्राणी मानता है। उसके अनुसार प्राकृतिक अवस्था में भी मनुष्य प्रकृति के नियमों का पालन करते हुए अपने जीवन, सम्पत्ति और स्वतंत्रता के प्राकृतिक अधिकारों का उपभोग करता है। उसके अनुसार यद्यपि यह प्राकृतिक

---

259. डा0 बी0 एल0 फड़िया; पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास, पृष्ठ 491–500

अवस्था स्वतंत्रता की अवस्था है; फिर भी वह मनमानी करने की अवस्था नहीं है। यद्यपि इस अवस्था में मनुष्य को अपने व्यक्तित्व अथवा सम्पत्ति के प्रयोग की असीमित स्वतंत्रता है; परन्तु उसे अपने को नष्ट करने की स्वतंत्रता नहीं है; जब तक कि ऐसा करने की आवश्यकता उसे अपना जीवन बनाये रखने के अलावा किसी दूसरे श्रेष्ठ उद्देश्य के लिए न हो। लॉक के अनुसार प्राकृतिक अवस्था में भी मनुष्यो में विवेक था जो उन्हें बताता था कि सभी मनुष्य समान और स्वतंत्र है, इसलिए किसी के जीवन, स्वास्थ्य और सम्पत्ति को हानि मत पहुँचाओ।

लेकिन इस संबंध में एक सहज स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि मानव की प्राकृतिक अवस्था जब शान्ति व सहयोग की थी तो इसे छोडकर उसे राज्य–निर्माण की आवश्यकता क्यों पडी ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए लॉक इसके तीन प्रमुख कारण बताता है–

(अ) उस अवस्था में प्राकृतिक नियम और अधिकार स्पष्ट व सुनिश्चित नहीं थे और मनुष्य उनका अर्थ अलग–अलग तरीके से लगाते थे।

(ब) प्राकृतिक नियमों और अधिकारों की व्याख्या करने के लिए कोई योग्य सभा नहीं थी।

(स) इन नियमों को मनवाने के लिए कोई शक्ति नहीं थी।

लॉक के अनुसार उपरोक्त असुविधाओं से बचने के लिए लोगों ने दो समझौते किए–

(i) प्रथम समझौता परस्पर मनुष्यों के बीच हुआ जिसके द्वारा उन्होंने सभ्य समाज/राज्य की स्थापना करके प्राकृतिक अवस्था को छोड़ दिया।

(ii) दूसरा समझौता सभी मनुष्यों व शासक वर्ग के बीच हुआ जिसके द्वारा सरकार की स्थापना हुई।

लॉक के उपरोक्त समझौता सिद्धान्त से जिस 'राज्य' का प्रादुर्भाव हुआ वह एक 'सीमित राजतंत्र' है। क्योंकि यदि शासक अपने उत्तरदायित्वों को पूरा नहीं करता है तो

जनता को उसके विरुद्ध विद्रोह करने और उसे हटाने का अधिकार है। इस प्रकार शासक की शक्तियाँ असीमित नहीं, अपितु, सीमित है तथा लॉक के द्वारा अनुमन्य राज्य एक 'सीमित राजतंत्र' है।[260] जिसका शासन प्रजा के प्रति उत्तरदायी है।

(3) रूसो का समझौता सिद्धान्त :

जीन जेक्स रूसो के सामाजिक समझौता सिद्धान्त का प्रतिपादन उसके महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'सामाजिक समझौता' (The Social Contract) में किया गया है। हॉब्स और लॉक की तरह रूसो भी अपने सामाजिक समझौते का आधार 'प्राकृतिक अवस्था' को ही मानता है। रूसो प्राकृतिक अवस्था को एक आदर्श अवस्था मानता है। उसका प्रसिद्ध सिद्धान्त है– 'मनुष्य स्वतंत्र पैदा होता है किन्तु वह सर्वत्र जंजीरों में जकड़ा हुआ है।' उसका यह सिद्धान्त इस तथ्य का प्रतिपादन करता है कि मनुष्य मौलिक रूप से तो अच्छा है किन्तु सामाजिक बुराइयाँ ही उसकी मानवीय अच्छाई में बाधक बनती हैं। उसके अनुसार प्राकृतिक अवस्था का मनुष्य 'आदर्श बर्बर' (Noble Savage) था। इस अवस्था में मनुष्य में बुद्धि (Reason) का उदय नहीं हुआ था। केवल नैसर्गिक प्रवृत्तियाँ ही उसमें थी। मनुष्य आत्म निर्भर था तथा स्वयं अपना स्वामी था। इस प्राकृतिक अवस्था में मनुष्यों को प्रकृति का यह नियम नियन्त्रित करता था कि 'अपने हित को देखो किन्तु ऐसा करने में दूसरों की यथासम्भव कम से कम हानि हो।'

रूसो के अनुसार प्राकृतिक अवस्था एक आदर्श अवस्था थी। लेकिन कालान्तर में कुछ ऐसे कारण उत्पन्न हुए जिन्होंने इस अवस्था को दूषित कर दिया। कृषि के आविष्कार के कारण भूमि पर स्थायी अधिकार और उसके परिणाम स्वरूप सम्पत्ति तथा 'मेरे–तेरे' की भावना का विकास हुआ। जब प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक भूमि पर अधिकार करने की इच्छा करने लगा तो प्राकृतिक शान्तिमय जीवन नष्ट हो गया तथा समाज की लगभग वही दशा हुई जो हॉब्स की प्राकृतिक दशा में थी। इस प्रकार प्राकृतिक दशा का आदर्श रूप नष्ट होकर युद्ध, संघर्ष और विनाश का वातावरण उपस्थित हो गया। युद्ध और संघर्ष का वातावरण

---

260. डा0 बी0 एल0 फड़िया; पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास, पृष्ठ 515–21

समाप्त करने के लिए व्यक्तियों ने पारस्परिक समझौते द्वारा समाज/राज्य की स्थापना का निश्चय किया; जिसमें मनुष्यों ओर नागरिक समुदाय के हित समान हों। अतः सब मनुष्य एक स्थान पर एकत्र हुए और राज्य की स्थापना के लिए समझौता किया। समझौते की प्रक्रिया के संबंध में रूसो लिखता है कि 'हममें से प्रत्येक अपने व्यक्तित्व और अपने समस्त अधिकारों को समान्य प्रयोग के लिए सामान्य इच्छा के सर्वोच्च निर्देशन के अन्तर्गत एक समूह में केन्द्रित कर देता है तथा हममें से प्रत्येक व्यक्ति उस समूह के अविभाज्य अंग के रूप में उन्हें (व्यक्तित्व और अधिकारों को) प्राप्त कर लेता है।' इस प्रकार रूसो समाज की सर्वोच्च शक्ति को 'सामान्य इच्छा' का नाम देता है जिसमें समाज के सभी लोगों की वास्तविक इच्छा शामिल है।

इस प्रकार रूसो ने जिस समझौता प्रक्रिया का उल्लेख किया है उसके द्वारा प्रजातंत्रीय शासन का उदय हुआ। क्योंकि समस्त समाज की शक्ति (सामान्य इच्छा) में प्रत्येक व्यक्ति का साझा है। रूसो के अनुसार प्रभुसत्ता समस्त समाज में निहित है, इसलिए रूसो के राज्य में जनता को विद्रोह करने की आवश्यकता नहीं है। रूसो लॉक की भाँति प्राकृतिक अधिकारों की बात नहीं करता है। रूसो की मान्यता है कि 'सामान्य इच्छा' के विरूद्ध लोगों के कोई अधिकार नहीं हो सकते। रूसो की इस प्रकार की मान्यता के कारण ही यह कहा जाता है कि 'रूसो का सम्प्रभु (सामान्य इच्छा) हॉब्स का 'Leviathan' है जिसका सिर काट दिया गया है।' दूसरे शब्दो में हॉब्स व रूसो के राज्य में जनता को सम्प्रभु के प्रति विद्रोह करने का अधिकार नहीं है।[261]

राज्योत्पत्ति विषयक उपरोक्त विवेचन के आधार पर हॉब्स, लॉक, रूसो के आधुनिक मत के परिप्रेक्ष्य में आचार्य कौटिल्य के प्राचीन मत की प्रासंगिकता का आकलन सरलतापूर्वक किया जा सकता है। इस संबंध में सर्वप्रथम वे महत्वपूर्ण तथ्य रेखांकित किए जा सकते हैं जिन पर हॉब्स, लॉक, रूसो इन तीनों आधुनिक पाश्चात्य चिन्तकों का आचार्य कौटिल्य के मत से साम्य दृष्टिगोचर होता है–

261. डा0 बी0 एल0 फड़िया; पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास, पृष्ठ 543–49

(1) आचार्य कौटिल्य तथा हॉब्स, लॉक, रूसो, ये चारों राजनैतिक चिन्तक राज्योत्पत्ति के संबंध में प्राकृतिक अवस्था को स्वीकार करते हैं।

(2) चारों चिन्तक सामाजिक समझौता को भी अङ्गीकार करते हैं।

(3) चारों चिन्तक सामाजिक समझौता के फलस्वरूप राज्य के प्रादुर्भाव को स्वीकार करते हैं।

(4) हॉब्स की प्राकृतिक अवस्था कौटिल्य की प्राकृतिक अवस्था से मेल खाती है। क्योंकि दोनों के मत में प्राकृतिक दशा ' मात्स्य न्याय' पर आधारित थी।

(5) लॉक का समझौता स्वरूप कौटिल्य के समझौते से मिलता जुलता है। क्योंकि दोनों चिन्तकों के मत में प्रजा और राजा के बीच एक सशर्त समझौता हुआ जिसमें प्रजा ने राजा को शासन करने का अधिकार देते समय 'आत्मरक्षा' तथा कौटिल्य के अनुसार 'योगक्षेम' की शर्त भी रखी।

किन्तु उपरोक्त स्थूल साम्य दृष्टिगोचर होने पर भी अनेक महत्वपूर्ण तथ्य ऐसे हैं जिन पर आधुनिक पाश्चात्य चिन्तकों–हॉब्स, लॉक, रूसो से आचार्य कौटिल्य का सैद्धान्तिक वैषम्य स्पष्टतया परिलक्षित होता है। जैसे–

(1) प्राकृतिक अवस्था के संबंध में आचार्य कौटिल्य का पाश्चात्य चिन्तक लॉक तथा रूसो से स्पष्ट पार्थक्य प्रतीत होता है। उपरोक्त दोनों पाश्चात्य चिन्तक जहाँ प्राकृतिक अवस्था को सुखी एवं शान्तिपूर्ण मानते हैं वहीं पर आचार्य कौटिल्य प्राकृतिक अवस्था को 'मात्स्य न्याय' पर आधारित मानते हैं जिसमें सभी ओर अन्याय, अराजकता एवं अशान्ति व्याप्त रहती थी।

(2) समझौते के स्वरूप के संबंध में पाश्चात्य चिन्तक हॉब्स और रूसो से आचार्य कौटिल्य का सैद्धान्तिक वैषम्य स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि हॉब्स के समझौते में केवल जनता ने भाग लिया था, राजा उसमें सहभागी नहीं था तथा जनता ने बिना किसी शर्त के अपने सारे अधिकारों का समर्पण कर दिया था। हॉब्स की तरह रूसो के समझौता

सिद्धान्त में भी प्रजा के सम्पूर्ण अधिकारों के समर्पण का समर्थन किया गया है। जबकि कौटिल्य के समझौते का स्वरूप हॉब्स और रूसो–दोनों से भिन्न है। कौटिल्य के मतानुसार समझौता राजा और प्रजा के बीच हुआ था जिसमें प्रजा ने कुछ शर्तो के आधार पर राजा को अपने कुछ ही अधिकार दिए थे।

(3) राज्य के स्वरूप के संबंध में आचार्य कौटिल्य की हॉब्स, लॉक, रूसो इन तीनों आधुनिक पाश्चात्य चिन्तको से सैद्धान्तिक विषमता परिलक्षित होती है। क्योंकि हॉब्स के अनुसार 'असीमित (निरंकुश) राजतंत्र,' लॉक के अनुसार 'सीमित राजतंत्र' तथा रूसो के अनुसार 'जनतांत्रिक राजतंत्र'का प्रादुर्भाव हुआ। जबकि आचार्य कौटिल्य के राज्य का स्वरूप इन तीनों से भिन्न है। उदाहरणार्थ हाब्स के अनुसार केवल प्रजा ने आपस में समझौता करके बिना किसी शर्त के सम्पूर्ण अधिकारों को समर्पित कर निरंकुश राजतंत्र का निर्माण किया; जबकि कौटिल्य के अनुसर समझौता राजा और प्रजा दोनों के बीच हुआ था जिसमें प्रजा ने राजा को कर देना स्वीकार किया और उसके बदले में राजा ने प्रजा के 'योगक्षेम' का दायित्व अङ्गीकार किया। इस प्रकार हॉब्स का मत जहाँ राजा की निरंकुशता का समर्थन करता है वहाँ कौटिल्य का मत राजा की निरंकुशता को नियंत्रित करता है। यद्यपि हॉब्स की व्यवस्था में राज्य के ऊपर नागरिकों के 'आत्म संरक्षण' के अधिकार की शर्त थी, तथापि वह कौटिल्य व्यवस्था के 'योगक्षेम' की शर्त के सामने हल्की है। कौटिल्य का राज्य हर समय प्रजा–हित के लिए उत्तरदायी था जबकि हॉब्स का राज्य केवल व्यक्तियों की मृत्यु से रक्षा करने के लिए ही उत्तरदायी था।

इसी प्रकार लॉक के 'सीमित राजतंत्र' से भी कौटिलीय राजतंत्र का पार्थक्य स्पष्ट होता है। यद्यपि कौटिल्य नें प्रजा के 'योगक्षेम' की शर्त लगाकर राजा की निरंकुशता को सीमित करने का प्रयास किया है लेकिन उसकी यह सीमा लॉक के 'सीमित राजतंत्र' की तरह संकीर्ण नहीं है; अपितु राजा को प्रजा के 'योगक्षेम' हेतु सीमित परन्तु पर्याप्त अधिकार

प्रदान करती है। लॉक की भाँति कौटिल्य प्रजा को राजा के विरूद्ध विद्रोह/क्रान्ति करने की छूट नहीं देता है। अपितु वह लोगों को राजा की अवज्ञा करने से रोकता है।[262] इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि लॉक का राज्य जहाँ सीमित 'राजतंत्र' है, वहाँ कौटिल्य का राज्य निरंकुश (असीमित) तथा सीमित राज्य का समन्वय है। दूसरी ओर कौटिल्य का राज्य रूसो के राज्य से पर्याप्त रूप में भिन्न है। रूसो के अनुसार राज्य की उत्पत्ति से पूर्व जो समझौता हुआ उसमें प्रजा का प्रत्येक व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण शक्ति व अपने अधिकारों को किसी व्यक्ति विशेष या समूह–विशेष के प्रति नहीं, अपितु सामूहिक रूप में सब के प्रति समर्पित करता है। जबकि कौटिल्य के राज्य में प्रजा अपने अधिकारो को केवल राजा के प्रति समर्पित करती है। इसके अतिरिक्त रूसो ने अपने सामाजिक समझौता सिद्धान्त में 'सामान्य इच्छा' नामक तत्व को सर्वोपरि माना है। उसके अनुसार समझौते के परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण समाज की एक 'सामान्य इच्छा' उत्पन्न होती है और सभी व्यक्ति इस 'सामान्य इच्छा' के अन्तर्गत रहते हुए ही कार्य करते हैं। इस प्रकार रूसो सामाजिक समझौते द्वारा निर्मित राज्य को ही प्रकारान्तर से 'सामान्य इच्छा' (General Will) कहता है। आगे चलकर रूसो के इस सिद्धान्त की राजनीतिक चिन्तकों द्वारा यह कहकर तीव्र आलोचना की गई कि उसने व्यक्ति को पूर्णतः 'सामान्य इच्छा' की निरंकुशता के हवाले कर दिया है।[263] जबकि कौटिल्य के राज्य में ऐसे किसी तत्व की कोई परिकल्पना नहीं है।

राज्य की उत्पत्ति संबंधी उपरोक्त विवेचन से कुछ महत्वपूर्ण तथ्य उभर कर सामने आते हैं। प्रथम तो यह कि जो विद्वान समालोचक अपना यह मत व्यक्त करते हैं कि प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन में राज्य तथा राजनीति से संबंधित प्रश्नों पर विस्तार पूर्वक विचार नहीं किया गया, उनके इस मत का स्वतः खण्डन हो जाता है। इस संबंध में महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि जिस सामाजिक समझौता सिद्धान्त का प्रतिपादन हॉब्स, लॉक, रूसो जैसे पाश्चात्य विद्वान सत्रहवीं–अठारहवीं ईसवी सदी में कर पाये हैं उसकी परिकल्पना

262. तस्माद्राजानो नावमन्तव्याः इति क्षुद्रकान् प्रतिषेधयेत्। कौ0 अर्थ0 1/8/12 पृष्ठ 38
263. डा0 बी0 एल0 फड़िया; पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास पृष्ठ 549

तो आचार्य कौटिल्य जैसे हमारे भारतीय चिन्तक लगभग दो हजार वर्ष पहले ई. पू. तीसरी–चौथी शताब्दी में ही कर चुके थे। दूसरा महत्वपूर्ण बिन्दु यह कि हॉब्स, लॉक, रूसो जैसे पाश्चात्य विद्वानों ने राज्य के स्वरूप के संबंध में क्रमशः 'असीमित राजतंत्र' 'सीमित राजतंत्र' एवं 'जनतांत्रिक राजतंत्र' की पुरजोर वकालत की है। लेकिन आगे चलकर इन तीनों चिन्तकों को समीक्षकों की गम्भीर आलोचना का विषय बनना पडा है। जबकि आचार्य कौटिल्य के राजदर्शन में उपरोक्त तीनों राजतंत्र प्रणालियों का अद्भुत समन्वय होने के कारण उसकी आलोचना न्यूनतम तथा प्रशस्ति अधिकतम हुई है। उसका राजतन्त्र न तो हॉब्स की तरह असीमित (निरंकुश) है, न लॉक की तरह 'सीमित' और न रूसो की तरह वह केवल जनतांत्रिक राजतंत्र को अनुमन्य करता है। अपितु उसके राजतंत्र में उपरोक्त तीनो प्रणालियों का लोकमंगलकारी समन्वय है। राजा के ऊपर प्रजा के 'योगक्षेम' की महती शर्त लगाकर वह उसे असीमित (निरंकुश) नहीं होने देता। प्रजा को राजा का विरोध करने से रोककर वह उसे 'सीमित' भी नहीं होने देता; तथा राजा को सर्वोच्च तथा सर्वाधिक अधिकार देकर वह 'जनतांत्रिक राजतंत्र' के पक्ष में नहीं है।

यद्यपि आधुनिक युग प्रजातन्त्र का युग है परन्तु आज विश्व के सभी देशों में प्रजातन्त्र के नाम पर प्रतिनिधितन्त्र स्थापित है। केवल निर्वाचन के समय ही आम जनता का मत लिया जाता है। सामान्य अशिक्षित जनता ही नहीं वरन् शिक्षित और जागरूक जनता भी अपने मताधिकार का प्रयोग राजनैतिक दलों के प्रचार से भ्रमित होकर करती है। जिससे आज प्रजातंत्र में योग्य प्रतिनिधियों का चुनाव नहीं हो पा रहा है। इस कारण प्रजातन्त्र भीड़तन्त्र का रूप ले रहा है। ऐसी स्थिति में कौटिल्य ने समझौते द्वारा स्थापित शासन को शक्तिशाली बनाने पर बल दिया है, पर उसे धर्मानुकूल बनाये रखने और प्रजाहित के दायित्व के निर्वाह से भी पृथक नहीं किया है। इस प्रकार आचार्य कौटिल्य का सामाजिक समझौता सिद्धान्त अपेक्षाकृत अधिक तार्किक, व्यावहारिक एवं समीचीन प्रतीत होता है।

(ii) राज्य–प्रकृति संबंधी प्रासंगिकता :

आचार्य कौटिल्य का राज्य की सप्त प्रकृति संबंधी सिद्धान्त प्राचीन भारतीय चिन्तकों के 'सप्ताङ्ग सिद्धान्त' से मेल खाता है। यत्किञ्चित नाम परिवर्तन के साथ प्रायः सभी चिन्तकों ने राज्य के लिए आवश्यक सात अंग ही प्रतिपादित किए हैं।[264] लेकिन आधुनिक राज्य के आवश्यक अंग प्रतिपादित करने वाले चिन्तकों के साथ आचार्य कौटिल्य का उपरोक्त मत ऊपरी तौर पर मेल नहीं खाता है। क्योंकि आचार्य कौटिल्य ने जहाँ राज्य के सात अंग– स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र[265] निर्धारित किए हैं वहीं आधुनिक राजनीतिक चिन्तकों ने राज्य के केवल चार अंग– जनसंख्या, भूमि, सरकार ओर सम्प्रभुता[266] ही प्रतिपादित किए हैं। लेकिन व्यापक दृष्टि से देखा जाय तो यह विसंगति केवल सतही स्तर पर ही प्रतीत होती है। यदि राज्य के प्रकृति संबंधी कौटिलीय मत एवं आधुनिक मत का गम्भीरतापूर्वक तुलनात्मक विवेचन किया जाय तो दोनों में पर्याप्त मेल एवं संगति प्रतिविम्बित होती है।

आधुनिक विद्वान कौटिलीय मत की समीक्षा करते हुए यह आपत्ति उठाते हैं कि उसकी सप्त प्रकृतियों में 'जनसंख्या' जैसी महत्वपूर्ण प्रकृति को समाविष्ट नहीं किया गया है। लेकिन यदि ध्यानपूर्वक देखा– समझा जाय तो यह 'जनसंख्या' नामक प्रकृति कौटिलीय अर्थशास्त्र की 'जनपद' नामक प्रकृति के 'जन' में अन्तर्निहित है। तभी तो वह कहता है कि 'राजा को चाहिए कि वह दूसरे देश की जनता को बुलाकर अथवा अपने देश की जनसंख्या को बढ़ाकर पुराने या नये जनपद बसाये।[267] वह तो यहाँ तक कहता है कि जनसंख्या के बिना जनपद संभव नहीं है और जनपद के बिना राज्य संभव नही है।[268] आचार्य कौटिल्य के उपरोक्त उद्धरण स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि उसकी दृष्टि में राज्य के लिए 'जनसंख्या' एक आवश्यक तत्व है। अधिकांश प्राचीन भारतीय विचारकों के अनुसार 'जनपद'

---

264. मनु0 9/294, याज्ञवल्क्य 1/353, शान्ति0 69/64–65, कामन्दक 1/16, शुक्र0 1/61
265. स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः। कौ0 अर्थ0 6/96/1 पृष्ठ 441
266. Garner, Political Science and Government p. 49
267. भूतपूर्वमभूतपूर्वं. . . . . वा निवेशयेत। कौ0 अर्थ0 2/17/1 पृष्ठ 77
268. न ह्यजनो जनपदो राज्यमजनपदं वा भवतीति कौटिल्यः। कौ0 अर्थ0 13/174–175/4 पृष्ठ 772

तत्व में आधुनिक तत्व 'भूमि' एवं 'जनसंख्या' दोनों ही समाविष्ट हैं। अर्थशास्त्र में 'अर्थ' शब्द की व्याख्या करते हुए कौटिल्य कहता है कि मनुष्य द्वारा बसी हुयी भूमि ही 'अर्थ' है।[269] अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कौटिल्य जनपद में भूमि एवं जनसंख्या दोनों का अस्तित्व प्रतिपादित व स्वीकार करता है। इस प्रकार आधुनिक राज्य का 'जनसंख्या नामक तत्व कौटिलीय सिद्धान्त की 'जनपद' नामक प्रकृति के 'जन' में समाविष्ट है। यद्यपि कुछ आधुनिक विद्वानों का मत तो यहाँ तक है कि आचार्य कौटिल्य की 'जनपद' नामक प्रकृति आधुनिक राज्य के 'भूमि' नामक तत्व के अर्थ में ही प्रयुक्त है।[270] चूँकि प्राचीन भारतीय राज्यों का अस्तित्व, अभिरक्षा एवं विकास क्रमशः भूमि, दुर्ग एवं कोष पर निर्भर होता था इसलिए आधुनिक राज्य के 'भूमि' नामक तत्व के अन्तर्गत कौटिलीय अर्थशास्त्र की भूमि, दुर्ग एवं कोष नामक तीनों राज्य प्रकृतियाँ संयुक्त रूप से समाविष्ट हैं।[271]

आचार्य कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट 'स्वामी' एवं 'अमात्य' नामक प्रकृतियाँ आधुनिक राज्य के 'सरकार' नामक तत्व का प्रतिनिधित्व करती हैं। यद्यपि कुछ आधुनिक विद्वान तो कौटिलीय अर्थशास्त्र की केवल 'अमात्य' नामक प्रकृति को ही आधुनिक 'सरकार' का प्रतिस्थानी मानते है।[272] किन्तु ए० एस० अल्तेकर जैसे विद्वानों का मत अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है जिसमें उन्होंने 'स्वामी' एवं 'अमात्य' दोनों को संयुक्त रूप से आधुनिक 'सरकार' का पर्याय माना है।[273] क्योंकि 'स्वामी' शासन का सर्वोच्च अधिकारी होता था, इसलिए उसके बिना 'सरकार' की परिकल्पना साकार नहीं हो सकती है। आधुनिक राज्य के 'सम्प्रभुता' नामक तत्व के विषय में कुछ विद्वानों की धारणा है कि आचार्य कौटिल्य ने अपनी राज्य–प्रकृतियों में 'सम्प्रभुता' का उल्लेख नहीं किया है।[274] लेकिन कौटिलीय अर्थशास्त्र के

---

269. मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः। कौ० अर्थ० 15/180/1 पृष्ठ 765
270. Sharma, R. S. : Aspects of Political Ideas and Institutions in Ancient India. p. 21
271. मिश्र, भुवनेश्वरीदत्त : कौटिलीय राजनीति, पृष्ठ 98
272. उपरोक्त

गहन अध्ययन से यह धारणा खण्डित हो जाती है। क्योंकि आधुनिक राज्य के 'सम्प्रभुता' नामक तत्व की तुलना कौटिलीय अर्थशास्त्र की 'स्वामी' एवं 'दण्ड' नामक राज्य–प्रकृतियों से सहज रूप में की जा सकती है। चूँकि 'दण्ड' का प्रयोग करने के लिए 'स्वामी' अधिकृत था, इसलिए 'स्वामी' एवं 'दण्ड' दोनों को संयुक्त रूप से आधुनिक 'सम्प्रभुता' का प्रतिरूप माना जा सकता है।

आचार्य कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित केवल 'मित्र' नामक राज्य–प्रकृति ही ऐसी है जिसको आधुनिक राज्य के तत्वों में कहीं कोई स्थान नहीं दिया गया है। इस कारण कुछ विद्वानों ने अपना यह मत व्यक्त किया है कि 'राज्य' के लिए 'मित्र' नामक तत्व की कोई आवश्यकता नहीं है और कौटिल्य ने अनावश्यक रूप से अपनी राज्य–प्रकृतियो में इसको समाविष्ट किया है।'[275] वास्तविकता यह है कि किसी भी आधुनिक राज्य का अस्तित्व एवं विकास उपयुक्त मित्र–राज्य की सहायता पर ही निर्भर करता है। आधुनिक राजनीतिक जीवन में कोई भी राज्य बिना मित्र–राज्य के अपना अस्तित्व बनाये रखने में समर्थ नहीं हो सकता है।[276]

वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक व्यवस्था एवं अर्थ व्यवस्था में कोई भी राज्य अपने मित्र राज्यों के सहयोग के बिना प्रगति के पथ पर आगे बढ़ने में सक्षम नहीं हो सकता। आज भूमंडलीकरण एवं अन्योन्याश्रित अर्थव्यवस्था में 'मित्र' नामक तत्व का महत्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। विभिन्न राष्ट्रों के बीच 'मित्र' के माध्यम से ही वैदेशिक सम्बन्ध निर्धारित होते हैं। ऐसे में 'मित्र' को राज्य का एक अभिन्न अंग मानना आधुनिक दृष्टिकोण से भी सर्वथा प्रासंगिक प्रतीत होता है।

---

273. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव, : प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृष्ठ 32
274. Verma, V. P., Indian Political Thought : Ancient & Medieval p- 62
    डा0 मणिशंकर प्रसाद, कौटिल्य के राजनीतिक एवं सामाजिक विचार, पृष्ठ 22
275. उपरोक्त पृष्ठ 33
276. मिश्र, भुवनेश्वरी दत्त : कौटिलीय राजनीति पृष्ठ 99

इसलिए निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आधुनिक राज्य के तत्वों में 'मित्र' नामक आवश्यक तत्व का अभाव होने के कारण 'आधुनिक राज्य की परिभाषा' अपूर्ण सी प्रतीत होती है। जबकि कौटिलीय अर्थशास्त्र की राज्य–प्रकृतियों में 'मित्र' नामक प्रकृति को समाविष्ट करते हुए जो राज्य की परिभाषा की गई है वह सर्वथा तार्किक, सर्वांगपूर्ण एवं निर्विवाद प्रतीत होती है।

तृतीय अध्याय– प्रशासनिक व्यवस्था

कर्मसु चैषां नित्यं परीक्षां कारयेत्, चित्तानित्यत्वान्मनुष्याणाम्।
अश्वसधर्माणो हि मनुष्या नियुक्ताः कर्मसु विकुर्वते।।

(कौ0 अर्थ0 2/25/9)

[अधिकारियों/कर्मचारियों के आचरण का बीच–बीच में परीक्षण होते रहना चाहिए। क्योंकि मनुष्यों की चित्तवृत्तियाँ बड़ी विचित्र व अनित्य होती हैं। जैसे घुड़साल में बँधे घोड़ों को यदि रथ इत्यादि में न जोता जाये तो फिर वे बिगड़ जाते हैं। उसी तरह यदि अधिकारियों/कर्मचारियों का बीच–बीच में परीक्षण नहीं किया गया तो फिर वे उन्हीं बिगडैल घोड़ों की तरह बेकाबू हो जाते हैं।]

तृतीय अध्याय (प्रशासनिक व्यवस्था)

(क) प्रशासनिक विभाग व उनके अधिकारी :

राजतंत्रात्मक व्यवस्था के समर्थक होते हुए भी आचार्य कौटिल्य ने राज्य–कार्यो के सफल सम्पादन हेतु मंत्रि परिषद एवं विभिन्न प्रशासनिक विभागों का प्रतिपादन किया था। उसने प्रमुख प्रशासनिक विभागों को अठारह भागों में विभाजित करते हुए उन्हें 'अष्टादशतीर्थ' की संज्ञा प्रदान की है।[1] किन्तु इन प्रशासनिक विभागों का नामोल्लेख करते समय आचार्य कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट सूची में उनकी संख्या अठारह नहीं बल्कि उन्नीस है– (1) मन्त्री, (2) पुरोहित, (3) सेनापति (4) युवराज, (5) दौवारिक (6) अन्तर्वशिक (7) प्रशास्ता (8) समाहर्ता (9) सन्निधाता (10) प्रदेष्टा (11) नायक (12) पौर (13) व्यावहारिक (14) कार्मान्तिक (15) मन्त्रिपरिषद का अध्यक्ष (16) दण्डपाल (17) दुर्गपाल (18) अन्तपाल तथा (19) आटविक।[2] इस प्रकार प्रशासनिक विभागों की संख्या के संबंध में कौटिलीय अर्थशास्त्र के इस अन्तर्विरोध को लेकर विद्वानों में मतभेद देखने को मिलता है। किन्तु उपरोक्त संख्या संबंधी अन्तर्विरोध का समाधान करते हुए विद्वानों ने यह एक स्वीकार्य सुझाव दिया है कि उपरोक्त उन्नीस विभागों में से किन्हीं दो विभागों को किसी एक ही विभाग में समाविष्ट करते हुए उनकी संख्या अठारह ही मानी जा सकती है। इस प्रकार संगति सटीक वैठ सकती है। इन विद्वानों में एन0 एन0 ला तथा आर0 के0 मुखर्जी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिन्होंने 'पौर' तथा 'व्यावहारिक' इन दोनों विभागीय पदाधिकारियों को एक साथ मिलाकर उनको एक ही संयुक्त नाम 'पौर व्यावहारिक' दिया है।[3] इसी प्रकार कुछ विद्वान 'मन्त्री' और 'पुरोहित' इन दो पदाधिकारियों को मिलाकर एक ही पद मानने के पक्षधर हैं।[4] जबकि काशीप्रसाद जायसवाल जैसे कुछ विद्वानों ने आचार्य कौटिल्य के 'अष्टादशतीर्थ' के साथ संगति बैठाने हेतु उनके द्वारा प्रतिष्ठापित 'आटविक' नामक पद को बहिर्गत रखने का सुझाव दिया है।[5] जो न्यायोचित

1. एवं शत्रौ च मित्रे, ... तीर्थेष्वष्टादशस्वपि। कौ0 अर्थ0 1/7/11 पृष्ठ 35
2. . . . . . मन्त्रिपुरोहितसेनापति. . . . . . .दण्डदुर्गान्तपालाटविकेषु. . . .। उपरोक्त पृष्ठ 33
3. Law, N. N; Aspects of Ancient Indian Polity p. 88
   Mukherjee, R. K.; Chandragupta Maurya and His Times. p. 123
4. मिश्र, डॉ. भुवनेश्वरीदत्त; कौटिलीय राजनीति, पृष्ठ 174
5. Jayaswal, K. P; Hindu Polity pp. 302-03

प्रतीत नहीं होता है। इस संबंध में कुछ विद्वानों का यह मत सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है कि आचार्य कौटिल्य की सूची में जो उन्नीस विभागीय पदाधिकारियों के नाम हैं उनमें से 'मन्त्री' को अलग रखना ही श्रेयस्कर होगा। क्योंकि यहाँ पर 'मन्त्री' से आशय 'प्रधानमन्त्री' या 'महामन्त्री' है जिसके अधीन कोई विभाग विशेष नहीं होता है अपितु वह तो सर्वोच्च प्रशासनिक पदाधिकारी होने के नाते सभी विभागों की देखरेख करता है। आधुनिक युग में भी हम यही देखते हैं कि प्रधानमंत्री किसी विभाग का प्रधान न होकर सभी विभागों की देखरेख करता है। औपचारिक रूप से उसके पास जो विभाग होते भी हैं, व्यावहारिक रूप से वह उनका दायित्व अपने अन्य सहयोगी मन्त्रियों को सौंपे रहता है। तथा वह किसी एक विभाग पर नहीं अपितु सभी विभागो पर अपनी पैनी नजर रखता है। विशेष रूप से आचार्य कौटिल्य जैसे दूरदर्शी एवं प्रकाण्ड नीतिवेत्ता प्रधानमन्त्री के साथ तो यह एकदम सहज–सम्भव प्रतीत होता है कि वह प्रधानमंत्री के रूप में अपना दायित्व केवल किसी एक विभाग तक ही सीमित नहीं रखे, अपितु अपने पद की गुरुता एवं महत्ता के अनुसार उसने समस्त विभागों का नियंत्रण अपने अधीन रखना ही श्रेयस्कर समझा होगा। इस प्रकार यह मत सर्वथा तार्किक एवं स्वीकार्य प्रतीत होता है कि आचार्य कौटिल्य की सूची में जो उन्नीस विभागीय पदाधिकारियों के नाम हैं उनमें 'मन्त्री' को छोड़कर शेष सभी अठारह विभागीय पदाधिकारी उसके 'अष्टादशतीर्थ' कहलाते थे।[6] इनकी सहायता से राज्य का शासन–प्रशासन कैसे संचालित होता था, यह जानने के लिए उनके अधिकार, कर्तव्य एवं योग्यता आदि को पृथक–पृथक समझना आवश्यक है।

अष्टादर्श तीर्थों के अधिकार, कर्तव्य एवं योग्यता :

(i) पुरोहित :

प्राचीन भारतीय राज्य–व्यवस्था में पुरोहित का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। धार्मिक एवं लौकिक कार्यों में वही राजा को परामर्श देता था। प्राचीन भारतीय ग्रन्थ इस बात के साक्षी हैं कि वैदिक काल से लेकर अर्थशास्त्र के काल तक सभी क्षत्रिय–शासित राज्यों में पुरोहित

6. मिश्र, डॉ. भुवनेश्वरीदत्त, कौटिलीय राजनीति, पृष्ठ 174

का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।[7] कौटिलीय अर्थशास्त्र का सर्वेक्षण भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है। पुरोहित नामक पदाधिकारी की महत्ता को इंगित करता हुआ आचार्य कौटिल्य कहता है कि राजा को पुरोहित का उसी प्रकार अनुगामी होना चाहिए जैसे एक शिष्य अपने गुरु का, पुत्र अपने पिता का तथा सेवक अपने स्वामी का अनुगामी होता है।[8] इसके अतिरिक्त उसका दृढ़ मन्तव्य है कि पुरोहित द्वारा समृद्ध मन्त्रियों के परामर्श से अभिरक्षित तथा शास्त्रोक्त अनुष्ठानों को सम्पन्न करने वाला राजा अजेय होता हुआ अलब्ध वस्तुओं को भी सहज ही में प्राप्त कर लेता है।[9] कौटिलीय अर्थशास्त्र में 'पुरोहित' पद के लिए विशिष्ट अर्हताऐं निर्धारित करते हुए कहा गया है कि राजा को चाहिए कि वह उच्च्य कुल में उत्पन्न, शीलगुण सम्पन्न, वेद–वेदाङ्गो के ज्ञाता, ज्योतिषशास्त्र, शकुनशास्त्र व दण्डनीति में पारङ्गत, अथर्वदवेद में निर्दिष्ट उपायों द्वारा दैवी तथा मानुषी आपदाओं का निवारण करने में समर्थ, व्यक्ति को 'पुरोहित' पद पर नियुक्त करे।[10] कौटिलीय अर्थशास्त्र में पुरोहित के अधिकार एवं कर्तव्य भी निर्धारित किए गए हैं। पुरोहित उस अन्तरङ्ग मन्त्र–परिषद का महत्वपूर्ण मन्त्री होता था जिससे प्रत्येक कार्य को प्रारंभ करने से पहले राजा के द्वारा मंत्रणा की जाती थी।[11] अमात्यों को मन्त्री पद पर नियुक्त करने के पूर्व उनकी जो 'उपधा' पद्धति से परीक्षा ली जाती थी उसमें प्रधानमंत्री के साथ पुरोहित की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती थी।[12] विशेष रूप से अमात्यों की 'धर्मोपधा' नामक परीक्षा तो स्वयं पुरोहित ही लेता था।[13] पुरोहित द्वारा ली गई उक्त परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद ही किसी अमात्य को 'मन्त्री' जैसे महत्वपूर्ण पद पर नियुक्त किया जाता था। केवल शान्तिकाल में ही नहीं, अपितु युद्धकाल में भी पुरोहित का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व था। युद्ध क्षेत्र में पुरोहित के द्वारा सेना को यह कह कर प्रोत्साहित किया जाता

---

7. Dikshitar, V. R. R. : Hindu Administrative Institutions p. 121
8. तमाचार्य शिष्यः पितरं पुत्रो, भृत्यः स्वामिनमिव चानुवर्तत। कौ0 अर्थ0 1/4/8 पृष्ठ 24
9. ब्राह्मणेनैधितं क्षत्रं . . . . .शास्त्रानुगतशस्त्रितम्। उपरोक्त
10. पुरोहितमुदितोदितकुलशीलं. . . . . . . .अथर्वभिरुपायैश्च प्रतिकर्तारं कुर्वीत। उपरोक्त
11. कृतस्वपक्षपरपक्षोपग्रहः कार्यारम्मांश्चिन्तयेत्। मन्त्रपूर्वाः सर्वारम्माः। कौ0 अर्थ0 1/10/14 पृष्ठ 43
12. मन्त्रिपुरोहितसखः सामान्येष्वधिकरणेषु स्थापयित्वाऽमात्यानुपधामिः। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 25
13. पुरोहितमयाज्ययाजनाध्यापने. . . . .इति धर्मोपधा। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 25

था कि– वेदों के अनुसार 'यज्ञ–अनुष्ठान समाप्त हो जाने के बाद और दक्षिणा दिए जाने के बाद यजमान को जो फल मिलता है, युद्ध क्षेत्र में वीरगति पाए हुए सैनिक को भी वही फल मिलता है।[14] कौटिलीय अर्थशास्त्र की ही भाँति अन्य प्राचीन ग्रन्थों जैसे– महाभारत[15, 16] तथा शुक्रनीति[17] आदि में भी प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत पुरोहित को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है।

(ii) सेनापति :

कौटिलीय अर्थशास्त्र के अष्टादशतीर्थों में पुरोहित के बाद 'सेनापति' को ही स्थान दिया गया है। सेनापति को हर प्रकार के युद्ध करने, हथियार चलाने और आन्वीक्षकी आदि विद्याओं में पारंगत होना चाहिए; हाथी, घोडे और रथ चलाने की योग्यता होना चाहिए तथा उसे चतुरंगिणी सेना के कार्य और स्थान का भी सम्यक ज्ञाता होना चाहिए।[18] इसके अतिरिक्त उसमें अपनी भूमि, युद्धकाल, शत्रुसेना, शत्रुव्यूह को तोड़ना, विखरी हुई सेना को समेटना, विखरी हुई शत्रुसेना का मर्दन करना, दुर्ग तोड़ना तथा उचित समय पर युद्ध के लिए प्रस्थान करना, इन सभी बातों को देखने, समझने, और करने की पूरी क्षमता होना चाहिए।[19] सेनापति को युद्धकाल में अपनी सेना को संचालित करते हुए चढाई करने, कूच करने एवं धावा बोलने के लिए बाजे, ध्वजा तथा झण्डियो के द्वारा ऐसे संकेतों का प्रयोग करना चाहिए जिन्हें शत्रु सेना न समझ सके।[20]

अर्थशास्त्र के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि कुशल सैन्य संचालन हेतु सेनापति की देखरेख में सेना के अनेक उपविभाग गठित होते थे जिनको निम्न प्रकार क्रमवद्ध किया जा सकता है– (i) अश्व सेना (ii) गजसेना (iii) रथसेना (iv) पदाति (पैदल) सेना (v) नौ सेना (जल सेना) (vi) सैन्य निर्माण विभाग (vii) सैन्य स्वास्थ्य विभाग। इनमें से अधिकांश विभागों

---

14. वेदेष्वप्यनुश्रूयते. . . . . . . .मन्त्रिपुरोहिताभ्यामुत्साहयेद्योधान्। कौ0 अर्थ0 10/150–152/3 पृष्ठ 646–47
15. धर्मात्मा मन्त्रविद् येषां . . . . यस्य नास्ति पुरोहितः। महा. शा. प. 73/2–3
16. योगक्षेमो हि राष्ट्रस्य. . . . . . . .हि समायत्तः पुरोहिते। उपरोक्त 74/1
17. यत्कोपमीत्याराजापि धर्मनीतिरतो भवेत्। शुक्रनीति 2/78
18. तदेव सेनापतिः सर्वयुद्धप्रहरण. . . . . बलस्यानुष्ठानाधिष्ठानं विद्यात्। कौ0 अर्थ0 2/49–50/33 पृष्ठ 237
19. स्वभूमिं युद्धकालं. . . . . . दुर्गवधं यात्राकालं च पश्येत्। उपरोक्त
20. तूर्यध्वजपताकाभिर्व्यूहसंज्ञाः प्रकल्पयेत्। स्थाने याने प्रहरणे सैन्यानां विनये रतः।। उपरोक्त पृष्ठ 238

के प्रबन्धन के लिए प्रत्येक विभाग का एक विभागीय प्रभारी होता था जो अपने विभाग के कुशल–प्रबन्धन हेतु उत्तरदायी होता था। अश्वसेना, गजसेना तथा रथसेना के प्रभारियों को क्रमशः अश्वाध्यक्ष हस्त्यध्यक्ष तथा रथाध्यक्ष कहा जाता था। आधुनिक परमाणु–युग में उक्त सेनाओं की प्रासंगिकता दिनों–दिन कम होती जा रही है। इसलिए उनकी विस्तृत चर्चा करना यहाँ अधिक उपयोगी नहीं होगा। हाँ, आधुनिक युग के लिए उपयोगी सेना के अन्य विभागों की चर्चा अवश्य महत्वपूर्ण है।

(अ) पत्त्यध्यक्ष (पैदल सेना का अध्यक्ष) :

कौटिलीय अर्थशास्त्र में जो दायित्व रथाध्यक्ष के हैं, लगभग वही दायित्व पत्त्यध यक्ष के भी हैं। इसके अतिरिक्त उससे अपेक्षा की जाती थी कि वह मौलबल (राजधानी की रक्षा करने वाली सेना), भृतबल (वेतनभोगी सेना), श्रोणिबल (विभिन्न प्रदेशों में रखी गई सेना) मित्रबल (मित्र राजा की सेना), अमित्रबल (शत्रु राजा की सेना) और अटवीबल (वन–संरक्षण के लिए नियुक्त सेना) के सामर्थ्य–असामर्थ्य की पूरी जानकारी रखे। उसको जंगल, तराई, मोर्चाबन्दी, छल–कपट, खाई, हवाई, दिन और रात आदि सभी प्रकार के युद्धों की जानकारी रखना चाहिए तथा देशकाल की दृष्टि से सेनाओं की उपयोगिता और अनुपयोगिता का भी उसे ज्ञान होना चाहिए।[21]

(आ) नावध्यक्ष (नौकाध्यक्ष) :

कौटिलीय अर्थशास्त्र में जलमार्गों के प्रबन्धन तथा उनसे राष्ट्र पर संभावित आक्रमण से बचाव हेतु 'नावध्यक्ष' नामक महत्वपूर्ण पद सृजित किया गया था।[22] अपने दायित्व के रूप में नावध्यक्ष समुद्रतट की, समीपवर्ती नदी की, समुद्र के नौका मार्गों की, झीलों, तालाबों तथा गाँव के छोटे–छोटे जलीय मार्गों की भलीभाँति निगरानी करता था।[23] वह इन स्थानों के तट पर बसे हुए निवासियों, मछुवारों तथा व्यापारियों से कर संग्रह भी करता

21. एतेन पत्त्यध्यक्षो व्याख्यातः। कौ0 अर्थ0 2/49–5/33, पृष्ठ 237
22. विस्तृत विवरण के लिए देखे– कौटि0 अर्थ0 का 'नावध्यक्षः' नामक अध्याय पृष्ठ 212–15
23. नावध्यक्षः समुद्रसंयाननदीमुख. . . . . .स्थानीयादिष्ववेक्षेत। उपरोक्त पृष्ठ 212

था।[24] मछली, मोती तथा शंख आदि कीमती सामुद्रिक वस्तुओं का प्रबन्धन वह खानों के अध्यक्ष की तरह करता था।[25] नावध्यक्ष की दायित्व सूची में राज्य के सुरक्षात्मक कार्य भी सम्मिलित थे। इस दृष्टि से उसे यह अधिकार था कि वह चोर, डकैतों की नौकाओं को, शत्रु देश की ओर जाने वाली नौकाओं को तथा व्यापारिक नियमों का उल्लघंन करने वाली नौकाओं को नष्ट कर दे।[26] विदेशों के वही लोग देश में प्रवेश कर सकते थे जिन्हें अनुज्ञा (पासपोर्ट) मिल गई हो।[27] इसके अतिरिक्त वह शत्रु राजा के गुप्तचरों, असामाजिक तत्वों तथा सन्दिग्ध व्यक्तियों को तत्काल गिरफ्तार भी करवा सकता था।[28] उसके अधीन शासक (नाव का कप्तान), नियामक (नाव चालक) दात्रग्राहक (लंगड़ डालने वाला), रश्मिग्राहक (पतवार पकडने वाला), तथा उत्सेचक (नौका में भरे हुए पानी को वाहर उलीचने वाला) आदि कर्मचारी कार्य करते थे।[29] प्रत्येक मल्लाह को अपने प्रतिदिन के कार्य का विवरण तथा दैनिक आय नावध्यक्ष को सौपना पडती थी।[30] निर्धारित दायित्वों की अवहेलना किए जाने पर मल्लाहों को दण्ड दिए जाने का भी प्राविधान था।[31]

(इ) सैन्य निर्माण विभाग :

सेना में प्रचलित निर्माण विभाग को 'विष्टि' की संज्ञा देते हुए आचार्य कौटिल्य ने निर्देश दिया है कि सैन्य शिविर, सैन्य मार्ग, नदी–पुल, बाँध, कुआँ, घाट आदि तैयार करना; घास आदि उखाड़कर मैदान साफ करना, युद्ध की मशीनें, अस्त्र–शस्त्र तथा कवच आदि युद्धोपयोगी सामान तथा हाथी घोड़ों के लिए घास ढोना, उनकी रक्षा का प्रबन्ध करना, युद्धभूमि में कवच, हथियार तथा घायल सैनिकों को दूसरी जगह ले जाना आदि 'विष्टि' विभाग के कर्मचारियों के कार्य हैं।[32]

---

24. तद्वेलाकूलग्रामाः क्लृप्तं दद्युः . . . . . . शंखमुक्ताग्राहिणो नौभाटकं दद्युः। उपरोक्त
25. अध्यक्षश्चैषां खन्यध्यक्षेण व्याख्यातः। उपरोक्त
26. हिंस्रिका निर्घातयेद्, अमित्रविषयातिगाः पण्यपत्तनचारित्रोपघातिकाश्च। उपरोक्त पृष्ठ 213
27. कृतप्रवेशाः पारविषयिकाः सार्थप्रमाणाः विशेयुः। उपरोक्त पृष्ठ 214
28. परस्य भार्या कन्यां वित्तं वापहरन्तं. . . . . .दीघ्रपथिकममुद्रं चोपग्राहयेत्। उपरोक्त
29. शासकनियामकदात्ररश्मिग्राहक. . . . . .महानदीषु प्रयोजयेत्। उपरोक्त पृष्ठ 213
30. कार्मिकप्रत्ययं दद्यान्नित्यं चाह्निकमावहेत्। उपरोक्त पृष्ठ 215
31. अकालेऽतीर्थे चानिसृष्टतारिणः पादोनसप्तविंशतिपणस्तरात्ययः। उपरोक्त पृष्ठ 213
32. शिविरमार्गसेतु . . . . . .प्रतिविद्धापनयनमिति विष्टिकर्माणि। कौ0अर्थ0 10/153–154/4 पृष्ठ 654

(ई) सैन्य स्वास्थ्य विभाग :

कौटिलीय अर्थशास्त्र के सर्वेक्षण से तत्कालीन सैन्य स्वास्थ्य सेवाओं के विकसित स्वरूप का बोध होता है। हम पाते हैं कि सेना में न केवल मनुष्य योनि के सैनिकों को स्वास्थ्य सेवाऐं उपलब्ध थीं अपितु अश्व सेना, गजसेना तथा रथसेना के हाथी–घोडों की भी उतनी ही स्वास्थ्य–चिन्ता की गई है, उन्हें भी वैसी ही स्वास्थ्य सेवाऐं सुलभ कराने की स्तुत्य चेष्टा की गई है। इसीलिए वहाँ लूले–लँगडे और बीमार घोड़ों की समुचित चिकित्सा कराने का निर्देश है।[33] घोड़ों के स्वास्थ्य–संरक्षण के लिए वहाँ अश्व–चिकित्सक नियुक्त होते थे जो यह निर्देश देते थे कि मौसम के अनुसार घोड़ों का क्या–क्या आहार होना चाहिए तथा उनके मोटा होने या फुर्तीला होने का क्या तरीका है।[34] आचार्य कौटिल्य जैसे सहृदय नीतिकार के अलावा शायद ही अन्य कोई राजनीतिक चिन्तक इन मूक पशुओं के प्रति इतनी संवदेनशीलता दिखा पाता। वह व्यवस्था देता है कि घोड़ों को शरद और ग्रीष्म दोनों ऋतुओं में प्रतिदिन दो–दो बार नहलाना चाहिए, गन्ध और मालाऐं तो उन्हें प्रतिदिन दी जाना चाहिए तथा शुक्लपक्ष में (पूर्णमासी के दिन) उनके कुशल क्षेम के लिए स्वस्तिवाचन पढा जाना चाहिए।[35] इसी प्रकार हाथियों के स्वास्थ्य संरक्षण हेतु भी वहाँ पर निर्देश है कि यदि रास्ता चलने से, किसी बीमारी से, अधिक कार्य करने से, मद से अथवा वृद्धावस्था से हाथियों को कोई कष्ट हो तो गज–वैद्य उनकी सावधानीपूर्वक चिकित्सा करें।[36] इस प्रकार हाथी–घोडे आदि पशुओं के प्रति भी इतनी सदाशयता प्रदर्शित करने वाले आचार्य कौटिल्य ने सैनिकों के स्वास्थ्य संरक्षण एवं स्वास्थ्य संवर्द्धन हेतु तो जैसे कोई कसर ही वाकी नहीं छोडी है। उसका स्पष्ट निर्देश है कि सैनिकों के स्वास्थ्य संरक्षण और मनोविनोद के लिए चिकित्सक, चीड़–फाड़ करने वाले औजार, चिमटी, दवा, घी, तेल, मरहम पट्टी, सहचिकित्सक, खाने–पीने की सामग्री और सैनिकों को प्रसन्न करने वाली स्त्रियाँ, इन सबको युद्ध भूमि के लिए प्रस्थान करते समय सेना के पिछले हिस्से में रखा जाये।[37]

---

33. अप्रशस्तन्यङ्गव्याधितांश्चावेदयेत्। कौ0 अर्थ0 2/46/30 पृष्ठ 222
34. अश्वानां चिकित्सकाः शरीरह्रासवृद्धिप्रतीकारमृतुविभक्तं चाहारम्। उपरोक्त पृष्ठ 227
35. द्विरह्नः स्नानमश्वानां. . . . . . . शुक्लेषु स्वस्तिवाचनम्।। उपरोक्त पृष्ठ 228
36. पथिव्याधिकर्ममदजराभितप्तानां चिकित्सकाः प्रतिकुर्युः। कौ0 अर्थ0 2/48/32 पृष्ठ 234
37. चिकित्सकाः शस्त्रयन्त्रागदस्नेहवस्त्रहस्ताः. . . . पृष्ठतस्तिष्ठेयुः। कौ0अर्थ0 10/150–152/3 पृष्ठ 649

(iii) युवराज :

आचार्य कौटिल्य के द्वारा 'युवराज' को समुचित महत्व प्रदान किया गया है। राजतंत्रात्मक व्यवस्था में चूँकि युवराज ही राजपद का उत्तराधिकारी होता था, इसलिए वह सम्पूर्ण शासन–प्रशासन का भावी कर्णधार होता था। इस दृष्टि से कौटिलीय अर्थशास्त्र में युवराज की शिक्षा–दीक्षा एवं योग्यता पर विशेष ध्यान दिया गया है। उसके अनुसार आत्मसम्पत् गुणों से युक्त राजकुमार ही 'युवराज' अथवा 'सेनापति' पद पर नियुक्त होने योग्य है।[38] इन आत्मसम्पत् गुणों का उल्लेख पूर्व में हो चुका है।[39]

आचार्य कौटिल्य ने 'युवराज' पद हेतु सामान्यतः राजा के ज्येष्ठ राजकुमार को ही पदारूढ करने की संस्तुति की है।[40] किन्तु उसके साथ योग्य एवं विनीत होने का अनिवार्य प्रतिबन्ध भी लगा दिया गया है। इसी दृष्टिकोण से उसने व्यवस्था दी है कि किसी भी दशा में अयोग्य एवं अविनीत एक मात्र पुत्र को राजपद का उत्तराधिकारी न बनाया जाये।[41] आचार्य कौटिल्य ने पर्याप्त चिन्तन मनन के बाद राजकुमारो को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है। जिनमें प्रथम है बुद्धिमान राजकुमार। धर्म और अर्थ संबंधी उपदेश को उचित रीति से ग्रहण करके तदनुसार आचरण करने वाले को 'बुद्धिमान' राजकुमार कहा गया है।[42]
राजकुमारों का द्वितीय प्रकार है– 'आहार्यबुद्धि' राजकुमार। धर्म और अर्थ को समझ लेने वाले किन्तु तदनुसार आचरण न करने वाले को 'आहार्यबुद्धि' राजकुमार कहा गया है।[43]
तृतीय प्रकार के राजकुमार हैं– 'दुर्बुद्धि' राजकुमार। अवगुणों में लीन तथा 'धर्म' और 'अर्थ' से द्वेष रखने वाले को 'दुर्बुद्धि' राजकुमार कहते हैं।[44]

दुर्बुद्धि राजकुमार की संभावित कल्पना करते हुए उपाय सुझाया गया है कि यदि राजा का एक ही पुत्र हो और वह भी दुर्बुद्धि निकले तो राजा उस दुर्बुद्धि राजकुमार से ऐसा

38. आत्मसम्पन्नं सैनापत्ये यौवराज्ये व स्थापयेत्। कौ० अर्थ० 1/12/16 पृष्ठ 56
39. वाग्मी प्रगल्भः स्मृतिमति. . . . . .वृद्धोपदेशाचार इत्यात्मसम्पत्। कौ० अर्थ० 6/96/1 पृष्ठ 441–42
40. अन्यत्रापद ऐश्वर्यं ज्येष्ठभागि तु पूज्यते। कौ० अर्थ० 1/12/16 पृष्ठ 57
41. न चैकपुत्रमविनीतं राज्ये स्थापयेत। उपरोक्त
42. शिष्यमाणो धर्मार्थावुपलभते चानुतिष्ठति च बुद्धिमान्। उपरोक्त पृष्ठ 56
43. उपलभमानो नानुतिष्ठत्याहार्यबुद्धिः। उपरोक्त
44. अपायनित्यो धर्मार्थद्वेषी चेति दुर्बुद्धिः। उपरोक्त

पुत्र उत्पन्न कराने का यत्न करे जो राजा बनने योग्य हो। यदि ऐसा भी संभव न हो तो अपनी पुत्री के पुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी संभालने योग्य बनाये। यदि राजा वृद्ध हो गया हो, अथवा सदैव रुग्ण रहता हो तो अपने किसी ममेरे भाई अथवा अपने ही कुल के किसी बन्धु से या किसी गुणी सामंत से अपनी पत्नी में 'नियोग' कराकर पुत्र पैदा करवाये। किन्तु अयोग्य एवं अविनीत पुत्र को कभी भी राज्यभार न सौंपे।[45]

उत्तराधिकार के दावेदार अनेक राजकुमारों के होने पर आचार्य कौटिल्य ने उक्त समस्या के समाधान हेतु यह व्यावहारिक सुझाव दिया है कि वे सभी राजकुमार मिलकर सामूहिक रूप से राज्य को सभालें। क्योंकि कौटिल्य की इस संबंध में दृढ़ सम्मति है कि सामूहिक राज्य व्यवस्था से एक बडा लाभ यह भी है कि किसी एक व्यक्ति के व्यसन ग्रस्त होने पर अन्य व्यक्ति उसके दायित्व को संभाल लेते हैं। इस प्रकार पृथ्वी पर कभी अराजकता उत्पन्न नहीं हो पाती तथा प्रजा की सुखद अवस्था सदैव बनी रहती है।[46] राजा का आकस्मिक निधन होने पर प्रथम तो आत्मसम्पत् गुणों से सम्पन्न राजकुमार को ही उत्तराधिकार सौंपा जाय। किन्तु यदि आत्मसम्पन्न राजकुमार न हो तो फिर व्यसनी राजकुमार को, राजकन्या को अथवा गर्भवती महारानी को उत्तराधिकारी बनाया जाय।[47] यहाँ पर कौटिलीय व्यवस्था में एक गम्भीर अन्तर्विरोध दृष्टिगोचर होता है। पहले तो वह निर्देश देता है कि अयोग्य एवं अविनीत राजकुमार को राजपद का उत्तराधिकारी न बनाया जाय तथा बाद में वह एक व्यसनी राजकुमार के राज्याभिषेक की अनुमति भी प्रदान करता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि आनुवंशिक परम्परा का पोषक होने के कारण आचार्य कौटिल्य ने सामान्य स्थिति में तो एक योग्य एवं विनीत राजकुमार के ही राज्याभिषेक की संस्तुति की है, किन्तु आपात्कालीन असामान्य परिस्थिति में राज्य को किसी संभावित अराजकता एवं उथल पुथल से बचाने के लिए उसने एक व्यसनी राजकुमार के राज्याभिषेक की भी अनुमति प्रदान की है।

---

44. स यद्येकपुत्रः पुत्रोत्पत्तावस्य .....न चैकपुत्रमविनीतं राज्ये स्थाययेत्। कौ0अर्थ0 1/12/16 पृष्ठ 57
45. कुलस्य वा भवेद्राज्यं कुलसङ्घो हिं दुर्जयः। अराजव्यसनाबाधः शश्वदावसति क्षितिम्। उपरोक्त
46. राजपुत्रमात्मसम्पन्नं राज्ये ......मित्रामित्रदूतानां च दर्शयेत्। कौ0 अर्थ0 5/94–95/6 पृष्ठ 435

यहाँ पर कौटिलीय अर्थशास्त्र का यह सन्दर्भ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि आपातकाल में अथवा राजकुमार की अल्पवयस्कता की स्थिति में प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा अपने नेतृत्व का समर्थन प्राप्त कर तथा राजसिंहासन पर राजकन्या या गर्भवती महारानी को बैठाकर अमात्य स्वयं शासन कार्य प्रारंभ करे।[48] उसके बाद वह राजकुमार की विद्या, विनय और अन्य प्रकार की शिक्षाओं का समुचित प्रबन्ध करे।[49] यदि राजकन्या को राजसिंहासन पर बैठाया गया हो तो समान जाति के पुरुष से उसका विवाह कर पुत्र उत्पन्न कराना चाहिए जिसका भविष्य में राज्याभिषेक किया जा सके।[50] यदि राजसिहासन पर महारानी को बैठाया गया है तो उसके चित्त की शान्ति के लिए उसके पास कुलीन, अल्पवयस्क, सौम्य वेदपाठी छात्र को धर्मशास्त्र सुनाने के लिए नियुक्त करे।[51] जब राजकुमार युवा हो जाय और राज्यभार संभाल सके तब उसके मनोभावों को जानने के लिए अमात्य उससे अपना मंत्रिपद छोडने के लिए कहे। यदि वह स्वीकार कर ले तो अमात्य को वहाँ से चला जाना चाहिए। लेकिन यदि वह न जाने के लिए कहे तो फिर उसी के पास रहकर पूर्ववत् राजकाज की व्यवस्था करता रहे।[52] कौटिलीय अर्थशास्त्र की उक्त व्यवस्था की तुलना आधुनिक राज्य–प्रतिनिधि प्रणाली (Modern Regency System) से की जा सकती है। आचार्य कौटिल्य ने बडी दूरदर्शिता के साथ उक्त व्यवस्था संभवतः इसलिए प्रतिपादित की थी कि किसी भी आपातकाल में ऐसी कोई क्रान्ति या उथल पुथल न होने पाये जिससे परम्परागत राजवंश को सत्ताच्युत करके कोई नया राजा राजसिंहासन पर बैठ जाय।[53]

राजपुत्र (युवराज) की शिक्षा दीक्षा पर विशेष बल दिया गया है। क्योंकि वही राजपद के उत्तराधिकारी होते थे तथा युवराज और सेनापति जैसे महत्वपूर्ण पदों पर उन्हीं की नियुक्ति होती थी।[54] आचार्य कौटिल्य के अनुसार अशिक्षित राजपुत्रों का कुल घुन लगी

---

48. प्रकृतिकोपकमधर्मिष्ठमनैकान्तिकं..... मित्रामित्रदूतानां च दर्शयेत्। कौ0 अर्थ0 5/94–95/6 पृष्ठ 435
49. विनयकर्मणि च कुमारस्य प्रयतेत। उपरोक्त पृष्ठ 436
50. कन्यायां समानजातीयादपत्यमुत्पाद्य वाभिषिंचेत्। कौ0 अर्थ0 5/94–95/6 पृष्ठ 436
51. मातुश्चित्तक्षोभमयात् कुल्यमल्पसत्त्वं छात्रं च लक्षण्यमुपनिदध्यात्। उपरोक्त
52. यौवनस्थं च याचेत् विश्रमं चित्रकारणात्। परित्यजेददुष्यन्तं तुष्यन्तं चानुपालयेत्।। उपरोक्त
53. Mukherjee, R. K. Chanragupta Maurya and His Times p. 68
54. आत्मसम्पन्नं सेनापत्ये यौवराज्ये वा स्थापयेत्। कौ0 अर्थ0 1/12/16 पृष्ठ 56

लकडी की तरह बिना युद्ध आदि के ही नष्ट हो जाता है।[55] राजपुत्रों की शिक्षा हेतु कौटिलीय अर्थशास्त्र में एक विस्तृत शिक्षा–योजना प्रस्तुत की गई है।[56] यह योजना राजपुत्र के गर्भकाल में आने से पूर्व ही प्रारंभ हो जाती है। उसमें ऐसी व्यवस्था की गई है कि अयोग्य राजपुत्र पैदा ही न हो। रानी के ऋतुमती होने पर राजा सन्तान के लिए ऐश्वर्य, विद्या एवं बुद्धि हेतु ऋत्विक, इन्द्र एवं वृहस्पति आदि देवताओं के निमित्त हविदान करे। इसके बाद जब रानी गर्भवती हो तो कौमारभृत्य अंग के ज्ञाता शिशु चिकित्सकों के निर्देशानुसार गर्भ की पुष्टि तथा उसके सुखद प्रजनन हेतु प्रयत्न किये जायें। राजकुमार के पैदा हो जाने पर विद्वान पुरोहित विधिपूर्वक उसका संस्कार करें। जब वह पढने–समझने में समर्थ हो जाये तो विभिन्न विषयों के अधिकारी विद्वान उसको शिक्षा दें।[57]

राजपुत्र के मुण्डन संस्कार के बाद उसे वर्णमाला एवं अंकगणित सिखाई जाती थी। उपनयन संस्कार के बाद उसे विद्वान आचार्यों द्वारा त्रयी एवं आन्वीक्षकी विद्या की, विभागाध्यक्षों द्वारा वार्ता विद्या की, तथा वक्ता प्रयोक्ता विशेषज्ञों द्वारा दण्डनीति विद्या की शिक्षा प्रदान की जाती थी।[58] सोलह वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करने के बाद उसका समावर्तन संस्कार तथा उसके बाद विवाह संस्कार होता था। विवाह संस्कार के बाद विनय की वृद्धि हेतु वह विद्यावृद्ध पुरुषों की संगति में रहता था। क्योंकि वे विद्यावृद्ध पुरुष ही विनय के मूल होते थे।[59] राजपुत्रों की शिक्षा–दीक्षा के लिए एक समय सारिणी निर्धारित थी। जिसके अन्तर्गत उन्हें दिन के प्रथम भाग में हाथी, घोडा, रथ, अस्त्र–शस्त्र आदि विद्याओं की शिक्षा ग्रहण करनी पडती थी। अपरान्ह में उन्हें इतिहास का श्रवण करना होता था; जिसके अन्तर्गत पुराण, इतिहास, आख्यायिका, उदाहरण (मीमांसा), धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्र आदि विषय थे। दिन और रात के शेष भाग में उन्हें नये ज्ञान का अर्जन, पूर्वज्ञान का चिन्तन–मनन तथा

---

55. काण्ठमिव हि घुणजग्धं राजकुलमविनीतपुत्रमभियुक्तमात्रं भज्येत्। कौ0 अर्थ0 1/12/16 पृष्ठ 54–55
56. विस्तृत विवरण के लिए देखें-- हरिओमशरण निरंजन, आचार्य कौटिल्य का शिक्षा दर्शन
57. तस्मादृतुमत्यां महिष्याम् ऋत्विजः. . . . . समर्थ तद्विदो विनयेयुः। कौ0 अर्थ0 1/12/16 पृष्ठ 55
58. वृत्तचौलकर्मा लिपिं संख्यानं. . . . . . . .दण्डनीतिं वक्तृप्रयोक्तृभ्यः। कौ0 अर्थ0 1/2/4 पृष्ठ 14
59. ब्रह्मचर्यं चाषोडशाद्वर्षात्. . . . . विद्यावृद्धसंयोगो विनयवृद्ध्यर्थं तन्मूलत्वाद्विनयस्य। उपरोक्त

समझ में न आने वाले विषयों को भली–भाँति समझने के लिए उन्हें बार–बार सुनना होता था।[60] आचार्य कौटिल्य ने अपनी शिक्षा–योजना में शास्त्र–श्रवण को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हुए कहा है कि श्रवण से ज्ञान, ज्ञान से योग तथा योग से आत्मबल प्राप्त होता है– यही विद्या का सुपरिणाम है।[61]

(iv) दौवारिक :

कौटिलीय अर्थशास्त्र में 'दौवारिक' नामक पदाधिकारी का विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है। यत्र–तत्र उपलब्ध स्फुट सन्दर्भों से तद्विषयक कुछ सामग्री संकलित की जा सकती है। 'निशान्त प्रणिधि[62] तथा 'आत्मरक्षितकम्'[63] नामक अध्यायों में राजा के विशाल राजभवन तथा उसमें कार्यरत सुरक्षा अधिकारियों/कर्मचारियों का विस्तृत वर्णन है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजभवन का संरक्षण एवं प्रबन्धन करना ही 'दौवारिक' का मुख्य दायित्व था। यहाँ पर राजा और राजभवन की सुरक्षा के संबंध में आचार्य कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित कुछ महत्वपूर्ण निर्देशों का उल्लेख लाभप्रद प्रतीत होता है। कौटिल्य के अनुसार रनिवास के अन्दर जाकर राजा किसी विश्वस्त वृद्ध परिचारिका के साथ ही महारानी से मिले। अकेला किसी रानी के पास न जाये। क्योंकि अनेक ऐतिहासिक घटनाओं से यह प्रमाणित हो चुका है कि ऐसा करने से अनेक राजा धोखेबाजों से धोखा खाकर अपना जीवन गँवा चुके हैं। इसलिए रानियों से मिलते समय राजा को इस प्रकार की अदृष्ट विपत्तियों से सावधान रहना चाहिए।[64] इसके अतिरिक्त राजा को चाहिए कि वह सिर मुडाए हुए अथवा जटाधारी वहुरूपिये धूर्तो तथा बाहरी दासियों के साथ रानियों का कभी सम्पर्क न होने दे। रानियों के सगे–सम्बन्धी भी उनसे प्रसव अथवा बीमारी के अलावा और कभी न मिलने पायें।[65] अन्तःपुर के सभी

---

60. पूर्वमहर्भागं हस्त्यश्वरथप्रहरण. . . . . . अग्रहीतानामाभीक्ष्ण्यश्रवणं च। कौ0 अर्थ0 1/2/4 पृष्ठ 15
61. श्रुताद्धि प्रज्ञोपजायते, प्रज्ञायाः योगो, योगादात्मवत्तेति विद्यासामर्थ्यम्। उपरोक्त
62. कौटि0 अर्थ0 1/15/19 पृष्ठ 65–68
63. कौटि0 अर्थ0 1/16/20 पृष्ठ 69–73
64. अन्तर्गृहगतः स्थविर. . . . . . .तस्मादेतान्यास्पदानि परिहरेत्। कौ0 अर्थ0 1/15/19 पृष्ठ 67
65 मुण्डजटिलकुहकप्रतिसंसर्ग. . . . . पश्येयुरन्यत्र गर्भव्याधिसंस्थाभ्यः। उपरोक्त

परिचारक–परिचारिकाऐं अपने–अपने स्थानों पर ही रहें, एक दूसरे के स्थान पर न जाने पावें। इसी प्रकार भीतर का कोई भी आदमी वाहरी आदमियों से न मिलने पावे।[66] जो भी वस्तु महल के भीतर अथवा बाहर जाये उसका भली–भाँती निरीक्षण करके उसके संबंध में सारे विवरण संबंधित पंजिका में अंकित होना चाहिए तथा ऐसी प्रत्येक वस्तु पर राजकीय मुहर भी लगायी जाना चाहिए।[67] उपरोक्त सभी व्यवस्थाओं के प्रबन्धन हेतु उत्तरदायी पदाधिकारी 'दौवारिक' ही था।

(V) अन्तर्वंशिक :

राजा और उसके अन्तःपुर की रक्षा का दायित्व संभालने वाले अधिकारी को आचार्य कौटिल्य ने 'अन्तर्वंशिक' कहा है।[68] 'कामोपधा' और 'भयोपधा' परीक्षाओ में उत्तीर्ण अमात्य को इस पद पर नियुक्त किया जाता था।[69] कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्राप्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि राजा की अंगरक्षक सेना के प्रधान को ही 'अन्तर्वंशिक' कहा गया है। अंगरक्षक सेना द्वारा राजा एवं उसके अन्तःपुर की व्यापक सुरक्षा व्यवस्था का प्राविधान किया गया है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रातःकाल राजा के विस्तर से उठते ही धनुष बाण लिए हुए स्त्री–सैनिक उसे चारों ओर से अपने सुरक्षा घेरे में ले लेते थे। शयनकक्ष से उठकर राजा जब दूसरे कक्ष में प्रवेश करता था तो वहाँ कुर्ता–पगडी पहने हुए नपुंसक तथा दूसरे सेवक राजा की देखरेख के लिए उपस्थित रहते थे। तीसरे कक्ष में कुबडे, बौने एवं निम्न जाति के परिजन राजा की रक्षा करते थे। चौथे कक्ष में मंत्रियों, संबंधियों और हाथ में भाला लिए द्वारपालों द्वारा राजा की रक्षा की जाती थी।[70] बाहर आते जाते हुए राजा दण्डधारी रक्षकों द्वारा दोनों ओर से सुरक्षित बनाए गए मार्ग पर चला करता था। रास्ते में कहीं भी राजा को शस्त्र रहित पुरुष, सन्यासी, लूले लंगडे या अपंग व्यक्ति नहीं मिलना चाहिए। पुरुषों की भीड़ में

---

66. स्वभूमौ च वसेत् सर्वः परभूमौ न सञ्चरेत्। न च बाह्येन संसर्गं कश्चिदाभ्यन्तरो ब्रजेत्। उपरोक्त पृष्ठ 68
67. सर्वं चावेक्षितं द्रव्यं निबद्धागमनिर्गमम्। निर्गच्छेदधिगच्छेद्वा मुद्रासंक्रान्तभूमिकम्। उपरोक्त।
68. अन्तर्वंशिकसैन्यं राजानमन्तःपुरं च रक्षेत्। कौ0 अर्थ0 1/16/20 पृष्ठ 69
69. कामोपधाशुद्धान बाह्याभ्यन्तरविहाररक्षासु भयोपधाशुद्धानासन्नकार्येषु राज्ञः। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 27
70. शयनादुत्थितः स्त्रीगणैर्धन्विभिः. . . . संबंधिभिदौवारिकैश्च प्रासपाणिभिः। कौ0 अर्थ0 1/16/20 पृष्ठ 69

भी राजा को कभी नहीं घुसना चाहिए। मन्दिर, सभा, उत्सव तथा पार्टी आदि में सम्मिलित होने के लिए उसके साथ कम से कम दस सिपाही तथा एक सेनानायक अवश्य रहना चाहिए।[71] दर्शनार्थ आए हुए किसी सिद्ध या तपस्वी व्यक्ति से राजा तभी मिले जब कुछ सशस्त्र विश्वस्त पुरुष उसके साथ हों।[72] राजा का भोजन तैयार हो जाने पर माहानसिक (पाकशाला—अध्यक्ष) का यह दायित्व था कि वह पहले तैयार भोजन को अग्नि तथा पक्षियों को देकर उसकी विशुद्धता की जाँच करे, तब कहीं जाकर वह भोजन राजा को दिया जाय।[73] इसी प्रकार विष—वैद्यों का यह दायित्व था कि वे राजा को दी जाने वाली औषधि, जल तथा मद्य की पहले स्वयं जांच करने के बाद ही राजा को दें।[74] राजा की दाढ़ी मूछ बनाने वाले नाई तथा वस्त्राभूषण पहनाने वाले कर्मचारियों को अपने उस्तरा तथा वस्त्राभूषण आदि का प्रयोग करने से पूर्व उन पर राजमहल के कञ्चुकी आदि से मुहर लगवाना आवश्यक था।[75] राजा के स्नान के समय उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुऐं जैसे— उबटन, चन्दन, सुगन्धित चूर्ण (पाउडर) तथा पटवास (इत्र) आदि को दासियाँ पहले अपनी छाती एवं बाहों पर लगाकर उनका परीक्षण करती थीं, तब कहीं राजा के शरीर पर उनका प्रयोग किया जाता था।[76] विश्वस्त सैनिकों के साथ होने पर ही राजा पालकी तथा घोड़े आदि की सवारी करता था तथा विश्वस्त नाविक के रहने पर ही वह नाव की सवारी करता था। नौका विहार के लिए वह तभी निकलता था जब नदी के दोनों स्तरों पर सेना तैयार कर दी जाती थी। मछुवारों द्वारा जाँचे—परखे गए घाट पर ही वह स्नान करने जाता था।[77] तथा सपेरों द्वारा परिशोधित उद्यान में ही वह भ्रमण कता था। उपरोक्त समस्त सुरक्षा व्यवस्था संभालने का मुख्य दायित्व 'अन्तर्वशिक' का ही था।

---

71. निर्याणेऽभियाने च. . . . . दशवर्गिकाधिष्ठितानि गच्छेत्। कौ0 अर्थ0 1/16/20 पृष्ठ 73
72. आप्तशस्त्रग्राहाधिष्ठितः सिद्धतापसं पश्येत्। उपरोक्त पृष्ठ 72
73. गुप्तेदेशे महानसिकः. . . . . वयोभ्यश्च बलिं कृत्वां। उपरोक्त पृष्ठ 69
74. भिषग्भैषज्यागाराद. . . . . . चौषधेन व्याख्यातम। उपरोक्त पृष्ठ 71
75. कल्पकप्रसाधकाः. . . . . अन्तर्वशिकहस्तादादाय परिचरेयुः। उपरोक्त
76. स्नानानुलेपन प्रघर्षचूर्णवासस्नानीयानि स्ववक्षोवाहुषु। उपरोक्त पृष्ठ 72
77. मौलपुरुषाधिष्ठितं. . . . . व्यालग्राहपरिशुद्धमुद्यानं गच्छेत्। कौ0 अर्थ0 1/16/20 पृष्ठ 72

अंगरक्षक सैनिकों की योग्यता–अयोग्यता पर कौटिलीय अर्थशास्त्र में सम्यक् चर्चा की गई है। वंशपरम्परानुगत, उच्चकुलोत्पन्न, शिक्षित, अनुरक्त, तथा प्रत्येक कार्य को सम्यकरूपेण समझने वाले पुरुष ही राजा के द्वारा अंगरक्षक नियुक्त किए जाने योग्य होते थे। किन्तु धन और सम्मान से रहित विदेशी व्यक्ति तथा एक बार निष्कासित होने के बाद पुनः नियुक्त स्वदेशी व्यक्ति किसी भी दशा में अंगरक्षक नियुक्त किए जाने योग्य नहीं होता है।[78]

(vi) प्रशास्ता :

कौटिलीय अर्थशास्त्र में 'प्रशास्ता' नामक अधिकारी का विस्तृत वर्णन प्राप्त नहीं होता है। उसमें उपलब्ध कतिपय स्फुट सूत्रों से इंगित होता है कि युद्धकाल में सेना एवं सेनापति की आवश्यकतानुकूल रचनात्मक तथा अभियान्त्रिक कार्यो में सहायता करना ही प्रशास्ता का मुख्य दायित्व था। इसीलिए आचार्य कौटिल्य ने निर्देशित किया है कि सेना और राजा के युद्धस्थल की ओर प्रस्थान करने से पूर्व ही 'प्रशास्ता' नामक अधिकारी अपने कारीगरों, मजदूरों तथा अन्य उप विभागीय अध्यक्षों को साथ लेकर युद्धस्थल की ओर निकल जाय तथा आवश्यकतानुसार मार्ग–सुरक्षा एवं जल आदि का सुप्रबन्ध करे।[79] अष्टादशतीर्थो में दौवारिक, अन्तर्वशिक, प्रशास्ता, समाहर्ता तथा सन्निधाता को वेतनमान की दृष्टि से एक ही कोटि में रखते हुए आचार्य कौटिल्य ने इनका वार्षिक वेतन चौबीस हजार पण निर्धारित किया है।[80] ऐसा प्रतीत होता है कि कौटिलीय अर्थशास्त्र में सैन्य निर्माण विभाग द्वारा कराये जाने वाले जिन 'विष्टि'[81] कर्मो का उल्लेख पीछे किया जा चुका है वे प्रशास्ता नामक अधिकारी की देखरेख में ही सम्पन्न होते थे।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि आधुनिक विकसित युग की सेनाओं में जो

---

78. पितृपैतामहं महासम्बन्धानुबन्धं. . . . . वाप्यपकृत्योपग्रहीतम्। कौ0 अर्थ0 1/16/20 पृष्ठ 69
79. पुरस्तादध्वनः सम्यक्प्रशास्ता रक्षणानि च। यायाद्वर्धकिविष्टिभ्यामुदकानि च कारयेत्।
कौ0 अर्थ0 10/147/1 पृष्ठ 639
80. दौवारिकान्तर्वशिकप्रशास्तृसमाहर्तृसन्निधातारश्चतुर्विंशति साहस्राः। कौ0 अर्थ0 5/91/3 पृष्ठ 420
81. शिविरमार्गसेतुकूपतीर्थ. . . . . इति विष्टिकर्माणि। कौ0 अर्थ0 10/153–154/4 पृष्ठ 654

दायित्व सैन्य अभियन्त्रण सेवा अनुभाग (Military Engineering Service Cell) को सौंपे जाते हैं उनकी परिकल्पना एवं क्रियान्वयन 'विष्टिकर्म' के रूप में आचार्य कौटिल्य जैसा दूरदर्शी चिन्तक हजारों वर्ष पूर्व ही कर चुका था। आधुनिक युग के सैन्य अभियन्त्रण सेवा अनुभाग के प्रभारी अधिकारी के रूप में जिस सैन्य अभियन्ता (Garrison Engineer) अथवा कमाण्डर वर्क्स इंजीनियर (C.W.E./Commander Works Engineer) की नियुक्ति की जाती है, कदाचित् उसी को आचार्य कौटिल्य ने प्राचीनकाल में 'प्रशास्ता' की संज्ञा प्रदान की है।

(vii) समाहर्ता :

अष्टादशतीर्थों में 'समाहर्ता' एक महत्वपूर्ण पदाधिकारी होता था जिसका कौटिलीय अर्थशास्त्र के 'समाहर्तृसमुदयप्रस्थानाम[82] तथा 'समाहर्तृप्रचारः'[83] नामक दो अध्यायों में विस्तृत विवरण उपलब्ध है। राजस्व संग्रह करना तथा आय–व्यय का लेखा जोखा रखना ही 'समाहर्ता' का मुख्य कार्य था। आचार्य कौटिल्य ने समाहर्ता द्वारा सँभाले जाने वाले आय–व्यय को मुख्य रूप से निम्न प्रकार विभाजित किया है–

(क) आय–(i) आय-शरीर (आय के प्रमुख स्रोत)[84]

(ii) आयमुख (आय के गौण स्रोत)[85]

(ख) व्यय–(i) व्ययशरीर (व्यय की प्रमुख मदें)[86]

पुनः आय-शरीर को सात भागों में विस्तारपूर्वक विभाजित किया गया है–[87]

प्रथम प्रकार की आय को आचार्य कौटिल्य ने 'दुर्ग' कहा है। जिसे स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि शुल्क (चुंगी), दण्ड (जुर्माना), पौतव (वॉट–माप), नगराध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष (अमीन, पटवारी, कानूनगो आदि), मुद्राध्यक्ष, सुराध्यक्ष (आवकारी अधिकारी), सूनाध्यक्ष (फाँसी देने वाला), सूत्राध्यक्ष, तेल–घी का विक्रेता, सुवर्णाध्यक्ष, दूकान, वेश्या, द्यूत, वास्तुक (शिल्पी),

82. कौटि० अर्थ० 2/22/6 पृष्ठ 99–102
83. कौटि० अर्थ० 2/53–54/35 पृष्ठ 241–44
84. इत्यायशरीरम्। उपरोक्त पृष्ठ 100
85. मूलं भागो व्याजी परिघः क्लृप्तं रूपिकमत्ययश्चायमुखम्। उपरोक्त
86. देवपितृपूजादानार्थं. . . . . . व्ययशरीरम्। उपरोक्त
87. समाहर्ता दुर्गं, राष्ट्रं, खनिं, सेतुं, वनं, व्रजं वणिक्पथं चावेक्षेत्। कौ० अर्थ० 2/22/6 पृष्ठ 99
88. शुल्कं दण्डः पौतवं नागरिको. . . . . द्वारवाहिरिकादेयं च दुर्गम्। उपरोक्त

वढ़ई, लुहार, सुनार, मन्दिरों के निरीक्षक, द्वारपाल और नट–नर्तक आदि से लिया जाने वाला धन 'दुर्ग' कहलाता है।[105]

द्वितीय प्रकार की आय को 'राष्ट्र' कहा गया है। जिसे परिभाषित करते हुए कहा गया है कि सीता (खेती), भाग (कृषि–उपज का षष्ठांश कर), बलि (उपहार), कर, वणिक् नदीपालस्तर (नदी पार कराने का टैक्स), नाव–कर, पट्टन (कस्बों की आय) विवीत (चरागाहों की आय), वर्तनी (मार्गकर), रज्जू (भूमिनिरीक्षकों द्वारा वसूला गया धन) तथा चोररज्जू (चोरों का पकडने के लिए ग्रामवासियों से मिला धन) से प्राप्त होने वाला धन 'राष्ट्र' कहलाता है।[89]

आय का तृतीय प्रकार 'खनि' कहलाता है। सोना, चाँदी, हीरा, मणि, मोती, मूँगा, शंख, लोहा, लवण, भूमि, पत्थर और खनिज पदार्थ आदि से प्राप्त होने वाले धन को 'खनि' कहते हैं।[90]

चतुर्थ प्रकार की आय को 'सेतु' कहते हैं। फूल, फल, केला, सुपारी, अन्न के खेत, अदरख और हल्दी के खेतों से होने वाली आय को 'सेतु' कहा जाता है।[91]

पाँचवें प्रकार की आय को 'वन' कहते हैं। हिरण आदि पशु, लकडी आदि द्रव्य तथा हाथियों के जंगल से प्राप्त होने वाली आय को 'वन' कहा जाता है।[92]

छठवें प्रकार की आय को 'व्रज' कहा गया है। गाय, भैंस, वकरी, भेड, गधा, ऊँट, घोडा, खच्चर आदि जानवरों से होने वाली आय 'व्रज' कहलाती है।[93]

सातवें प्रकार की आय को 'वणिक्पथ' कहते हैं। स्थल मार्ग तथा जल मार्ग से होने वाली आय को 'वणिक्पथ' कहा जाता है।[94]

'आयमुख' को परिभाषित करते हुए आचार्य कौटिल्य ने निर्देशित किया हे कि मूल (अनाज, साग–सब्जी आदि पर लगाया गया टैक्स), भाग (पैदावार का षष्ठांश कर) ब्याजी

---

89. सीता, भागो बलिः करो. . . . ,रज्जूश्चोररज्जूश्च राष्ट्रम्। कौ0 अर्थ0 2/22/6 पृष्ठ 99
90. सुवर्णरजतवज्रमणिमुक्ता. . . . . प्रस्तररसधातवः खनिः। उपरोक्त
91. पुष्पफलंवाटषण्डकेदारमूलवापाः सेतुः। उपरोक्त पृष्ठ 100
92. पशुमृगद्रव्यहस्तिवनपरिग्रहो वनम्। उपरोक्त
93. गोमहिषमजाविकं खरोष्ट्रमश्वाश्वतराश्च व्रजः। उपरोक्त
94. स्थलपथो वारिपथश्च वणिक्पथः। उपरोक्त

(कपटी व्यापारियों से दण्ड रूप में वसूला गया धन), परिघ (लावारिस सम्पत्ति), क्लृप्त (नियतकर), रूपिक (नमक कर) तथा अत्यय (जुर्माने का धन) आदि 'आयमुख' (आय के गौण स्रोत) कहलाते हैं।[95]

'व्ययशरीर' की व्याख्या करते हुए कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्रतिपादित किया गया है कि देवपूजा, पितृपूजा, दान, स्वस्तिवाचन आदि धार्मिक कृत्य; अन्तःपुर, रसोईघर, दूतप्रेषण, कोष्ठागार, शस्त्रागार, पण्यगृह, कुप्यगृह, कर्मान्त (कृषि, व्यापार), विष्टि (सैन्य अभियन्त्रण सेवाऐं), पैदल, हाथी, घोडा तथा रथ आदि चारों प्रकार के सैन्य– संग्रह का व्यय, गाय, भैंस, वकरी आदि उपयोगी पशुओं का व्यय, हरिण, पक्षी तथा अन्य हिंसक जंगली जानवरों की रक्षा के लिए किया जाने वाला व्यय; तथा लकडी एवं घास आदि के जंगलो की सुरक्षा के लिए किया जाने वाला व्यय 'व्ययशरीर' (व्यय की प्रमुख मदे) कहलती है।[96]

इसके अतिरिक्त समाहर्ता के छैः कार्य और निर्धारित किए गए हैं– (क) करणीय (ख) सिद्ध (ग) शेष (घ) आय (ङ) व्यय (च) नीवी।[97] इनको आचार्य कौटिल्य ने पुनः उपविभाजित किया है।

'करणीय' नामक प्रथम कार्य के आचार्य कौटिल्य ने छैः भेद किए हैं–(i) संस्थान (ii) प्रचार (iii) शरीरावस्थान (iv) आदान (v) सर्वसमुदयपिण्ड (vi) संजात।[98]

'सिद्ध' नामक द्वितीय कार्य को भी छैः भागो में वाँटा गया है–(i) कोशार्पित (ii) राजहर (iii) पुरव्यय (iv) परसंवत्सरानुवृत्त (v) शासनमुक्त (vi) मुखाज्ञप्त।[99]

'शेष' नामक तृतीय कार्य कै भी छैः भेद किए गए हैं–(i) सिद्धप्रकर्मयोग (ii) दण्डशेष (iii) बलात्कृत प्रतिस्तब्ध (iv) अवसृष्ट (v) असार (vi) अल्पसार।[100]

'आय' नामक चतुर्थ कार्य तीन प्रकार का होता है– (i) वर्तमान आय–प्रतिदिन की आय को 'वर्तमान आय'कहा जाता है।[101]

---

95. मूलं भागो व्याजी परिघः क्लृप्तं रूपिकमत्ययश्चायमुखम्। कौ० अर्थ० 2/22/6 पृष्ठ 100
96. देवपितृपूजादानार्थं. . . . . व्ययशरीरम्। उपरोक्त
97. करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययौ नीवी च। उपरोक्त पृष्ठ 101
98. संस्थानं प्रचारः शरीरावस्थानम्. . . . .एतत्करणीयम्। उपरोक्त
99. कोशापिर्ततं राजहरः पुरव्ययश्च. . . . .एतत्सिद्धम। उपरोक्त
100. ग़िसद्धप्रकर्मयोगः दण्डशेषः. . . . . एतच्छेषमृसारमल्पसारं च। उपरोक्त
101. दिवसानुवृत्तो वर्तमानः। उपरोक्त

(ii) पर्युषित आय–गत वर्ष का वकाया अथवा शत्रु देश से प्राप्त धन 'पर्युषित' आय कहलाता है।[102]

(iii) अन्यजात आय–विस्मृत धन की स्मृति, अपराध स्वरूप प्राप्त धन, करेतर उपायों से प्राप्त धन, कांजीहाउस से प्राप्त धन, भेंटस्वरूप प्राप्त धन, शत्रुसेना से अपहृत धन और लावारिस का धन 'अन्यजात' आय कहलाता है।[103]

आय के एक अन्य स्रोत 'व्ययप्रत्याय' का उल्लेख करते हुए कौटिलीय अर्थशास्त्र में स्पष्ट किया गया है कि सैनिक खर्च से बचा हुआ धन, स्वास्थ्य विभाग के व्यय से बचा हुआ धन तथा भवन निर्माण से बचा हुआ धन 'व्ययप्रत्याय' कहलाता है।[104] इसके अतिरिक्त विक्री के समय वस्तुओं की कीमत बढ़ जाने से, निषिद्ध वस्तुओं के वेचने से, वाँट–तराजू आदि की बेईमानी से तथा खरीदारों की प्रातिस्पर्धा से प्राप्त धन भी आय का एक स्रोत होता है।[105]

'व्यय' नामक पाँचवाँ कार्य चार प्रकार का होता है– (i) नित्यव्यय–प्रतिदिन के नियमित व्यय को 'नित्यव्यय' कहते है।[106]

(ii) नित्योत्पादिक व्यय–नियमित व्यय से अधिक खर्च हो जाने वाले धन को 'नित्योत्पादिक व्यय' कहते है।[107]

(iii) लाभ व्यय–पाक्षिक, मासिक तथा वार्षिक आय के लिए व्यय किया धन 'लाभ व्यय' कहलाता है।[108]

(iv) लाभोत्पादिक व्यय–पाक्षिक, मासिक तथा वार्षिक आय के लिए संभावित व्यय से अधिक खर्च हो जाने वाले धन को 'लाभोत्पादिक व्यय' कहते है।[109]

---

102. परमसांवत्सरिकः परप्रचारसंक्रान्तो वा पर्युषितः। कौ0 अर्थ0 2/22/6 पृष्ठ 101
103. नष्टप्रस्मृतमायुक्तदण्डः. . . . . .निधिश्चान्यजातः। उपरोक्त
104. विक्षेपव्याधितान्तरारम्भशेषश्च व्यय प्रत्यायः। कौ0 अर्थ0 2/22/6 पृष्ठ 101, 2/31/15 पृष्ठ 158
105. विक्रये पण्यानामर्घवृद्धिरुपजा. . . . .क्रयसङ्घर्षे वा वृद्धिरित्यायः। उपरोक्त
106. दिवसानुवृत्तो नित्यः। उपरोक्त पृष्ठ 102
107. तयोरुत्पन्नो नित्योत्पादिको लाभोत्पादिक इति। उपरोक्त
108. पक्षमाससंवत्सरलाभो लाभः। उपरोक्त
109. तयोरुत्पन्नो नित्योत्पादिको लाभोत्पादिक इति। उपरोक्त

छठवें कार्य को 'नीव' कहा गया है। सभी तरह के आय–व्यय का हिसाब करने के बाद बचत रूप में प्राप्त होने वाला धन 'नीवी' कहलाता है।[110] यह दो प्रकार का होता है–

(i) प्राप्त नीवी–'प्राप्त नीवी' धन उसे कहते हैं जो खजाने में जमा हो चुका हो।[111]

(ii) अनुवृत्त नीवी–'अनुवृत्त नीवी' धन उसे कहते हैं जो खजाने में जमा किया जाने वाला हो।[112]

इस प्रकार राजस्व संग्रह करके उसके आय–व्यय का समुचित लेखा–जोखा रखते हुए समाहर्ता का मुख्य लक्ष्य था कि राज्य की आय में वृद्धि तथा व्यय में कमी हो। अर्थात् किसी भी रूप में आय से अधिक व्यय न होने पाये। लेकिन यहाँ पर एक विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि आचार्य कौटिल्य ने बड़ी दूरदर्शिता के साथ 'समाहर्ता' को यह भी अधिकार दिया है कि किसी भावी लाभ की प्रत्याशा में पहले अधिक व्यय भी किया जा सकता है।[113] इस प्रकार आधुनिक युग की औद्योगिक नीति में बड़ी बड़ी परियोजनाओं के क्रियान्वयन हेतु वर्तमान लाभ की चिन्ता किये बिना जो भारी पूँजी निवेश की संस्तुति/स्वीकृति प्रदान की जाती है, उसकी आचार्य कौटिल्य द्वारा अब से हजारो वर्ष पूर्व ही परिकल्पना की जा चुकी थी।

उपरोक्त राजस्व–संग्रह तथा आय–व्यय के अतिरिक्त 'समाहर्ता' को सामान्य प्रशासन के भी कुछ दायित्व संभालने पडते थे। 'समाहर्तृप्रचारः' नामक अध्याय में उसके इन दायित्वों का विस्तृत उल्लेख है।[114] उसका दायित्व था कि वह सम्पूर्ण जनपद को चार भागों में विभक्त कर उन्हें श्रेष्ठ, मध्यम तथा कनिष्ठ के क्रम में रखकर उनकी गणना, उपज, भौगोलिक परिस्थिति, उनका नक्शा, खसरा एवं रकवा आदि अपनी पंजिका में अंकित करे। जो गाँव अपने जनपद को नियमित रूप से सैनिक जवान दें तथा जो गाँव अन्न, पशु, सोना, चाँदी, नौकर–चाकर आदि नियमित रूप से दें, उनका विवरण भी वह अपनी पंजिका में दर्ज करे।[115]

---

110. व्ययसञ्जातादायव्ययविशुद्धा नीवी। उपरोक्त
111. व्ययसञ्जातादायव्ययविशुद्धा नीवी प्राप्ता चानुवृत्ता चेति। कौ0 अर्थ0 पृष्ठ 2/22/6 पृष्ठ 102
112. उपरोक्त
113. एवं कुर्यात्समुदयं वृद्धिं चायस्य दर्शयेत। ह्रासं व्ययस्य च प्राज्ञः साधयेच्च विपर्ययम्। उपरोक्त
114. कौटि0 अर्थ0 2/53–54/35 पृष्ठ 241–44
115. समाहर्ता चतुर्धा जनपदं विभज्य. . . . इदमेतावदिति निबन्धयेत्। उपरोक्त पृष्ठ 241

जनपदीय सामान्य प्रशासन हेतु समाहर्ता की सहायतार्थ 'गोप' एवं 'स्थानिक' नामक कर्मचारी नियुक्त किए जाते थे। समाहर्ता के आदेशानुसार पाँच–पाँच या दस–दस गाँवो का एक–एक केन्द्र बनाकर उसका सामान्य प्रशासन 'गोप' नामक अधिकारी देखता था।[116] अथवा उक्त केन्द्र कुलों के आधार पर सृजित करते हुए दस कुलों, बीस कुलों या चालीस कुलों का एक एक केन्द्र बनाकर उनका प्रबन्धन यह 'गोप' नामक अधिकारी देखता था।[117] गोप को इन गाँवों का विस्तृत विवरण अपनी पंजिका में अंकित करना होता था। खेतों के विवरण वाली पंजिका में उसे निम्न तथ्य अंकित करना होते थे–खेती योग्य भूमि, खेती के अयोग्य (पथरीली) भूमि, ऊबड–खाबड भूमि, साठी–गैहूँ योग्य भूमि, उद्यान योग्य भूमि, केले के योग्य भूमि, ईख के योग्य भूमि, वन योग्य भूमि, आबादी योग्य भूमि, चैत्य, देवालय, तालाब, शमशान, अन्नक्षेत्र, प्याऊ, तीर्थस्थान, चारागाह, रथ, गाडी, तथा पैदल मार्ग के योग्य भूमि।[118]

इसी प्रकार जनपद के चौथाई भाग का प्रबन्धन 'स्थानिक' नामक अधिकारी देखता था।[119] दुर्ग के चौथाई भाग के प्रबन्ध करने का दायित्व भी इसी 'स्थानिक' नामक अधिकारी पर ही था।[120] इन 'गोप' तथा 'स्थानिक' नामक अधिकारियों के सहयोगार्थ उनके कार्यक्षेत्र में एक 'प्रदेष्टा' नामक अधिकारी होता था जो वहाँ पर राज्य–रिपुओं का दमन करता था।[121] अधिक व्यय करने वाले तथा अधिक मदिरा पान करने वाले व्यसनी लोगों की सूचना इन 'गोप' तथा 'स्थानिक' नामक अधिकारियों को देना पडती थी।[122] अपने अधीनस्थ कार्यरत इन अधिकारियों/कर्मचारियों की गुप्त सूचना प्राप्त करने के लिए 'समाहर्ता' नामक अधिकारी विभिन्न बेषधारी गुप्तचरों की भी नियुक्ति करता था।[123]

---

116. तत्प्रदिष्टः पञ्चग्रामीं दशग्रामीं वा गोपश्चिन्तयेत। कौ0 अर्थ0 2/22/6 पृष्ठ 241
117. समाहर्तृवन्नागरिको नगरं . . . . .विंशतिकुलीं चत्वारिंशत्कुलीं वा। कौ0 अर्थ0 2/55/36 पृष्ठ 245
118. कृष्टाकृष्टस्थलकेदाराराम. . . . . . विवीतपथिसंख्यानेनक्षेत्राग्रं. . . . । कौ0 अर्थ0 2/53–54/35, पृ0241
119. एवञ्च जनपदचतुर्भागं स्थानिकः चिन्तयेत्। उपरोक्त पृष्ठ 242
120. एवं दुर्गचतुर्भागं स्थानिकश्चिन्तयेत्। कौ0 अर्थ0 2/55/36 पृष्ठ 245
121. गोपस्थानिकस्थानेषु प्रदेष्टारः कार्यकरणं बलिप्रग्रहं च कुर्युः। कौ0 अर्थ0 2/53–54/35, पृ0 242
122. अतिव्ययकर्तारमत्याहितकर्माणं च निवेदयेयुः। कौ0 अर्थ0 2/55/36, पृ0 245
123. समाहर्तृप्रदिष्टाश्च. . . प्रवेशनस्थानगमनप्रयोजनान्युपलभरेन। कौ0 अर्थ0 2/53–54/35 पृष्ठ 242–43

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि 'समाहर्ता' नामक पदाधिकारी के दायित्व इतने व्यापक थे कि उनके निर्वहन हेतु अन्य अनेक अधीनस्थ अधिकारी उसकी सहायतार्थ नियुक्त किए जाते थे। कौटिलीय अर्थशास्त्र में समहर्ता के अधीनस्थ कार्यरत निम्न अधिकारियों का वर्णन उपलब्ध होता है– (i) देवताध्यक्ष (ii) अक्षपटलाध्यक्ष (गाणनिक) (iii) पण्यध्यक्ष (iv) कुप्याध्यक्ष (v) पौतवाध्यक्ष (vi) शुल्काध्यक्ष (vii) सूत्राध्यक्ष (viii) सीताध्यक्ष (ix) सुराध्यक्ष (x) सूनाध्यक्ष (xi) गणिकाध्यक्ष (xii)गोऽध्यक्ष (xiii) मुद्राध्यक्ष (xiv) विवीताध्यक्ष।

(viii) सन्निधाता :

कौटिलीय अर्थशास्त्र में राजकोष के प्रधान अधिकारी के रूप में 'सन्निधाता' नामक प्रशासनिक अधिकारी का वर्णन प्राप्त होता है। अन्य कर्मचारियों द्वारा एकत्र धन को राजकोष में जमा कराना[124] तथा कोषगृह, पण्यगृह (राजकीय वस्तुओं का विक्री स्थल) कोष्ठागार, कुप्यगृह (अन्नागार), शस्त्रागार, कारागार, भूमिग्रह (तहखाना) तथा ध्रुवनिधि (गुप्त खजाना) का निर्माण कराना 'सन्निधाता' के प्रमुख कार्य थे। उसका दायित्व था कि वह बाह्य तथा आन्तरिक आय के बारे में सम्यक् जानकारी रखे। इस संबंध में यदि उससे सौ वर्ष पीछे की आय का लेखा–जोखा भी पूछा जाय तो तत्काल ही वह उसकी समुचित जानकारी दे सके। बचे हुए कोष को वह सदा राजकोष में जमा दिखाता रहे। वह अपने विश्वस्त पुरुषों के सहयोग से ही धन संग्रह का कार्य करता था।[125]

सन्निधाता के अधीनस्थ निम्नांकित अधिकारी कार्य करते थे– (i) कोषाध्यक्ष (ii) कोष्ठागाराध्यक्ष (iii) आयुधागारध्यक्ष (iv) बन्धनागाराध्यक्ष (v) सुवर्णाध्यक्ष।

(ix) प्रदेष्टा :

फौजदारी संबंधी विवादों के निस्तारण हेतु नियुक्त प्रधान न्यायाधीश को कौटिलीय अर्थशास्त्र में 'प्रदेष्टा' कहा गया है। उसका दायित्व था कि वह राजा और अमात्यों की सहमति लेकर दण्ड देते समय अपराध को, अपराध के कारणों को, अपराधी की हैसियत को,

---

124. सन्निधाता कृतावस्थमन्यैः कोशप्रवेश्यं प्रतिगृहणाति। कौ0 अर्थ0 8/130–32/4 पृष्ठ 577
125. विस्तृत विवरण के लिए देखें–कौ0 अर्थ0 का 'सन्निधातृनिचयकर्म' नामक अध्याय, पृ0 95–98

अपराध के वर्तमान तथा भावी परिणामों को तथा देशकाल की स्थिति को भलीभाँति समझ लें; तदनन्तर वह न्याय के अनुसार अपराधियों को प्रथम, मध्यम तथा उत्तम दण्ड दें।[126] राज्य के विभागीय अध्यक्षों अधिकारियों ओर कर्मचारियों पर निगरानी करने का दायित्व भी समाहर्ता और प्रदेष्टा नामक अधिकारियों का था।[127] कण्टकशोधन (पीड़क व्यक्तियों से प्रजा की रक्षा) के लिए तीन प्रदेष्टा तथा तीन मंत्री नियुक्त किए जाते थे।[128] बनावटी साधु, बनिये, कारीगर, नट, भिखारी तथा ऐन्द्रजालिक आदि से राज्य की प्रजा की रक्षा करने का दायित्व 'प्रदेष्टा' का ही था।[129] 'गोप' तथा 'स्थानिक' नामक अधिकारियों की सहायता से वह जनपद के चोरों का तथा 'नागरिक' नामक अधिकारी की सहायता से दुर्ग के चोरों का पता लगाता था।[130] भिन्न–भिन्न प्रकार के अपराधियों को उनके अपराध के अनुसार न्यायोचित दण्ड देना उसी का महत्वपूर्ण दायित्व था।[131] *यहाँ पर यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि प्रदेष्टा द्वारा यदि निर्धारित नियमों एवं कानूनो का उल्लंघन किया जाता था तो उसे दण्डित किए जाने का भी प्राविधान था।*[132]

(x) नायक :

युद्ध काल में सेना के मुख्य संचालक को कौटिलीय अर्थशास्त्र में 'नायक' की संज्ञा प्रदान की गई है। 'नायक' को सम्यक्रूपेण परिभाषित करते हुए कहा गया है कि दस रथ और दस हाथियों के अधिकारी को 'पदिक', दस 'पदिकों' के अधिकारी को 'सेनापति' तथा दस 'सेनापतियों' के अधिकारी को 'नायक' कहा जाता है।[133] इस प्रकार स्पष्ट है कि 'नायक' का पद 'सेनापति' से भी अधिक उच्च् एवं महत्वपूर्ण था। 'नायक' का यह दायित्व

---

126. पुरुषं चापराधं च.. . . .राज्ञश्च प्रकृतीनां च कल्पयेदन्तरा स्थितः।। कौ0 अर्थ0 4/85/10 पृष्ठ 388
127. समाहर्तृप्रदेष्टारः पूर्वमध्यक्षाणामध्यक्षपुरुषाणां च नियमनं कुर्युः। कौ0 अर्थ0 4/84/9 पृष्ठ 380
128. प्रदेष्टारस्त्रयस्त्रयोऽमात्याः कटकशोधनं कुर्युः। कौ0 अर्थ0 4/76/1 पृष्ठ 345
129. एवं चोरानचोराख्यान. . . . . .वारयेद्देशपीडनात्।। उपरोक्त पृष्ठ 351
130. सगोपस्थानिको बाह्यं प्रदेष्टा . . . . निर्दिष्टहेतुभिः। कौ0 अर्थ0 4/81/6 पृष्ठ 371
131. एतद्विषयक विस्तृत विवरण के लिए देखें– सर्वाधिकरणरक्षणम्, एकाङ्गवधनिष्क्रयः, शुद्धचित्रश्च दण्डकल्पः;, कन्याप्रकर्म,, अतिचारदण्डः,नामक अध्याय। कौ0 अर्थ0 4/84/9, 4/85/10, 4/86/11, 4/87/12, 4/88/13 पृष्ठ 380–402
132. धर्मस्थः प्रदेष्टा वा हैरण्यमदण्ड्यं क्षियति. . . .तदण्टगुणं दण्डं दद्यात्। कौ0 अर्थ0 4/84/9 पृष्ठ 383
133. अङ्गदशकस्यैकः पतिः पदिकः. . . तददशकस्यैको नायक इति। कौ0 अर्थ0 10/158–159/6 पृष्ठ 665

था कि वह विशेष वाद्य शब्दो द्वारा अथवा पताका–ध्वजाओं द्वारा व्यूह में खडी सेना के लिए सांकेतिक इशारों को निर्धारित करे। युद्ध में खडी सेना को तितर–बितर करने के लिए, तितर–बितर सेना को एकत्रित करने के लिए, चलती हुई सेना को रोकने के लिए, रुकी हुई सेना को चलाने के लिए, आक्रमण करती हुई सेना को लौटाने के लिए तथा प्रहार करने के लिए यथावसर उक्त संकेतो का प्रयोग किया जाय।[134] गुप्तचरों के माध्यम से अनेक प्रकार के छल–कपट का प्रयोग करके, अनेक प्रकार की अफवाहें फैलाकर, विषैले रसायनों एवं औषधियो का प्रयोग करके शत्रु–सेना को बेचैन करने तथा उस पर विजय प्राप्त करने का दायित्व उसी का था।[135] क्योंकि शस्त्रबल की अपेक्षा बुद्धि बल को अधिक शक्तिशाली मानने वाले आचार्य कौटिल्य की यह स्पष्ट मान्यता है कि 'धनुर्धारी के धनुष से छोडा गया बाण, संभव है, किसी एक ही व्यक्ति को मारे; या संभव है कि निशाना चूकने पर वह उसे भी न मार सके। किन्तु एक बुद्धिमान व्यक्ति के द्वारा किया गया बुद्धि–बल का प्रयोग गर्भस्थ प्राणियो को भी नष्ट कर देता है।[136] सेना का मनोबल बनाये रखने हेतु 'नायक' युद्धस्थल में सेना के आगे चलता था[137] वास्तुविद्या में निपुण अभियन्ताओं, कारीगरों और ज्योतिषियों के परामर्श से 'नायक' ही सैन्य छावनी (स्कन्धावार) का निर्माण करवाता था।[138] उसे मन्त्रिपरिषद के अन्य सदस्यों के बराबर ही बारह हजार पण वार्षिक वेतन मिलता था।[139] युद्धस्थल पर सेना का पडाव डलवाना तथा व्यूह रचना करना आदि सैन्य कार्यो का प्रबन्धन 'नायक' एवं 'सेनापति' नामक अधिकारियों के सुपुर्द रहता था।[140]

(xi) पौर :

नगर प्रशासन को सँभालने वाले उच्च अधिकारी को कौटिलीय अर्थशास्त्र में

---

134. स तूर्यघोषध्वजपताका. . . . .गमने व्यावर्तने प्रहरणे च। कौ0 अर्थ0 10/158–159/6 पृष्ठ 665
135. समे व्यूहे देशकालसारयोगात्. . . . परस्योद्वेगमाचरेत्। उपरोक्त
136. एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुः. . . . . . हन्याद् गर्भगतानपि। उपरोक्त पृष्ठ 666
137. पुरस्तान्नायकः। कौ0 अर्थ0 10/148–149/2 पृष्ठ 640
138. वास्तुकप्रशस्ते वास्तुनि नायक. . . . . . भये स्थाने च। कौ0 अर्थ0 10/147/1 पृष्ठ 637
139. कुमारकुमारमातृनायक. . . . . ह्येतावता भवन्ति। कौ0 अर्थ0 5/91/3 पृष्ठ 420
140. पञ्चधनुः शतावकृष्ट. . . . . .सेनापतिनायकौ व्यूहेयाताम्। कौ0 अर्थ0 10/155–157/5 पृष्ठ 655

'पौर'[141] अथवा 'नागरिक'[142] की संज्ञा प्रदान की गई है। 'नागरिक' की सहायतार्थ 'गोप' तथा 'स्थानिक' नामक अधीनस्थ अधिकारी नियुक्त होते थे। दस, बीस और चालीस कुलो की प्रशासनिक व्यवस्था के लिए एक 'गोप' की तैनाती की जाती थी। जो उन कुलों के स्त्री पुरुषों के वर्ण, गोत्र, नाम, कार्य, संख्या तथा उनके आय व्यय के संबंध में सम्पूर्ण जानकारी रखता था। दुर्ग के चौथाई भाग के प्रबन्धन हेतु 'स्थानिक' नामक अधिकारी नियुक्त किया जाता था।[143] नगर में सुख, शान्ति एवं कानून व्यवस्था बनाये रखने हेतु 'नागरिक' नामक अधिकारी नगरीय जीवन के सभी पक्षों पर बारीकी से नजर रखता था। उसके द्वारा सुखी एवं शान्तिपूर्ण नगरीय जीवन के लिए बनाये गये नियमों का अनुपालन करना सभी के लिए अनिवार्य था। अत्यधिक व्यय करने वाले तथा अत्यधिक व्यसनी व्यक्ति की सूचना नागरिक को देना अनिवार्य था।[144] ताकि उन पर विशेष नजर रखी जा सके। क्योंकि ऐसे लोग ही सामाजिक सुख–शान्ति को आघात पहुँचाते हैं। इसी प्रकार शरीर पर लगे घावों का छिपकर इलाज कराने वाले तथा महामारी फैलाने वाले द्रव्यों के प्रयोगकर्ता मरीजों का इलाज करने वाले चिकित्सकों की सूचना 'गोप' या 'स्थानिक' नामक अधिकारी को देना आवश्यक था।[145] क्योंकि ऐसे लोगों से बडे गम्भीर रहस्य उद्घाटित हो सकते हैं। इसी प्रकार घर में आने–जाने वाले प्रत्येक बाहरी व्यक्ति की सूचना 'गोप' नामक अधिकारी को देना गृहस्वामी के लिए अनिवार्य था।[146] ताकि उस घर में कोई अप्रिय घटना होने पर उसका त्वरित पर्दाफाश हो सके। इसी प्रकार व्यापारियों के वेश में बड़े–बड़े मार्गो पर घूमने वाले, ग्वाले तथा लकडहारे के वेश में रास्ता छोडकर जंगलो में घूमने वाले, डरे हुए, घबराये हुए, गहरी नींद में सोये हुए तथा थके हुए संदिग्ध व्यक्तियों को पकडकर नागरिक के सुपुर्द करने का

---

141. कुमारकुमारमातृनायकपौंर. . . . . द्वादशसाहस्राः। कौ० अर्थ० 5/91/3 पृष्ठ 420
142. विस्तृत विवरण के लिए देखें– 'नागरिकप्रणिधिः' नामक अध्याय, कौ० अर्थ० 2/55/36 पृष्ठ 245–250
143. समाहर्तृवन्नागरिको. . . . . . स्थानिकश्चिन्तयेत्। उपरोक्त पृष्ठ 245
144. अतिव्ययकर्तारमत्याहितकर्माण च निवेदयेयुः। उपरोक्त
145 चिकित्सकः प्रच्छन्नवृण. . . . . अन्यथा तुल्यदोषः स्यात्। कौ० अर्थ० 2/55/36 पृष्ठ 246
146. प्रस्थितागतौ च निवेदयेत्. . . . क्षेमरात्रिषु त्रिपणं दद्यात्। उपरोक्त

प्राविधान था।[147] घरों में असावधानीवश अकस्मात् लगने वाली आग के कारण उत्पन्न भयावह अग्नि आपदा से प्रत्येक युग के चिन्तक चिन्तित रहे हैं।। आचार्य कौटिल्य ने नागरिक जीवन को अग्नि–आपदा से बचाने के लिए पर्याप्त व्यावहारिक नियम निर्मित किए थे; जिनका सख्ती से पालन होता था तथा उनका उल्लंघन करने वालों को समुचित दण्ड का प्राविधान था।[148] नगरों की सफाई के लिए विधिसम्मत नियम बनाये गये थे जिनका उल्लंघन होने पर समीचीन दण्ड का प्राविधान था।[149] रात्रि भ्रमण हेतु निषिद्ध समय में यदि कोई व्यक्ति सन्दिग्धावस्था में पकडा जाता था तो उसे दण्डित किया जाता था।[150]

(xii) व्यावहारिक :

कौटिलीय अर्थशास्त्र में धर्मस्थीय न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को 'व्यावहारिक' कहा गया है; जो दो जनपदों की सीमा (जनपद सन्धि) पर, दस गाँवो के केन्द्र (संग्रहण) में, चार सौ गाँवो के केन्द्र (द्रोणमुख) में और आठ सौ गाँवो के केन्द्र (स्थानीय) में तीन–तीन की संख्या में एक साथ रहकर इकरारनामा, तथा शर्तनामा आदि लिखने–लिखाने का कार्य करते थे।[151] 'व्यावहारिक' नामक पदाधिकारी के अधिकार एवं कर्तव्यों का विस्तृत विवरण कौटिलीय अर्थशास्त्र के 'धर्मस्थीय' नामक तृतीय अधिकरण में उपलब्ध है; जिसमें कुल 20 प्रकरण (56 से 75 तक) तथा कुल 20 अध्याय (1 से 20 तक) इस धर्मस्थीय न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश 'व्यावहारिक' पर ही केन्द्रित हैं। 'व्यावहारिक' के न्यायालय में इकरारनामा तथा शर्तनामा संबंधी, विवाह संबंधी, उत्तराधिकार संबंधी, दाय (विरासत) संबंधी, चल–अचल सम्पत्ति संबंधी, कर्ज एवं व्याज संबंधी, श्रम एवं श्रमिक संबंधी, द्यूत संबंधी, साहस (बलात्कार एवं डकैती आदि) संबंधी, वाक्पारुष्य तथा दण्डपारुष्य संबंधी, क्रय–विक्रय संबंधी तथा वास्तु (घर, खेत, बाग–बगीचे सीमावन्ध, तालाब और वाँध आदि) संबंधी दैनिक जीवन के अनेकानेक विवाद

---

147. पथिकोत्पथिकाश्च बहिरन्तश्च. . . . .अध्वक्लान्तमपूर्वं वा गृहणीयुः। कौ0 अर्थ0 2/55/36 पृष्ठ 246
148. अग्निप्रतीकारं च ग्रीष्मे. . . . प्रादीपिकोऽग्निना बध्यः। उपरोक्त पृष्ठ 246–247
149. पांसुन्यासे रथ्यायामष्टभागो दण्डः. . . . मनुष्यप्रेतानां पञ्चाशत्पणः। उपरोक्त पृष्ठ 248
150. विषण्नालिकमुभयतोरात्रं. . . . . . .मनुष्या दोषतो दण्ड्याः। उपरोक्त पृष्ठ 249
151. धर्मस्थास्त्रयोऽमात्या. . . . . . .व्यावहारिकानर्थान कुर्युः। कौ0 अर्थ0 3/56–57/1 पृष्ठ 255

निर्णीत होते थे।[152] आचार्य कौटिल्य ने धर्मस्थ अधिकारियों (व्यावहारिकों) को निर्देशित किया है कि वे छलकपट से मुक्त होकर अपना कार्य सम्पन्न करें तथा सबके साथ समानता एवं निष्पक्षता का व्यवहार करते हुए जनता के विश्वासपात्र बनकर लोकप्रियता अर्जित करें।[153] कौटिल्य कालीन व्यावहारिक को आधुनिक 'सिविल जज' कहा जा सकता है।

(xiii) कार्मान्तिक :

आचार्य कौटिल्य ने राज्य के प्रमुख अठारह अधिकारियों (अष्टादशतीर्थों) में कार्मान्तिक को तेरहवें स्थान पर रखा है।[154] जिसका वेतन मंत्रियों के समान वारह हजार पण वार्षिक निर्धारित किया गया है।[155] इससे उसका महत्व स्वतः प्रमाणित होता है। कौटिलीय अर्थशास्त्र के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि कार्मान्तिक नामक अधिकारी की देखरेख में मुख्य रूप से खदानों एवं कारखानों का प्रबन्धन होता था। आचार्य कौटिल्य का यह स्पष्ट मत है कि कोश की उन्नति खान पर निर्भर है।[156] इस प्रकार राज्य की समृद्धि के मूल आधार खानों के प्रबन्धन का दायित्व 'कार्मान्तिक' नामक अधिकारी का था। स्वाभाविक है कि इतने गुरुतर दायित्व का निर्वाह वह अकेले नहीं कर सकता था। इसलिए निम्नांकित अधिकारी उसके अधीनस्थ रहते हुए कार्य–सम्पादन में उसके सहभागी होते थे– (i) आकराध्यक्ष (ii) लोहाध्यक्ष (iii) लक्षणाध्यक्ष (iv) रूपदर्शक (v) खन्यध्यक्ष एवं (vi) लवणाध्यक्ष। इन सभी का विस्तृत वर्णन कौटिलीय अर्थशास्त्र में यथास्थान उपलब्ध है।

(xiv) मन्त्रिपरिषदध्यक्ष :

कौटिलीय अर्थशास्त्र के पाठकों को यह जानकर विस्मय होता है कि उसमें राज्यकार्य के सुचारु संचालन हेतु सृजित अंठारह महत्वपूर्ण पदों (अष्टादशतीर्थों) मे से अधिकांश पदों का विस्तृत वर्णन सुलभ होता है किन्तु 'मन्त्रिपरिषदध्यक्ष' जैसे महत्वपूर्ण पद

---

152. विस्तृत विवरण देखें– कौ० अर्थ० का तृतीय अधिकरण।
153. एवं कार्याणि धर्मस्थाः. . . . . .लोकसम्प्रियाः। कौ० अर्थ० 3/74–75/20 पृष्ठ 342
154. तान् राजा स्वविषये मन्त्रिपुरोहित. . . . . .सामर्थ्ययोगाच्चापसर्पयेत्। कौ० अर्थ० 1/7/11 पृष्ठ 33
155. कुमारकुमारमातृनायक. . . . . . द्वादशसाहस्राः। कौ० अर्थ० 5/91/3 पृष्ठ 420
156. आकरप्रभवः कोषः. . . . . . .कोषभूषणा। कौ० अर्थ० 2/28/12 पृष्ठ 142

का नामोल्लेख[157] करने के अलावा अन्य कोई वर्णन वहाँ सुलभ नहीं है। इससे केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है कि मन्त्रिपरिषद की बैठकों की अध्यक्षता करना तथा तत्संबंधी अध्यक्षीय व्यवस्था देना आदि उसके महत्वपूर्ण कार्य रहे होंगे। यह भी अस्पष्ट है कि इसकी स्थिति एवं शक्ति आधुनिक काल में मुख्यमंत्री के समक्ष होती थी या नहीं।

(xv)दण्डपाल :

कौटिलीय अर्थशास्त्र में 'मन्त्रिपरिषदध्यक्ष' की तरह 'दण्डपाल' नामक अधिकारी का भी नामोल्लेख[158] मात्र है। लेकिन उसके संबंध में कोई विस्तृत वर्णन वहाँ प्राप्त नहीं होता है। इससे यही अनुमान लगाया जा सकता है कि न्यायालयों द्वारा निर्णीत विभिन्न प्रकार के दण्डों का क्रियान्वयन कराने का दायित्व सम्भवतः 'दण्डपाल' नामक अधिकारी का ही रहा होगा।

(xvi) दुर्गपाल :

कौटिलीय अर्थशास्त्र में 'दुर्गपाल' नामक अधिकारी के नामोल्लेख[159] के अतिरिक्त उसका भी अन्य कोई विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है। फिर भी चूँकि उसमें राज्य की सप्त प्रकृतियों के अन्तर्गत 'दुर्ग' का विस्तृत विवरण उपलब्ध है, इसलिए यह सहज सम्भव है कि 'दुर्ग' जैसी महत्वपूर्ण राज्य प्रकृति की सुरक्षा एवं प्रबन्धन का दायित्व 'दुर्गपाल' का ही रहा होगा। लेकिन वर्तमान राजनीति में 'दुर्ग' एवं 'दुर्गपाल' दोनों अप्रासंगिक हो रहे हैं। उनका स्थान राष्ट्रपति भवन, राजभवन, संसद भवन, विधान भवन तथा उनके सुरक्षा कर्मी ले चुके हैं।

(xvii) अन्तपाल :

आचार्य कौटिल्य के अनुसार राज्य की सीमा पर एक दुर्ग की स्थापना होना चाहिए जिसकी सुरक्षा का दायित्व 'अन्तपाल' नामक अधिकारी का होता था। इसी प्रकार

---

157. तान् राजा स्वविषये. . . . . . सामर्थ्ययोगाच्चापसर्पयेत्। कौ0 अर्थ0 1/7/11 पृष्ठ 33
158. उपरोक्त
159. उपरोक्त

जनपद की सीमा पर भी द्वारभूत स्थानों का निर्माण कराया जाना चाहिए, जिनकी देखरेख का दायित्व भी 'अन्तपाल' का ही था।[159] तथा उनके भीतरी भागों की रक्षा के लिए व्याध, शवर, पुलिन्द, तथा चाण्डाल जैसी जंगली जातियों के लोग नियुक्त किए जाते थे।[161] इसके अतिरिक्त जिस प्रकार नगर दुर्गो का निर्माण एवं प्रबन्धन होता था उसी प्रकार अन्तपाल की अध्यक्षता में सीमान्त दुर्गो का भी निर्माण एवं प्रबन्धन होना चाहिए।[162] अन्तपाल का दायित्व था कि वह माल ढोने वाली प्रत्येक गाडी से मार्गरक्षा कर (वर्तनी) के रूप में 1¼ पण; घोड़े, खच्चर, गधे आदि पशुओं पर चौथाई पण तथा कन्धे पर भार ढोने वाले व्यक्तियों पर एक 'माष' कर के रूप में वसूल करे।[329] अपने अन्य दायित्वों के अन्तर्गत वह विदेशी व्यापारियों के माल की भलीभाँति जाँच कर उस पर मुहर लगाता था तथा रमन्ना काटकर उन्हें शुल्काध्यक्ष के पास भेजता था।[164] जो विदेशी व्यापारी अन्तपाल की आज्ञा के बिना राज्य की सीमा में प्रवेश करते थे, अन्तपाल को उनके अस्त्र–शस्त्र जमा कर लेने का अधिकार था। लेकिन जिनके पास लाइसेंस होता था, उन्हें वह हथियार सहित प्रवेश करने देता था। लेकिन जिनके पास लाइसेंस होता था उन्हें वह हथियार सहित प्रवेश करने देता था।[165] आवश्यकता पडने पर 'अन्तपाल' अपना सीमान्त दुर्ग शत्रु के सुपुर्द करके उसकी सेना को ऐसी जगह ले जाता था जहाँ से उसका लौटना सम्भव न हो और विश्वासघात करके उसे वहीं मरवा डाले।[166]

(xviii) आटविक :

कौटिलीय अर्थशास्त्र में निर्देश है कि जनपद की सीमा पर 'आटविक' के संरक्षण में 'हस्तिवन' की स्थापना करना चाहिए[167] तथा अन्य जंगलो की सम्पूर्ण व्यवस्था 'आटविक'

---

160. अन्तेष्वन्तपालदुर्गाणि जनपदद्वाराण्यन्तपालाधिष्ठितानि स्थापयेत्। कौ0 अर्थ0 2/17/1 पृष्ठ 77
161. तेषामन्तराणि वागुरिकशबरपुलिन्दचण्डालारण्यचरा रक्षेयुः। उपरोक्त
162. एतेनान्तपालदुर्गसंस्कारा व्याख्याताः। कौ0 अर्थ0 2/20/4 पृष्ठ 94
163. अन्तपालः सपादपणिकां. . . . .असमारस्य माषिकाम। कौ0 अर्थ0 2/37/21 पृष्ठ 187
164. वैदेश्यं सार्थं कृतसारफल्गुभाण्डविचयनमभिज्ञानं मुद्रां च दत्वा प्रेषयेदध्यक्षस्य। उपरोक्त पृष्ठ 188
165. सार्थिकानां शस्त्रावरणमन्तपाला गृह्णीयुः,समुद्रमवचारयेयुर्वा। कौ0 अर्थ0 5/91/3 पृष्ठ 424
166. अन्तपालो वा दुर्गसम्प्रदानेन बलैकदेशमतिनीय विश्वस्तं घातयेत्। कौ0अर्थ012/168–170/5 पृष्ठ 698
167. प्रत्यन्ते हस्तिवनमटव्यारक्ष्यं निवेशयेत्। कौ0 अर्थ0 2/18/2 पृष्ठ 82

एवं वनाश्रित पुरुषों के द्वारा की जाना चाहिए।[168] हस्तिवन के अध्यक्ष (आटविक) का यह दायित्व था कि वह स्वयं तथा अपने सहयोगी वनपालों के सहयोग से पवर्त, नदी, जलाशय तथा अन्य जलीय स्थानों से होकर हस्तिवनों के अन्दर जाने वाले मार्गो की समुचित देखभाल करे।[169] हाथियों को मारने वाले अपराधियों को प्राणदण्ड दिए जाने का प्राविधान था।[170] लेकिन मृतक हाथी के दाँत उखाडकर स्वयं राजपुरुषों को सोंपने वालों को सवा चार पण पुरष्कार दिए जाने का प्राविधान था।[171] इसके अतिरिक्त कौटिलीय अर्थशास्त्र में जो चार प्रकार के दुर्ग– औदक दुर्ग, पार्वत दुर्ग, धान्वन दुर्ग, तथा वन दुर्ग निर्दिष्ट किए गए हैं उनमें वनदुर्ग की देखभाल का दायित्व 'आटविक' नामक पदाधिकारी का ही था।[172] आटविक ही जंगली जातियों का प्रमुख होता था। जंगली जातियों की एक अलग सेना होती थी जिसे 'अटवी बल' कहा गया है।[173] 'आटविक' नामक अधिकारी विजिगीषु राजा का उस समय बडा सहायक होता था जब राजा किसी शत्रु को जीतने के लिए छावनी या पडाव न डालकर जंगल में जाकर छिप जाता था और जैसे ही शत्रुदल उस जंगल से निकलता था तो विजिगीषु राजा की सेना उस पर एकदम टूट पडती थी।[174] इसके अतिरिक्त शत्रु राजा का प्रपञ्चपूर्वक दुर्ग अपहृत करने में भी आटविक विजिगीषु राजा का सहायक होता था।[175] कौटिल्य कालीन 'आटविक' को आधुनिक 'वनसंरक्षक' (Forest Conservator) कहा जा सकता है। लेकिन उसके दायित्वों में युगानुकूल परिवर्तन हुआ है। आज चूँकि 'हस्तिवन' एवं 'वनदुर्ग' अस्तित्व में नहीं हैं इसलिए उनके प्रबन्धन एवं संरक्षण का प्रश्न ही नहीं उठता है। अतः वर्तमान में उसका मुख्य दायित्व नये वनों की स्थापना, स्थापित वनों का एवं उनमें विद्यमान वन्यजीवों का संरक्षण करना है।

---

168. द्रव्यवनकर्मान्तानटवीश्च द्रव्यवनापाश्रयाः। उपरोक्त
169. नागवनाध्यक्षः पार्वतं नादेयं. . . . . .नागवनपालैः पालयेत। उपरोक्त पृष्ठ 83
170. हस्तिघातिनं हन्युः। उपरोक्त
171. दन्तयुगं स्वयं मृतस्याहरतः सपादचतुष्पणो लाभः। उपरोक्त
172. चतुर्दिशं जनपदान्ते. . . . .आपद्यपसारो वा। कौ० अर्थ० 2/19/3 पृष्ठ 85
173. स मौलमृतश्रेणिमित्रामित्राटवीबलानां सारफल्गुतां विद्यात्। कौ० अर्थ० 2/49–50/33 पृष्ठ 237
174. स्कन्धावारमुत्सृज्य वा वनगूढः. . . .ततः पूर्ववदाचरेत। कौ० अर्थ० 13/174–175/4 पृष्ठ 726–27
175. यद्वा मित्रमावाहयेदाटविकं वा. . . . .परदुर्गमवस्कन्देयुः। उपरोक्त पृष्ठ 728–729

(ख) वित्तीय प्रशासन :

कौटिल्य युग में वित्तीय प्रशासन सँभालने का दायित्व मुख्य रूप से 'समाहर्ता' तथा 'सन्निधाता' नामक अधिकारियों का था जिनका वर्णन पीछे किया जा चुका है। राजस्व संग्रह करना तथा आय व्यय का लेखा जोखा रखना ही 'उनका मुख्य कार्य था। इस कार्य को निष्पादित करने के लिए उनके अधीन अनेक अधिकारी एवं कर्मचारी नियुक्त होते थे। कौटिल्य कालीन वित्तीय प्रशासन को समझने के लिए हमें उसके राजस्व संग्रह (आय) के विविध स्रोतों तथा व्यय की विभिन्न मदों को समझना नितान्त आवश्यक है। यहाँ पर एक बिन्दु यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इसी अध्याय में 'समाहर्ता' एवं 'सन्निधाता' जैसे उच्च वित्तीय अधिकारियों तथा उनके अधीनस्थ कार्यरत अन्य अधिकारियों को वर्णन करते समय वित्तीय प्रशासन से सम्बद्ध अनेक महत्वपूर्ण तथ्यो का उल्लेख पीछे हो चुका है। फिर भी यहाँ पर 'वित्तीय प्रशासन' का स्वतन्त्र पक्ष प्रस्तुत करने हेतु क्रमबद्धता तथा तारतम्य बनाए रखने की दृष्टि से उनमें से कुछ तथ्यों का पुनरुल्लेख करने की हमारी विवशता भी रही है।

(1) आय (राजस्व–संग्रह) के स्रोत :

आचार्य कौटिल्य ने आय स्रोतों को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित करते हुए उनके क्रमशः 'आयशरीर' (आय के प्रमुख स्रोत) तथा 'आयमुख' (आय के गौण स्रोत) नामक दो भेद किए हैं। पुनः आय के प्रमुख स्रोतों (आय शरीर) को निम्नांकित सात उपविभागों में बाँटा है– (अ) दुर्ग (ब) राष्ट्र (स) खनि (द) सेतु (य) वन (र) ब्रज (ल) वणिक्पथ। इसी प्रकार आय के गौण स्रोतों (आयमुख) के भी निम्नांकित सात भेद किए हैं– (अ) मूल (ब) भाग (स) व्याजी (द) परिघ (य) क्लृप्त (र) रूपिक (ल) अत्यय।[176]

---

176. विस्तृत विवरण हेतु देखें– शोध प्रबन्ध, पृष्ठ 74–75

आय को आचार्य कौटिल्य ने समेकित रूप में तीन भागों में विभाजित किया है–

प्रथम प्रकार की आय को 'वर्तमान आय' कहा गया है। प्रतिदिन होने वाली आय ही 'वर्तमान आय' कही जाती है।[177]

द्वितीय प्रकार की आय 'पर्युषित आय' कहलाती है। गत वर्ष के वकाया धन अथवा शत्रु देश से प्राप्त धन को 'पर्युषित' आय कहते है।[178]

तृतीय प्रकार की आय को 'अन्यजात आय' कहते हैं। विस्मृत धन का स्मरण होने से प्राप्त धन, अपराध स्वरूप प्राप्त धन, करेतर उपायों से प्राप्त धन, काँजी हाउस से प्राप्त धन, भेंटस्वरूप प्राप्त धन, शत्रुसेना से अपहृत धन तथा लावारिस सम्पत्ति के रूप में प्राप्त धन 'अन्यजात आय' कहलाती है।[179]

इसके अतिरिक्त आय के एक अन्य स्रोत 'व्ययप्रत्याय' का उल्लेख करते हुए आचार्य कौटिल्य ने स्पष्ट किया है कि सैनिक खर्च से बचा हुआ धन, स्वास्थ्य विभाग के व्यय से बचा हुआ धन तथा भवन निर्माण से बचा हुआ धन 'व्ययप्रत्याय' कहलाता है।[180] इसी प्रकार विक्री के समय वस्तुओं की कीमत बढ़ जाने से, निषिद्ध वस्तुओं के बेचने से, वॉट तराजू आदि की बेईमानी सं तथा खरीददारों की प्रतिस्पर्धा आदि से प्राप्त धन आदि भी आय के अन्य स्रोत होते हैं।[181] सभी तरह के आय–व्यय के हिसाब करने के बाद वचत रूप में जो धन प्राप्त होता है उसे 'नीवी' कहते हैं।[182] यह दो प्रकार का होता है। प्रथम प्रकार के धन को 'प्राप्त नीवी' कहते हैं। यह वह धन होता है जो खजाने में जमा हो चुका हो।[183] द्वितीय प्रकार के धन को 'अनुवृत्त नीवी' कहते हैं। यह वह वचत राशि होती है जो खजाने में जमा की जाने वाली हो।[184]

---

177. दिवसानुवृत्तो वर्तमानः। कौ0 अर्थ0 2/22/6 पृष्ठ 101
178. परमसांवत्सरिकः परप्रचारसंक्रान्तो वा पर्युषितः। उपरोक्त
179. नष्टप्रस्मृतमायुक्त दण्डः. . . . .निधिश्चान्यजातः। उपरोक्त
180. विक्षेपव्याधितान्तरारम्भशेश्च व्ययप्रत्यायः। कौ0 अर्थ0 2/31/15 पृष्ठ 158
181. विक्रये पण्यानामर्घवृद्धिरुपजा. . . . . क्रयसङ्घर्षे वा वृद्धिरित्यायः। उपरोक्त
182. व्ययसञ्जातादायव्ययविशुद्धा नीवी। कौ0 अर्थ0 2/22/6 पृष्ठ 102
183. व्ययसञ्जातादायव्ययविशुद्धा नीवी प्राप्ता चानुवृत्ता चेति। उपरोक्त
184. उपरोक्त

कोश वृद्धि के उपाय :

कौटिल्य ने राजकोश की वृद्धि के उपायों पर बल दिया है। उनके अनुसार 'चूँकि सभी कार्य कोश पर ही निर्भर हैं, इसलिए राजा को सर्वप्रथम कोश पर ही ध्यान देना चाहिए।[185] कोश की समृद्धि से शक्तिशाली सेना तैयार की जा सकती है तथा कोष और सेना के बल पर इस कोषगर्भा पृथिवी को प्राप्त किया जा सकता है।[186] इस दृष्टिकोण से वह कोश के प्रति सदैव सजग दिखाई देते हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित वित्तीय प्रशासन में घाटे अथवा कोश–क्षय की स्थिति नगण्य ही है। उनके निर्देशानुसार खजाने के कम हो जाने अथवा कोई अर्थ सङ्कट उत्पन्न हो जाने पर राजा को कोष–सञ्चय करना चाहिए।[187] उन्होंने कोशवृद्धि के मुख्य रूप से नौ उपाय बताए हैं– (i) विकास–कार्यो को बढ़ाना (ii) राष्ट्रीय चरित्र पर ध्यान रखना (iii) चोरों का दमन करना (iv) राजकीय अधिकारियों/कर्मचारियों को रिश्वत लेने से रोकना (v) खाद्यान्न का अधिक से अधिक उत्पादन कराना (vi) व्यापारिक वस्तुओं को बढ़ाना (vii) प्राकृतिक आपदाओं से राज्य की रक्षा करना (viii) कर–छूट मे कटौती करना तथा (ix) सामन्त आदि से स्वर्ण आदि की भेंट प्राप्त करना।[188]

कोष–क्षय के कारण और उनका निवारण :

आचार्य कौटिल्य ने कोश को क्षति पहुँचाने वाले आठ प्रमुख कारण निर्दिष्ट किए हैं– (i) प्रतिबन्ध (ii) प्रयोग (iii) व्यवहार (iv) अवस्तार (v) परिहापण (vi) उपभोग (vii) परिवर्तन (viii) अपहार।[189]

उक्त कारणों को कौटिलीय अर्थशास्त्र में सविस्तार परिभाषित करते हुए उनके निवारण उपाय स्वरूप यथोचित दण्ड का प्राविधान निम्न प्रकार किया गया है–

कोशक्षय के प्रथम कारण को 'प्रतिबन्ध' कहा गया है। राजकर को वसूल न

---

185. कोशपूर्वाः सर्वारम्भाः। तस्मात् पूर्वं कोषमवेक्षेत्। कौ0 अर्थ0 2/24/8 पृष्ठ 109
186. आकरप्रभवः कोषः . . . . . .प्राप्यते कोषभूषणा। कौ0 अर्थ0 2/28/12 पृष्ठ 142
187. कोशमकोशः प्रत्युत्पन्नार्थकृच्छ्रः संग्रह्णीयात्। कौ0 अर्थ0 5/90/2 पृष्ठ 412
188. प्रचारसमृद्धि. . . . . .इति कोषवृद्धिः। कौ0 अर्थ0 2/24/8 पृष्ठ 109
189. प्रतिबन्धः प्रयोगो. . . . .इति कोषक्षयः। उपरोक्त

करना, वसूल करके भी उसे अपने अधिकार में न रखना, और अधिकार में करके भी उसे खजाने में जमा न करना, यह तीन प्रकार का 'प्रतिबन्ध' होता है। जो व्यक्ति उक्त 'प्रतिबन्ध' का दोषी पाया जाय उस पर क्षत राशि का दस गुना आर्थिक दण्ड निर्धारित करना चाहिए।[190]

कोशक्षय का द्वितीय कारण 'प्रयोग' होता है। राजकोष के धन को व्याज पर देकर अपने निजी कोश को बढाना 'प्रयोग' कहलाता है।[191]

तृतीय कारण 'व्यवहार' कहलाता है। राजकोश की वस्तुओं का स्वयं ही व्यापार करना 'व्यवहार' कहलाता है। जो भी व्यक्ति उक्त 'प्रयोग' एवं 'व्यवहार' का दोषी पाया जाय उस पर लाभ राशि से दुगुना आर्थिक दण्ड निर्धारित किया जाय।[192]

चौथा कारण 'अवस्तार' कहलाता है। यदि कोई अधिकारी/कर्मचारी रिश्वत लेने की नीयत से कर अदायगी की निर्धारित तिथि को आगे बढा देता है अथवा दूरवर्ती तिथि को आगत तिथि बतलाता है तो उसकी इस गतिविधि को 'अवस्तार' कहते हैं। इसका दोषी पाये गये व्यक्ति पर क्षत राशि से पाँच गुना आर्थिक दण्ड निर्धारित किया गया है।[193]

कोशक्षय के पाँचवें कारण को 'परिहापण' कहते हैं। प्राप्त हुई आय को कम करके बताना तथा व्यय की राशि को बढाकर के बताना 'परिहापण' कहलाता है। इसका दोषी पाये गये व्यक्ति पर क्षत राशि से चार गुना आर्थिक दण्ड निर्धारित किया गया है।[194]

छठवाँ कारण 'उपभोग' कहलाता है। राजकोष के द्रव्यों का स्वयं उपभोग करना तथा दूसरों को उनका उपभोग कराना 'उपभोग' क्षय कहलाता है। इसके लिए दण्ड व्यवस्था अलग–अलग की गई है। यदि वह रत्नों का उपभोग करता है तो उसे प्राणदण्ड, सारद्रव्यों (मूल्यवान वस्तुओं) का उपभोग करता है तो उसे मध्यम साहस दण्ड तथा यदि फल्गु (अल्पमूल्य वाली सस्ती) वस्तुओं एवं कुप्य (वनोपज संबंधी) वस्तुओं का उपभोग करता है तो उससे वे वस्तुऐं वापस लेकर उनकी लागत का दण्ड दिया जाना चाहिए।[195]

---

190. सिद्धीनामसाधनम्. . . . . तत्र दशबन्धो दण्डः। कौ0 अर्थ0 2/24/8 पृष्ठ 109
191. कोषद्रवयाणां वृद्धिप्रयोगः प्रयोगः। उपरोक्त
192. पण्यव्यवहारो व्यवहारः। तत्र फलद्विगुणो दण्डः। उपरोक्त पृष्ठ 110
193. सिद्धं कालमप्राप्तं. . . . तत्र पञ्चबन्धो दण्डः। उपरोक्त
194. क्लृप्तमायं परिहापयति. . . .तत्र हीनचतुर्गुणो दण्डः। उपरोक्त
195. स्वयमन्यैर्वा. . . . . .तच्च तावच्च दण्डः। उपरोक्त

कोशक्षय के सातवें कारण को 'परिवर्तन' कहते हैं। राजकोष के द्रव्यों को अन्य द्रव्यों से बदल लेना 'परिवर्तन' कहलाता है। इसका दोषी पाये जाने वाले व्यक्ति पर उपरोक्त 'उपभोग' क्षय के समान ही दण्ड निर्धारित किया गया है। अर्थात् उससे बदले गए द्रव्यों को वापस लेकर उनकी लागत का दण्ड दिया जाना चाहिए।[196]

आठवाँ कारण 'अपहार' कहलाता है। प्राप्त आय को पञ्जिका में दर्ज न करना, पंजिका में दर्शायी गई व्यय–राशि को व्यय न करना तथा आय–व्यय के बाद शेष रही बचत राशि से मुकर जाना 'अपहार' कहलाता है। इसका दोषी पाये जाने वाले व्यक्ति पर राशि से बारह गुना दण्ड निर्धारित किया गया है।[197]

कोष–हरणकर्ता व उनका दण्डोपाय :

आचार्य कौटिल्य के वित्तीय प्रशासन में राजकोष के द्रव्यों का विभिन्न तरीकों से गबन करने वालों को बडी पैनी दृष्टि से चिन्हित किया गया है तथा उन्हें तदनुसार दण्डित करने का विधिक प्राविधान भी किया गया है। कौटिल्य की दृष्टि में भ्रष्ट अधिकारी भ्रष्टाचार के क्षेत्र में बडे निपुण होते है और वे निम्न रूप में चालीस प्रकार से राजकोष के द्रव्यों का गबन कर सकते हैं:–[198]

(i) पहले प्राप्त हुई आय को बाद में चढाकर।

(ii) बाद में प्राप्त होने वाली आय को पहले चढाकर।

(iii) रिश्वतखोरी की नीयत से करदाताओं से कर न लेकर।

(iv) करमुक्त लोगों से कर लेकर।

(v) कर–भुगतान होने पर भी उसे पञ्जिका में न चढाकर।

(vi) कर का भुगतान न होने पर भी उसे पञ्जिका में चढाकर।

(vii) अल्पधन प्राप्ति को विशाल राशि के रूप में चढाकर।

---

196 राजद्रव्याणाम. . . . .तद् उपभोगेन व्याख्यातम्। कौ0 अर्थ0 2/24/8 पृष्ठ 110

197. सिद्धमायं न प्रवेशयति. . . . तत्र द्वादशगुणो दण्डः। उपरोक्त

198. तेषां हरणोपायाश्चत्वारिंशत्। उपरोक्त पृष्ठ 111

(viii) प्राप्त हुई विशाल धनराशि को अल्प राशि के रूप में चढाकर।

(ix) प्राप्त द्रव्य के स्थान पर कोई दूसरा द्रव्य चढाकर।

(x) दूसरे से प्राप्त हुए धन को किसी दूसरे के नाम चढाकर।

(xi) देय वस्तु को न देकर।

(xii) अदेय वस्तु को देकर।

(xiii) किसी वस्तु को समय पर न देकर।

(xiv) किसी वस्तु को असमय में देकर।

(xv) दी गई अल्प वस्तु को विशाल वस्तु के रूप में चढाकर।

(xvi) दी गई विशाल वस्तु को अल्प वस्तु के रूप में चढाकर।

(xvii) दी गई किसी दूसरी वस्तु के स्थान पर कोई दूसरी वस्तु चढाकर।

(xviii) किसी दूसरे व्यक्ति को दी जाने वाली वस्तु किसी अन्य व्यक्ति के नाम चढाकर।

(xix) वसूले गए राजकर को राजकोष में जमा न करके।

(xx) रिश्वतखोरी की नीयत से राजकर की अदायगी न होने पर भी उसे जमा–पञ्जिका में चढाकर।

(xxi) ऐसी वनोपज सामग्री जिसका मूल्य नहीं चुकाया गया है फिर भी अभिलेखो में उसका मूल्य भुगतान किया हुआ दिखाकर।

(xxii) ऐसी वनोपज सामग्री जिसका मूल्य अदा कर दिया है लेकिन जमा पञ्जिका में उसे न चढाकर।

(xxiii) सामूहिक कर वसूली को एक–एक व्यक्ति से अलग–अलग वसूल करके।

(xxiv) अलग–अलग व्यक्ति से लिए जाने वाले कर को सामूहिक रूप में वसूल करके।

(xxv) बहुमूल्य वस्तु को अल्पमूल्य वस्तु से बदलकर।

(xxvi) अल्पमूल्य वस्तु को बहुमूल्य वस्तु से बदलकर।

(xxvii) रिश्वत लेकर बाजार में वस्तुओं की मूल्यवृद्धि करके।

(xxviii) वस्तुओं की कीमतें घटाकर के।

(xxix) वर्ष के महीनों में हेराफेरी करके।

(xxx) महीने के दिनों में हेराफेरी करके।

(xxxi) नौकरों की उपस्थिति दर्ज करने में हेराफेरी करके।

(xxxii) किसी आयमुख (आय के गौण स्रोत) में हेराफेरी करके।

(xxxiii) कर्मचारियों के लेखा–जोखा में हेराफेरी करके।

(xxxiv) कार्य समाप्त करते समय हेराफेरी करके।

(xxxv) हिसाब–किताब का सम्पूर्ण योग करने में हेराफेरी करके।

(xxxvi) हिसाब–किताब के अक्षरों में हेराफेरी करके।

(xxxvii) जिन वस्तुओं की कीमतें निर्धारित न हों उनकी कीमतों में हेराफेरी करके।

(xxxviii) वस्तुओं की तौल में हेराफेरी करके।

(xxxix) वस्तुओं को नापने में हेराफेरी करके।

(xxxx) वर्तनों में हेराफेरी (बडे की जगह छोटे वर्तन) करके।[199]

उपरोक्त अवांछनीय गतिविधियों पर प्रभावी अंकुश लगाने हेतु आचार्य कौटिल्य ने निर्दिष्ट किया है कि सन्देह होने पर राजा को चाहिए कि वह संबंधित विभाग के प्रधान अधिकारी, भण्डारपाल, लेखक, करसंग्राहक, करदाता तथा कर दिलाने वाले सलाहकार तथा मददगार लोगों में से एक को बुलाकर गवन किए गए द्रव्यों/वस्तुओं के विषय में पूँछताछ करे। यदि उनमें से कोई झूठ बोले तो उस पर गबन करने वाले अपराधी के समान ही दण्ड निर्धारित किया जाय।[200] आगे और कठोर व्यवस्था करते हुए आचार्य कौटिल्य लिखते हैं कि अपने सारे राज्य में राजा प्रचारपूर्वक यह घोषणा करा दे कि अमुक अधिकारी ने जिस–जिस के साथ गबन किया है वे लोग उसके संबंध में राजदरबार को सूचित करें। सूचना देने वालों के साथ जो–जो गबन किया गया है उनकी उस क्षति की पूर्ति राजा करे। यदि संबंधित

---

199. पूर्वं सिद्धं पश्चादवतारितम्. . . . इति हरणोपायाः। कौ० अर्थ० 2/24/8 पृष्ठ 111–12
200. तत्रोपयुक्तनिधायक. . . . .चैषां युक्तसमो दण्डः। उपरोक्त पृष्ठ 112

अधिकारी के विरुद्ध प्रस्तुत अनेक आरोपों में से वह किसी को भी स्वीकार न करे तो उसका एक भी आरोप प्रमाणित हो जाने पर उसे सभी आरोपो के लिए जिम्मेदार माना जाय। यदि वह अपने विरुद्ध आरोपों को आंशिक रूप से स्वीकार करता है तो उसके सभी आरोपो का परीक्षण किया जाय। यदि गबन की गई विशाल धनराशि के संबंध में पर्याप्त प्रमाण नहीं मिलते हैं, कुछ ही धन के संबंध में सबूत मिल पाते हैं तो भी उसे सम्पूर्ण धनराशि के गबन हेतु जिम्मेदार माना जाय।[201]

इस संबंध में सूचनातंत्र की अहम् भूमिका स्वीकार करते हुए आचार्य कौटिल्य ने उसे चुस्त–दुरुस्त रखने हेतु व्यापक प्रबन्ध किए हैं। इस बात का पर्याप्त ध्यान रखा गया है कि सही सूचना देने वाले निरन्तर प्रोत्साहित होते रहें तथा गलत सूचना देने का कभी कोई दुःसाहस न कर सके। इसी क्रम में उनका निर्देश है कि अपराध सिद्ध हो जाने पर गबन की सूचना देने वाले को संबंधित अपराधी द्वारा उसके साथ प्रतिशोध न लिए जा सकने की शासकीय प्रतिभूति (गारण्टी) सहित उसे अपहृत धन का छठवाँ हिस्सा पुरस्कार स्वरुप दिया जाना चाहिए। यदि उक्त सूचना देने वाला कोई राज्य कर्मचारी हो तो उसे अपहृत धन का केवल बारहवाँ हिस्सा दिए जाने का प्राविधान है। यदि आरोप तो विशाल धनराशि का प्रमाणित हो चुका हो लेकिन उसमें से केवल अल्प राशि ही बरामद हो सकी हो तो फिर सूचना देने वाले व्यक्ति को बरामद की गई राशि से ही हिस्सा दिया जाना चाहिए।[202]

गलत सूचना तथा झूठी गवाही देने वालों को हतोत्साहित करने हेतु आचार्य कौटिल्य ने व्यवस्था दी है कि यदि गबन संबंधी दी गई सूचना के आधार पर अपराध सिद्ध न हो सके तो सूचना देने वाले को उचित शारीरिक अथवा आर्थिक दण्ड दिया जाना चाहिए। तथा ऐसे अपराधी को किसी भी रूप में वख्शा नहीं जाना चाहिए।[203] यदि कोई सूचना देने वाला किसी प्रलोभनवश अपराधी के पक्ष में गलत बयान देता है तो उसे 'प्राणदण्ड' दिए जाने का कठोर प्राविधान किया गया है।[204]

---

201. प्रचारे चावधोषयेत. . . . चाल्पेनापि सिद्धः सर्व भजेत। कौ0 अर्थ0 2/24/8 पृष्ठ 112
202. कृतप्रतिघातावस्थः. . . .निष्पन्नस्यांशं लभेत। उपरोक्त पृष्ठ 113
203. अनिष्पन्ने शारीरं हैरण्यं वा दण्डं लभेत न चानुग्राह्यः। उपरोक्त
204. अभियुक्तोपजापात्तु सूचको बधमाप्नुयात्। उपरोक्त

धनोत्पादन हेतु हानिकारक प्रवृत्तियाँ :

आचार्य कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित वित्तीय प्रशासन में धनोत्पादन की हानिकारक प्रवृत्तियों को बड़ी बारीकी से संज्ञान में लिया गया है। इन प्रवृत्तियों को मुख्य रूप से आठ भागो में विभाजित किया गया है।

प्रथम प्रवृत्ति को 'अज्ञान' कहा गया है। सम्बन्धित विषयों की सम्यक् जानकारी के अभाव को 'अज्ञान' कहते हैं। इसलिए आचार्य कौटिल्य का मत है कि विभागीय अध्यक्ष को गुप्तचरों के माध्यम से अपने सभी कार्यालयों की कार्य–व्यवस्था की सम्यक् जानकारी रखना चाहिए। क्योंकि इसके अभाव में वह अपनी अज्ञानता के कारण धनोत्पादन में हानिकर सिद्ध हो सकता है।[205]

द्वितीय प्रवृत्ति 'आलस्य' कहलाती है। साहसिक गतिविधियों में होने वाले कष्टों और जोखिमों को सहन न करना 'आलस्य' कहलाता है।[206]

तृतीय प्रवृत्ति को 'प्रमाद' कहते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयों में क्रमशः कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा तथा नासिका आदि ज्ञानेन्द्रियों की आसक्ति को 'प्रमाद' कहते हैं।[207]

चौथी प्रवृत्ति 'भय' है। जनाक्रोश, अधर्म तथा अनर्थ के कारण भयभीत होना 'भय' कहलाता है।[208]

पाँचवी प्रवृत्ति को 'काम' कहते हैं। किसी कार्यार्थी पर हित–अहित तथा उचित–अनुचित का विचार किए बिना अनुग्रह करना 'काम' कहलाता है।[209]

छठवी प्रवृत्ति 'कोप' है। हिंसक मानसिकता (विचार) रखना 'कोप' कहलाता है।[210]

सातवीं प्रवृत्ति 'दर्प' कहलाती है। विद्या, धन और राजभक्त होने का घमण्ड करना 'दर्प' कहलाता है।[211]

---

205. अपसर्पाधिष्ठितं. . . . अज्ञानेन परिहापयति। कौ0 अर्थ0 2/23/7 पृष्ठ 104
206. उत्थानक्लेशासहत्वादालस्येन। उपरोक्त
207. शब्दादिष्विन्द्रियार्थेषु प्रमादेन। उपरोक्त पृष्ठ 104–05
208. संक्रोशाधर्मानर्थभीरुर्भयेन। उपरोक्त पृष्ठ 105
209. कार्यार्थिष्वनुग्रहबुद्धि कामेन। उपरोक्त
210. हिंसा बुद्धिः कोपेन। उपरोक्त
211. विद्याद्रव्यवल्लभापाश्रयाद दर्पेण। उपरोक्त

आठवीं प्रवृत्ति को 'लोम' कहा जाता है। नाप, तौल, कर–निर्धारण तथा मुद्रा–गणना आदि में गडवड़ी करना 'लोम' कहलाता है।[212]

उपरोक्त हानिकारक प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने हेतु आचार्य कौटिल्य का निर्देश है कि जो जिस प्रकार की गडवडी करे उसे उसी प्रकार का यथोचित दण्ड दिया जाना चाहिए।[213]

अर्थदण्ड से प्राप्त आय :

कौटिल्य कालीन राज्य की आय का एक प्रमुख स्रोत आर्थिक दण्ड भी था। दण्ड विधान के अन्तर्गत वैसे तो शारीरिक दण्ड एवं प्राणदण्ड जैसे अनेक प्रकार के दण्डो का प्राविधान था; किन्तु कौटिलीय अर्थशास्त्र के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य कौटिल्य अर्थ–दण्ड को अपराधी तथा राज्य दोनों के लिए बहूपयोगी मानते हैं। एक तो अपराधी दण्डित होने के बाद आत्मसुधार की दिशा में गम्भीरतापूर्वक सोचता है। दूसरे, राज्य को अर्थदण्ड से आय का एक बडा स्रोत भी उपलब्ध होता है। संभवतः इसी दृष्टिकोण से आचार्य कौटिल्य ने अपनी दण्ड–प्रक्रिया के अन्तर्गत अर्थदण्ड को पर्याप्त महत्व दिया है। अपराध के अनुसार निर्धारित अन्य अर्थदण्डो के साथ–साथ विशेष रूप से चोरी–डकैती, दुस्साहस तथा आर्थिक गडवडी करने वाले अपराधियों के लिए आचार्य कौटिल्य ने जो प्रथम साहस दण्ड (48 पण से 96 पण तक का अर्थदण्ड), मध्यम साहसदण्ड (200 पण से 500 पण तक का अर्थदण्ड) तथा उत्तम साहस दण्ड (500 पण से 1000 पण तक का अर्थदण्ड)[214] का प्राविधान किया है, उसे राज्य की आय का उल्लेखनीय स्रोत माना जा सकता है। विस्तृत विवरण 'चतुर्थ अध्याय' में दृष्टव्य है।

(2) व्यय की विभिन्न मदें :

पीछे बताया जा चुका है कि कौटिलीय अर्थशास्त्र में आय के प्रमुख स्रोतों को 'आयशरीर' कहा गया है। उसी प्रकार राज्य द्वारा व्यय की जाने वाली प्रमुख मदों को आचार्य

212. तुलामानतर्कगणिकान्तरोपधानात् लोमेन। कौ0 अर्थ0 2/23/7 पृष्ठ 105

213. यथापराधमिति कौटिल्यः। उपरोक्त

214. अष्टचत्वारिंशत्पणावरः . . . . .उत्तमः: साहसदण्ड इत्याचार्याः। कौ0 अर्थ0 3/74/17 पृष्ठ 328–29

कौटिल्य ने 'व्ययशरीर' की संज्ञा प्रदान करते हुए उन्हें निम्न प्रकार वर्गीकृत किया है–

(i) देवपूजा पर होने वाला व्यय।

(ii) पितृपूजा पर होने वाला व्यय।

(iii) दान के रूप में होने वाला व्यय।

(iv) स्वस्तिवाचन आदि धार्मिक कृत्यों पर होने वाला व्यय।

(v) अन्तःपुर पर होने वाला व्यय।

(vi) दूतप्रेषण पर होने वाला व्यय।

(vii) रसोईघर पर होने वाला व्यय।

(viii) कोष्ठागार पर होने वाला व्यय।

(ix) शस्त्रागार पर होने वाला व्यय।

(x) भण्डारागार पर होने वाला वयय।

(xi) जंगली टालों पर होने वाला व्यय।

(xii) कार्यशालाओं पर होने वाला व्यय।

(xiii) श्रमिकों पर होने वाला व्यय।

(xiv) पैदल सेना पर होने वाला व्यय।

(xv) रथसेना पर होने वाला व्यय।

(xvi) अश्वसेना पर होने वाला व्यय।

(xvii) रथसेना पर होने वाला व्यय।

(xviii) गजसेना पर होने वाला व्यय।

(xix) गाय, भैंस, बकरी आदि दुधारू पशुओं के रखरखाव पर होने वाला व्यय।

(xx) अन्य पशुओं, हिरणों, पक्षियों तथा हिंसक जानवरों के रखरखाव पर होने वाला व्यय।

(xxi) लकडी तथा घास आदि के रखरखाव पर होने वाला व्यय।[215]

---

215. देवपितृपूजादानार्थं . . . . . .काष्ठतृणवाटश्चेति व्यय शरीरम्। कौ0 अर्थ0 2/22/6 पृष्ठ 100

व्यय की उपरोक्त मदों का अवलोकन करने से एक विशेष बात यह स्पष्ट होती है कि सैन्य व्यवस्था पर सर्वाधिक व्यय किया जाता था; जो साम्राज्यवाद के उस युग की परिस्थितिजन्य तात्कालिक आवश्यकता भी थी। इसके बाद अधिकारियों/कर्मचारियों के वेतन पर राज्य की चौथाई आय खर्च हो जाती थी।[216] वेतन निर्धारण के क्रम में आचार्य कौटिल्य का निर्देश है कि ऋत्विक, आचार्य, मन्त्रि, पुरोहित, सेनापति, युवराज, राजमाता, महारानी (पटरानी) में से प्रत्येक को अडतालीस हजार पण वार्षिक (अर्थात चार हजार पण मासिक) वेतन दिया जाना चाहिए।[217] द्वारपाल, अन्तर्वशिक, प्रशास्ता, समाहर्ता, तथा सन्निधाता को चौबीस हजार पण वार्षिक (अर्थात दो हजार पण मासिक)[218] युवराज के भाई (कुमार), उन भाइयों की माताओं (कुमारमातृ), नायक, पौर, व्यावहारिक, कार्मान्तिक, मन्त्रि–परिषद सदस्यों, राष्ट्रपाल और अन्तपाल को बारह हजार पण वार्षिक (अर्थात एक हजार पण मासिक)[219] श्रेणीमुख्य (इंजीनियर), हाथी–घोडे–रथों के मुख्य अधिकारियों और प्रदेष्टा को आठ हजार पण वार्षिक (अर्थात् लगभग 668 पण मासिक),[220] पैदल सेना–अश्वसेना–रथ सेना तथा गज सेना के अध्यक्ष, लकड़ी तथा हाथियों के जंगल के अध्यक्षों को चार हजार पण वार्षिक (अर्थात लगभग 333 पण मासिक)[221] रथ–योद्धा गजशिक्षक, चिकित्सक, अश्वपालक, बढई तथा मुर्गा–सुअर आदि अन्य पशुपालकों को दो हजार पण वार्षिक (अर्थात् लगभग 167 पण मासिक),[222] भविष्यवक्ता, शकुनशास्त्री, ज्योतिषी, पुराण वाचक, सारथि, स्तुतिवाचक, पुरोहित के नौकर तथा सभी विभागों के अधीक्षकों को एक हजार पण वार्षिक (अर्थात् लगभग 84 पण मासिक),[223] युद्धकला में दक्ष पैदल सैनिकों, लेखाकार तथा लिपिक को पाँच सौ पण वार्षिक (अर्थात् लगभग 42 पण मासिक),[224] नट–नर्तक–गायक–वादक आदि कलाकारों को ढाई सौ

216. दुर्गजनपदशक्त्या भृत्यकर्म समुदयपादेन स्थापयेत्। कौ० अर्थ० 5/91/3 पृष्ठ 420
217. ऋत्विगाचार्यमन्त्रिपुरोहित. . . . अष्टचत्वारिंशत्साहस्राः। उपरोक्त
218. दौवारिकान्तर्वशिक. . . . .चतुर्विंशतिसाहस्राः। उपरोक्त
219. कुमारकुमारमातृनायक. . . . .द्वादशसाहस्राः। उपरोक्त
220. श्रेणीमुख्या हस्त्यश्वरथमुख्याः प्रदेष्टारश्च अष्टसाहस्राः। उपरोक्त पृष्ठ 421
221. पत्त्यश्वरथहस्त्यध्यक्षाः द्रव्यहस्तिवनपालाश्च चतुः साहस्राः। उपरोक्त
222. रथिकानीकस्थचिकित्सक. . . . .द्विसाहस्राः। उपरोक्त
223. कार्तान्तिकनैमित्तिक. . . . सर्वाध्यक्षाश्च साहस्राः। उपरोक्त
224. शिल्पवन्तः पादाताः संख्यायकलेखकादिवर्गाः पञ्चशताः। उपरोक्त

पण वार्षिक (अर्थात् लगभग 21 पण मासिक) तथा वाद्ययन्त्र बनाने वालों को उनसे दुगना वेतन अर्थात् पाँच सौ पण वार्षिक (लगभग 42 पण मासिक)[225] कारीगरों को एक सौ बीस पण वार्षिक (अर्थात् 10 पण मासिक),[226] चौपाया पशुओं तथा दुपाया पक्षियों के नौकर सेवक, अनुचर एवं पालक, श्रमिकों के ठेकेदार को साठ पण वार्षिक (अर्थात् 5 पण मासिक),[227] तथा शिक्षकों एवं विद्वानों को उनकी योग्यतानुसार पाँच सौ पण वार्षिक से लेकर एक हजार पण वार्षिक मानदेय (पूजा वेतन) दिए जाने का प्राविधान किया गया है।[228] उपरोक्त वेतन निर्धारण को आधुनिक युग में न्यायोचित नहीं माना जा सकता है। क्योंकि इसमें न्यूनतम वेतन एक सामान्य नौकर/श्रमिक का मात्र 5 पण मासिक निर्धारित किया गया है और अधिकतम वेतन मंत्री–पुरोहित आदि का 4000 पण मासिक है। इस प्रकार कौटिल्य काल का अधिकतम वेतन न्यूनतम वेतन से लगभग 800 गुना अधिक है। यह विराट अन्तर आधुनिक साम्यवादी–समाजवादी विचारधारा के लोगों को कदाचित ही मान्य हो। क्योंकि आधुनिक युग में यह अन्तर 10–20 गुना से अधिक नहीं होता है।[229] दूसरे, राजपरिवार के युवराज, राजमाता तथा पटरानी (महारानी) आदि अति विशिष्ट व्यक्तियों को सर्वोच्च वेतन भुगतान किया जाना भी वर्तमान लोकतांत्रिक राजनीति के लिए अप्रासंगिक है। गत सदी में भारत जैसे लोकतांत्रिक राज्य के राजघरानों के प्रिवीपर्स समाप्त करने के पीछे सम्भवतः यही एक राजनीतिक आर्थिक अवधारणा रही है।

फिर भी अधिकारियों/कर्मचारियों के वेतन–निर्धारण के सम्बन्ध में आचार्य कौटिल्य का यह निर्देश आज भी नितान्त प्रासंगिक है कि वेतन निर्धारण में राज्य की आर्थिक स्थिति को ध्यान में अवश्य रखा जाय। उनका स्पष्ट निर्देश है कि वेतन भत्तों पर होने वाला कुल व्यय राज्य की आय के चौथाई हिस्से से अधिक नहीं होना चाहिए तथा किसी भी दशा में 'धर्म' और 'अर्थ' को क्षति नहीं पहुँचना चाहिए।[230]

---

225. कुशीलवास्त्वर्धतृतीयशताः। द्विगुणवेतनाश्चैषां तूर्यकराः। कौ0 अर्थ0 5/91/3 पृष्ठ 421
226. कारुशिल्पिनो विंशतिशतिकाः। उपरोक्त
227. चतुष्पदद्विपदपरिचारक. . . . .विष्टिवन्धकाः षष्टिवेतनाः। उपरोक्त
228. आचार्या विद्यावन्तश्च. . . . पञ्चाशतावरं सहस्रपरम्। उपरोक्त पृष्ठ 422
229. डॉ0 धर्मवीर, कौटिल्य का समाजिक वैर, पृष्ठ 43
230. दुर्गजनपदशक्त्या. . . .न धर्मार्थौ पीडयेत्। कौ0 अर्थ0 5/91/3 पृष्ठ 420

आय–व्यय का लेखा–जोखा :

आचार्य कौटिल्य के वित्तीय प्रशासन में आय व्यय का लेखा जोखा रखने के लिए गाणनिक (Accountant) नामक अधीनस्थ अधिकारी होते थे। उन्हें प्रत्येक वित्तीय वर्ष का अलग–अलग लेखा–जोखा प्रस्तुत करना होता था। वित्तीय वर्ष की समाप्ति आषाढी पूर्णिमा को होती थी।[231] सभी कार्यालयों के 'गाणनिक' अधिकारी वित्तीय वर्ष की समाप्ति (आषाढी पूर्णिमा) पर हिसाब देने हेतु प्रधान कार्यालय में आते थे। आय–व्यय के लेखा–जोखा में शुचिता एवं पारदर्शिता बनाये रखने हेतु आचार्य कौटिल्य ने व्यवस्था दी है कि हिसाब देने आये 'गाणनिक' अधिकारियों को तब तक एक दूसरे से बातचीत न करने दी जाय जब तक कि उनके पास मुहरबन्द रजिस्टर तथा बचत राशि को रखने वाली धन–पेटिकाऐं मौजूद हैं। सर्वप्रथम आय, व्यय तथा बचत का विवरण सुनकर उनके पास जो बचत–राशि है, उसे ले लिया जाय। 'गाणनिक' द्वारा बताई गई आय से यदि रजिस्टर में अंकित बचत अधिक निकले तथा बताए गए व्यय से रजिस्टर में अंकित व्यय कम निकले तो उस पर बताई गई कम–अधिक राशि का आठ गुना दण्ड निर्धारित किया जाय।[232]

जो 'गाणनिक' अधिकारी निर्धारित समय पर अपने रजिस्टर तथा बचत राशि लेकर प्रधान कार्यालय नहीं पहुँचता; तो उसके हिसाब में जितना बाकी निकले, उसका दस गुना दण्ड उस पर लगाना चाहिए। यदि रजिस्टर की जाँच करने के लिए जाँच अधिकारी (Audit officer) पहुँचता है लेकिन लेखा लिपिक आदि उसे रजिस्टर नहीं दिखाते हैं तो उन पर प्रथम साहस दण्ड लगाना चाहिए। इसके विपरीत यदि लेखा लिपिक आदि अपने रजिस्टर की जाँच कराने के लिए तैयार बैठे हैं लेकिन जाँच अधिकारी जाँच करने नहीं आता है तो उसे दुगुना प्रथम साहस दण्ड दिया जाना चाहिए।[233] तत्कालीन वित्तीय प्रशासन में प्रतिदिन, प्रति पाँच दिन, प्रतिपक्ष, प्रतिमास, प्रति चार मास तथा प्रति वर्ष की राजकीय आय–व्यय एवं बचत का लेखा–जोखा तैयार करने का प्राविधान था।[234]

---

231. त्रिशतं चतु:पञ्चाशच्च. . . . .पूर्णं वा दद्यात्। कौ0 अर्थ0 2/23/7 पृष्ठ 104
232. गाणनिक्यान्याषाढीमागच्छेयु:. . . . . .तदष्टगुणमध्यक्षं दापयेत्। उपरोक्त पृष्ठ 105–06
233. यथाकालमनागतानाम्. . . . . . . विपर्यये कार्मिकस्य द्विगुण:। उपरोक्त पृष्ठ 106
234. दिवसपञ्चरात्रपक्षमासचातुर्मास्यसंवत्सरैश्च प्रतिसमानयेत्। उपरोक्त पृष्ठ 107

हिसाब–किताब के संबंध में किसी प्रकार का झूठ बोलने वाले को एक चोर की तरह दण्डित किए जाने का प्राविधान था।[235] इससे भी आगे यदि कोई लेखा–जोखा प्रस्तुत करते समय पहले तो किसी बात से मुकर जाता है किन्तु बाद में उसी बात को स्वीकार करता है तो उस पर चोर से दुगुना दण्ड लगाने का प्राविधान था। यही दण्ड विधान उनके साथ भी था जो पहले तो किसी वस्तु के विषय में भूलने की बात कहें और बाद में उसे प्रस्तुत कर दें।[236]

कर वसूली के नियम :

कौटिलीय अर्थशास्त्र में मुख्यतः तीन प्रकार के कर (शुल्क) निर्दिष्ट किए गए हैं–

(i) बाह्य शुल्क :

अपने ही देश में उत्पन्न वस्तुओं पर लिया जाने वाला शुल्क 'बाह्य शुल्क' कहलाता है।

(ii) आभ्यन्तर शुल्क :

राजमहल, दुर्ग तथा राजधानी में उत्पन्न वस्तुओं पर लिया जाने वाला शुल्क 'आभ्यन्तर शुल्क' कहलाता है।

(iii) आतिथ्य शुल्क :

विदेश से आयातित वस्तुओं पर लिया जाने वाला शुल्क 'आतिथ्य शुल्क' कहलाता है।[237]

इसके अतिरिक्त दो प्रकार के अन्य शुल्क का भी उसमें प्राविधान किया गया है–

(i) निष्क्राम्य शुल्क :

देश के बाहर निर्यात की जाने वाली वस्तुओं पर लगाया गया शुल्क 'निष्क्राम्य शुल्क' कहलाता है।

---

235. मिथ्यावादे स्तेयदण्डः। कौ0 अर्थ0 2/23/7 पृष्ठ 108
236. पश्चात् प्रतिज्ञाते द्विगुणः प्रस्मृतोत्पन्ने च। उपरोक्त
237. शुल्कव्यवहारो बाह्यमाभ्यन्तरं चातिथ्यम। कौ0 अर्थ0 2/38/22 पृष्ठ 189

(ii) प्रवेश्य शुल्क :

दूसरो देशों से आयात की जाने वाली वस्तुओं पर लगाया गया शुल्क 'प्रवेश्य शुल्क' कहलाता है।[238]

आचार्य कौटिल्य ने 'निष्क्राम्य शुल्क' की दरों का कोई निर्देश नहीं किया है। इस आधार पर कुछ आधुनिक अनुसिन्धित्सुओं का यह निष्कर्ष निकालना तर्कसंगत प्रतीत होता है कि सम्भवतः कौटिल्य अपनी देशोत्पादित वस्तुओं के निर्यात के पक्ष में नहीं रहे होंगे। क्योंकि उनके विचार से देश में उत्पन्न उत्तम सामग्री का निर्यात हो जाने से प्रजा को उसका अभावजन्य कष्ट हो सकता है।[239] हाँ, कौटिल्य विदेशी वस्तुओं के आयात के पक्ष में अवश्य दिखाई देते हैं। सम्भवतः इसीलिए उन्होंने 'प्रवेष्य शुल्क' की दरों का विधिवत् निर्धारण किया है। उनके मतानुसार 'प्रवेश्य शुल्क' की सामान्य दर संबंधित वस्तु के मूल्य का पाँचवा भाग होना चाहिए।[240] फूल, फल, शाक, कन्द–मूल, लता, बीज, सूखी मछली तथा मांस आदि वस्तुओं पर मूल्य का छठवाँ भाग 'शुल्क' के रूप में लिया जाना चाहिए।[241] शंख, हीरा, मणि, मोती, मूँगा और हार आदि कीमती वस्तुओं पर शुल्क उनके कुशल पारखियों की सलाह से उनके काम, आकार, समय एवं मजदूरी के आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिए।[242]

मोटा–मध्यम–महीन रेशमी वस्त्र, सूती कवच, हरताल, मैनसिल, हींग, लोहा, गेरू, चन्दन, अगरु, पीपल, मादक बीजों से निकाला द्रव्य, मदिरा, हाथीदाँत, मृगचर्म, रेशमी धागे, बिछौना, ओढना, अन्य रेशमी वस्त्र, बकरी तथा भेड़ के ऊन से बने वस्त्र आदि पर उनके मूल्य का दशवाँ अथवा पन्द्रहवाँ भाग 'शुल्क' के रूप में लिया जाना चाहिए।[243] वस्त्र, पशु, पक्षी, सूत, कपास, गन्ध, औषधि, लकड़ी, बाँस, छाल, चमड़ा, मिट्टी के वर्तन, अनाज, घी–तेल, नमक, मदिरा, तथा पके हुए अनाज पर मूल्य का वीसवाँ अथवा पच्चीसवाँ भाग

---

238. निष्क्राम्यं प्रवेश्यं च शुल्कम्। कौ० अर्थ० 2/38/22, पृष्ठ 189
239. डा० किरण टण्डन, संस्कृत साहित्य में राजनीति– 'श्रीकृष्ण और चाणक्य के सन्दर्भ में' पृष्ठ 261
240. प्रवेश्यानां मूल्यपञ्चभागः। कौ० अर्थ० 2/38/22 पृष्ठ 189
241. पुष्पफलशाकमूलकन्दवल्लिक्यबीजशुष्कमत्स्यमांसानां षड्भागं गृह्णीयात्। उपरोक्त
242. शंखवज्रमणिमुक्ताप्रवाल. . . . . .वेतनफलनिष्पत्तिभिः। उपरोक्त
243. क्षौमदुकूलक्रिमितान. . . . . .दशमाणः पञ्चदशभागो वा। उपरोक्त

'शुल्क' के रूप में निर्धारित किया जाना चाहिए।[244] आयातित नमक पर उसका छठवाँ भाग 'राजकर' के रूप में निर्धारित किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसके व्यापारी को पाँच प्रतिशत व्याजी (अधिभार– Surcharge), रूप (निरीक्षक शुल्क) तथा रूपिक (उत्पादन शुल्क) के रूप में निर्धारित किया जाना चाहिए।[245] व्यापारी से नापने वाले सामान पर मूल्य का सोलहवाँ भाग, तौलने वाले सामान पर बीसवाँ भाग तथा गिने जाने वाले सामान पर ग्यारहवाँ भाग 'शुल्क' के रूप में लिया जाना चाहिए।[246]

अपने ही तालाबों से हस्तचालित उपायों के द्वारा सिंचाई करने पर फसल का पाँचवाँ हिस्सा, कन्धों पर जल लाकर सिंचाई करने पर फसल का चौथा हिस्सा, नाली (नहर) इत्यादि से सिंचाई करने पर फसल का तीसरा हिस्सा 'राज्यकर' के रूप में अदा करना चाहिए।[247] नदी, ताल–तलैया तथा कुआँ इत्यादि से सिंचाई करने पर फसल का चौथा हिस्सा 'शुल्क' के रूप में अदा करना चाहिए।[248]

विना राजाज्ञा (ठेका) के मदिरा बेचने वाले व्यापारी से मूल्य का पाँच प्रतिशत शुल्क वसूल करना चाहिए।[249] दूसरे देश से अपने देश में कार्यक्रम प्रस्तुत करने के लिए आए नट–नर्तक, गायक–वादक आदि कलाकारों से प्रत्येक कार्यक्रम का पाँच पण शुल्क वसूल करना चाहिए।[250] अपने रूप--सौन्दर्य से आजीविकोपार्जन करने वाली वेश्या से उसकी मासिक आय में से दो दिन की आय 'शुल्क' के रूप में वसूल करना चाहिए।[251] मछुवारों से उनकी आय का छठवाँ हिस्सा 'कर' के रूप में वसूल किए जाने का प्राविधान था।[252]

---

244. वस्त्रचतुष्पद्विपद........विंशतिभागः पञ्चविंशति भागो वा। कौ० अर्थ० 2/38/22 पृष्ठ 190
245. आगन्तुलवणं षड्भागं.......व्याजीं, रूपं, रूपिकं च। कौ० अर्थ० 2//28/12 पृष्ठ 141
246. षोडशभागो मानव्याजी.....गण्यपण्यानामेकादशभागः। कौ० अर्थ० 2/32/16 पृष्ठ 165
247. स्वसेतुभ्यो हस्तप्रावर्तिमम......प्राविर्तिमं च तृतीयम्। कौ० अर्थ० 2/40/24 पृष्ठ 197
248. चतुर्थं नदीसरस्तटाककूपोदघाटम्। उपरोक्त
249. अराजयण्याः पञ्चकं शतं.......मधुफलाम्लंशीधूनां च। कौ० अर्थ० 2/41/25 पृष्ठ 204
250. तेषां तूर्यमागन्तुकं पञ्चपणं प्रेक्षावेतनं दद्यात्। कौ० अर्थ० 2/43/27 पृष्ठ 210
251. रूपाजीवा भोगद्वयगुणं मासं दद्युः। उपरोक्त
252. मत्स्यबन्धका नौकाभाटकं षड्भागं दद्युः। कौ० अर्थ० 2/44/28 पृष्ठ 212

करों में छूट :

आचार्य कौटिल्य ने कर–वसूली के द्वारा केवल कोश–सञ्चय पर ही ध्यान नहीं दिया है; बल्कि उन्होंने इस बात पर भी मानवीय दृष्टिकोण के साथ गम्भीर चिन्तन किया है कि जो लोग कर देने में अशक्त हैं या जिनको कर में किसी प्रकार की छूट देने पर राज्य के उद्योग–व्यापार में वृद्धि हो सकती है तो ऐसे लोगों के साथ उन्होंने करों में पर्याप्त छूट देने का प्राविधान भी किया है। आचार्य कौटिल्य के अनुसार राजा को चाहिए कि वह ऋत्विक, आचार्य, पुरोहित तथा श्रोत्रिय आदि को कर तथा दण्ड में छूट दें।[253] इसी प्रकार विवाह संबंधी सामग्री, दहेज संबंधी सामग्री, उपहार संबंधी सामग्री, यज्ञ–संस्कार–जन्मोत्सव संबंधी सामग्री, देव–पूजन, मुण्डन, उपनयन, गोदान, वृत तथा दक्षिणा संबंधी सामग्री आदि पर किसी प्रकार का कोई शुल्क (कर) नहीं लगाया जाता था।[254] आचार्य कौटिल्य यह भी निर्देश देते हैं कि नया तालाब और पुल बनवाने वाले व्यक्ति पर पाँच वर्ष तक कर में छूट रहना चाहिए। यदि वह उनका जीर्णोद्वार कराये तो चार वर्ष तक, उन पर उगे हुए झाड़–झंखाड़ की साफ–सफाई कराये तो तीन वर्ष तक और यदि ऊसर भूमि को कृषि योग्य बनाता है तो दो वर्ष तक उसे कर में छूट दी जाना चाहिए।[255] आचार्य कौटिल्य अन्यत्र निर्देश देते हैं कि ग्राम देवता के नाम से छोडे गये बैलों (नादियाबाबा) दस दिन की व्याई हुई गायों, तथा सांडों को कर मुक्त रखा जाय।[256]

(ग) प्रशासनिक व्यवस्था एवं वित्तीय प्रशासन की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता :

किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था की समीक्षा करते समय इस मूलभूत अवधारणा को ध्यान में रखना नितान्त आवश्यक है कि वस्तुतः कोई भी राजनीतिक/प्रशासनिक प्रणाली स्वयं में पूर्ण रूप से अच्छी या बुरी नहीं होती है। किसी भी प्रणाली की सफलता का मापदण्ड उसके प्रतिनिधियों/अधिकारियों/कर्मचारियों की चारित्रिक क्षमता पर भी निर्भर करता है।

253. ऋत्विगाचार्यपुरोहितश्रोत्रियेभ्यो ब्रह्मदेयान्यदण्डकराणि. . . .। कौ0 अर्थ0 2/17/1 पृष्ठ 77
254. वैवाहिकमन्वायन. . . . . .माण्डमुच्छुल्कं गच्छेत्। कौ0 अर्थ0 2/37/21 पृष्ठ 187
255. तटाकसेतुबन्धानां. . . . .स्थलस्य द्विवार्षिकः। कौ0 अर्थ0 3/65/9 पृष्ठ 292
256. ग्रामदेववृषा वा. . . . .गोवृषाश्चादण्ड्याः। कौ0 अर्थ0 3/66/10 पृष्ठ 296

इतिहास इस बात का साक्षी है कि यदि राजतंत्र सफल हुआ है तो वह कभी असफल भी हुआ है। दूसरी ओर प्रजातंत्र ने यदि आम जनता में आशा का संचार किया है तो उसने उसकी आशाओं पर तुषारपात भी किया है। इसी अवधारणा के साथ कौटिल्य कालीन प्रशासनिक व्यवस्था एवं वित्तीय प्रशासन की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता एवं अप्रासंगिकता दोनों का निष्पक्ष रेखांकन करने का प्रयास किया गया है। चारित्रिक शुचिता पर सर्वाधिक बल देने वाले कौटिलीय प्रशासन के निम्न बिन्दु आधुनिक राजनीति के लिए प्रासंगिक माने जा सकते हैं–

प्रासंगिकता :

(1) कौटिल्य का यह मत आज भी पूरी तरह प्रासंगिक है कि राजा को अपनी प्रजा को धर्म और कर्म मार्ग से कभी च्युत नहीं होने देना चाहिए।[257] प्रजा के चरित्र की रक्षा शासक का एक मुख्य कर्त्तव्य है जिस पर आज अधिक बल देने की आवश्यकता है।

(2) प्रशासनिक सफलता के लिए राजा/शासक का सच्चरित्र तथा जितेन्द्रिय होना आज भी प्रासंगिक है।[258] परन्तु आज शासन में आपराधिक प्रवृत्ति के लोगों का वर्चस्व स्थापित होता जा रहा है। जिसे रोकने के लिए विधायक, सांसद, मन्त्री आदि के चरित्रवान होने सम्बन्धी उपबन्धों को कठोरतापूर्वक लागू करने की आवश्यकता है। कौटिल्य की भाँति यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने भी चरित्र पर अधिक बल दिया है।

(3) राजा का अधर्माचरण एवं अनिष्टकारी व्यवहार से परे रहने का मत प्रासंगिक है।[259]

(4) तीन पुरुषार्थो–धर्म, अर्थ, काम में से किसी एक का अत्यधिक सेवन किया जाना बडा दुःखदायी होता है, इसलिए राजा के द्वारा इन तीनों का सन्तुलित उपभोग किया जाना आज भी प्रासंगिक है।[260]

(5) कौटिल्य की प्रशासनिक व्यवस्था में कोश एवं सेना को सर्वोच्च प्राथमिकता दिया जाना आज भी प्रासंगिक है। उनकी दृढ़ आस्था है कि कोश और सेना के बल पर इस कोशगर्भा पृथिवी को प्राप्त किया जा सकता है।[261] वह

257. तस्मात् स्वधर्मं राजा न व्यभिचारयेत्। कौ0 अर्थ0 1/1/2 पृष्ठ 11
258. शत्रुषडवर्गमुत्सृज्य. . . . . .बुभुजाते चिरं महीम्। कौ0 अर्थ0 1/3/5 पृष्ठ 17
259. अधर्मसंयुक्तमानर्थसंयुक्तं च व्यवहारम। कौ0 अर्थ0 1/3/6 पृष्ठ 18
260. धर्मार्थाविरोधेन. . . . . . .इतरौ च पीडयति। उपरोक्त
261. पृथिवी कोषदण्डाम्या प्राप्यते कोषभूषणा। कौ0 2/28/12 पृष्ठ 142

Rebetalle

अन्यत्र लिखते हैं कि कोश और सेना के बल पर राजा स्वपक्ष तथा परपक्ष को अपने वश में कर सकता है।[262] इतना ही नहीं, कौटिल्य राजा को निर्देश देते हैं कि उसकी एक दिन को आठ भागों में विभक्त करके जो दिनचर्या निर्धारित की गई है उसका प्रथम भाग वह रक्षा संबंधी मामलों तथा गत दिवस के आय व्यय के निरीक्षण में व्यतीत करे [263] तथा दिन के अन्तिम आठवें भाग में वह सेनापति के साथ युद्ध आदि के संबंध में परस्पर विचार विमर्श करे।[264] इस प्रकार हम देखते हैं कि राजा की दिनचर्या के आरम्भ और अन्त भी कोश और सेना पर ही केन्द्रित हैं। कौटिल्य की उक्त धारणा वर्तमान युग में इस रूप में प्रासंगिक है कि आज एक राष्ट्र की मजबूती के मानदण्ड उसके समृद्ध कोश एवं सेना ही माने जाते हैं।

(6) आचार्य कौटिल्य के अनुसार एक कुशल प्रशासक द्वारा प्रशासनिक गोपनीयता कायम रखना नितान्त आवश्यक है। उनका यह मत आज भी अतिशय प्रासंगिक है कि राजा जिन लोगों से जितनी अपनी गुप्त बातें बताएगा वह उतना ही उनके अधीन होता हुआ परवश हो जाएगा।[265] इसलिए राजा को अपनी गुप्त बातों को उसी प्रकार अपने मन में छिपाकर रखना चाहिए जैसे कछुवा अपने अंगो को छिपाकर रखता है।[266] उनके अनुसार जो राजा अपनी गुप्त मंत्रणाओं को छिपाकर नहीं रख सकता है वह उन्नातावस्था में पहुँचकर भी नीचे गिर जाता है। समुद्र में नाव के फट जाने से जो दशा उसमें सवार व्यक्ति की होती है, ठीक वही दशा मन्त्रणा का भेद खुल जाने पर राजा की होती है।[267] इसलिए आचार्य कौटिल्य ने मन्त्रणा का भेद खोल देने वाले को मरवा देने तक का प्राविधान किया है।[268]

---

262. स्वयक्षं परपक्षं च वशीकरोति कोशदण्डाभ्याम। कौ0 अर्थ0 1/1/3, पृष्ठ 12
263. तत्र पूर्वे दिवसस्याष्टभागे रक्षाविधानमायव्ययौ च श्रुणुयात्। कौ0 1/14/18 पृष्ठ 61
264. अष्टमेसेनापतिसखो विक्रमं चिन्तयेत्। उपरोक्त पृष्ठ 62
265. यावद्भयो गुह्यमाचष्टे. . . . . .वश्यो भवति तावताम्। कौ0 अर्थ0 1/3/7 पृष्ठ 20
266. गूहेत कूर्म इवाङ्गानि यत्स्याद विवृतमात्मनः। कौ0 अर्थ0 1/10/14 पृष्ठ 48
267 असंवृतस्य कार्याणि. . . . . .भिन्नप्लव इवोदधौ। कौ0 अर्थ0 7/117/13 पृष्ठ 521
268. उच्छिद्येत मन्त्रभेदी। उपरोक्त पृष्ठ 43

(7) गुप्तचरों के द्वारा अमात्यों के चरित्र की परीक्षा ली जाना आज कौटिल्यकाल से भी अधिक प्रासंगिक है।[269] इस प्रकार की व्यवस्था देश में लागू करके अधिक चरित्रवान मन्त्री नियुक्त किये जा सकते हैं।

(8) केवल अमात्य ही नहीं अपितु सभी मित्र राजाओं, शत्रु राजाओं तथा सभी प्रमुख प्रशासनिक अधिकारियों के आचरण पर पैनी नजर रखने के लिए उन सभी के पास गुप्तचर नियुक्त किया जाना आज भी प्रासंगिक है।[270] परन्तु आज प्रजातन्त्र के युग में इस प्रकार की निगरानी को स्वतन्त्रता में बाधक माना जा सकता है।

(9) राजतंत्रात्मक व्यवस्था का समर्थक होते हुए भी कौटिल्य ने 'जनमत' को किसी लोकतांत्रिक व्यवस्था से भी अधिक महत्व दिया है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में तो निर्वाचन के समय मतदान के द्वारा केवल दस–पाँच वर्षों में एक बार ही जनमत संग्रह कराया जाता है। निर्वाचन के बाद चुने गए प्रतिनिधियों को अपने पूरे कार्यकाल में जनमत और जनभावनाओं से कुछ भी लेना देना नहीं होता है। लेकिन आचार्य कौटिल्य का निर्देश है कि राजा को गुप्तचरों के माध्यम से अपने राज्य के जनमत एवं जनभावनाओं की अनवरत जानकारी रखना चाहिए।[271] आधुनिक काल में भी प्रजातंत्रीय भावनाओं के अनुकूल कुछ देशों में जनमत संग्रह की व्यवस्था है।

(10) राजा के उन्नतिशील होने पर उसके अधीन सारा भृत्यवर्ग उन्नतिशील हो जाता है। इसके विपरीत राजा के प्रमादी होने पर सारा भृत्यवर्ग भी प्रमाद करने लगता है।[272] आचार्य कौटिल्य का यह विचार हर काल में प्रासंगिक रहा है एवं रहेगा।

(11) कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट प्रशासनिक समयवद्धता आज भी महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार राजा को चाहिए कि पहले वह उस कार्य को देखे जिसकी मियाद बीत रही हो। क्योंकि अवधि बीत जाने पर कार्य या तो कष्टसाध्य हो जाता है अथवा सर्वथा असाध्य हो

---

269. शौचमशौचममात्यानां राजा मार्गेत सत्त्रिभिः। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 28
270. एवं शत्रौ च मित्रे . . . . . . .तीर्थेष्वष्टादशस्वपि। कौ0 अर्थ0 1/7/11 पृष्ठ 35
271. कृतमहामात्यापसर्पः पौरजानपदानपसर्पयेत्। कौ0 अर्थ0 1/8/12 पृष्ठ 37
272. राजानमुत्तिष्ठमानम्. . . . . प्रमाद्यन्तमनुप्रमाद्यन्ति। कौ0 1/14/18 पृष्ठ 61

जाता है।[273] अतः प्रशासक समयानुकूल एवं तत्कालिक निर्णय शीघ्र लें, यह आवश्यक है।

(12) शासक द्वारा जनहित एंव लोककल्याण को सर्वोच्च वरीयता दिया जाना आज भी प्रासंगिक है। इस संबंध में कौटिल्य का यह निर्देश उल्लेखनीय है कि प्रजा के सुख में राजा का सुख तथा प्रजा के हित में राजा का हित है। केवल राजा के प्रियकर कार्यो में ही उसका हित नहीं है। अपितु उसका हित तो प्रजा के लिए प्रियकर कार्य करने में है।[274] इस प्रकार का उच्च आदर्श यद्यपि आज के भौतिक युग में कठिन प्रतीत होता है पर एक उत्तम प्रशासन के लिए यह सर्वथा अनुकूल है।

(13) आचार्य कौटिल्य का यह निर्देश आज बडा प्रासंगिक है कि युवराज का सुशिक्षित होना परम आवश्यक है। क्योंकि जिस प्रकार घुन लगी लकडी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है उसी प्रकार अशिक्षित राजकुमारों का कुल बिना युद्ध आदि के ही नष्ट हो जाता है।[275] कौटिल्य के उक्त मत को आज केवल युवराज के सीमित अर्थ में ही नहीं अपितु राष्ट्र के सम्पूर्ण युवा अधिकारियों के व्यापक अर्थ में लेकर उनकी सेवा प्रशिक्षण पद्धति को और अधिक महत्व देकर उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की जा सकती है। इसी प्रकार युवराज को सैन्यविज्ञान की शिक्षा अनिवार्य रूप से दिए जाने का कौटिलीय मत[276] आज इस रूप में प्रासंगिक हो सकता है कि माध्यमिक विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अध्ययनरत वर्तमान युवापीढी को सैन्यविज्ञान की शिक्षा अनिवार्य रूप से दिए जाने की आवश्यकता है। क्योंकि कम्प्यूटर एवं सञ्चार क्रान्ति की चकाचौंध से दिग्भ्रमित वर्तमान युवापीढ़ी सैन्यविज्ञान की शिक्षा के प्रति एक चिन्ताजनक उपेक्षाभाव रख रही है। जबकि इस उपेक्षा का गम्भीर परिणाम मौर्य साम्राज्य के पतन के रूप में एक बार देखा जा चुका है।

---

273. सर्वमात्ययिकं कार्यं . . . . .वा विजायते। कौ0 अर्थ0 1/14/18 पृष्ठ 63
274. प्रजासुखे सुखं राज्ञः . . . . .प्रजानां तु प्रियं हितम्। कौ0 अर्थ0 1/14/18 पृष्ठ 64
275. काष्ठमिव घृणजग्धं. . . . . . . .अभियुक्तमात्रं भज्येत। कौ0 अर्थ0 1/12/16 पृष्ठ 54–55
276. पूर्वमहर्मागं हस्त्यश्वरथप्रहरणविद्यासु विनयं गच्छेत्। कौ0 अर्थ0 1/2/4 पृष्ठ 15

(14) आचार्य कौटिल्य की यह प्रशासनिक अवधारणा कि 'जो जितना बडा अधिकारी, उसकी उतनी बडी जिम्मेदारी और शिथिलता/उदासीनता/अनियमितता पाये जाने पर उसे उतना ही बडा कठोर दण्ड' वर्तमान राजनीति में बडी कारगर सिद्ध हो सकती है। राजनीति के अपराधीकरण के वर्तमान दौर में उच्च अधिकारी व राजनेता बड़े–बड़े अपराधो में संलिप्त होने पर भी कठोर दण्ड पाते नहीं सुने जाते। लेकिन कौटिल्य प्रशासन में अपराध सिद्ध होने पर कोषाध्यक्ष जैसे उच्च अधिकारियों को भी प्राणदण्ड तक दिए जाने का प्राविधान किया गया है।[277] इससे प्रेरणा लेकर वर्तमान उच्च अधिकारी अपने कर्त्तव्यों के प्रति अधिक गम्भीर एवं सचेत बनाये जा सकते हैं।

(15) कौटिलीय शासन पद्धति में दैवी–आपदा नियंत्रण को उच्च वरीयता प्रदान करते हुए उसके प्रबन्धन हेतु 'पुरोहित' का स्वतंत्र पद निर्धारित किया गया था। लेकिन दुर्भाग्यवश वर्तमान शासन पद्धति में इस कार्य को उतनी वरीयता नहीं दी जा रही है। इस कारण केन्द्र सरकार में दैवी–आपदा–प्रबन्धन के लिए किसी स्वतंत्र मंत्रालय का प्राविधान नहीं है। अतः आचार्य कौटिल्य से प्रेरणा लेते हुए यदि विभिन्न विनाशकारी दैवी–आपदाओं से निपटने के लिए एक स्वतंत्र आपदा प्रबन्धन मंत्रालय का गठन कर दिया जाये तो देश को प्रतिवर्ष होने वाली जान–माल की असीम क्षति से बचाने में सहायता मिल सकती है।

इस संबंध में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि दैवी एवं मानुषी आपदाओं के निवारण हेतु आचार्य कौटिल्य द्वारा पग–पग पर अथर्ववेद के ज्ञाताओं से मार्गदर्शन एवं सहायता लेने का निर्देश दिया गया है।[278] इससे यह सम्भावना बलवती होती है कि अथर्ववेद मे आपदा–प्रबन्धन सम्बन्धी प्रचार सामग्री उपलब्ध है, जिसकी अभी तक लोगों को कोई विशेष जानकारी नहीं है। इसलिए आज आपदा–प्रबन्धन की दृष्टि से अथर्ववेद के वैज्ञानिक अनुसन्धान की नितान्त आवश्यकता है। इस प्रकार अथर्ववेद तथा कौटिलीय अर्थशास्त्र जैसे

---

277. कोशाधिष्ठितस्य कोशावच्छेदे घातः। कौ० अर्थ० 2/21/5 पृष्ठ 97

278. कौटि० अर्थ० 4/78/3 पृष्ठ 360, 1/15/19 पृष्ठ 65–66, 4/78/3 पृष्ठ 357, 359

पारम्परिक ग्रन्थों से तद्विषयक सामग्री संकलित करते हुए 'आपदा–प्रबन्धन' को ज्ञान–विज्ञान की एक प्रथक शाखा के रूप में विकसित किया जा सकता है तथा उसे उच्च शिक्षा/तकनीकी शिक्षा के पाठ्यक्रम में निर्धारित किया जा सकता है। ताकि देश में 'आपदा–प्रबन्धन' के विषय–विशेषज्ञ पर्याप्त मात्रा में तैयार हो सकें।

(16) वर्तमान तनावग्रस्त सैन्य सेवाओं के लिए आचार्य कौटिल्य का यह मत अत्यन्त विचारणीय है कि सेना के साथ सैनिकों को प्रसन्न करने वाली स्त्रियाँ भी होना चाहिए।[279] इस संबंध में एक चौंकाने वाला दुःखद तथ्य यहाँ पर उल्लेखनीय है कि भारत में सैन्य कर्मी भारी संख्या में आत्महत्याऐं कर रहे हैं। गत तीन वर्षो के दुःखद आँकड़े बताते हैं कि सन् 2003 में कुल 120; 2004 में 116; तथा 2005 में 119 सैन्य कर्मी आत्महत्याऐं कर चुके हैं।[280] जिनका मुख्य कारण सैनिकों का अपने परिवारों से दूर रहने कारण उत्पन्न अवसाद एवं तनावग्रस्त जीवन है। इससे चिन्तित रक्षा मन्त्रालय अपने सैनिकों को तनावमुक्त रखने के कुछ नए उपाय खोज रहा है। इनमें एक उपाय विभिन्न सैन्य छावनियों में मनोवैज्ञानिक केन्द्र स्थापित करना है। इन केन्द्रो पर सैनिकों की मनोदशा परखने तथा सुधारने के लिए मनोवैज्ञानिक सलाहकार नियुक्त किए जायेंगे।[281] इन्हीं उपायों में कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट उपरोक्त उपाय को भी सम्मिलित कर तनावग्रस्त भारतीय सैनिकों को काफी हद तक राहत प्रदान की जा सकती है।

(17) सैन्य सेवाओं से संबंधित कौटिल्य कालीन 'प्रशास्ता' पद आधुनिक युग के सैन्य अभियन्ता (Garrison Engineer) अथवा कमाण्डर वर्क्स इंजीनियर (C.W.E-Commander Works Engineer) के रूप में प्रासंगिक बना हुआ है।

(18) कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट 'कूटयुद्ध' तथा 'तूष्णीयुद्ध' (गुप्तचरों द्वारा विष, औषधि एवं

---

279. चिकित्सकाः. . . . . . . पृष्ठतस्तिष्ठेयुः। कौ0 अर्थ0 10/150–52/3 पृष्ठ 649
280. डा0 लक्ष्मीशंकर यादव, तनाव से ग्रस्त सैन्य सेवा, दैनिक जागरण, झाँसी दिनांक 01–07–2006
281. उपरोक्त

विस्फोट आदि के प्रयोग से शत्रु का नाश करना) आदि उपायों पर राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से आज विचार किए जाने की आवश्यकता है। क्योंकि एक ओर तो विदेशी गुप्तचर एजेन्सियाँ तथा आतंकवादी संगठन इन विध्वंसक युद्ध तकनीकों का हमारे देश में चुनौतीपूर्ण प्रयोग कर रहे हैं तथा आए दिन सैकडों–हजारों बेगुनाह देशवासियों का नरसंहार कर रहे हैं; दूसरी ओर हम अपने आदर्श सिद्धान्तों तथा नैतिकता के नाम पर इनका प्रयोग करने में संकोच कर रहे हैं। समय का तकाजा है कि हम भी युद्ध की इन कूट तकनीकों का प्रयोग कम से कम भारत के अन्दर तथा बाहर चलाए जा रहे भारत विरोधी आतंकी प्रशिक्षण–शिविरों पर इस दृष्टि से अवश्य करें कि वहाँ राष्ट्रद्रोही एवं विध्वंशक शक्तियों का सफाया हो लेकिन निर्दोष एवं बेगुनाह लोग किसी भी रूप में प्रभावित न हों।

(19) आचार्य कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट 'देवताध्यक्ष' का पद आज भी प्रासंगिक है। क्योंकि धर्मप्राण देश भारत के कोने–कोने में ऐसे हजारों ख्यातिलब्ध मन्दिर हैं जहाँ प्रतिदिन विपुल धनराशि चढोत्तरी के रूप में एकत्रित होती है। इतनी भारी धनराशि का वहाँ के पण्डे–पुजारी क्या करते हैं, इसका किसी को कुछ भी पता नहीं होता है। हाल ही में एक साप्ताहिक पत्रिका के द्वारा काशी विश्वनाथ मन्दिर में करोड़ों की हेराफेरी का खुलासा किया गया है।[282] लेकिन दूरदर्शी कौटिल्य ने हजारो वर्ष पूर्व यह प्राविधान कर दिया था कि मन्दिरों के सुप्रबन्धन हेतु 'देवताध्यक्ष' नामक अधिकारी नियुक्त होगा जो मन्दिरों से होने वाली नियमित आय 'समाहर्ता' नामक प्रशासनिक अधिकारी को सौंपेगा।[283] कौटिल्य के निर्देशों का पालन करके आज दुहरा लाभ उठाया जा सकता है। एक तो मन्दिरों से होने वाली आय का दुरुपयोग रुकेगा; दूसरे, उस आय को जनकल्याण एवं विकास कार्यो में लगाया जा सकेगा। आज इस आय पर सरकार का कोई नियन्त्रण ने होने पर इनका दुरुपयोग हो रहा है और इनके कारण अनेक विवाद जन्म ले रहे हैं और हत्याऐं भी हो रही हैं।

---

282. योगेश मिश्र, चढावे की मलाई, आउटलुक (साप्ताहिक), 24 जुलाई 2006 अंक में प्रकाशित लेख–पृ20–21
283. शुल्कं दण्डः पौतवं. . . . . . . .द्वारवाहिरिकादेयं च दुर्गम्। कौ0 अर्थ0 2/22/6 पृष्ठ 99

(20) कौटिल्य का 'अक्षपटलाध्यक्ष' नामक अधिकारी वर्तमान में महालेखा परीक्षक (Accountant General) के रूप में प्रासंगिक बना हुआ है। इस पद को कौटिल्य की व्यवस्था के अनुसार और अधिक प्रभावशाली व उपयोगी बनाया जा सकता है।

(21) कौटिल्यकालीन 'बन्धनागाराध्यक्ष' का पद 'जेल अधीक्षक' के रूप में आज भी विद्यमान है। कौटिल्य के द्वारा कारागारों से संबंधित बनाये गए सख्त नियम आज भी बडे प्रासंगिक हैं। कारागार को फाँदकर या तोड़कर भागने/भगाने वाले अपराधी को 'मृत्युदण्ड' का प्राविधान था।[284] लेकिन आज इतने सख्त नियम न होने के कारण जेलों तथा जेल अधिकारियों की जो दुर्गति है वह किसी से छिपी नहीं है। कुछ दिनों पूर्व इस संबंध में प्रमुख दैनिक पत्र में प्रकाशित सम्पादकीय दृष्टव्य है– 'कानून एवं व्यवस्था के सन्दर्भ में इससे बडी विडम्बना और कोई नहीं कि उत्तर प्रदेश की जेलों में बन्द अपराधी जेल अधिकारियों के लिंए खतरा बन गए हैं। यह खतरा इतना गंभीर है कि कारागार महानिदेशक को शासन से यह गुहार लगाना पड़ी है कि जेल अधिकारियों को पर्याप्त सुरक्षा मुहैया कराई जाय। कारागार महानिदेशक के अनुसार जेलों में बन्द शातिर अपराधियों ने दो–चार–छैः नहीं, सत्रह जेल अधिकारियों को धमकी दी है। इन जेल अधिकारियों के नामों का खुलासा इसलिए नहीं किया गया कि कहीं अपराधियों का दुःसाहस और अधिक न बढ़ जाय।. . . .यदि जेल अधिकारी अपराधियो से डरने लगेंगे तो फिर जंगल राज से कब तक बचा जा सकेगा।[285] अतः इनसे संबंधित व्यवस्था एवं नियमों को अधिक कठोर और सक्षम बनाने के लिए कौटिलीय अर्थशास्त्र से प्रेरणा ली जा सकती है।

(22) सर्राफा व्यवसाय के नियन्त्रण हेतु कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट 'सुवर्णाध्यक्ष' एवं 'सौवर्णिक' नामक अधिकारियों की नियुक्ति वर्तमान में बडी लाभकारी सिद्ध हो सकती है। आज सोना–चाँदी जैसी कीमती धातुओं के व्यवसाय पर सरकार का कोई सीधा नियंत्रण न

---

284. परिग्रहीतां दासीं. . . . . . . .वन्धनागारात्सर्वस्वं वधश्च। कौ० अर्थ० 4/84/9 पृष्ठ 384
285. दैनिक जागरण, झाँसी, दिनांक 06–01–2006

होने के कारण स्वर्णकार लोग अपने व्यवसाय में पूर्ण स्वतंत्र है। इस कारण उनके हाथों केवल अशिक्षित एवं अल्पशिक्षित लोग ही नहीं अपितु सुशिक्षित एवं प्रतिष्ठित लोग भी बडे पैमाने पर ठगे जाते हैं। लेकिन कौटिल्य काल में ऐसा नहीं था। सर्राफा व्यवसाय के अनेक महत्वपूर्ण नियम निर्धारित थे जिनका पालन करना प्रत्येक सुनार के लिए आवश्यक था। 'सुवर्णाध्यक्ष' तथ 'सौवर्णिक' नामक अधिकारी का इस व्यवसाय पर पूर्ण शासकीय नियन्त्रण था।[286] जिसका अनुसरण आज भी किया जा सकता है।

(23) कौटिल्य कालीन 'प्रदेष्टा' नामक अधिकारी को आधुनिक 'मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट' समझा जा सकता है। फौजदारी के मुकदमों को सुनने और निर्णय देने का अधिकार उसी का था। उसके संबंध में विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि वह अन्य बातों के साथ–साथ अपराध के वर्तमान तथा भावी परिणामों को तथा देश–काल–परिस्थिति को भलीभाँति समझने के बाद ही अपराधियों को न्यायोचित दण्ड देता था।[287] ऐसा करने से समाज में बढ रहे अपराधों पर प्रभावी अंकुश लगाया जा सकता है। यह व्यवस्था अधिक मानवीय भी है।

(24) कौटिल्य काल में नगर प्रशासन एवं स्थानीय प्रशासन को संभालने वाले 'पौर' नामक उच्च अधिकारी को आधुनिक 'सिटी मजिस्ट्रेट' कहा जा सकता है। इस संबंध में अनुकरणीय तथ्य यह है कि समाज विरोधी तत्वों की अवांछनीय गतिविधियों पर अंकुश लगाने हेतु अत्यधिक व्यय करने वाले तथा अत्यधिक व्यसनी व्यक्तियों की सूचना 'नागरिक' को देना अनिवार्य था।[288] ताकि उन पर विशेष नजर रखी जा सके। क्योंकि ऐसे लोग ही सामाजिक सुख शान्ति को आघात पहुँचाते हैं। आज जनप्रतिनिधियों को इस प्रकार का अधिकार देकर देश में समाज विरोधी तत्वों को सचेत किया जा सकता है।

---

286. विस्तृत विवरण के लिए देखें–'अक्षशालायां सुवर्णाध्यक्षः' नामक अध्याय, कौ0 अर्थ0 2/29/3 पृष्ठ143–49
287. पुरुषं चापराधं च . . . . .कल्पयेदन्तरा स्थितः। कौ0 अर्थ0 4/85/10 पृष्ठ 388
288. अतिव्ययकर्तारमत्याहितकर्माणं च निवेदयेयुः। कौ0 अर्थ0 2/55/36 पृष्ठ 245

(25) कौटिल्य कालीन 'व्यावहारिक' नामक अधिकारी की भूमिका वर्तमान में 'सिविल जज' निभा रहे हैं। इस संबंध में कौटिल्य का यह निर्देश आज भी बडा सार्थक है कि 'व्यावहारिक' अधिकारी छलकपट से मुक्त होकर सबके साथ समानता एंव निष्पक्षता का व्यवहार करते हुए जनता के विश्वासपात्र एवं लोकप्रिय बने।[289] आज के अधिकारियों को इस प्रकार भ्रष्ट होने से रोका जा सकता है।

(26) कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट 'कार्मान्तिक' अधिकारी को आधुनिक युग में 'खनिज निदेशक' कह सकते हैं। जिसके अधीन अनेक अधिकारी कार्यरत होते हैं। इस संबंध में कौटिल्य का यह मत आज भी प्रासंगिक है कि कोश की उन्नति खान पर निर्भर है।[290] इसलिए राज्य की समृद्धि के मूल आधार 'खानो' के सुप्रबन्धन पर आज भी सर्वाधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। इस दिशा में देश में लागू व्यवस्था को और अधिक निपुण व कुशल बनाया जा सकता है।

(27) कौटिल्य कालीन 'आटविक' अधिकारी को आधुनिक 'वनसंरक्षक' (Forest Conservator) कह सकते हैं। वनों तथा वन्य–पशुओं का संरक्षण एवं संवर्द्धन करना उसका मुख्य दायित्व था। जिनके लिए आचार्य कौटिल्य ने बडे कठोर नियम बनाये थे। उन नियमों का पालन करके हम पर्यावरण संरक्षण की दिशा में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

इस प्रकार कौटिल्य कालीन प्रशासनिक व्यवस्था के कई बिन्दु आधुनिक युग में भी प्रासंगिक एवं अनुकरणीय हैं। जिनसे हम आधुनिक समस्याओं एवं चुनौतियों का सामना करने की दिशा में उपयोगी मार्गदर्शन एवं प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं। इसके बाद तत्कालीन वित्तीय प्रशासन की समीक्षा करते हुए आधुनिक राजनीति में उसकी प्रासंगिकता को निम्न प्रकार रेखांकित किया जा सकता है–

(1) आचार्य कौटिल्य का यह मत है कि वित्तीय प्रशासन की सफलता 'अर्थानुशासन' पर निर्भर करती है, आज भी नितांत प्रासंगिक है। इस संबंध में राजा को निर्दिष्ट किया गया है कि वह सदैव उद्यमशील होकर सर्वप्रथम 'वित्तीय अनुशासन' कायम करे।[291]

289. एवं कार्याणि धर्मस्थाः . . . . .विश्वास्या लोकसम्प्रियाः। कौ0 अर्थ0 3/14–75/20 पृष्ठ 342
290. आकरप्रभवः कोषः . . . . प्राप्यते कोषभूषणा। कौ0 अर्थ0 2/28/12 पृष्ठ 142
291. तस्मान्नित्योत्थितो राजा कुर्यादर्थानुशासनम्। कौ0 अर्थ0 1/14/18 पृष्ठ 64

(2) 'वित्तीय अनुशासन' कायम रखने के लिए आचार्य कौटिल्य का व्यापक दृष्टिकोण आज भी बडा प्रासंगिक है। उनके अनुसार वित्तीय अनुशासन की पहली शर्त है– मितव्ययिता। उनका स्पष्ट कहना है कि व्यय करते समय आय का अवश्य ध्यान रखा जाये। कहीं ऐसा न हो कि आय कम और व्यय अधिक हो जाय। इसलिए ऐसा कोई कार्य न किया जाय जिससे 'धर्म' और 'अर्थ' को क्षति पहुँचे।[292] मितव्ययिता की उपयोगिता को इंगित करते हुए कौटिल्य कहते हैं कि इस प्रकार ध्यानपूर्वक आय–व्यय करने वाले राजा पर कभी भी आर्थिक या सैन्य व्याधियाँ नही आ पातीं।[293] उनकी उपरोक्त अवधारणा का स्पष्ट आशय यह है कि राज्य का बजट कभी घाटे का नहीं होना चाहिए। असहनीय वित्तीय घाटों एवं संकटों से जूझ रहे वर्तमान राज्य कौटिल्य की इस अवधारणा से बहुत कुछ सीख सकते हैं। यद्यपि आधुनिक युग में घाटे के वजट की अवधारणा ही अधिक प्रचलन में है।

(3) जब घाटे का वजट नहीं होगा तो स्वाभाविक है कि आय–व्यय के बाद कुछ न कुछ राशि शेष बचेगी। इस बचत राशि को कौटिल्य ने 'नीवी[294] 'व्ययप्रत्याय'[295] 'पर्युषित'[296] 'कोषार्पित'[297] तथा 'शेष'[298] आदि अनेक नाम दिए हैं। आधुनिक राज्यों को कौटिल्यानुसार उपरोक्त वचत राशियाँ जुटाना अत्यधिक लाभप्रद हो सकता है।

(4) आचार्य कौटिल्य केवल वचत पर ही एकाग्रचित्त नहीं रहे हैं। बल्कि उन्होंने यह प्राविधान भी किया है कि जनहित में यदि कोई कार्य करने से भविष्य में विशेष आय की आशा है तो उस स्थिति में पहले अधिक व्यय भी किया जा सकता है।[299] कौटिल्य की यह व्यवस्था आधुनिक 'पूँजीनिवेश' की अवधारणा के अनुकूल है।

---

292. कार्यसाधनसहेन वा. . . . . , न धर्मार्थौ पीडयेत्। कौ0 अर्थ0 5/91/3 पृष्ठ 420
293. एवमवेक्षितायव्ययः कोशदण्डव्यसनं नावाप्नोति। उपरोक्त पृष्ठ 424
294. व्ययसञ्जातादायव्ययविशुद्धा नीवी प्राप्ता चानुवृत्ता चेति। कौ0 अर्थ0 2/22/6 पृष्ठ 102
295. विक्षेपव्याधितान्तरारम्भशेषश्च व्ययप्रत्यायः। कौ0 अर्थ0 2/22/6 पृष्ठ 101, 2/31/15, पृष्ठ 158
296. परमसांवत्सरिकः परप्रचारसंक्रान्तो वा पर्युषितः। कौटि0 अर्थ0 2/22/6, पृष्ठ 101
297. कोशार्पितं राजहरः. . . . . .एतत्सिद्धम्। उपरोक्त
298. करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययौ नीवी च। उपरोक्त
299. एवं कुर्यात्समुदयं वृद्धिं . . . . प्राज्ञः साधयेच्च विपर्ययम्। कौ0 अर्थ0 2/22/6, पृष्ठ 102

(5) वित्तीय अनुशासन के संबंध में आचार्य कौटिल्य का यह प्राविधान आज विशेष रूप से ध्यातव्य है कि राज्य के अधिकारियों/कर्मचारियों के वेतन पर राज्य-आय के चौथाई भाग से अधिक खर्च नहीं होना चाहिए।[300] वर्तमान में अधिकारियों/कर्मचारियों के वेतन भत्ते पर्याप्त होने तथा सरकार की वित्तीय स्थिति अत्यन्त खराब होने के बाद भी वेतनमानों को पुनरीक्षित कराये जाने हेतु जो छठवें वेतन आयोग के गठन की घोषणा की गयी है, उसके संबंध में सरकार तथा कर्मचारियों दोनों को कौटिल्य के उक्त मत पर राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करना श्रेयस्कर होगा।

(6) आचार्य कौटिल्य ने कर की सामान्य दर 1/6 अर्थात 16 प्रतिशत निर्धारित की है। इससे अधिक कर केवल आपात्काल में ही लगाये जा सकते हैं। जनता के ऊपर अत्यधिक कर भार लादने वाले वर्तमान राज्यों को इससे प्रेरणा लेना चाहिए। क्योंकि आधुनिक अर्थशास्त्री इस बात से चिन्तित है कि सरकार द्वारा एक्साइज ड्यूटी, वैट कर तथा आयकर आदि मिलाकर कुल 1/3 अर्थात् 35 प्रतिशत कर वर्तमान में जनता से वसूल किए जा रहे हैं, जो कौटिल्य द्वारा बताए गए कर से दोगुना हैं।[301]

(7) आचार्य कौटिल्य ने उन तत्वों एवं परिस्थितियों को बडी बारीकी से अपने संज्ञान में लिया है जिनके कारण 'वित्तीय अनुशासन' चौपट एवं ध्वस्त हो सकता है। उनके अनुसार 'वित्तीय अनुशासन' विलुप्त होने का मूल कारण है– भ्रष्टाचार तथा वित्तीय अनुशासन को कायम रखने का मुख्य उपाय है– भ्रष्टाचार–निवारण। इस संबंध में विशेष रूप से उल्लेखनीय तथ्य यह है कि कौटिलीय अर्थशास्त्र में भ्रष्टाचार निवारण संबंधी इतनी प्रचुर सामग्री उपलब्ध है कि उस पर एक स्वतंत्र अनुसन्धान कार्य किया जा सकता है।[302]

(8) आचार्य कौटिल्य के अनुसार भ्रष्टाचार निवारण के मुख्य उपाय के रूप में उच्च्व पदस्थ अधिकारियों/कर्मचारियों की नियुक्ति के बाद उनके चाल–चलन का गुप्त रूप से

---

300. दुर्गजनपदशक्त्या भृत्यकर्म समुदयपादेन स्थापयेत्। कौ0 अर्थ0 5/91/3 पृष्ठ 420

301. डा0 भरत झुनझुनवाला, आर्थिक चिन्तन का आधार, दैनिक जागरण, झाँसी दिनांक 22–03–06

परीक्षण होते रहना आवश्यक है। क्योंकि मानव की मनोवृत्तियाँ बडी विचित्र व चंचल होती हैं। जैसे घुडसवाल में वँधे हुए घोडों को यदि बीच–बीच में रथ इत्यादि में न जोता जाये तो वे कुछ समय बाद बिगड़ जाते हैं और फिर जोतने योग्य भी नहीं रह जाते हैं। इसी प्रकार इन अधिकारियों/कर्मचारियों की लम्बी सेवा–अवधि में यदि उनके आचरण और कार्यशैली का बीच–बीच में परीक्षण नहीं किया गया तो फिर वे उन्हीं विगडैल घोड़ों की तरह उद्दण्ड व बेकाबू हो जाते हैं।[303] वह कहता है कि इस परीक्षण में जो सही पाये जायें उन्हें पुरस्कृत तथा जो गलत पाये जायें उन्हें दण्डित किया जाय। इसके लिए वह स्पष्ट प्राविधान करता है कि यदि उच्च पदस्थ अधिकारी/कर्मचारी अपने कार्यो में गलत पाये जायें तो उन्हें उनके वेतन का दुगुना आर्थिक दण्ड दिया जाये।[304] लेकिन जो अपने कार्यो के प्रति ईमानदार व निष्ठावान पाये जायें उन्हें पदोन्नति व सम्मान दिया जाये।[305]

(९) आचार्य कौटिल्य द्वारा इन अधिकारियों/कर्मचारियों के चाल–चलन की जाँच का निर्दिष्ट उपाय आज भी प्रासंगिक है। इस संबंध में वह अपने कुछ पूर्ववर्ती आचार्यो के एक महत्वपूर्ण मत का उल्लेख करते हुए कहता है कि यदि किसी अधिकारी/कर्मचारी की आय कम और खर्च अधिक दिखाई दे तो समझ लीजिए कि वह राज्य के धन का अपहरण या रिश्वतखोरी करता है। लेकिन यदि जितनी उसकी आय है, उतना ही व्यय भी दिखाई दे तो समझ लीजिए कि वह न तो राजधन का गबन करता है और न ही रिश्वत लेता है।[306] लेकिन उपरोक्त सरलमति आचार्यगणों को संभवतः धनवंचकों और रिश्वतखोरों की गहरी कुटिलता का संज्ञान नहीं रहा है। उसे तो कौटिल्य जैसा दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ ही समझ पाया है। इसलिए उपरोक्त आचार्यो के मत का खण्डन

---

302. हरिओम शरण निरंजन, भ्रष्टाचार निवारण हेतु 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' के कुछ कारगर उपाय, शोधयात्रा (अक्टूबर 2004–जून 2005)
303. कर्मसु चैषां नित्यं परीक्षां. . . . . . मनुष्या नियुक्ताः कर्मसु विकुर्वते। कौ0 अर्थ0 2/25/9 पृष्ठ 114
304. प्रमादस्थानेषु चैषामत्ययं स्थापयेद दिवसवेतनव्ययद्विगुणम्। कौ0 अर्थ0 2/25/9 पृष्ठ 114
305. यश्चैषां यथादिष्टमर्थं सविशेषं वा करोति स स्थानमानौ लभेत। उपरोक्त पृष्ठ 115
306. अल्पायतिश्चेन्महाव्ययो. . . . . न भक्षयति इत्याचार्याः। कौ0 अर्थ0 2/25/9 पृष्ठ 115

करते हुए वह बडी गहरी सूझबूझ के साथ कहता है कि कोई आवश्यक नहीं कि जो अपना व्यय कम दिखा रहा हो, उसकी आय भी कम हो और वह रिश्वत आदि न लेता हो। रिश्वत लेने वाला कोई घूर्त अधिकारी भी तो अपना व्यय कम दिखा सकता है। इसलिए वह कहता है कि उनके परीक्षण का आधार केवल उनका प्रत्यक्ष आय–व्यय ही नहीं होना चाहिए। बल्कि उनकी (गुप्तचरों द्वारा) जाँच होनी चाहिए।[307]

(10) कौटिल्य के इस निर्देश का अनुपालन आज बडा लाभकारी सिद्ध हो सकता कि शासक को जब अपने गुप्तचरों द्वारा भ्रष्टाचार में लिप्त अधिकारियों का पता चल जाये तो उन मालामाल भ्रष्ट अधिकारियों की सारी सम्पत्ति को जब्त कर लिया जाय तथा उन्हें उनके पदों से पदच्युत कर दिया जाय। ताकि वे भविष्य में कभी गबन न कर सकें तथा कुछ समय बाद अपने गबन को स्वयं ही उगल दें।[308]

(11) आचार्य कौटिल्य ने तीन प्रकार के धन दुरुपयोगियों–क्रमशः मूलहर (वंशानुगत सम्पत्ति का अन्यायपूर्वक उपभोग करने वाले), तादात्विक (जितना कमाएें उतना ही व्यय कर देने वाले) तथा कदर्य (नीति–अनीति का विचार किए बिना अकूत सम्पदा जोडने वाले) को भ्रष्टाचार की मूल जड मानते हुए शासन द्वारा उन पर प्रभावी अंकुश लगाये जाने का निर्देश दिया हैं।[309] इन तीनों में भी 'कदर्य' नामक भ्रष्टाचारी को कौटिल्य ने सर्वाधिक घातक मानते हुए उसे मरवा देने तक का प्राविधान किया है।[310]

(12) भ्रष्टाचार निवारण हेतु आचार्य कौटिल्य का एक विचार यह भी विचारणीय है कि हिसाब–किताब के संबंध में किसी प्रकार का झूठ बोलने वाले को चोरी का दण्ड दिया जाय।[311] आचार्य कौटिल्य के उक्त निर्देश के अनुपालन से लेखा–जोखा प्रस्तुत करने में झूठ बोलना और फिर खेद जताकर निजात पाने की जो वर्तमान में घातक अनर्थ–परम्परा अवाध रूप से चल रही है उस पर अंकुश लगाया जा सकता है।

---

307. अपसर्पेणैवोपलभ्यते इति कौटिल्यः। कौ0 अर्थ0 2/25/9 पृष्ठ 115
308. आसावयेच्चोपचितान्. . . . .निर्वमन्ति वा। उपरोक्त पृष्ठ 117
309. मूलहरतादात्विककदर्यांश्च प्रतिषेधयेत। उपरोक्त पृष्ठ 116
310. यश्चास्य परविषये. . . . .शत्रुशासनापदेशेनैनं घातयेत्। उपरोक्त
311. मिथ्यावादे स्तेयदण्डः। कौ0 अर्थ0 2/23/7 पृष्ठ 108

(13) यह एक अनुभव सिद्ध तथ्य है कि सुरा–व्यवसाय का नियन्त्रण शिथिल होने पर राज्य में भ्रष्टाचार सहित अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं प्रशासनिक समस्याऐं उत्पन्न होती है। इसलिए कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट उपायों से इस व्यवसाय पर प्रभावी नियंत्रण करके हम अपनी अनेक राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान सहज ही कर सकते हैं। 'नशामुक्ति अभियान' को प्रभावी बनाने के लिये भी सुरा व्यवसाय पर नियन्त्रण आवश्यक है।

(14) उक्त उपायों के अतिरिक्त इस अध्याय में वर्णित कोश–क्षय के कारण और निवारण, कोश–हरणकर्ता और उनके दण्डोपाय, तथा धनोत्पादन हेतु हानिकारक प्रवृत्तियों पर कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट दिशा निर्देशों के अनुरूप प्रभावी कार्यवाही करने से वर्तमन राजनीति में द्रुतगति से बढ रहे भ्रष्टाचार की दुर्निवार समस्या का निवारण करने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की जा सकती है।

(15) कौटिल्य द्वारा सुझाए गए भ्रष्टाचार–निवारण के उपरोक्त उपायों के सफल क्रियान्वयन हेतु हमें अपने भारतीय संविधान में संशोधन करने की आवश्यकता भी पड सकती है। क्योंकि कौटिल्य के मतानुसार भ्रष्ट अधिकारियों/कर्मचारियों पर गुप्तचरों के माध्यम से पैनी नजर रखना चाहिए तथा उनके द्वारा प्रस्तुत आख्या के आधार पर ही उनको पदच्युत जैसे कठोर दण्ड दिए जाने चाहिए। किन्तु भारतीय संविधान तो किसी भी आरोपी को तब तक दोषी नहीं मानता जब तक उसका अपराध प्रमाणित न हो जाय। जबकि भ्रष्टाचार एक ऐसा जटिल एवं कुटिल अपराध है कि उसे प्रमाणित कर पाना बडा कठिन होता है। इस संबंध में आचार्य कौटिल्य द्वारा एक रोचक किन्तु प्रामाणिक तथ्य प्रस्तुत किया गया है– 'जिस प्रकार पानी में रहने वाली मछलियाँ पानी पीती दिखाई नहीं देती है लेकिन पीती अवश्य हैं; उसी प्रकार वित्तीय/शासकीय कार्यो में नियुक्त कर्मी भी धन का अपहरण करते हुए जाने नहीं जाते हैं किन्तु करते अवश्य हैं'।[312] लेकिन हमारे वर्तमान संविधान की मंशा के अनुसार मछली के द्वारा तब तक

312. मत्स्याः यथान्तः सलिले. . . . .ज्ञातुं न शक्या धनमाददानाः। कौ0 अर्थ0 2/25/9 पृष्ठ 117

पानी पिया हुआ नहीं माना जाएगा जब तक कि वह विभिन्न प्रमाणों और गवाहों द्वारा विधिक प्रक्रिया के तहत प्रमाणित न हो जाय।

(15) कौटिल्य के इस मत पर आज भी गंभीरता के साथ गौर करने की आवश्यकता है कि भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति तो मानव के अन्दर स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहती है; लेकिन उसे विभिन्न उपायों से नियंत्रित करना पडता है। उनके अनुसार– 'जिस प्रकार यह सम्भव नहीं है कि जिह्वा पर रखे हुए मधु अथवा विष का स्वाद मनुष्य न ले, उसी प्रकार यह भी संभव नहीं है कि वित्तीय/शासकीय कार्यो में नियुक्त कर्मी धन का थोडा भी स्वाद न लें।[313] अतः वित्त विभाग के अधिकारियों के कार्य एवं आचरण की नियमित जाँच होती रहना आवश्यक है। इसके लिये उचित व्यवस्था भी होनी चाहिए।

(17) भ्रष्टाचार केवल आधुनिक युग की ही दुर्निवार समस्या नहीं है। संभवतः यह कौटिल्य युग में भी अवांछनीय स्तर पर विद्यमान थी। इसीलिए उन्हें अपने 'अर्थशास्त्र' में यह लिखना पडा कि 'आकाश में उडने वाले पक्षियों की गतिविधि का पता लगाना सम्भव है किन्तु धन का अपहरण करने वाले भ्रष्टाचारियों की गतिविधि से पार पाना बडा कठिन है।[314] युगों–युगों से चली आ रही ऐसी जटिल एवं दुर्निवार भ्रष्टाचार समस्या के निवारण हेतु आधुनिक राजनायिकों को आचार्य कौटिल्य से प्रेरणा लेते हुए अपनी पूरी ईमानदारी एवं दृढ़ इच्छाशक्ति प्रदर्शित करने की बलवती आवश्यकता है।

(18) वित्तीय अनुशासन कायम रखने में आचार्य कौटिल्य ने इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि कर–संग्रह एवं कोश–वृद्धि में प्रजा को किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं होना चाहिए। उनका स्पष्ट निर्देश है कि धन–संग्रह उसी तरह किया जाय़ जैसे बगीचे से केवल पके फल लिए जाते हैं तथा कच्चे फल छोड दिए जाते हैं। कच्चे फल के समान प्रजा को कष्ट पहुँचाकर धन–संग्रह करना प्रजा के कोप का तथा राजा के

---

313. यथा ह्यनास्वादयितुं न शक्यं. . . . . .स्वल्पोऽप्यनास्वादयितुं न शक्यः। उपरोक्त

314. अपि शक्या गतिर्ज्ञातुं. . . . . . . चरतां गतिः। उपरोक्त

आत्म–नाश का कारण बनता है।[315] कौटिल्य की उक्त अवधारणा आधुनिक पाश्चात्य अर्थशास्त्री कालवर्ट के इस कर–सिद्धान्त से मेल खाती है कि– 'वत्तख के पर इस तरह निकाले जायें कि वह कम से कम चीखे चिल्लाये।[316] आचार्य कौटिल्य अन्यत्र लिखते हैं कि यदि किसी काम को करने में अधिक लाभ की संभावना हो किन्तु उससे प्रजा को कष्ट पहुँचता हो तो राजा को वह कार्य तत्काल बन्द करा देना चाहिए।[317] उदारीकरण तथा भूमण्डलीकरण के इस दौर में केवल पूँजी बाजार एवं स्वहित का ध्यान रखने वाले आधुनिक राज्यों को कौटिल्य से प्रेरणा लेकर प्रजा–हित को भी ध्यान में रखने की आज सर्वोपरि आवश्यकता है। स्वार्थसिद्धि के मद में चूर होकर प्रजाहित की सर्वथा उपेक्षा करने वाले आज के राजनियन्ताओं के लिए कौटिल्य के उक्त निर्देश अत्यन्त अनुकरणीय हैं।

(19) प्रजा हित एवं कर संग्रह में यथासंभव सामञ्जस्य बनाते हुए आचार्य कौटिल्य ने कोश वृद्धि के जो व्यवहारिक नौ उपाय बताए हैं वे आज भी प्रासंगिक है।[318]

(20) कौटिल्य की सारी अर्थव्यवस्था कृषि, पशुपालन और व्यापार पर केन्द्रित रही है। इन तीनों को उन्होंने सामूहिक नाम 'वार्ता' दिया है।[319] उनकी धारणा है कि 'वार्ता' के द्वारा उपार्जित कोश और सेना के बल पर राजा स्वपक्ष तथा परपक्ष को अपने वश में कर सकता है।[320] इन तीनों व्यवसायों को क्षति पहुँचाने वाले संभावित तत्वों को अपने संज्ञान में लेते हुए कौटिल्य ने राजा को उनसे समुचित रक्षा किए जाने के निर्देश दिए हैं।[321] कृषि, पशुपालन और व्यापार में आने वाली कौटिल्य निर्दिष्ट बाधाओं को दूर करके वर्तमान में उल्लेखनीय आर्थिक प्रगति की जा सकती है। इसी सन्दर्भ में यह भी

---

315. पक्कं पक्वमिवारामात् फलं. . . . . . . वर्जयेत् कोपकारकम्। कौ0 अर्थ0 5/90/2 पृष्ठ 419
316. डा0 उमाशंकर प्रसाद श्रीवास्तव, कौटिल्य का अर्थशास्त्र : समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ 176 से उद्घृत।
317. स्थूलमपि च लाभं प्रजानामौपघातिकं वारयेत्। कौ0 अर्थ0 2/32/16 पृष्ठ 164
318. प्रचारसमृद्धि. . . . . . . .इति कोषवृद्धिः। कौ0 अर्थ0 2/24/8 पृष्ठ 109
319. कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता। कौ0 अर्थ0 1/1/3 पृष्ठ 12
320. तया स्वपक्षं परपक्षं च वशीकरोति कोशदण्डाभ्याम। उपरोक्त
321. दण्डविष्टिकरावाधैः . . . . क्षीयमाणं वणिक्पथम्। कौ0 अर्थ0 2/17/1 पृष्ठ 81

उल्लेखनीय है कि कौटिल्य ने बाँधों एवं जलाशयों को अन्नोत्पादन का मुख्य कारण माना है। क्योंकि जो अन्न हमें केवल प्राकृतिक वृष्टि के द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं उन्हें हम बाँधो एवं जलाशयों की सहायता से सदा ही प्राप्त कर सकते हैं।[322] कौटिल्य के उक्त सुझाव पर अमल करके निम्न भू–जलस्तर एवं जलसंकट से जूझ रही वर्तमान इक्कीसवीं सदी अपनी समस्या का समुचित समाधान खोज सकती है। यद्यपि बाँधों को तो आज सिंचाई या जल ऊर्जा के लिये महत्व दिया जा रहा है परन्तु जलाशय पूर्णतया उपेक्षित हैं।

(21) कौटिल्यकालीन 'सीताध्यक्ष' 'गोऽध्यक्ष' तथा 'पण्यध्यक्ष' पद वर्तमन में क्रमशः 'कृषि निदेशक' 'पशुपालन निदेशक' एवं 'उद्योग निदेशक' के रूप में प्रासंगिक हैं।

(22) कौटिल्य के द्वारा खेत–खलिहानो में आकस्मिक रूप से होने वाले भयावह अग्निकाडों को रोकने का यह अत्यन्त सरल उपाय आज भी बडा प्रासंगिक है कि खलिहान में काम करने वाले व्यक्ति अपने पास आग न रखें किन्तु पानी का प्रबन्ध करके अवश्य रखें।[323]

अप्रासंगिकता :

आचार्य कौटिल्य की यह दृढ़ मान्यता रही है कि कोई भी विचार, मत और नियम कभी नित्य एवं स्थायी नहीं होता। देश, काल, परिस्थिति के अनुसार उसमें परिवर्तन होना अवश्यम्भावी है। किसी बहिर्साक्ष्य की आवश्यकता नहीं, कौटिलीय अर्थशास्त्र के अन्तर्साक्ष्य ही उनके इस मत को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं। इस ग्रन्थ के अध्येता यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि आचार्य कौटिल्य ने स्थान–स्थान पर अपने पूर्ववर्ती आचार्यो के महत्वपूर्ण मतों का उल्लेख किया है और तत्काल बाद 'नेति कौटिल्यः' (कौटिल्य को यह मत मान्य नहीं है) कहकर उसका न्याय संगत तर्को से खण्डन किया है। इसका गूढार्थ यह नहीं कि वह स्वयं को पूर्वाचार्यो की अपेक्षा अधिक विद्वान एवं श्रेष्ठतर सिद्ध करना चाहते थे। अपितु

---

322. सेतुबन्धः सस्यानां योनिः. . . . . .सेतुवापेषु। कौ0 अर्थ0 7!118/14 पृष्ठ 525
323. अनग्निकाः सोदकाश्च खले स्युः परिकर्मिणः। कौ0 अर्थ0 2/40/24 पृष्ठ 199

इसका अभिधेयार्थ मात्र यही है कि कौटिल्य द्वारा उद्धृत पूर्वाचार्यो के मत अपने युग के लिए सत्य, स्वीकार्य एवं प्रासंगिक रहे होंगे, लेकिन कौटिल्य युग तक आते-आते उनमें देश-काल-परिस्थितिजन्य इतने परिवर्तन आ गए होंगे, कि कौटिल्य के लिए उन्हें उसी रूप में स्वीकार करना सम्भव नहीं रहा होगा। कौटिल्य का यह चिन्तन उनकी विकासशीलता का द्योतक है। क्योंकि परिवर्तन को जो जितने जल्दी स्वीकार करता है उसका चिन्तन उतना ही विकासोन्मुखी होता है।

इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए देखें तो कौटिल्य के द्वारा प्रतिस्थापित अनेक नियम ऐसे हैं जो कौटिल्य युग के लिए तो अत्यन्त उपादेय थे किन्तु आधुनिक युग के लिए वे पूरी तरह अप्रासंगिक एवं अव्यवहारिक हो रहे हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि कौटिलीय अर्थशास्त्र की आधुनिक युग में प्रासंगिकता को यदि आज कोई दूसरा नहीं, स्वयं कौटिल्य ही इंगित करने बैठते तो शायद ई० पू० तीसरी-चौथी शताब्दी में बार-बार 'नेति कौटिल्यः' लिखने वाले कौटिल्य को आज इक्कीसवी सदी में अपने ही पुराने तार्किक विचारों पर अनेक जगह 'नेदानीम्' (मेरा यह मत इस समय मान्य नहीं हो सकता है) लिखने में कहीं कोई संकोच नहीं होता। इसी वैचारिक पृष्ठभूमि के साथ यहाँ पर कौटिल्य कालीन प्रशासनिक एवं वित्तीय व्यवस्था के कुछ अप्रासंगिक बिन्दुओं का उल्लेख निम्न प्रकार है-

(1) इतिहासकार इस तथ्य को लेकर अचम्भित हैं कि मौर्य साम्राज्य का जिस तेजी से उदय हुआ उसी तेजी से अस्त भी हो गया। क्योंकि सामान्यतया ऐसा होता नहीं है। साम्राज्य-पतन के अधिकांश उदाहरणों में उनकी राजनीतिक अधोगति की आहट प्रायः बहुत पहले से सुनाई दे जाती है। लेकिन मौर्य साम्राज्य के साथ ऐसा नहीं हुआ। कौटिल्य जैसे कुशल राजनयिक के मार्गनिर्देशन में चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा बडी श्रम-साधना के साथ जिस वृहद एवं सुदृढ़ मौर्य साम्राज्य की स्थापना की गई थी वह अपना उत्कर्ष पूरी एक सदी भी नहीं देख सका। चन्द्रगुप्त के पुत्र बिन्दुसार तथा पौत्र सम्राट अशोक तक लगभग 85 वर्षो तक तो यह राजसत्ता ठीक-ठाक चली; किन्तु उसके बाद

लगभग आधी सदी में ही इतना विशाल साम्राज्य ताश के पत्तों की तरह भरभरा कर ढह गया। इतिहासकारो ने शासन के अत्यन्त केन्द्रीकृत स्वरूप को इसका मुख्य कारण माना है।[324]

कौटिल्य ने अपनी सारी राजनीति एवं कूटनीति का तानाबाना एकमात्र विजिगीषु राजा को केन्द्र बिन्दु मानकर ही बनाया है। वहाँ निर्णय लेने की अन्तिम शक्ति राजा में ही निहित है। कौटिल्य की इस नीति ने एक ऐसी द्विधारी तलवार का काम किया है जिसकी एक धार ने यदि अनुकूल परिस्थितियों में शत्रुओं को मारा है तो उसी की दूसरी धार ने प्रतिकूल परिस्थितियों में स्वयं राजा को भी मार गिराया है। जब तक राजा सबल एवं निपुण रहा तब तक तो कौटिल्य की यह नीति सफल होती रही। लेकिन जैसे ही कोई निर्बल एवं अकुशल राजा सत्तासीन हुआ तो केन्द्रीय सत्ता भी दुर्बल होती गई। इतिहास इस बात का साक्षी है कि दुर्बल सत्ता को समाप्त करने में शत्रु को कभी कोई कठिनाई नहीं हुयी। मौर्य साम्राज्य के साथ भी यही हुआ। चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार और अशोक जैसे शक्तिशाली एवं नीतिवेत्ता राजा जब तक मौजूद रहे,इस साम्राज्य का कोई बाल–बाँका भी नहीं कर सका। लेकिन उनके बाद जैसे ही कुदाल और दशरथ आदि दुर्बल एवं अकुशल राजाओं का दौर शुरू हुआ तो फिर इस साम्राज्य को कोई बचा भी नहीं सका। अतः कौटिल्य द्वारा स्थापित राजा के प्रति इतना अधिक केन्द्रीकृत शासन का स्वरूप आधुनिक राजनीति के लिए प्रासंगिक नहीं है।

(2) कौटिलीय प्रशासन–व्यवस्था की एक बहुत बडी कमी यह भी थी कि वहाँ अधिकारी राजा के प्रति उत्तरदायी थे, जनता या राज्य के प्रति नहीं। उनके चयन, नियुक्ति और निष्कासन के सम्बन्ध में राजा की शक्ति असीमित थी। इस व्यवस्था के तहत राजा के बदलने पर उच्च पदस्थ अधिकारियों के भी बदले जाने की सम्भावना रहती थी। इस कारण यह व्यवस्था उन साम्राज्यों के लिए बड़ी घातक सिद्ध हुई जहाँ जल्दी–जल्दी

324. रोमिला थापर, अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन, पृष्ठ 206 व 211

सत्ता परिवर्तन हुए हैं। दुर्भाग्यवश मौर्य साम्राज्य के साथ ऐसा ही हुआ। इतिहास साक्षी है कि सम्राट अशोक की मृत्यु और मौर्य साम्राज्य के पतन के बीच राज्य संभालने वाले कुल सात मौर्य राजाओं में से किसी का कार्यकाल 10–12 वर्षो से अधिक नहीं रहा।

(3) कौटिलीय अर्थशास्त्र की एक आश्चर्यजनक कमी यह भी है कि साम्राज्य–प्रशासन की सूक्ष्य से सूक्ष्म बातों को यथोचित निर्देश देने वाले आचार्य कौटिल्य मन्त्रियों की नियुक्ति से पूर्व उनकी 'उपधा–परीक्षा' लिए जाने का महत्वपूर्ण निर्देश तो देते हैं, किन्तु अधिकारियों की नियुक्ति से पूर्व वे किसी भी प्रकार की परीक्षा लेने का प्राविधान नहीं करते हैं। इस कारण उच्च अधिकारी राजा की इच्छानुसार चुने जाते थे। अनुमान लगाया जा सकता है कि इसी प्रकार निचले स्तर तक कर्मचारियों की नियुक्ति की यह प्रथा प्रचलित रही होगी। इस प्रथा से राज्य में सामाजिक बन्धुत्व तो अवश्य बढा होगा क्योंकि अधिकारियों में अपने ही सामाजिक वर्ग या मित्रो में से अधीनस्थ अधिकारी चुनने की स्वाभाविक प्रवृत्ति रही होगी। किन्तु राज्य को इससे बहुत बडी क्षति पहुँची होगी। राजा बदल जाने पर राज्य में बडी विचित्र स्थिति सृजित होती होगी। एक ओर तो नये राजा को इन अधिकारियों पर उतना विश्वास नहीं रहता होगा, जितना उनकी नियुक्ति करने वाले पुराने राजा को था; दूसरी ओर इन अधिकारियों की नये राजा के प्रति वैसी स्वामिभक्ति नहीं रहती होगी जैसी रोजी–रोटी देने वाले पुराने राजा के प्रति थी। इसके अतिरिक्त नए राजा के साथ विश्वासघात या अन्य कोई गम्भीर अपराध करने के कारण यदि किसी एक अधिकारी को निष्कासित करना पडता होगा तो शायद प्रशासन के उस पूरे संबंधित विभाग को ही बदलना जरूरी हो जाता होगा। इतिहासकारों का मत है कि सम्राट अशोक के बाद समी मौर्य सम्राटों को बहुधा इस स्थिति का सामना करना पडा होगा।[325] इसलिए वेहतर होता कि कौटिल्य उच्च अधिकारियों की नियुक्ति के लिए कोई विशिष्ट परीक्षा प्रणाली निर्दिष्ट करते, जैसा कि बाद की शताब्दियो में

---

325. रोमिला थापर, अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन, पृष्ठ 207

भारतवर्ष में ब्रिटिश शासको ने किया था। क्योंकि एक सुविचारित परीक्षा प्रणाली से निकल कर आई हुई दक्ष नौकरशाही राजनीतिक उथल–पुथल वाले साम्राज्य को स्थिर एवं गतिशील बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

(4) कौटिल्य काल में न्यायपालिका स्वतंत्र नहीं थी। 'प्रदेष्टा' नामक न्यायिक अधिकारी को राजा और अमात्यों की सहमति लेनी पडती थी।[326] न्यायपालिका की स्वतंत्र–सत्ता के पक्षधर वर्तमान युग के लिए उक्त मत प्रासंगिक नही हो सकता है।

(5) निरंकुशता दिखाने वाले राजा पर नियंत्रण हेतु आचार्य कौटिल्य 'नरक' में जाने के भय के अतिरिक्त अन्य कोई लौकिक, वैधानिक एवं व्यावहारिक उपाय नहीं सुझा पाये हैं। यह स्थिति आधुनिक राजनीति के लिए प्रासंगिक नहीं है। यह व्यवस्था प्राचीन काल के लिए यद्यपि ठीक थी क्योंकि राजा के धर्माचरण को ही उस समय सर्वाधिक महत्व दिया जाता था।

(6) एक ही अपराध के लिए भिन्न–भिन्न वर्णो को भिन्न–भिन्न प्रकार के दण्डों का प्रयोग आधुनिक युग के लिए प्रासंगिक नहीं है। क्योंकि आज के प्रजातंत्र युग में 'कानून के समक्ष समानता' के सिद्धान्त को जनतंत्र का मुख्य आधार माना जाता है।

(7) 'राजा को चाहिए कि वह ऐसे उच्च अधिकारियों तथा संघ–प्रमुखों को चुपके से मरवा दे जो राजा के खिलाफ वगावत करते हों।'[327] कौटिल्य का यह मत आधुनिक लोकतांत्रिक राज्यों के लिए प्रासंगिक नहीं है। क्योंकि लोकतन्त्र में दण्ड का प्रावधान कानूनी प्रक्रिया द्वारा ही निर्धारित होता है।

(8) ज्योतिष, शकुन तथा धार्मिक अनुष्ठान हेतु राजा को परामर्श देने वाला जो पुरोहित पद कौटिल्य काल में अत्यन्त महत्वपूर्ण था, आधुनिक युग के लिए वह अप्रासंगिक है। परन्तु देश की किसी जटिल समस्या के समाधान तथा दैवी–आपदाओं के शमन हेतु शासन को दिशा निर्देश देने में इस प्रकार का पदाधिकारी आज उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

---

326. पुरुषं चापराधं च . . . . कल्पयेदन्तरा स्थितः। कौ0 अर्थ0 4/85/10 पृष्ठ 388
327. राज्योपघातिनस्तु. . . . . . . .उपांशुदण्डं प्रयुञ्जीत। कौ0 अर्थ0 5/89/1, पृष्ठ 405

(9) प्राचीन चतुरंगिणी सेना के तीन अंग–अश्वसेना, गजसेना तथा रथसेना वर्तमान युग में कालातीत होने के कारण उक्त सेनाओं के अध्यक्ष पद क्रमशः– अश्वाऽध्यक्ष, हस्त्यध्यक्ष, तथा रथाध्यक्ष भी आज अप्रासंगिक हो चुके हैं।

(10) कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट विभिन्न प्रकार की सेनाऐं जैसे– मौलबल, श्रेणीबल, मित्रबल, अमित्रबल, अटवीबल तथा औत्साहिक बल वर्तमान युग के लिए प्रासंगिक नहीं है। क्योंकि समय के साथ आज के वैज्ञानिक युग में सेना का स्वरूप पर्याप्त रूप में परिवर्तित हो चुका है।

(11) आधुनिक चिन्तकों ने आचार्य कौटिल्य के इस मत पर एक विचारणीय प्रश्नचिन्ह लगाया है कि शासन को बालक, वृद्ध, व्याधिग्रस्त, रोगी लोगों, तथा वन्ध्या एवं असहाय पुत्रवती स्त्रियों, उनके बच्चों तथा अन्य जरूरतमन्द लोगों के जीवनयापन की व्यवस्था करना चाहिए।[328] आधुनिक चिन्तकों के मतानुसार कौटिल्य के उक्त चिन्तन में शासन प्रमुख तथा समाज गौण प्रतीत होता है। पश्चिमी सभ्यता की भाँति कौटिल्य के उक्त विचार में देश की व्यवस्था के केन्द्र में राज्य है। उनका यह विचार हमारी मूल भारतीय संस्कृति के विपरीत जाता है। क्योंकि मनुस्मृति, रामायण तथा महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में राज्य को नहीं, समाज को देश का प्रमुख बताया गया है। तदनुसार भारतीय संस्कृति कहती है कि कमजोर लोगों के भरण–पोषण की व्यवस्था राज्य नहीं, अपितु समाज स्वयं करे। इसलिए प्रायः देखा जाता है कि असहाय एवं भूखे लोगों को गाँवों के मन्दिर में अथवा गुरुद्वारे के लंगर में भोजन दे दिया जाता है। हमारी संस्कृति में सरकार के भरोसे असहाय लोगों को नहीं छोडा गया है। जनता स्वयं परमार्थ, परोपकार एवं पुण्यार्जन की सांस्कृतिक भावना के साथ इस प्रकार की सेवाओं को कुशलतापूर्वक चला सकती है।

लेकिन कौटिल्य के चिन्तन के अनुसार इसी भोजन आदि की व्यवस्था राज्य द्वारा कराये जाने के लिए एक भारी भरकम नौकरशाही तैनात की जाती है। जिसके

---

328. बालवृद्धव्याधित. . . . . . . प्रजातायाश्च पुत्रान्।. कौ0 अर्थ0 2/17/1 पृष्ठ 79

पारिश्रमिक एवं वेतन के लिए जनता से भारी कर वसूल किया जाता है। यहाँ पर गौर करने वाली बात यह है कि कर–वसूली और अनुदान–वितरण के बीच की सुरसामुखी प्रक्रिया में आधी से अधिक राशि भ्रष्टाचार का अजगर लील जाता है। इस दुःखद स्थिति से दुःखी होकर भारत के एक पूर्व प्रधानमंत्री को यह दुःखद टिप्पणी करनी पडी थी कि जनकल्याण एवं विकास कार्यों के लिए सरकार से जो धनराशि अवमुक्त की जाता है उसमें से केवल 15 प्रतिशत ही पात्र लोगों तक पहुँच पाती है, शेष 85 प्रतिशत राशि बीच के बिचौलिए हजम कर जाते हैं। इसलिए कौटिलीय अर्थशास्त्र में कमजोर लोगों के पोषण के लिए समाज को प्रेरित करने के स्थान पर नौकरशाही का पोषण किया जाना उचित नहीं है।[329]

(12) कौटिल्य प्रशासन का एक नकारात्मक पहलू यह भी है कि जनता के प्रति यदा–कदा उसकी हीन एवं नकारात्मक दृष्टि देखने को मिलती है। वह राजा के द्वारा अपने गुप्तचरों के माध्यम से जनता को तरह–तरह के ढोंग, पाखण्ड एवं मिथ्याडम्बर दिखाते हुए उसे मूर्ख बनाकर, धोखा देकर धन संग्रह किए जाने की सलाह देता है।[330] जिसे आधुनिक युग में किसी प्रकार से राज्यानुमत नहीं माना जा सकता है। इसे जनता के अन्धविश्वासों को प्रोत्साहन देना और उसका शोषण करना ही कहा जायेगा।

(13) आचार्य कौटिल्य की प्रशासनिक व्यवस्था में वेतन निर्धारण का वह क्रम जिसमें एक सामान्य नौकर/श्रमिक के वेतन से राज्य के सर्वोच्च अधिकारी का वेतन लगभग 800 गुना अधिक निर्धारित किया गया है, वर्तमान युग के लिए न्यायोचित नहीं माना जा सकता है। यद्यपि यह व्यवस्था विवेकपूर्ण नहीं है फिर भी वर्तमान में अधिकांश देशों में लागू है एवं भारत में भी वेतन निर्धारण में पर्याप्त असन्तुलन है।

(14) राजपरिवार के युवराज, राजमाता तथा पटरानी (महारानी) आदि अतिविशिष्ट व्यक्तियों को सर्वोच्च वेतन भुगतान किया जाना वर्तमान लोकतांत्रिक राजनीति के लिए प्रासंगिक नहीं है। सम्भवतः इसीलिए भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में पुराने राजा–महाराजाओं के प्रिवीपर्स बहुत पहले ही समाप्त किए जा चुके हैं।

---

329. डा0 भरत झुनझुनवाला, आर्थिक चिन्तन का आधार, दैनिक जागरण, झाँसी दिनांक 22–03–2006

330. देवताध्यक्षो दुर्गराष्ट्रदेवतानां. . . . तदुमयं रात्रौ मोषयेत्। कौ0 अर्थ0 5/90/2 पृष्ठ 415–17

(15) नमक जैसी आवश्यक वस्तु, जिसका उपयोग गरीब–अमीर सभी समान रूप से करते हैं, उसका छठवाँ भाग (अर्थात् 16–17 प्रतिशत) राजकर लगाया जाना आधुनिक युग के लिए प्रासंगिक नहीं है।[331]

(16) कौटिल्य के द्वारा सिंचाई के रूप में फसल का तीसरा चौथा अथवा पाँचवाँ हिस्सा निर्धारित किया जाना आधुनिक युग के लिए अनुमन्य नहीं हो सकता है।[332]

(17) कौटिल्य की यह व्यवस्था कि मदिरा बनाने तथा उसका मसाला तैयार करने के लिए स्त्रियों तथा बालकों को नियुक्त किया जाना चाहिए[333] बालश्रम शोषण तथा नारी शोषण से चिन्तित वर्तमान सदी के लिए प्रासंगिक नहीं है।

(18) कौटिल्य द्वारा अनुमन्य वैश्यावृत्ति 'नारी–सदी' कहलाने वाली वर्तमान इक्कीसवीं सदी के लिए किसी भी दृष्टि से प्रासंगिक नहीं है। इसलिए यह व्यवसाय तथा उसका प्रशासनिक अधिकारी 'गणिकाध्यक्ष' वर्तमान युग के लिए विधिक तथा नैतिक– दोनों दृष्टियों से अवांछनीय है।

(19) वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था में कौटिल्य के 'नायक' 'दुर्गपाल' एवं 'अन्तपाल' आदि पद अप्रासंगिक हैं।

---
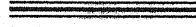
331. आगन्तुलवणं षडभागं दद्यात्। कौ0 अर्थ0 2/28/12 पृष्ठ 141
332. स्वसेतुभ्यो हस्तप्रावर्तिमम्. . . . . . प्रावर्तिमं च तृतीयम्। कौ0 अर्थ0 2/40/24 पृष्ठ 197
333. सुराकिण्वविचयं स्त्रियो बालाश्च कुर्युः। कौ0 अर्थ0 2/41/25 पृष्ठ 204

चतुर्थ अध्याय– कानून, दण्ड, न्याय एवं सुरक्षा व्यवस्था

दण्डो हि केवलो लोकं परं चेमं च रक्षति।
राज्ञा पुत्रे च शत्रौ च यथादोषं समं धृतः।।

(कौ0 अर्थ0 3/56–57/1)

[राजा के द्वारा अपने पुत्र और शत्रु– दौनों को समान रूप से दिया गया निष्पक्ष दण्ड इहलोक तथा परलोक दौनों की रक्षा करता है।]

चतुर्थ अध्याय (कानून, दण्ड, न्याय एवं सुरक्षा व्यवस्था)

किसी भी सम्प्रभुतासम्पन्न राज्य के अस्तित्व के लिए कानून, न्याय, दण्ड एवं सुरक्षा व्यवस्था का सुदृढ़ होना नितान्त आवश्यक है। इनके अभाव में 'मात्स्यन्याय' की स्थिति उ त्पन्न हो सकती है जो राज्य की सम्प्रभुता के लिए अत्यन्त घातक एवं विध्वंसक होती है। आचार्य कौटिल्य ने उक्त तत्वों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है तथा तद्विषयक अपना प्रौढ मत व्यक्त किया है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में कानून, न्याय, दण्ड एवं सुरक्षा संबंधी प्राप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है।

(क) कानून एवं दण्ड :

कौटिलीय अर्थशास्त्र में यों तो कानून संबंधी विवरण छुटपुट रूप में यहाँ वहाँ सर्वत्र विखरा पड़ा है; फिर भी उसका 'धर्मस्थीय' नामक तृतीय अधिकरण तथा 'कण्टकशोधन' नामक चतुर्थ अधिकरण का कुछ अंश तो पूर्णतया 'कानून' पर ही केन्द्रित है। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति पी0 बी0 गजेन्द्रगडकर जैसे विधिवेत्ताओं ने अपनी सम्मति यहाँ तक व्यक्त की है कि कौटिलीय अर्थशास्त्र जैसे महान ग्रन्थ का लगभग आधा भाग विभिन्न सिद्धान्तों, नियमों, कानूनों, विधि–विधानों तथा अध्यादेशों का सारसंग्रह है। उन्होंने इसे 'दण्डनीति' का संक्षिप्त विधान कहा है।[1]

आचार्य कौटिल्य ने कानून के धर्म, व्यवहार (साक्ष्य), चरित्र (परम्परा) तथा राजाज्ञा– ये चार स्रोत माने हैं। इनमें भी धर्म से श्रेष्ठ व्यवहार, व्यवहार से श्रेष्ठ चरित्र तथा चरित्र से श्रेष्ठ राजाज्ञा मानी गई है।[2] उक्त चारों स्रोतों में धर्म स्थित रहता है सच्चाई में, व्यवहार रहता है साक्षियों में, चरित्र रहता है सामाजिक जीवन में तथा राजाज्ञा स्थित रहती है राजकीय शासन में।[3] आचार्य कौटिल्य का मत है कि जो राजा धर्म, व्यवहार, चरित्र और न्यायपूर्वक शासन करता है वह चारो समुद्र पर्यन्त पृथ्वी पर विजय प्राप्त करता है।[4] यदि

1. Cultural Heritage of India; p. 428 (Kautilyan Jurisprudence; V. K. Gupta p 4 से उदघृत)
2. धर्मश्च व्यवहारश्च चरित्रं राजशासनम्. . . . . . .पूर्वबाधक:। कौ0 अर्थ0 3/56–57/1, पृष्ठ 259
3. अत्र सत्ये स्थितो. . . . . . . .राज्ञामाज्ञा तु शासनम्। कौ0 अर्थ0 3/56–57/1 पृष्ठ 259
4. अनुशासद्धि धर्मेण . . . . . चतुरन्तां महीं जयेत्। उपरोक्त

कभी धर्म के साथ व्यवहार अथवा चरित्र के विरोध की स्थिति उत्पन्न होती है तो वहाँ धर्म को ही प्रमाण मानना होगा। अर्थात् वहाँ पर व्यवहार एवं चरित्र के आधार पर नहीं अपितु धर्म के आधार ही निर्णय दिया जायेगा।[5] लेकिन यदि कभी न्यायोचित राजाज्ञा की धर्म के साथ विरोध की स्थिति उत्पन्न होती है तो वहाँ राजाज्ञा को ही प्रमाण मानना होगा; अर्थात् वहाँ पर धर्मशास्त्र के अनुसार नही, अपितु राजाज्ञा के अनुसार निर्णय दिया जायेगा। क्योंकि ऐसा करने से धर्मशास्त्र का पाठमात्र ही नष्ट होता है, उसकी किसी अन्य मर्यादा पर कोई विशेष आघात नहीं होता है।[6] कानून एवं दण्ड एक दूसरे से सम्बद्ध तथा एक दूसरे पर आश्रित होते हैं। प्रत्येक राज्य द्वारा प्रशासनिक सुव्यवस्था, समाज के बहुमुखी विकास तथा प्रजा की सुख, शान्ति एवं 'योगक्षेम' के लिए अनेकानेक कानूनों का निर्माण किया जाता है। उन कानूनों का उल्लंघन करने वालों को समुचित दण्ड की व्यवस्था की जाती है। कानून तथा दण्ड में एक के बिना दूसरे के अस्तित्व की कल्पना संभव नहीं है। कानून के बिना दण्ड तथा दण्ड के बिना कानून रह ही नहीं सकते हैं।

आचार्य कौटिल्य ने 'दण्ड' एवं 'दण्डनीति' पर सर्वाधिक बल दिया है। कौटिल्य युग में प्रचलित चार विद्याओं– आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता एवं दण्डनीति, में उन्होंने 'दण्डनीति' को अन्य विद्याओं के 'योगक्षेम' का साधन कहा है।[7] उसी से अप्राप्त वस्तुओं की प्राप्ति, प्राप्त वस्तुओं की रक्षा, रक्षित वस्तुओं की वृद्धि, तथा सम्बर्द्धित वस्तुओं का समुचित कार्यो में नियोजन संभव होता है। उसी पर संसार की सम्पूर्ण लोकयात्रा निर्भर है।[8] 'दण्ड' का प्रयोग न करने पर 'मात्स्य–न्याय' की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।[9] जिसके अन्तर्गत बलवान निर्बल को डस जाता है। जबकि 'दण्ड' के द्वारा रक्षित निर्बल व्यक्ति भी स्वयं को समर्थ एवं सबल समझता है।[10]

---

5. संस्थया धर्मशास्त्रेण . . . . . . धर्मेणार्थं विनिर्णयेत्। कौ0 अर्थ0 3/56–57/1 पृष्ठ 259
6. शास्त्रं विप्रतिपद्येत. . . . .पाठो हि नश्यति। उपरोक्त
7. आन्वीक्षकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः। कौ0 1/1/3 पृष्ठ 12
8. अलब्धलाभार्था. . . . . . .तस्यामायत्ता लोकयात्रा। उपरोक्त
9. अप्रणीतो हिं मात्स्यन्यायमुद्भावयति। उपरोक्त पृष्ठ 13
10. बलीयाबलं हि ग्रसते दण्डधराभावे। तेन गुप्तः प्रभवतीति। उपरोक्त

दण्ड प्रयोग के संबंध में आचार्य कौटिल्य का मत है कि राजा को न तो कठोर दण्ड का प्रयोग करना चाहिए और न ही मृदु दण्ड का। अपितु उसे अपराध के अनुसार ही यथोचित दण्ड का प्रयोग करना चाहिए।[11] क्योंकि भलीभाँति सोच समझकर प्रयोग किया गया दण्ड प्रजा को धर्म, अर्थ और काम में प्रवृत्त करता है।[12] इसके विपरीत दण्डनीय व्यक्तियों को दण्ड न देने से, अदण्डनीय व्यक्तियों को दण्ड देने से, गिरफ्तार न किये जाने योग्य व्यक्तियों को गिरफ्तार करने से तथा गिरफ्तारी योग्य व्यक्तियों को गिरफ्तार न करने से प्रजाजनो में क्षय, लोभ और वैराग्य उत्पन्न हो जाता है।[13] इसलिए राजा को चाहिए कि चाहे कोई उसका शत्रु हो अथवा पुत्र; उसे हमेशा निष्पक्ष होकर सभी को एक समान दण्ड देना चाहिए।[14]

न्यायिक अधिकारी (प्रदेष्टा) का यह दायित्व था कि वह राजा अथवा प्रजा दोनों के प्रति निष्पक्ष एवं निर्भीक रहते हुए अपराधी व्यक्ति, उसके अपराध, अपराध की मंशा, गम्भीरता, लघुता, परिणाम, वर्तमान प्रभाव, देश तथा काल आदि सभी तथ्यों की विधिवत् जाँच पड़ताल करने के बाद ही उसे न्याय के अनुसार दण्डित करे।[15] दण्ड मुख्य रूप से तीन प्रकार के थे– प्रथम साहस दण्ड (48 से 96 पण तक का अर्थदण्ड), मध्यम साहस दण्ड (200 पण से 500 पण तक का अर्थदण्ड) तथा उत्तम साहस दण्ड (500 पण से 1000 पण तक को अर्थदण्ड)।[16] इसके अतिरिक्त अपराधी तथा अपराध की प्रवृत्ति के अनुसार कुछ विशेष दण्डों का भी प्राविधान था।[17]

ब्राह्मण को सभी प्रकार के अपराधो में अनुत्पीडनीय बताया गया है।[18] केवल विभिन्न अपराधो के अनुसार उसके मस्तक पर विभिन्न प्रकार के निशान दाग दिए जाने का

11. तीक्ष्णदण्डो हि. . . . . .यथार्हदण्डः पूज्यः। कौ0 अर्थ0 1/1/3 पृष्ठ 12
12. सुविज्ञातप्रणीतो हि दण्डः प्रजा धर्मार्थकामैर्योजयति। उपरोक्त
13. अदण्डनैश्च दण्ड्यानाम्. . . . . वैराग्यं चोपजायते। कौ0 अर्थ0 7/108–10/5 पृष्ठ 472–73
14. दण्डो हि केवलो लोकं परं. . . . . . . यथादोषं समं धृतः। कौ0 अर्थ0 3/56–57/1 पृष्ठ 259
15. पुरूषं चापराधं. . . . . . .कल्पयेदन्तरा स्थितः। कौ0 अर्थ0 4/85/10 पृष्ठ 388
16. अष्टचत्वारिंशत्पणावरः. . . . . .उत्तमः साहसदण्ड इत्याचार्याः। कौ0 अर्थ0 3/74/17 पृष्ठ 328–29
17. पुरुषापराधविशेष दण्डविशेषः कार्यः। कौ0 अर्थ0 3/74–75/20 पृष्ठ 341
18. सर्वापराधेष्वपीडनीयो ब्राह्मणः। कौ0 अर्थ0 4/83/8 पृष्ठ 379

प्राविधान था। ताकि वह समाज में एक अपराधी एवं पतित व्यक्ति के रूप में चिन्हित हो सके।[19] दूसरी ओर शूद्र अपने जिस अंग से ब्राह्मण पर प्रहार करता है उसका वही अंग काट कर उसे दण्डित किया जाता था।[20]

कानून तथा दण्ड के भेद :

कौटिलीय अर्थशास्त्र में कानून एवं दण्ड संबंधी जो विवरण प्राप्त होता है उसके आधार पर कानून तथा दण्ड के मुख्य रूप से चार भेद किए जा सकते हैं–

(अ) फौजदारी कानून तथा दण्ड

(ब) दीवानी कानून तथा दण्ड

(स) संवैधानिक एवं प्रशासनिक कानून तथा दण्ड

(द) अन्तर्राष्ट्रीय कानून तथा दण्ड

उपरोक्त कानूनों के संबंध में कौटिलीय दृष्टिकोण को निम्न प्रकार समझा जा सकता है।

(अ) फौजदारी कानून तथा दण्ड :

मानव अपने स्वभाव से शान्तिप्रिय जीवन व्यतीत करना चाहता है। किन्तु समाज में कुछ तत्व ऐसे होते हैं जो उसके उक्त उद्देश्य में बाधक बनते हैं। समाज में अनेक प्रकार से उपद्रव, अशान्ति एवं अराजकता उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं। अराजक तत्व ही नहीं, कभी कभी सभ्य, शान्तिप्रिय एवं निर्विवाद मानव भी परिस्थितियों वश पारस्परिक कलह एवं विवाद के शिकार हो जाते हैं। ऐसी परिस्थितियों में उग्र एवं अराजक तत्वों पर अंकुश लगाने के लिए तथा लड़ाई–झगड़ों के दोषी लोगों को दण्डित करने के लिए राज्य द्वारा अनेक प्रकार के फौजदारी कानून तथा तद्विषयक दण्ड विधान बनाए जाते हैं। कौटिलीय अर्थशास्त्र में निम्न प्रकार के फौजदारी कानूनों तथा दण्डों का उल्लेख मिलता है–

---

19. तस्यामिशस्ताङ्को. . . . . . वासयेदाकरेषु वा। कौ0 अर्थ0 4/83/8 पृष्ठ 379
20. शूद्रो येनाङ्गेन ब्राह्मणमभिहन्यात् तदस्य छेदयेत्। कौ0 अर्थ0 3/76/19 पृष्ठ 335

(i) शारीरिक आघात संबंधी कानून तथा दण्ड :

प्रभावी अपराध–नियंत्रण हेतु कौटिलीय अर्थशास्त्र में अत्यन्त कठोर कानूनों का प्राविधान किया गया है जिन्हें निम्न प्रकार सन्दर्भित किया जा सकता है–

- यदि कोई व्यक्ति लड़ाई–झगड़े में किसी को जान से मार दे तो उसे सता–सता कर प्राणदण्ड (चित्रघात) दिए जाने का कठोर कानून था।[21]
- झगड़े में घायल व्यक्ति यदि सात दिन बाद मरता है तो मारने वाले को सता–सता कर नहीं अपितु सीधा प्राणदण्ड (शुद्धवध) दिए जाने का कानून था।[22]
- यदि घायल व्यक्ति पन्द्रह दिन बाद मरे तो मारने वाले को उत्तम साहस दण्ड (500 से 1000 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का कानून था।[23]
- यदि घायल व्यक्ति एक माह बाद मरे तो मारने वाले को 500 पण का अर्थदण्ड तथा मृतक की दवा–दारू का हर्जा–खर्चा एवं पर्याप्त क्षतिपूर्ति दिलाए जाने का कानून था।[24]
- यदि कोई घमण्ड में आकर किसी को गम्भीर चोट पहुँचाता है तो उसका हाथ काट दिए जाने (हस्तवध) का कानून था।[25]
- यदि कोई किसी की हत्या करता है तो हत्यारे को प्राणदण्ड दिए जाने का कानून था।[26]
- यदि कोई व्यक्ति जवर्दस्ती किसी स्त्री या पुरुष की हत्या करता है; किसी स्त्री का अपहरण करता है अथवा उसके नाक–कान काट लेता है; धमकी देकर किसी की हत्या करता है, राजमार्ग पर चलने वाले यात्रियों पर हमला करता है; तो इस प्रकार की हिंसा करने वाले अपराधी को शूली पर लटकाए जाने का कानून था।[27]

---

21. कलहे ध्नतः पुरुषं चित्रो धातः। कौ० अर्थ० 4/86/11 पृष्ठ 389
22. सप्तरात्रस्यान्तः मृते शुद्धवधः। उपरोक्त
23. पक्षस्यान्तरुत्तमः। उपरोक्त
24. मासस्यान्तः पञ्चशतः समुत्थानव्ययश्च। उपरोक्त
25. मदेन हस्तवधः। कौ० अर्थ० 4/86/11 पृष्ठ 389
26. वधे वधः। उपरोक्त
27. प्रसभं स्त्रीपुरुषघातक. . . . . .हिंसकान् स्तेनान् वा शूलानामरोहयेयुः। उपरोक्त

- उपरोक्त हत्यारे व्यक्ति का यदि कोई दाहसंस्कार आदि क्रियाकर्म करता है, अथवा उसे उठाकर गंगा प्रवाह आदि के लिए ले जाता है तो उसे भी शूली पर लटकाये जाने अथवा उत्तम साहस दण्ड (500 से 1000 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का कानून था।[28]
- यदि कोई स्त्री अथवा पुरुष विष देकर किसी की हत्या करता है तो उसे जल में डुबोकर मार दिए जाने का कानून था, वशर्ते कि वह स्त्री गर्भवती न हो। उसके गर्भवती होने पर प्रसव के एक माह बाद उसे भी उसी तरह पानी में डुबोकर मार दिए जाने का कानून था।[29]
- यदि कोई सनक में आकर किसी की हत्या करता है तो उसे प्राण दण्ड दिए जाने का कानून था।[30]
- यदि कोई व्यक्ति अपने माता, पिता, पुत्र, भाई, आचार्य और तपस्वी की हत्या करता है तो उसके सिर की खाल उतरवाकर तथा उसमें आग लगाने के बाद उसे प्राणदण्ड दिए जाने का कठोर कानून था।[31]
- यदि कोई स्त्री अपने पति, जेठ अथवा बच्चे की हत्या करती है तो उसे गायों के पैरों तले कुचलवाकर प्राणदण्ड दिए जाने का कानून था।[32]
- यदि कोई वेश्या किसी व्यक्ति की हत्या करती है तो उसे आग में जिन्दा जलाकर अथवा पानी में डुबोकर प्राणदण्ड दिए जाने का कानून था।[33]
- यदि कोई व्यक्ति मनुष्य का मांस बेचता पाया जाता है तो उसे प्राणदण्ड दिए जाने का कानून था।[34]

---

28. यश्चैनान् दहेदपनयेद्वा स तमेव दण्डं लभेत, साहसमुत्तमं वा। कौ0 अर्थ0 4/86/11 पृष्ठ 390
29. विषदायकं पुरुषं स्त्रियं च. . . . . .गर्भिणीं मासावरप्रजाताम्। उपरोक्त पृष्ठ 391
30. यदृच्छाघाते पुंसः शुद्धवधः। उपरोक्त
31. मातृपितृपुत्रभ्रात्राचार्य. . . . . प्रादीपिकं घातयेत्। उपरोक्त पृष्ठ 390
32. पतिगुरुप्रजाघातिकाम्. . . . . .गोभिः पादयेत्। उपरोक्त पृष्ठ 391
33. पुरुषं घ्नत्याश्चिताप्रतापोऽप्सु प्रवेशनं वा। कौ0 अर्थ0 2/43/27 पृष्ठ 210
34. मानुषमांसविक्रये वधः। कौ0 अर्थ0 4/85/10 पृष्ठ 388

- यदि कोई व्यक्ति राजा की सेवा में नियुक्त वेश्या को मारता है तो उसे 72000 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था। वेश्या की माता, पुत्री तथा स्वयं वेश्याओं को मारने वाले व्यक्ति को उत्तम साहस दण्ड (500 से 1000 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का कानून था।[35]
- यदि कोई व्यक्ति काम या क्रोध के वशीभूत होकर, फाँसी लगाकर, शस्त्र के द्वारा अथवा जहर खाकर आत्महत्या करता है; अथवा कोई स्त्री यदि दुराचार के कारण आत्महत्या करती है तो ऐसे स्त्री–पुरुष की लाशों को चाण्डाल के द्वारा रस्सी से बाँधकर बाजार में घसीटते हुए ले जाने का तथा उनके दाह संस्कार आदि क्रियाकर्म न किए जाने का कानून था।[36]
- यदि कोई व्यक्ति किसी गर्भवती स्त्री का गर्भ प्रहार करके गिराता है तो उसे उत्तम साहस दण्ड (500 से 1000 पण तक का अर्थदण्ड); गर्भनाशक औषधि द्वारा गर्भ गिराता है तो उसे मध्यम साहस दण्ड (200 से 500 पण तक का अर्थदण्ड); और यदि कठोर परिश्रम कराकर गर्भ गिराता है तो उसे प्रथम साहस दण्ड (48 से 96 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का कानून था।[37]
- यदि कोई व्यक्ति किसी दासी का गर्भ गिराता है तो उसे प्रथम साहस दण्ड (48 से 96 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का कानून था।[38]
- यदि कोई व्यक्ति किसी की दोनो आँखे फोड़ देता है तो उसे जहरीली दवाओं वाला अंजन/मल्हम लगाकर अन्धा कर दिए जाने अथवा 800 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था।[39]
- यदि कोई व्यक्ति किसी की जिह्वा और नाक काट देता है तो उसकी कनिष्ठिका अंगुली और अँगूठा कटवा दिये जाने का कानून था।[40]

---

35. प्राप्ताधिकारां गणिकां . . . . . .उत्तमः साहसदण्डः। कौ0 अर्थ0 2/43/27 पृष्ठ 209
36. रज्जुशस्त्रविषैर्वापि. . . . . . . .सम्बन्धिक्रियास्तथा। कौ0 4/82/7 पृष्ठ 375
37. प्रहारेण गर्भं पातयत. . . . . . . परिक्लेशेन पूर्वः साहसदण्डः। कौ0 अर्थ0 4/86/1 पृष्ठ 389
38. दास्या गर्भमौषधेन पातयतश्च पूर्वः साहसदण्डः। कौ0 3/74–75/20 पृष्ठ 341
39. द्विनेत्रभेदिनश्च योगाञ्जनेनान्धत्वमष्टशतो वा दण्डः। कौ0 अर्थ0 4/85/10 पृष्ठ 388
40. जिह्वानासोपघाते सन्दंशवधः। कौ0 अर्थ0 4/86/11 पृष्ठ 392

- यदि कोई व्यक्ति किसी का लिंग और अण्डकोश काट देता है तो उसका भी लिंग और अण्डकोश कटवा दिए जाने का कानून था।[41]
- यदि कोई व्यक्ति किसी को शस्त्र से चोट पहुँचाता है तो उसे उत्तम साहस दण्ड (500 से 1000 पण तक का अर्थदण्ड), अहंकारवश चोट पहुँचाता है तो उसके हाथ कटवा दिए जाने का; और यदि क्रोधावेश के कारण चोट पहुँचाता है तो उसे 200 पण अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था।[42]
- यदि कोई व्यक्ति किसी कामनारहित वेश्या को जबर्दस्ती अपने घर में रोककर रखता है; अथवा कोई चोट और घाव पहुँचाकर उसके रूप को क्षति पहुँचाता है तो उसे 1000 पण के अर्थदण्ड से दण्डित किए जाने का कानून था। उस वेश्या के अनेक अंगों पर चोट पहुँचाने पर उन अंगो की विशेषताओं के अनुसार अर्थदण्ड बढाये जाने का प्राविधान था जो 48000 पण तक हो सकता था।[43]
- यदि कोई अपने माता–पिता, पुत्र, भाई, गुरु तथा तपस्वी के किसी अंग को अपने जिस ढंग से काटता है तो उसके उसी अंग को कटवा दिए जाने का कानून था।[44]
- यदि कोई व्यक्ति उच्च वर्ण के व्यक्तियों तथा गुरुजनों को हाथ से अथवा पैर से मारता है तो उसका एक हाथ तथा एक पैर कटवा दिए जाने अथवा 700 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था।[45]
- यदि कोई शूद्र किसी ब्राह्मण पर प्रहार करता है तो जिस अंग के द्वारा प्रहार किया गया है उसका वह अंग कटवा दिए जाने का कानून थाा।[46]
- यदि कोई वैद्य उच्च अधिकारियों को सूचित किए बिना किसी ऐसे रोगी का इलाज करता है जिसके मरने की संभावना हो तथा इलाज के दौरान ही उसकी

41. मेढ्रफलोपघातिनस्तदेव छेदयेत्। कौ0 अर्थ0 4/86/11 पृष्ठ 392
42. शस्त्रेण प्रहरत उत्तमो दण्डः। मदेन हस्तवधः। मोहेन द्विशतः। कौ0 अर्थ0 4/86/11 पृष्ठ 389
43. गणिकामकामां रुन्धतो. . . . . . . पणसहस्रं वा दण्डः। कौ0 अर्थ0 2/43/27 पृष्ठ 209
44. अङ्गाभिरदने तदङ्गान्मोच्यः। कौ0 आर्थ0 4/86/11 पृष्ठ 390
45. वर्णोत्तमानां गुरुणां च . . . . . .चैकहस्तपादवधः सप्तशतो वा दण्डः। कौ0 अर्थ0 4/85/10 पृष्ठ 387
46. शूद्रो येनाङ्गेन ब्राह्मणमभिहन्यात् तदस्य छेदयेत्। कौ0 अर्थ0 3/76/19 पृष्ठ 335

मृत्यु हो जाय तो उस वैद्य को प्रथम साहस दण्ड (48 से 96 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का कानून था। यदि गलत इलाज किए जाने के कारण रोगी की मृत्यु होती है तो उसे मध्यम साहस दण्ड (200 से 500 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का कानून था।[47]

- यदि अनेक व्यक्ति मिलकर किसी एक आदमी को मारें तो उनमें से प्रत्येक आदमी को दुगुना दण्ड दिए जाने का कानून था जितना दण्ड एक आदमी द्वारा मारने पर दिया जाता है।[48]
- यदि कोई व्यक्ति किसी निर्दोष व्यक्ति को बाँधता या बँधवाता है अथवा किसी कैदी को छोडता है; अथवा किसी नावालिग बच्चे को बाँधता या बँधवाता है तो उसे 1000 पण अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था।[49]
- यदि कोई अधिकारी किसी निर्दोष व्यक्ति को दण्ड देता है तो उसे प्रथम साहस दण्ड (48 से 96 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का कानून था।[50]
- यदि कोई व्यक्ति किसी अक्षतयोनि स्त्री को क्षतयोनि बनाता है तो उसे 200 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था।[51]
- यदि कोई व्यक्ति किसी दास अथवा दासी का अपहरण करता है तो उसके दोनों पैर काट दिए जाने अथवा 600 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था।[52]
- यदि कोई व्यक्ति किसी कन्या अथवा दासी का उसके आभूषणों सहित अपहरण करता है तो उसके दोनों पैर तथा वाँया हाथ कटवा दिए जाने अथवा 900 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था।[53]

---

47. भिषजः प्राणावाधिकम्. . . . . .कर्मापराधेन विपत्तौ मध्यमः। कौ० अर्थ० 4/76/1 पृष्ठ 350
48. महाजनस्यैकं घ्नतः प्रत्येकं द्विगुणो दण्डः। कौ० अर्थ० 3/76/19 पृष्ठ 336
49. पुरुषमबन्धनीयं . . . . बन्धयतो वा सहस्रदण्डाः। कौ० अर्थ० 3/77/20 पृष्ठ 341
50. शुद्धं परिवासयतः पूर्वः साहसदण्डः। कौ० अर्थ० 4/83/8 पृष्ठ 376
51. मिथ्याभिशंसिनश्च पुंसः। कौ० अर्थ० 4/87/12 पृष्ठ 394
52. दासं दासीं वापहरतः. . . . . . द्विपादवधः, षट्छतो वा दण्डः। कौ० अर्थ० 4/85/10 पृष्ठ 387
53. कन्यां दासीं वा. . . . . . वामहस्तद्विपादवधो नवशतो वा दण्डः। उपरोक्त पृष्ठ 388

- यदि कोई व्यक्ति मन्दिर में तैनात किसी दास का अपहरण करता है तो उसे उत्तम साहस दण्ड (500 से 1000 पण तक का अर्थदण्ड) अथवा प्राणदण्ड दिए जाने का कानून था।[54]
- यदि कोई व्यक्ति अपनी ही जाति की नावालिग कन्या के साथ बलात्कार करता है तो उसका एक हाथ कटवा दिये जाने अथवा 400 पण का अर्थदण्ड दिये जाने का कानून था। लेकिन यदि वह कन्या बलात्कार के कारण मर जाती है तो उसे प्राणदण्ड दिए जाने का कानून था।[55]
- यदि कोई व्यक्ति वालिग कन्या के साथ बलात्कार करता है तो उसकी तर्जनी और मध्यमा उँगलियाँ कटवाने अथवा 200 पण का अर्थदण्ड दिए जाने तथा कन्या के पिता को उससे हर्जाना दिलाये जाने का कानून था।[56]
- यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसी कन्या के साथ बलात्कार करता है जिसकी किसी के साथ सगाई हो चुकी हो तो उसके हाथ काट दिए जाने अथवा 400 पण के अर्थदण्ड सहित उससे सगाई का पूरा हर्जाना दिलाए जाने का कानून था।[57]
- यदि कोई व्यक्ति स्वतंत्र रहने वाली किसी विधवा के साथ बलात्कार करता है तो उसे 100 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था।[58]

(ii) सम्पत्ति की सुरक्षा संबंधी कानून तथा दण्ड :

- ताँवा, पीतल, काँसा, काँच, और हाथीदाँत आदि की बनी हुई वस्तुओं की चोरी करने वाले को प्रथम साहस दण्ड (48 से 96 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का कानून था।[59]

---

54. देव. . . . मनुष्य. . . . . अपहारिण उत्तमो दण्डः शुद्धवधो वा। कौ० अर्थ० 4/85/10 पृष्ठ 388
55. सवर्णामप्राप्तफलां कन्यां. . . . . . मृतायां वधः। कौ० अर्थ० 4/87/12 पृष्ठ 393
56. प्राप्तफलां प्रकुर्वतो. . . . . . पितुश्चावहीनं दद्यात्। उपरोक्त
57. परशुल्कावरुद्धायां हस्तवधश्चतुः शतो वा दण्डः शुल्कदानं च। उपरोक्त
58. विधवां छन्दवासिनीं प्रसह्याधिचरतः. . . . . शत्यो दण्डः। कौ० अर्थ० 3/77/20 पृष्ठ 340--41
59. ताम्रवृत्तकंसकाचदन्त. . . . . . . .पूर्वः साहसदण्डः। कौ० अर्थ० 3/74/17 पृष्ठ 328

- बडे पशु, मनुष्य, खेत, मकान, हिरण्य, सोना और बडी कीमत के वस्त्र आदि की चोरी करने वाले को मध्यम साहस दण्ड (200 से 500 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का कानून था।[60]
- सडकों पर तथा घरों में चोरी करने वाले तथा राजा के हाथी, घोडे और रथ चुराने वालों को शूली पर चढाये जाने का कानून था।[61]
- दीवाल तोडकर सेंध लगाने वाले को शूली पर लटकाये जाने का कानून था।[62]
- सेंध लगाकर चोरी करने वाली स्त्री को गायों के पैरों के नीचे कुचल कर मरवा दिए जाने का कानून था।[63]
- कीमती सामग्री से भरी हुई नाव की अथवा छोटे–छोटे पशुओं की चोरी करने वाले का एक पैर कटवा दिए जाने अथवा 300 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था।[64]
- बडे पशुओं को चुराने वाले के दोनों पैर कटवा दिए जाने अथवा 600 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था।[65]
- कम से कम दस पशुओं के झुण्ड की चोरी करने वाले को प्राणदण्ड दिए जाने का कानून था।[66]
- किसी पशु की चोरी करने वाले अथवा करवाने वाले को मरवा दिये जाने का कानून था।[67]
- जंगली लकडी तथा जंगली जानवर चुराने वाले को 100 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था।[68]

---

60. महापशुमनुष्यक्षेत्र. . . . . मध्यमः साहसदण्डः। कौ0 अर्थ0 3/74/17 पृष्ठ 328
61. पथिवेश्मप्रतिरोधकान. . . . . . , स्तेनान् वा शूलानारोहयेयुः। कौ0 अर्थ0 4/86/11 पृष्ठ 389
62. वेश्मप्रतिरोधकान. . . . . . शूलानारोहयेयुः। कौ0 अर्थ0 4/86/11 पृष्ठ 389
63. सन्धिच्छेदिकां वा गोभिः पादयेत्। उपरोक्त पृष्ठ 391
64. चक्रयुक्तां नावं क्षुद्रपशुं वापहरत एकपादवधः त्रिशतो वा दण्डः। कौ0 अर्थ0 4/85/10 पृष्ठ 387
65. महापशुं. . . . . . अपहरतः. . . . .द्विपादवधः षट्छतो वा दण्डः। उपरोक्त
66. पशुयूथस्तेये च शुद्धदण्डः। दशावरं च यूथं विद्यात्। कौ0 अर्थ0 4/86/11 पृष्ठ 391
67. स्वयं. . . . हर्ता हारयिता च वध्यः। कौ0 अर्थ0 2/45/29 पृष्ठ 218
68. मृगद्रव्यवनान्मृगद्रव्यापहारे शत्यो दण्डः। कौ0 अर्थ0 4/85/10 पृष्ठ 386

- कृषि उपकरण चुराने वाले को 200 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था।[69]
- यदि कोई व्यक्ति किसी वेश्या के आभूषण अथवा सम्भोग से प्राप्त धन चुराता है तो उसे उस धन का आठ गुना अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था।[70]
- देवालयों से सम्बद्ध पशु, प्रतिमा, मनुष्य, खेत, घर, हिरण्य, सोना, रत्न और अन्न की चोरी करने वाले को उत्तम साहस दण्ड (500 से 1000 पण तक का अर्थदण्ड) अथवा प्राणदण्ड दिए जाने का कानून था।[71]
- देवालयों की अन्य वस्तुऐं चुराने वाले को जहरीला अंजन/मल्हम लगाकर अन्धा कर दिए जाने अथवा 800 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था।[72]
- तीर्थस्थानों पर चोरी, गिरहकटी अथवा छत तोडकर सेंध लगाने वालों को पहली बार अपराध करने पर उनका अँगूठा तथा कनिष्ठिका अंगुली कटवा दिए जाने अथवा 54 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था। दूसरी बार अपराध करने वाले पर उनकी सभी अंगुलियाँ कटवा दिए जाने अथवा 100 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था। तीसरी बार अपराध करने पर उनका दाँया हाथ कटवा दिए जाने अथवा 400 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था। चौथी वार अपराध करने पर उन्हें प्राणदण्ड दिए जाने का प्राविधान था।[73]
- चोरों का दूतकार्य करने वाली स्त्रियों के नाक–कान कटवा दिए जाने अथवा 500 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का प्राविधान था। वही अपराध पुरुषों के द्वारा किए जाने पर उन्हें दुगुने दण्ड की व्यवस्था थी।[74]
- यदि कोई व्यक्ति परकोटे की दीवार तोडकर चोरी करता है तो उसके पैर के पीछे की दो मुख्य नसें कटवा दिए जाने अथवा उस पर 200 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का प्रावधान था।[75]

---

69. द्विशतः कृषिद्रव्यापहारे च। कौ0 अर्थ0 4/85/10 पृष्ठ 387
70. गणिकाभरणमर्थं भोगं वाऽपहरतोऽष्टगुणो दण्डः। कौ0 अर्थ0 2/43/27 पृष्ठ 210
71. देवपशुप्रतिमामनुष्य. . . . . . .उत्तमो दण्डः शुद्धवधो वा। कौ0 अर्थ0 4/85/10 पृष्ठ 388
72. देवद्रव्यमवस्तृणतो. . . . . .द्विनेत्रभेदिनश्च योगाञ्जनेनान्धत्वमष्टशतो वा दण्डः। उपरोक्त
73. तीर्थाघातग्रन्थिभेदोर्ध्वकराणां. . . . . .चतुर्थे यथाकामी वधः। उपरोक्त पृष्ठ 386
74. स्तेनपारदारकियोः. . . . . . पुंसो द्विगुणः। उपरोक्त पृष्ठ 387
75. प्राकारछिद्राद्वा निक्षेपं ग्रहीत्वाऽपसरतः कन्धरावधो द्विशतो वा दण्डः। उपरोक्त

- यदि कोई व्यक्ति असली रत्न की जगह नकली रत्न दे या छलपूर्वक असली रत्न का अपहरण कर ले तो ऐसा करने और कराने वाले को उत्तम साहस दण्ड (500 से 1000 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का नियम था। सार (मूल्यवान) वस्तुओं को छलपूर्वक हड़पने में मध्यम साहस दण्ड (200 से 500 पण तक का अर्थदण्ड) तथा लकड़ी–चमड़ा जैसी सस्ती वस्तुओं को छलपूर्वक हड़पने में दोषी व्यक्ति से वैसी ही दूसरी वस्तुऐं लिए जाने अथवा उनका मूल्य वसूले जाने तथा उतने ही मूल्य का उन्हें अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था।[76]
- जो पुरुष चोरी की नीयत से दिन में किसी के घर में घुसे उसे प्रथम साहस दण्ड, (48 पण से 96 पण तक का अर्थदण्ड); रात्रि में घुसे तो मध्यम साहस दण्ड (200 पण से 500 पण तक का अर्थदण्ड) और शस्त्र लेकर दिन या रात में घुसे तो उसे उत्तम साहस दण्ड (500 पण से 1000 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का कानून था।[77]
- यदि कोई व्यक्ति किसी चारागाह, खेत, खलिहान, घर और जंगल में आग लगाता है तो उसे आग में ही जला दिए जाने का नियम था।[78]
- यदि कोई स्त्री कहीं आग लगाती है तो उसे गायों के पैरों के नीचे कुचलवा कर मार दिए जाने का नियम था।[79]

(iii) समाज विरोधी अनैतिक कृत्य संबंधी कानून तथा दण्ड :

- यदि कोई व्यक्ति अपनी मौसी, बुआ, मामी, गुरुपत्नी, पुत्रवधू, लड़की और बहिन के साथ व्यभिचार करता है तो उसका लिंग और अण्डकोश काटकर उसे प्राणदण्ड दिए जाने का नियम था। यदि उपरोक्त स्त्रियाँ स्वयं ऐसा करायें तो उनके दोनों स्तन काटकर तथा उनकी जननेन्द्रिय का छेदन कर उन्हें भी

---

76. तत्र रत्नोपधावुत्तमो दण्डः. . . . . . ,तच्च तावच्च दण्डः। कौ0 अर्थ0 2/21/5 पृष्ठ 97
77. परगृहाभिगमने दिवा पूर्वः. . . . . . प्रविशत उत्तमो दण्डः। कौ0 अर्थ0 4/88/13 पृष्ठ 398
78. विवीतक्षेत्रखलवेश्मद्रव्यहस्तिवनादीपिकमग्निना दाहयेत्। कौ0 अर्थ0 4/86/11 पृष्ठ 391
79. अग्निविषदां. . . . . वा गोभिः पादयेत्। उपरोक्त

प्राणदण्ड दिए जाने का नियम था। यदि वे किसी दास, भृत्य या बन्धक व्यक्ति से अनैतिक संसर्ग रखती है तो भी उन्हें वही दण्ड दिए जाने का नियम था।[80]

- यदि कोई व्यक्ति राजा की पत्नी के साथ व्यभिचार करता है तो उसे तपते हुए भाड में झोंककर मार दिए जाने का कानून था।[81]
- यदि कोई पहरेदार व्यक्ति किसी दासी के साथ व्यभिचार करता है तो उसे प्रथम साहस दण्ड (48 पण से 96 पण तक का अर्थदण्ड), दासी से भिन्न किसी स्त्री के साथ व्यभिचार करता है तो उसे मध्यम साहस दण्ड (200 पण से 500 पण तक का अर्थदण्ड), किसी की पत्नी बन चुकी दासी के साथ व्यभिचार करता है तो उसे उत्तम साहस दण्ड (500 पण से 1000 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का नियम था। यदि वह उच्च कुल की किसी स्त्री के साथ व्यभिचार करता है तो उसे प्राणदण्ड दिए जाने की व्यवस्था थी।[82]
- यदि किसी ब्राह्मण स्त्री के साथ कोई क्षत्रिय व्यभिचार करता है तो उसे उत्तम साहस दण्ड (500 पण से 1000 पण तक का अर्थदण्ड), यदि कोई वैश्य व्यभिचार करता है तो उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर लिये जाने का दण्ड; तथा यदि कोई शूद्र व्यभिचार करता है तो उसे आग में झोंककर मार दिए जाने का कानून था।[83]
- यदि कोई व्यक्ति चाण्डाल जाति की स्त्री के साथ व्यभिचार करता है तो उसके माथे पर योनि का निशान दाग कर उसे देश–निर्वासन का दण्ड दिए जाने का कानून था। यही अपराध किसी शूद्र के द्वारा किए जाने पर उसे चाण्डाल बना दिए जाने का प्राविधान था।[84]

---

80. मातापित्रोर्भगिनीं मातुलानीम्. . . . . . दासपरिचारकाहितकभुक्ता च। कौ0 अर्थ0 4/88/13 पृष्ठ 401
81. सर्वत्र राजभार्यागमने कुम्भीपाकः। उपरोक्त
82. स्त्रियं दासीमधिमेहयतां. . . . . . . कुलस्त्रियं वधः। कौ0 अर्थ0 2/55/36 पृष्ठ 249
83. ब्राह्मण्यामगुप्तायां. . . . . . . शूद्रः कटाग्निना दह्येत। कौ0 अर्थ0 4/88/13 पृष्ठ 401
84. श्वपाकीगमने कृतकवधाङ्कः परविषयं गच्छेत्। श्वपाकत्वं वा शूद्रः। उपरोक्त

- यदि कोई चाण्डाल जाति का व्यक्ति किसी आर्या स्त्री के साथ व्यभिचार करता है तो उसे प्राणदण्ड दिए जाने तथा उस स्त्री के नाक–कान काट दिए जाने का नियम था।[85]
- निर्धारित ठेकों के अतिरिक्त अन्यत्र मदिरा बनाने, बेचने और खरीदने वालों पर 600 पण का अर्थदण्ड लगाये जाने का कानून था।[86]
- शराब और शराबी को गाँव तथा घर से बाहर न निकलने देने का नियम था।[87]

(iv) निन्दा, बदनाम, अपमान तथा धौंस-धमकी संबंधी कानून एवं दण्ड :

- यदि कोई व्यक्ति अपने देश या गाँव की निन्दा या बदनामी करता है तो उसे प्रथम साहस दण्ड (48 पण-96 पण तक का अर्थदण्ड), अपनी जाति या समाज की निन्दा करता है तो उसे मध्यम साहस दण्ड (200 पण से 500 पण तक का अर्थदण्ड) और यदि देवता तथा देवालयों की निन्दा करता है तो उसे उत्तम साहस दण्ड (500 पण से 1000 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का नियम था।[88]
- यदि कोई व्यक्ति अपने माता–पिता, पुत्र, भाई, गुरु तथा तपस्वी का अपमान करता है तो उसकी जीभ कटवा दिए जाने का कानून था।[89]
- यदि कोई व्यक्ति किसी से शत्रु–भाव रखता हुआ उसे धमकाता है तथा उसमें अपने विरोधी को तथाकथित क्षति पहुँचाने की क्षमता है तो उसे अपने विरोधी के प्रति जीवनपर्यन्त सुरक्षा की लिखित गारण्टी दिए जाने का नियम था।[90]

(v) राजद्रोह विषयक कानून तथा दण्ड :

- यदि कोई व्यक्ति राजसिंहासन को हथियाने की इच्छा रखता है, अन्तःपुर में कलह उत्पन्न करवाता है, आटविक शत्रुओं को राजा के विरुद्ध भडकाता है; दुर्ग,

---

85. श्वपाकस्यार्यागमने वधः। स्त्रियाः कर्णनासाच्छेदनम्। कौ0 अर्थ0 4/88/13 पृष्ठ 401
86. षट्छतमत्ययमन्यत्र कर्तृक्रेतृविक्रेतृणां स्थाययेत्। कौ0 अर्थ0 2/41/25 पृष्ठ 200
87. ग्रामादनिर्णयनमसम्पातं च सुरायाः। उपरोक्त
88. स्वदेशग्रामयोः पूर्वं मध्यमं. . . . . दण्डमर्हति। कौ0 अर्थ0 3/75/18 पृष्ठ 333
89. मातृपितृपुत्रभ्रात्राचार्यतपस्वि. . . . . तेषामाक्रोशे जिह्वाच्छेदः। कौ0 अर्थ0 4/86/11 पृष्ठ 390
90. जातवैराशयः शक्तश्चापकर्तुं यावज्जीविकावस्थं दद्यात्। कौ0 अर्थ0 3/75/18 पृष्ठ 332

राष्ट्र तथा सेना में वगावत करवाता है तो उसे जलती आग में झोंककर मरवा दिए जाने का कानून था। यही अपराध किसी ब्राह्मण के द्वारा किए जाने पर उसे आजीवन अंधेरी काल–कोठरी में बन्द किए जाने का नियम था।[91]

- यदि कोई व्यक्ति राजा का अपमान करता है, उसकी गुप्त मंत्रणा का भेद खोलता है, अथवा उसके किसी अनिष्ट हेतु प्रवृत्त होता है तो उसकी जीभ कटवा दिए जाने का कानून था।[92]
- यदि कोई व्यक्ति राजा के प्रति विद्वेष फैलाता है तो उसकी आँखो में जहरीला अंजन/मल्हम लगाकर उसे अन्धा कर दिए जाने अथवा उसे 800 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था।[93]
- यदि कोई व्यक्ति किसी गृहस्थ–कुटुम्बी, विभागीय अध्यक्ष, प्रधान अधिकारी और राजा के फर्जी दस्तावेज तथा मुहर तैयार करता है तो उसे क्रमशः प्रथम, मध्यम, उत्तम साहसदण्ड एवं प्राणदण्ड दिए जाने का नियम था।[94]
- यदि कोई व्यक्ति अनधिकृत होते हुए भी किसी के शपथपूर्वक फर्जी बयान लेता है और स्वयं अधिकारी न होकर भी फर्जी अधिकारी का काम करता है तो उसे प्रथम साहस दण्ड (48 पण से 96 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का कानून था।[95]
- यदि कोई व्यक्ति राजा की सवारी तथा हाथी–घोड़े पर सवार होता है तो उसका एक–एक हाथ–पैर काट दिए जाने अथवा 700 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था।[96]

---

91. राज्यकामुकमन्तःपुर. . . . . ब्राह्मणं तमः प्रवेशयेत्। कौ0 अर्थ0 4/86/11 पृष्ठ 390
92. राजाक्रोशकमन्त्रभेदकयो. . . . . जिह्वामुत्पाटयेत्। उपरोक्त पृष्ठ 391
93. राजद्विष्टमादिशतो. . . . . . योगाञ्जनेनान्धत्वमष्टशतो वा दण्डः। कौ0 अर्थ0 4/85/10 पृष्ठ 388
94. कुटुम्बिकाध्यक्षमुख्यस्वामिनां. . . . . . पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः। कौ0 अर्थ0 4/84/9 पृष्ठ 382
95. शपथवाक्यानुयोगमनिसृष्टं. . . . . . . पूर्वः साहसदण्डः। कौ0 अर्थ0 3/77/20 पृष्ठ 341
96. राजयानवाहनाद्यारोहणे चैकहस्तपादवधः सप्तशतो वा दण्डः। कौ0 अर्थ0 4/85/10 पृष्ठ 387

(vi) अधिकारियों/कर्मचारियों की अवांछनीय गतिविधि संबंधी कानून तथा दण्डः

- यदि कोई अधिकारी/कर्मचारी अपने कार्य के प्रति प्रमाद करता है तो उसे एक दिन के वेतन का दुगुना अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था।[97]
- सभी विभागों में यदि कोई अधिकारी/कर्मचारी/भृत्य किसी प्रकार की वित्तीय गड़बड़ी पहली बार करते हैं तो उन्हें क्रमशः 1 पण, 2 पण तथा 4 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का; उसके बाद भी गड़बड़ी करने पर उन्हें क्रमशः प्रथम, मध्यम और उत्तम साहसदण्ड दिए जाने का; तथा उसके बाद भी गड़बड़ी करने पर उन्हें प्राणदण्ड दिए जाने का कानून था।[98]
- कोषाध्यक्ष द्वारा कोश–क्षय किए जाने पर उसें प्राणदण्ड दिए जाने का कानून था।[99]
- यदि कोई अधिकारी/कर्मचारी खानों या कारखानों से हीरे–जवाहारात आदि बहुमूल्य वस्तुओं का अपहरण करता है तो उसे प्राणदण्ड दिए जाने का नियम था।[100]
- यदि कोई अधिकारी/कर्मचारी किंसी कारखाने से कोई सस्ती वस्तु या सस्ता उपकरण चुराता है तो उसे प्रथम साहस दण्ड (48 पण से 96 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का कानून था।[101]
- यदि कोई दो पण मूल्य तक की वस्तु चुराता है तो उसे प्रथम साहस दण्ड (48 पण से 96 पण तक का अर्थदण्ड); चार पण मूल्य तक की वस्तु चुराता है तो उसे मध्यम साहस दण्ड (200 पण से 500 पण तक का अर्थदण्ड); आठ पण मूल्य तक की वस्तु चुराता है तो उसे उत्तम साहस दण्ड (500 पण से 1000 पण

---

97. प्रमादस्थानेषु चैषामत्ययं स्थापयेद दिवसवेतनव्ययद्विगुणम्। कौ0 अर्थ0 2/25/9 पृष्ठ 114
98. सर्वाधिकरणेषु युक्तोपयुक्त. . . . .पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः! कौ0 अर्थ0 2/21/5 पृष्ठ 97
99. कोशाधिष्ठितस्य कोशावच्छेदे घातः। उपरोक्त
100. खनिसारकर्मान्तेभ्यः सारं रत्नं वापहरतः शुद्धवधः। कौ0 अर्थ0 4/84/9 पृष्ठ 380
101. फल्गुद्रव्यकर्मान्तेभ्यः फल्गुद्रव्यमुपस्करं वा पूर्वः साहसदण्डः। उपरोक्त

तक का अर्थदण्ड) और यदि दस पण मूल्य तक की वस्तु चुराता है तो उसे प्राणदण्ड दिए जाने का कानून था।[102]

- यदि कोई गाँव का मुखिया या विभागीय अध्यक्ष धन का अपहरण करता है तो उसे देश–निष्कासन का दण्ड दिए जाने का कानून था।[103]
- फर्जी वयान लिखने वालों[104], जाली सिक्के बनाने वालों[105], को भी देश–निष्कासन का दण्ड दिए जाने का नियम था।
- मूलहर (अपनी पैतृक सम्पत्ति का अनुचित उपभोग करने वाले), तादात्विक (रोजाना जितना कमाते हैं उतना ही गँवा देने वाले), तथा कदर्य (स्वयं को तथा नौकरों को कष्ट देकर धनोपार्जन करने वाले) प्रवृत्ति के लोग यदि अपनी आदत से वाज नहीं आते हैं तो निसन्तान होने पर उनकी सम्पत्ति जब्त कर लिए जाने का कानून था।[106]
- शत्रु देश में अपना धन जमा करने वाले कदर्य (स्वयं को तथा नौकरों को कष्ट देकर धनोपार्जन करने वाले) प्रवृत्ति के अधिकारी को शत्रु राजा के आदेश का वहाना बनाकर मरवा दिये जाने का प्राविधान था।[107]
- किसी विभागीय अधिकारी द्वारा गबन किए जाने पर उस विभाग के प्रधान अधिकारी, भण्डारपाल, लेखक, कर लेने वाले, कर देने वाले और कर दिलाने वाले सलाहकारों तथा सहायकों में सभी से एक–एक कर पूँछताछ किये जाने का नियम था। यदि उनमें से कोई झूठ बोलता था तो उसे गबन करने वाले अपराधी के समान ही दण्ड दिए जाने का प्राविधान था।[108]

---

102. आद्विपणमूल्यादिति. . . . . आ दशपणमूल्यादिति वधः। कौ0 अर्थ0 4/84/9 पृष्ठ 380
103. ग्रामकूटमध्यक्षं वा. . . . . उत्कोचक इति प्रवास्येत। कौ0 अर्थ0 4/79/4 पृष्ठ 361–362
104. तेन कूटश्रावणकारका व्याख्याताः। उपरोक्त पृष्ठ 362
105. प्रज्ञातः कूटरूपकारक इति प्रवास्येत्। उपरोक्त पृष्ठ 363
106. मूलहरतादात्विककदर्याश्च. . . . . विपर्यये पर्यादातव्यः। कौ0 अर्थ0 2/25/9 पृष्ठ 116
107. यश्चास्य परविषये. . . . . शत्रुशासनापदेशेनैनं घातयेत्। उपरोक्त
108. तत्रोपयुक्तनिधायकनिबन्धक. . . . .मिथ्यावादे चैषां युक्तसमो दण्डः। कौ0 अर्थ0 2/24/8 पृष्ठ 112

- अधिकारियों के भ्रष्टाचार से पीडित जनता को राजदरबार में पहुँचकर अपनी पीडा बताने तथा राजा के द्वारा प्रजा की वह तथाकथित क्षतिपूर्ति किए जाने का कानून था।[109]
- यदि किसी अधिकारी पर आरोपित अनेक शिकायतों में से एक भी शिकायत सिद्ध हो जाती है तो उस पर लगे सभी आरोप सही माने जाने का कानून था।[110]
- यदि गबन किए गए धन का अल्पांश भी वरामद हो जाता है तो आरोपी को सम्पूर्ण धन के लिए जिम्मेदार माने जाने का निगम था।[111]
- यदि कोई भ्रष्टाचारी अधिकारी के बारे में सूचना देता है तो उसे सुरक्षा की गारण्टी सहित वरामद माल का छँठवा हिस्सा दिए जाने का कानून था। यदि सूचना देने वाला कोई राज्य कर्मचारी हो तो उसे वारहवाँ हिस्सा दिया जाता था।[112]
- यदि भ्रष्टाचार का आरोप सिद्ध नहीं होता है तो शिकायतकर्ता को उचित शारीरिक या आर्थिक दण्ड दिए जाने तथा उसके साथ किसी प्रकार की उदारता न वरती जाने का नियम था।[113]
- यदि सूचना देने वाला किसी प्रलोभन वश सच्चा वयान देने से मुकर जाता है तो उसे प्राणदण्ड दिए जाने का नियम था।[114]
- यदि कोई न्यायिक अधिकारी न्यायालय में किसी अभियुक्त या अभियोक्ता को डराता है, धमकाता है, बाहर भगाता है अथवा रिश्वत लेता है तो उसे प्रथम साहस दण्ड (48 पण से 96 पण का अर्थदण्ड) दिए जाने का नियम था। यदि वह गाली गलौच करता है तो उसे इससे दुगुना दण्ड दिए जाने का नियम था।[115]

---

109. प्रचारे चावघोषयेत. . . . .प्रज्ञापयतो यथोपधातं दापयेत्। कौ0 अर्थ0 2/24/8 पृष्ठ 112
110. अनेकेषु चाभियोगेष्वपव्ययमानः सकृदेव परोक्तः सर्वं भजेत। उपरोक्त
111. महत्यर्थापहारे चाल्पेनापि सिद्धः सर्वं भजेत। उपरोक्त
112. कृतप्रतिघातावस्थः. . . . . द्वाद्वशमंशं भृतकः। उपरोक्त पृष्ठ 113
113. अनिष्पन्ने शारीरं हैरण्यं वा दण्डं लभेत, न चानुग्राह्यः। उपरोक्त
114. निष्पत्तौ निक्षिपेद्वादमात्मानं. . . . . . सूचको वधमाप्नुयात्। कौ0 अर्थ0 2/24/8 पृष्ठ 113
115. धर्मस्थश्चेद्विदमानं. . . . .वाक्पारुष्ये द्विगुणम्। कौ0 अर्थ0 4/84/9 पृष्ठ 382

- यदि कोई न्यायिक अधिकारी किसी साक्षी से पूछने योग्य बातों को न पूछकर, न पूछने योग्य बातों को पूछता है; बिना उत्तर पाये ही बात को छोड देता है; उसे सिखाता है, याद दिलाता है या उसकी अधूरी बात को स्वयं ही पूरी कर देता है तो उसे मध्यम साहस दण्ड (200 पण से 500 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का नियम था।[116]
- यदि कोई न्यायिक अधिकारी साक्षी से उपयोगी बातों को न पूछकर अनुपयोगी बातें पूछता है; बिना गवाही हुए निर्णय दे देता है; सच्चे साक्षी को कपट की बातों में डालकर झूठा बना देता है, व्यर्थ की बातों में उलझाये रखने के बाद उसे छोड देता है; उसके बयान को उलटा–सीधा लिखता है, बीच–बीच में साक्षियों की मदद करता है; निर्णीत मामले को फिर से जिरह के लिए रखता है; तो उसे उत्तम साहस दण्ड (500 पण से 1000 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का नियम था। उसके द्वारा दूसरी बार भी वही अपराध किए जाने पर उसे इससे दुगुना अर्थदण्ड देते हुए पदच्युत किए जाने का नियम था।[117]
- यदि कोई न्यायिक अधिकारी किसी निर्दोष व्यक्ति को शारीरिक अथवा आर्थिक दण्ड देता है तो उसे उसका दुगुना शारीरिक/आर्थिक दण्ड दिए जाने का नियम था।[118]
- न्यायोचित धन को नष्ट करने वाले तथा अन्यायपूर्ण धन का संग्रह करने वाले न्यायिक अधिकारी को उस धनराशि का आठ गुना अर्थदण्ड दिए जाने का प्राविधान था।[119]
- जासूस द्वारा रिश्वत का लालच दिए जाने पर यदि कोई न्यायिक अधिकारी रिश्वत लेने के लिए तैयार हो जाता है तो उसे रिश्वतखोर मानकर निष्कासित कर दिए जाने का कानून था।[120]

---

116. पृच्छ्यं न पृच्छति. . . . . मध्यममस्मै साहसदण्डं कुर्यात्। कौ0 अर्थ0 4/84/9 पृष्ठ 382
117. देयं देश न पृच्छति. . . . . स्थानाद्व्यवरोपणं च। उपरोक्त पृष्ठ 383
118. शारीरदण्डं क्षिपति, शारीरमेव दण्डं भजेत। निश्क्रयद्विगुणं वा। कौ0 अर्थ0 4/84/9 पृष्ठ 383
119. यं वा भूतमर्थं नाशयत्यभूतमर्थं करोति, तदष्टगुणं दण्डं दद्यात्। उपरोक्त
120. धर्मस्थं प्रदेष्टारं वा. . . . . उपग्राहक इति प्रवास्येत। कौ0 अर्थ0 4/79/4 पृष्ठ 361

- यदि कोई कोर्ट मुहर्रिर (लेखक) बयानों को सही–सही नहीं लिखता है; न कही गई बात को लिखता है; बुरी बात को अच्छी बात के रूप में तथा अच्छी बात को बुरी बात के रूप में लिखता है; मुख्य आशय को उलट–पलट कर लिखता है तो उसे प्रथम साहस दण्ड (48 पण से 96 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का नियम था।[121]

(vii) कारागार संबंधी कानून तथा दण्ड :

- यदि जेल प्रशासन की लापरवाही से जेल में किसी कैदी की मौत होती है तो जेल अधीक्षक को 1000 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का कानून था।[122]
- यदि कोई व्यक्ति किसी कैदी को जेल से भगाता है या भागने के लिए प्रेरित करता है तो उसकी सारी सम्पत्ति जब्त करके उसे प्राणदण्ड दिए जाने का कानून था।[123]
- यदि कोई व्यक्ति जेल की दीवाल तोडकर किसी कैदी को भगा दे तो उसे प्राणदण्ड दिए जाने का नियम था।[124]
- खरीदी गई या गिरवी रखी गई किसी दासी के साथ यदि हवालात में कोई व्यक्ति व्यभिचार करता है तो उसे प्रथम साहस दण्ड (48 पण से 96 पण तक का अर्थदण्ड); किसी चोर या दंगाई की पत्नी के साथ व्यभिचार करता है तो उसे मध्यम साहस दण्ड (200 पण से 500 पण तक का अर्थदण्ड) और यदि किसी आर्या स्त्री के साथ व्यभिचार करता है तो उसे उत्तम साहस दण्ड (500 पण से 1000 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का नियम था।[125]
- किसी कैदी के द्वारा यदि किसी आर्या स्त्री के साथ व्यभिचार किया जाता है तो उसे वहीं पर प्राणदण्ड दिए जाने का कानून था।[126]

---

121. लेखकश्चेदुक्तं न लिखति. . . . . . पूर्वमस्मै साहसदण्डं कुर्यात्। कौ0 अर्थ0 4/84/9 पृष्ठ 383
122. बन्धनागाराध्यक्षस्य. . . . . ध्नतः साहस्रः। उपरोक्त पृष्ठ 384
123. बन्धनागरात्सर्वस्वं बधश्च। उपरोक्त
124. मित्वा वधः। उपरोक्त
125. परिगृहीतां दासीमाहितिकां . . . . . . संरुद्विकामार्यामुत्तमः। उपरोक्त
126. संरुद्धस्य वा तत्रैव घातः। उपरोक्त

- जेल में बन्द किसी आर्या स्त्री के साथ यदि कोई जेल अधिकारी व्यभिचार करता है तो उसे वहीं पर प्राणदण्ड दिए जाने का कानून था।[127] किसी दासी के साथ वही अपराध किए जाने पर प्रथम साहस दण्ड (48 पण से 96 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का नियम था।[128]
- किसी नये देश को जीतने पर, युवराज का राज्याभिषेक होने पर, तथा राजपुत्र के जन्मोत्सव पर कैदियों को रिहा किए जाने का नियम था।[129]
- जेल में बन्द बूढे, बच्चे, बीमार और अनाथ कैदियों को राजा की वर्षगाँठ आदि पर तथा पूर्णिमा आदि पर्वो पर रिहा किए जाने का नियम था।[130]

(viii) व्यापारिक नियम एवं उपभोक्ता–संरक्षण संबंधी कानून तथा दण्ड :

- बेईमान व्यापारी का बाँया हाथ और दोनों पैर काट दिए जाने अथवा 900 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का नियम था।[131]
- वाणिज्य–अधीक्षक द्वारा विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में लगी पूँजी, समय, मजदूरी, व्याज, भाडा, टैक्स एवं अन्य व्ययों को ध्यान में रखते हुए उनका मूल्य निर्धारण किए जाने का नियम था।[132]
- यदि कोई व्यापारी तुच्छ (मामूली) मूल्य वाली किसी वस्तु का निर्धारित मूल्य बढाकर वेचता है तो उसे 54 पण अर्थदण्ड; एक पण मूल्य वाली वस्तु का मूल्य बढाकर वेचता है तो उससे दुगुना (108 पण) अर्थदण्ड; और यदि दो पण मूल्य वाली वस्तु का मूल्य बढाकर वेचता है तो उसे 200 पण अर्थदण्ड दिए जाने का नियम था। इसी प्रकार इससे अधिक मूल्य वाली वस्तुओं का मूल्य बढाकर वेचने पर तदनुरूप अधिक अर्थदण्ड दिए जाने का प्राविधान था।[133]

---

127. तदेवाध्यक्षेण ग्रहीतायामार्यायां विद्यात्। कौ0 अर्थ0 4/84/9 पृष्ठ 384
128. दास्यां पूर्वः साहसदण्डः। उपरोक्त
129. अपूर्वदेशाधिगमे . . . . . . .बन्धनस्य विधीयते। कौ0 अर्थ0 2/55/36 पृष्ठ 250
130. बन्धनागारे च बालवृद्ध. . . . .जातनक्षत्रपौर्णमासीषु विसर्गः। उपरोक्त
131. कूटव्यवहारिणो. . . . . .वामहस्तद्विपादवधो नवशतो वा दण्डः। कौ0 अर्थ0 4/85/10 पृष्ठ 388
132. प्रक्षेपं पण्यनिष्पत्तिं. . . . . . . .स्थायपयेदर्घमर्घवित्। कौ0 अर्थ0 4/77/2 पृष्ठ 355
133. विक्रयाधानं नयतो. . . . . दण्डवृद्धिर्व्याख्याता। उपरोक्त पृष्ठ 353

- जो व्यापारी आपस में साँठ--गाँठ करके किसी वस्तु की विक्री बन्द कर दे और जमाखोरी के बाद उसी वस्तु को अनुचित मूल्य पर वेचे या खरीदे तो उनमें प्रत्येक को एक–एक हजार पण का अर्थदण्ड दिए जाने का नियम था।[134]
- वस्तुओं पर कमाया जाने वाला अधिक मुनाफा जिससे प्रजा को कष्ट हो, सर्वथा प्रतिबन्धित था।[135]
- स्वदेशी वस्तुओं पर 5 प्रतिशत लाभ तथा आयातित विदेशी वस्तुओं पर 10 प्रतिशत लाभ निर्धारित था। इससे अधिक लाभ कमाने पर 100 पण पर 5 पण लाभ कमाने वाले को 200 पण का अर्थदण्ड दिए जाने का प्राविधान था। इसी प्रकार और अधिक लाभ कमाने वाले को और अधिक अर्थदण्ड दिए जाने का नियम था।[136]
- वस्तुओं की विक्री में मुनाफा की अपेक्षा जन–कल्याण का विशेष ध्यान रखा जाता था।[137]
- राजकीय अनुमति लेने के बाद ही व्यापारी विक्रेय वस्तुओं का संग्रह कर पाते थे। बिना अनुमति के संग्रह की गई वस्तुओं को शासन द्वारा जब्त कर लिए जाने का नियम था।[138]
- अनाज, तेल, खार, नमक, और दवाओं में घटिया चीजों की मिलावट करने वाले व्यापारी को 12 पण का अर्थदण्ड दिया जाता था।[139]
- नमक में मिलावट करने वाले व्यापरी को उत्तम साहस दण्ड (500 पण से 1000 पण तक का अर्थदण्ड) दिया जाता था।[140]

---

134. वैदेहकानां वा सम्भूय. . . . . . .क्रीणतां वा सहस्रं दण्डः। कौ0 अर्थ04/77/2 पृष्ठ 353
135. स्थूलमपि च लाभं प्रजानामौपघातिकं वारयेत्। कौ0 अर्थ0 2/32/16 पृष्ठ 164
136. अनुज्ञातक्रयादुपरि. . . . . . तेनार्धवृद्धौ दण्डवृद्धिर्व्याख्याता। कौ0 अर्थ0 4/77/2 पृष्ठ 354
137. तेन धान्यपण्यविक्रये व्यवहरेतानुग्रहेण प्रजानाम। उपरोक्त
138. तेन धान्यपण्यनिचयांश्चानुज्ञाताः. . . . . . पण्याध्यक्षो गृहणीयात्। उपरोक्त
139. धान्यस्नेहक्षारलवण. . . . .द्वादशपणो दण्डः। उपरोक्त
140. विलवणमुत्तमं दण्डं दद्यात्। कौ0 अर्थ0 2/28/12 पृष्ठ 141

- यदि कोई व्यापारी लकडी, लोहा, मणि, रस्सी, चमड़ा, मिट्टी, सूत, छाल, और ऊन से बने हुए घटिया माल को बढ़िया बताकर बेचता है तो उसे उस वस्तु की कीमत का आठ गुना अर्थदण्ड दिया जाता था।[141]

(ix) अपराधों के नियंत्रण तथा अन्वेषण संबंधी कानून एवं दण्ड :

- अपराध नियंत्रण के लिए मंत्री स्तर के तीन उच्च न्यायिक अधिकारी नियुक्त होते थे।[142]
- अपराधियों का पता लगाने के लिए नगर के खण्डहरों, कल–कारखानों, मदिरालयों, बूचडखानों, द्यूतशालाओं तथा पाखण्डियों के अड्डों पर गुप्तचर नियुक्त किए जाते थे।[143]
- चोर के रूप में दिखाई न पडने गुप्तचोरों– जैसे बनिया, कारीगर, नट, भिखारी और जादूगर तथा अन्य गुप्त अपराधियों से देशवासियों की रक्षा की जाती थी।[144]
- अपराध घटित होने के तीन दिन बाद संदिग्ध व्यक्ति को गिरफ्तार नहीं किया जाता था। क्योंकि इतने दिन बीत जाने के बाद उससे सही बातें मालूम नहीं हो सकती हैं। किन्तु यदि उसके पास कुछ सबूत मिल जाये तो उसे तीन दिन के बाद भी गिरफ्तार किया जा सकता है।[145]
- संदिग्ध व्यक्तियों का रहन–सहन, हाव–भाव, मुखाकृति, दिनचर्या, जात–पाँत, घर–द्वार, अता–पता, आजीविका का साधन, व्यसन और चरित्र आदि देखकर पता लगाया जाता था कि या तो यह व्यक्ति हत्यारा है, चोर है, डकैत है, क्रोध्उ ाावेश में आकर उसने किसी के ऊपर हथियार चलाया है अथवा वह एक भ्रष्टाचारी प्रजापीड़क है।[146]
- यदि चोरी हुए घर में चोर पीछे के दरवाजे से घुसे हों, या दरवाजे के जोडों से अथवा नीचे से तोड़कर घुसे हों, या दीवार के चढ़ने के लिए ईंटें निकालकर

---

141. काष्ठलोहमणिमयं. . . . . .मूल्याष्टगुणो दण्डः। कौ0 अर्थ0 4/77/2 पृष्ठ 353
142. प्रदेष्टारस्त्रयस्त्रयोऽमात्याः कण्टकशोधनं कुर्युः। कौ0 अर्थ0 4/76/1 पृष्ठ 345
143. एवमभ्यन्तरे शून्यनिवेशावेशन. . . . . . .विचयं कुर्युः। कौ0 अर्थ0 2/55/36 पृष्ठ 246
144. एवं चोरानचोराख्यान् . . . . वारयेद्देशपीडनात्। कौ0 अर्थ0 4/76/1 पृष्ठ 351
145. त्रिरात्रादूर्ध्वमग्राह्यः शङ्कितकः प्रच्छामावादन्यत्रोपकरणदर्शनात्। कौ0 4/83/8 पृष्ठ 376
146. क्षीणदायकुटुम्बमल्पनिर्वेशं. . . . . . .शङ्केतेति शङ्काभिग्रहः। कौ0 अर्थ0 4/81/6 पृष्ठ 367–68

अथवा खोदकर जगह बनाई गई हो या खिड़की तथा रोशनदान तोड़े गए हों, या जहाँ पर धन रखा गया है ठीक उसी जगह दीवार तथा जमीन खोदी गई हो और घर के भीतर खोदी गई मिट्टी गायब कर दी गई हो तो समझ लिया जाता था कि इस चोरी में किसी अन्दरूनी व्यक्ति का हाथ है। यदि इससे विपरीत लक्षण दिखें तो चोरी में किसी बाहरी व्यक्ति का हाथ समझा जाता था। और यदि दोनो तरह के लक्षण दिखें तो अन्दरूनी और बाहरी दोनों व्यक्तियों का हाथ समझा जाता था।[147]

- यदि चोरी में किसी अन्दरूनी व्यक्ति का हाथ होने का सन्देह हो तो घर के लोगों तथा अडौस–पडौस के लोगों सहित अन्य सन्दिग्ध जुआरी, शराबी, विगडैल लोगों से सघन पूछताछ कर चोर का पता लगाया जाता था।[148]
- यदि चोरी में किसी बाहरी व्यक्ति का हाथ होने का सन्देह हो तो 'गोप' तथा 'स्थानिक' नामक अधिकारियों की सहायता से 'प्रदेष्टा' नामक अधिकारी उसका पता लगाता था। इसके अतिरिक्त 'नागरिक' नामक अधिकारी भी अपने तरीकों से चोर का पता लगाता था।[149]
- आकस्मिक रूप से मृत व्यक्ति के शव पर तेल लगाकर उसका परीक्षण (पोस्टमार्टम) किया जाता था। यदि उसकी पेशाब और पखाना निकला हो, पेट तथा त्वचा फूली हो, हाथ–पैर सूजे हों, आँखें खूली हों और गले में निशान पडे हों तो समझ लिया जाता था कि उसकी गला घोंटकर हत्या की गई है।[150]
- यदि उसकी बाँहें और टाँगे सिकुडी हुई हों तो समझिए कि उसे फाँसी पर लटका कर मारा गया है।[151]
- यदि उसके हाथ, पैर, पेट फूल गए हों, आँखें धँस गई हों और नाभि ऊपर उठ आई हो तो समझिए कि उसे शूली पर चढाकर मारा गया है।[152]

---

147. कर्माभिग्रहस्तु मुषितवेश्मनः. . . . . . .उभयत उभयकृतम्। कौ0 अर्थ0 4/81/6 पृष्ठ 370
148. अभ्यन्तरकृते पुरुषमासन्नं . . . . .चौरं पारदारिकं वा विद्यात्। उपरोक्त पृष्ठ 370–71
149. सगोपस्थानिको बाह्यं प्रदेष्टा. . . . . निर्दिष्टहेतुभिः। उपरोक्त पृष्ठ 371
150. निष्कीर्णमूत्रपुरीषं. . . . . . . .पीडनरुिद्धोच्छवासहतं विद्यात्। कौ0 अर्थ0 4/82/7 पृष्ठ 372
151. तमेव संकुचितबाहुसक्थिमुद्बन्धहतं विद्यात्। कौ0 अर्थ0 4/82/7 पृष्ठ 372
152. शूनपाणिपादोदरमपगताक्षमुद्वृत्तनाभिमवरोपितं विद्यात्। उपरोक्त

- यदि उसकी आँखे तथा गुदा बाहर निकले हों, जीभ कटी हो, पेट फूला हो तो समझिए कि उसे पानी में डुबाकर मारा गया है।[153]
- यदि उसकी लाश खून से लथपथ हो; शरीर जगह जगह से टूटा हो तो समझिए कि उसे लाठियों या कोडों से मारा गया है।[154]
- यदि उसका शरीर जगह जगह फटा हो तो समझिए कि उसे मकान से गिराकर मारा गया है।[155]
- यदि उसके हाथ, पैर, नाखून काले पड़ गए हों; माँस, रोयें तथा खाल ढीले पड गए हों और मुख से झाग निकला हो तो समझिए कि उसे जहर देकर मारा गया है।[156]
- यदि उपरोक्त हालत वाली लाश के किसी कटे हुए स्थान से खून निकल रहा हो तो समझिए कि उसे किसी साँप या जहरीले कीडे से कटवाकर मारा गया है।[157]
- यदि उपरोक्त शरीर तथा वस्त्र अस्तव्यस्त हों तथा उसे उल्टी–दस्त हुए हों तो समझिए कि उसे धतूरे जैसी नशीली वस्तुऐं खिलाकर मारा गया है।[158]
- आत्महत्या को सर्वथा निषिद्ध घोषित करते हुए यह नियम था कि जो व्यक्ति काम या क्रोध के वशीभूत होकर, फाँसी लगाकर, जहर खाकर अथवा अस्त्र–शस्त्र के द्वारा आत्महत्या करे और जो स्त्री दुराचार के कारण आत्महत्या करे, उनकी लाशों को चाण्डाल रस्सी से बाँधकर बाजार में घसीटता हुआ ले जाय तथा उनके अन्त्येष्टि एवं तिलांजलि आदि संस्कार न किए जायें।[159]
- वादी और साक्षी के सामने अभियुक्त से उसके निवास स्थान, जाति, परिवार, नाम, व्यवसाय, सम्पत्ति, तथा संगी–साथी आदि के संबंध में पूँछताछ की जाती थी। उसके द्वारा बताई गई बातों की दूसरों के कथनों से तुलना/मिलान किया

---

153. निस्तब्धगुदाक्षं सन्दष्टजिह्वमाध्मातोदरमुदकहतं विद्यात्। कौ0 अर्थ0 4/82/7 पृष्ठ 372
154. शोणितानुसिक्तं भग्नभिन्नगात्रं काण्ठैरश्मिभिर्वा हतं विद्यात्। उपरोक्त
155. सम्भग्नस्फुटितगात्रमवक्षिप्तं विद्यात्। उपरोक्त
156. श्यावपाणिपाददन्तनखं. . . . . . विषहतं विद्यात्। उपरोक्त
157. तमेव सशोणितदंशं सर्पकीटहतं विद्यात्। उपरोक्त पृष्ठ 373
158. विक्षिप्तवस्त्रगात्रमतिवान्तिविरिक्तं मदनयोगहतं विद्यात्। उपरोक्त
159. रज्जुशस्त्रविषैर्वापि. . . . . . . सम्बन्धिक्रियास्तथा। कौ0 अर्थ0 4/82/7 पृष्ठ 375

जाता था। उसके बाद उससे पिछले दिन की गतिविधि, पिछली रात्रि का निवास तथा गिरफ्तार किए जाने तक की कारगुजारियों के संबंध में पूछताछ की जाती थी।[160]

- जो लोग पहले भी चोरी जैसे अपराध कर चुके हों; चोरी को कबूल कर चुके हों; जिनके पास चोरी का कुछ हिस्सा बरामद हुआ हो; जो चोरी का काम करते या चोरी का माल ले जाते रंगे हाथो पकडे जायें; खजाना उडाकर ले जायें तथा हत्या जैसे जघन्य अपराध करें, उन्हें राजा की आज्ञानुसार सामूहिक रूप से पृथक–पृथक रूप से या बारी–बारी से कठोर दण्ड दिए जाने का कानून था।[161]
- अपराधियो को 18 प्रकार के शारीरिक दण्ड दिए जाते थे– (1) छैः डण्डे मारना, (2) सात कोड़े मारना (3) दोनो हाथ–पैर बाँधकर ऊपर लटकाना (4) नाक में खारा पानी डालना (5) नौ हाथ लम्बी वेंत की छडी से वारह वार प्रहार करना (6) व (7) दोनों जंघाओं को वाँधना (8) करञ्ज की छडी से बीस वार प्रहार करना, (9) बत्तीस थप्पड़ मारना (10) व (11) दो वार विच्छू की शक्ल में वाँधना अर्थात् बायें हाथ को पीछे बायें पैर से तथा दायें हाथ को पीछे दायें पैर से वाँधना (12) व (13) दो बार उल्टा लटकाना (14) हाथ के नाखून में सुई चुभोना (15) लस्सी पिलाकर पेशाव न करने देना (16) अंगुली की एक पोर जला देना (17) घी पिलाकर पूरे दिन अग्नि के पास या धूप में वैठाना तथा (18) जाडों की रात में भीगी खाट पर सुलाना।[162]
- शारीरिक दण्ड एक एक दिन छोडकर तथा दिन में केवल एक वार ही दिए जाने का नियम था।[163]
- किन्तु मामूली सा अपराध करने वाले अपराधी, वालक, वृद्ध बीमार, पागल, उन्मादी, भूखे, प्यासे, थके–मादे, अजीर्णरोगी तथा निर्वल व्यक्ति को शारीरिक दण्ड देना वर्जित था।[164]

---

160. मुषितसन्निधौ. . . . . . .आग्रहणादिति अनुयुञ्जीत। कौ0 अर्थ0 4/83/8 पृष्ठ 376
161. पूर्वकृतापदानां, प्रतिज्ञायापहरन्तम्. . . . . व्यस्तमम्यस्तं वा कर्म कारयेत्। उपरोक्त पृष्ठ 379
162. व्यावहारिकं कर्मचतुष्कम्. . . . . चेत्यष्टादशकं कर्म। कौ0 अर्थ0 4/83/8 पृष्ठ 378
163. दिवसान्तरमेकैकं कर्म कारयेत्। उपरोक्त
164. मन्दापराधं बालं वृद्धं. . . . . . .दुर्बलं वा न कर्म कारयेत्। उपरोक्त पृष्ठ 377

- गर्भवती स्त्री तथा एक माह से कम प्रसूता स्त्री को भी शारीरिक दण्ड देना वर्जित था।[165]
- किसी अपराध के लिए पुरुषों को जो दण्ड निर्धारित था, स्त्रियों को उससे आधा दण्ड दिए जाने का नियम था।[166]

(x) मुकदमों के परीक्षण तथा निस्तारण संबंधी कानून एवं दण्ड :

- मुकदमों में सर्वप्रथम वादी–प्रतिवादी के वयान क्रमपूर्वक लिखे जाते थे। तदनन्तर उनका परीक्षण किया जाता था।[167]
- प्रतिवादी द्वारा दाखिल किए गए उत्तर का यदि वादी तत्काल प्रत्युत्तर नहीं देता है तो वादी का मुकदमा खारिज कर दिया जाता था। क्योंकि वादी तो पूरे सोच विचार के बाद ही अपना दावा दायर कता है, इसलिए उसे प्रत्युत्तर देने में विलम्ब नहीं करना चाहिए।[168]
- प्रतिवादी द्वारा यदि तत्काल उत्तर न दिया जा सके तो उसे तीन दिन से लेकर सात दिन तक की मुहलत दी जाय। इतनी मुहलत मिलने पर भी यदि वह उत्तर नहीं दे पाता तो उस पर तीन पण से लेकर बारह पण तक का अर्थदण्ड लगाया जाता था। यदि वह डेढ़ महीने की मुहलत के बाद भी उत्तर नहीं दे पाता तो उस पर दायर मुकदमे के मूल्य के बराबर अर्थदण्ड लगाया जाता था।[169]
- प्रत्यक्षदर्शी गवाह, अभियुक्त द्वारा आरोप को स्वयं कबूल किया जाना, पाक–साफ जिरह, साक्ष्य तथा शपथ–ये पाँच वातें किसी मुकदमे के निस्तारण में मुख्य होती थी।[170]
- जिन मुकदमों में बयान देने वाले मुद्दे की बात न कहकर इधर उधर की बातें करते हैं, जिनके बयानों में कोई क्रमबद्धता न हो, दूसरे की अमान्य बात को

---

165. न त्वेव स्त्रियं गर्भिणीं सूतिकां वा मासावरप्रजाताम्। कौ० अर्थ० 4/83/8 पृष्ठ 377
166. स्त्रियास्त्वर्धकर्म। वाक्यानुयोगो वा। उपरोक्त
167. वादिप्रतिवादिप्रश्नानर्थानुपूर्व्यं निवेशयेत्। निविष्टांश्चावेक्षेत्। कौ० अर्थ० 3/56–57/1 पृष्ठ 257
168. अभियोक्ता चेत् प्रत्युक्तः . . . . . . .ह्यभियोक्ता, नाभियुक्तः। उपरोक्त पृष्ठ 258
169. तस्याप्रतिब्रुवतस्त्रिरात्रं. . . . . . . .प्रतिपादयेदन्यत्र प्रत्युपकरणेभ्यः। उपरोक्त
170. दृष्टदोषः स्वयंवादः. . . . . शपथश्चार्थसाधकः। उपरोक्त पृष्ठ 260

पकड़कर उसी पर अड़े रहते हैं, कर्ज लेने के स्थान पर हलफ देकर भी पूछने पर उसे नहीं बताते या उसकी जगह किसी दूसरे ही स्थान को बतलाते हैं, स्थान ठीक बताने पर ऋण लेने से मुकर जाते हैं, गवाहों की बात को स्वीकार नहीं करते है तथा निषिद्ध स्थान में गवाहों से मिलते व बात करते हैं तो वे मुकदमे खारिज करने योग्य होते हैं।[171]

- मुकदमें में पराजित व्यक्ति को मुकदमा–राशि का पाँचवा भाग अंर्थदण्ड के रूप में देना पड़ता था। स्वयं जूल्म कबूल करने वाले को मुकदमा–राशि का दशवाँ भाग अर्थदण्ड देना पड़ता था।[172]
- यदि स्वामी–सेवक, गुरु–शिष्य, तथा मातापिता–संतान, में आपसी मुकदमावाजी होती है तो उनमें बडों के हारने पर उन्हें मुकदमा–राशि का दशवाँ भाग अर्थ दण्ड देना होता था; जबकि छोटे के हारने पर उन्हें मुकदमा–राशि का पाँचवाँ भाग अर्थ दण्ड देना होता था।[173]
- फौजदारी, डकैती तथा व्यापार संबंधी मुकदमों को छोडकर प्रतिवादी द्वारा वादी पर उल्टा मुकदमा दायर नहीं किया जा सकता था। तथा मुल्जिम पर भी कोई मुकदमा दूसरी वार दायर नहीं किया जा सकता था।[174]

(xi) साक्ष्य संबंधी कानून एवं दण्ड :

- साक्षियों के कथनानुसार ही मुकदमों के फैसले सुनाए जाते थे।[175]
- अभियुक्त को पूरी तरह दोषी सिद्ध होने पर ही दण्ड दिया जाता था।[176]
- पत्नी का भाई (साला), सहायक, गिरवी रखा हुआ गुलाम व्यक्ति, साहूकार, कर्जदार, दुश्मन, विकलांग या सजायाफ्ता व्यक्ति गवाह नहीं हो सकता था।[177]

---

171. निवद्धं पादमुत्सृज्यान्यं. . . . . इति परोक्तहेतवः। कौ0 अर्थ0 3/56–57/1 पृष्ठ 257
172. परोक्तदण्डः पञ्चबन्धः। स्वयंवादिदण्डो दशबन्धः। उपरोक्त
173. स्वामिनो भृत्यानाम्. . . . . . .दशबन्धं दद्युरवराः पञ्चबन्धम्। कौ0 अर्थ0 3/67/11 पृष्ठ 302
174. अभियुक्तो न प्रत्यभियुञ्जीत. . . . . न चाभियुक्तेऽभियोगोऽस्ति। कौ0 अर्थ0 3/56–57/1 पृष्ठ 258
175. साक्षिणः प्रमाणम। कौ0 अर्थ0 3/76/19 पृष्ठ 336, 3/67/11 पृष्ठ 301
176. तस्मात्समाप्तकरणं नियमयेत्। कौ0 अर्थ0 4/83/8 पृष्ठ 377
177. प्रतिषिद्धाः स्याल. . . . . .वैरिन्यङ्गधृतदण्डाः। उपरोक्त पृष्ठ 302

- राजा, वेदपाठी ब्राह्मण, गाँव का मुखिया, कोढी, जख्मी, पतित, चण्डाल, नीच कर्म करने वाला, अन्धा, बहरा, गूँगा, अहंकारी, स्त्री और राजकर्मचारी अपने–अपने वर्गों को छोडकर अन्यत्र गवाह नहीं हो सकते थे।[178]
- वाक्पारुष्य–दण्डपारुष्य, चोरी तथा जमाखोरी के मामलों में शत्रु, साला और सहायक को छोडकर पूर्वोक्त बाकी सभी लोग गवाह हो सकते हैं।[179]
- गुप्त मामलों में राजा और तपस्वी को छोडकर ऐसा कोई अकेला पुरुष या स्त्री भी गवाह हो सकता है जिसने घटना को स्वयं देखा–सुना हो।[180]
- स्वामी–सेवक, गुरु–शिष्य, मातापिता–पुत्रगण आपस में एक दूसरे के गवाह हो सकते थे।[181]
- न्यायिक अधिकारी मुकदमे के गवाह को किसी ब्राह्मण, जल–कुम्भ तथा अग्नि के समक्ष खडा करते थे। यदि ब्राह्मण गवाह होता तो उसे 'सत्य बोलो' यह शपथ दिलाई जाती थी। यदि क्षत्रिय और वैश्य गवाह होते तो उन्हें 'यदि झूठ बोले तो तुम्हें यज्ञ आदि इष्ट कार्यो का तथा कुआँ, धर्मशाला आदि परोपकारी कार्यो का फल न मिले, तुम अपनी शत्रु सेना को जीतकर भी हाथ में खप्पर लेकर भीख माँगते फिरो' यह शपथ दिलाई जाती थी। यदि शूद्र गवाह होता तो उससे इस प्रकार कहा जाता था– 'यदि तुम सच न बोले तो तुम्हारा जन्म जन्मान्तर का सारा पुण्य राजा को प्राप्त हो और राजा का पाप तुम्हे प्राप्त हो, यदि तुम झूठ बोले तो तुम्हें निश्चित ही दण्ड मिलेगा; बाद में देख–सुनकर मामले की जाँच तो की ही जाएगी।[182]
- यदि किसी मुकदमे में गवाहों के अन्तविरोधी बयान आयें तो उनमें जिस बात को बहुसंख्यक, चरित्रवान, विश्वासी गवाह कहें, उसी के आधार पर फैसला कर दिया जाता था अथवा किसी को मध्यस्थ बनाकर फैसला कर दिया जाता था।[183]

---

178. राजश्रोत्रियग्राममृतक. . . . .अन्यत्र स्ववर्ग्येभ्यः। कौ0 अर्थ0 4/83/8 पृष्ठ 377
179. पारुष्यस्तेयसंग्रहणेषु तु वैरिस्यालसहायवर्जाः। कौ0 अर्थ0 3/67/11 पृष्ठ 302
180. रहस्यव्यवहारेष्वेका. . . . . . स्याद्राजतापसवर्जम्। उपरोक्त
181. स्वामिनो मृत्यानाम्. . . . . . तेषामितरे वा। उपरोक्त
182. ब्राह्मणोदकुम्भाग्निसकाशे. . . . .एकमन्त्राः सत्यमवहरतेति। उपरोक्त पृष्ठ 302–03
183. साक्षिभेदे यतो बहवः शुचयोऽनुमता वा ततो नियच्छेयुः। मध्यं वा गृह्णीयुः। उपरोक्त पृष्ठ 303

- झूठी गवाही देने वालों को देश–निष्कासन का दण्ड दिया जाता था।[184]
- वादी के द्वारा देश–काल के विचार से अधिक समीप रहने वाले व्यक्ति को ही गवाह बनाया जाता था। किन्तु न्यायिक अधिकारी की आज्ञा से सुगमतापूर्वक न आ सकने वाले दूरवर्ती व्यक्तियों को भी गवाही के लिए बुलाया जा सकता था।[185]

(ब) दीवानी कानून तथा दण्ड :

(i) संविदा संबंधी कानून तथा दण्ड :

- कोई भी संविदा अपने सुपरिचित आत्मीयजनों अथवा अपरिचित अजनवी व्यक्तियों के साथ गवाहों के समक्ष खुले रूप में की जाती थी, जिसमें संविदा के स्थान तथा समय का विधिवत् उल्लेख किया जाता था।[186]
- वे संविदाऐं अवैध मानी जाती थी जो छिपकर, घर के अन्दर, रात में, जंगल में छलपूर्वक तथा गोपनीय ढंग से की जाती थी।[187]
- उपरोक्त अवैध संविदाऐं करने वाले और कराने वाले को प्रथम साहसदण्ड (48 पण से 96 पण तक का अर्थदण्ड) दिए जाने का नियम था।[188]
- क्रोधी, दु:खी, मत्त, उन्मत्त, पागल आदि व्यक्तियों के द्वारा की गई संविदा वैध नहीं मानी जाती थी। ऐसी अवैध संविदा करने वाले, कराने वाले तथा सुनने वाले को पूर्वोक्त दण्ड दिया जाता था।[189]

(ii) पारिवारिक कानून तथा दण्ड :

- पारिवारिक एवं सामाजिक संबंधों की मूलजड़ विवाह मानी गई है।[190]

---

184. कृतकामियुक्तो वा. . . . . . कूटसाक्षिण इति प्रवास्येरन्। कौ0 अर्थ0 4/79/4 पृष्ठ 362
185. देशकालाविदूरस्थान् साक्षिणः. . . . . . . स्वामिवाक्येन साधयेत्। कौ0 अर्थ0 3/67/11 पृष्ठ 304
186. तस्मात्साक्षिमदच्छन्नं . . . . देशकालाग्रवर्णतः। कौ0 अर्थ0 3/68/12 पृष्ठ 310
187. तिरोहितान्तरगार. . . . . . .व्यवहारान् प्रतिषेधयेयुः। कौ0 अर्थ0 3/56–57/1 पृष्ठ 255
188. कर्तुः कारयितुश्च पूर्वः साहसदण्डः। उपरोक्त
189. तत्रापि क्रुद्धेनार्तेन. . . . . . . .पृथक यथोक्ता दण्डाः। उपरोक्त पृष्ठ 256
190. विवाहपूर्वो व्यवहारः। कौ0 अर्थ0 3/58/2 पृष्ठ 261

- आठ प्रकार के विवाहों– (1) ब्राह्म विवाह (2) प्राजापत्य विवाह (3) आर्य विवाह (4) दैव विवाह (5) गान्धर्व विवाह (6) आसुर विवाह (7) राक्षस विवाह तथा (8) पैशाच विवाह, को सामाजिक मान्यता प्राप्त थी।[191]
- उपरोक्त आठ प्रकार के विवाहों में प्रथम चार प्रकार के विवाह पिता का अनुमोदन होने के कारण धर्मानुकूल माने गये थे।[192]
- वर्णसंकर जातियों के विवाह अपनी ही जातियों में होते थे।[193]
- कन्या के माता–पिता द्वारा दहेज लिया जाता था। माता के अभाव में पिता द्वारा तथा पिता के अभाव में माता द्वारा दहेज लिया जाता था।[194]
- बारह वर्ष की कन्या तथा सोलह वर्ष का युवक कानूनन बालिग माने जाते थे। इस उम्र के बाद यदि विवाह संबंधी राजनियम का उल्लंघन करें (अर्थात् यदि वे विवाह न करें) तो कन्या को बारह पण तथा युवक को चौबीस पण का अर्थदण्ड दिया जाता था।[195]
- कन्या के किसी गुप्त रोग या गुप्त दोष को छिपाकर यदि कोई व्यक्ति उसका विवाह करता है तो उस पर 96 पण का अर्थदण्ड लगाया जाता था। उसे जो दहेज तथा स्त्री धन दिया गया है वह वापस ले लिया जाता था।[196]
- इसी प्रकार जो व्यक्ति किसी वर के गुप्त रोग या गुप्त दोष को छिपाकर उसका विवाह करता है तो उस पर दुगुना (96 × 2 = 192 पण) अर्थदण्ड तथा कन्या के लिए उसके द्वारा दिया गया दहेज तथा स्त्री धन जब्त कर लिया जाता था।[197]
- किसी कन्या को दूषित करने में जो भी व्यक्ति सहायक हो या स्थान आदि उपलब्ध कराये उसे मुख्य अपराधी के समान ही दण्ड दिया जाता था।[198]
- सन्तानोत्पत्ति के बाद पति–पत्नी का सम्बन्ध–विच्छेद सर्वथा निषिद्ध था।[199]

---

191. कन्यादानं कन्यामलङ्कृत्य. . . . . . .सुप्तादानात् पैशाचः। उपरोक्त पृष्ठ 261–62
192. पितृप्रमाणाश्चत्वारः पूर्वे धर्म्याः। मातापितृप्रमाणां शेषाः। कौ0 अर्थ0 3/58/2 पृष्ठ 262
193. तेषां स्वयोनौ विवाहः। कौ0 अर्थ0 3/63/7 पृष्ठ 284
194. तौ हि शुल्कहरौ दुहितुः। अन्यतराभावेऽन्यतरो वा। कौ0 अर्थ 3/58/2 पृष्ठ 262
195. द्वादशवर्षा स्त्री प्राप्तव्यवहारा. . . . . पुंसो द्विगुणः। कौ0 अर्थ0 3/59/3 पृष्ठ 266
196. कन्यादोषमौपशायिकम्. . . . . .शुल्कस्त्रीधनप्रतिदानं च। कौ0 अर्थ0 3/71/15 पृष्ठ 321
197. वरयितुर्वा वरदोषमनाख्याय विन्दतोद्विगुणः। शुल्कस्त्रीधननाशश्च। उपरोक्त
198. साचिव्यावकाशदाने कर्तृसनो दण्डः। कौ0 अर्थ0 4/87/12 पृष्ठ 395
199. न त्वेवाभिप्रजातयोः। कौ0 अर्थ0 3/71/15 पृष्ठ 321

- अपने पति के साथ द्वेष रखने वाली स्त्री यदि सात ऋतुकाल तक दूसरे पुरुष के साथ समागम करती रहे तो वह अपने दोनों प्रकार के स्त्री धन पति को सौंपकर उसे दूसरी स्त्री के साथ समागम करने की अनुमति दे देती थी।[200]
- इसी प्रकार अपनी पत्नी से द्वेष रखने वाला पति उसे किसी सन्यासिनी अथवा अपने भाई-बन्धुओं के साथ रहने की अनुमति दे देता था।[201]
- पति से द्वेष-वैमनस्य रखने वाली स्त्री अपने पति की इच्छा के विरुद्ध तलाक नहीं दे सकती थी। इसी प्रकार पति भी अपनी पत्नी की इच्छा के विरुद्ध उसे तलाक नहीं दे सकता था। दोनों में परस्पर समान दोष होने पर ही तलाक संभव होता था।[202]
- पत्नी की कुछ बुराइयों के कारण यदि पति उसे तलाक देना चाहे तो जो धन उसे स्त्री की ओर से मिला है उसे वह स्त्री को लौटा देता था। लेकिन इसी कारण यदि कोई पत्नी अपने पति को तलाक देना चाहे तो वह पति से पाया हुआ धन पति को नहीं लौटाती थी।[203]
- पूर्वोक्त प्रथम चार प्रकार के विवाहों– (1) ब्राह्म विवाह (2) प्राजापत्य विवाह (3) आर्य विवाह (4) दैव विवाह, में किसी भी दशा में तलाक नहीं हो सकता था।[204]
- कोई भी स्त्री अपने चरित्रहीन, प्रवासी, राजद्रोही, हिंसक तथा नुपंसक पति को तलाक दे सकती थी।[205]
- यदि किसी स्त्री की संतान न होती हो या उसके अन्दर सन्तान पैदा करने की शक्ति न हो तो उसका पति आठ वर्ष तक सन्तान होने की प्रतीक्षा करता था। यदि उसके मृत बच्चे ही उत्पन्न होते हों तो दस वर्ष तक और *यदि उसके कन्याएें ही पैदा होती हो तो पति को बारह वर्ष तक प्रतीक्षा करना चाहिए।* उसके बाद पुत्र की इच्छा करने वाला पुरुष पुनर्विवाह कर सकता था।206

---

200. मर्तारं द्विषती स्त्री. . . . . . . .अन्यया सह शयानमनुशयीत। कौ0 अर्थ0 3/59/3 पृष्ठ 267
201. मिक्षुक्यान्वाधिज्ञाति. . . . . . . स्त्रियमे कामनुशयीत। उपरोक्त
202. अमोक्ष्या मर्तुरकामस्य. . . . . . परस्परं द्वेषान्मोक्षः। कौ0 अर्थ0 3/59/3 पृष्ठ 267
203. स्त्रीविप्रकाराद् वा. . . . . .यथागृहीतं दद्यात्। उपरोक्त पृष्ठ 267–68
204. अमोक्षो धर्मविवाहानाम। उरोक्त पृष्ठ 268
205. नीचत्वं परदेशं वा प्रस्थितो. . . . . . . क्लीबोऽपि वा पतिः। कौ0 अर्थ0 3/58/2 पृष्ठ 265
206. वर्षाण्यष्टावप्रजायमानाम्. . . . . ततः पुत्रार्थी द्वितीयां विन्देत। उपरोक्त पृष्ठ 264

- समाज में कुछ विशेष परिस्थितियों में बहुपत्नी प्रथा अनुमन्य थी तथा कोई पुरुष अनेक पत्नियाँ रखने के लिए अधिकृत था।[207]
- कुछ विशेष परिस्थितियों में विधवा पुनर्विवाह भी अनुमन्य था।[208]
- माता–पिता के जीवित रहते लड़के सम्पत्ति के अधिकारी नही होते थे। उनके निधन के बाद लड़के आपस में सम्पत्ति का वँटवारा कर सकते थे।[209]
- जिस भाई के द्वारा सम्पत्ति की अधिक वृद्धि हुई हो वह वँटवारे के समय दो हिस्सा ले सकता था।[210]
- मृतक की सम्पत्ति के अधिकारी उसके लड़के होते थे। लड़कों के अभाव में लड़कियाँ, लड़कियों के अभाव में मृतक के पिता, पिता के अभाव में पिता के सहोदर, सहोदर के अभाव में सहोदर–पुत्र उस सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होते थे।[211]
- पिता अपने जीवनकाल में यदि अपनी सम्पत्ति का वँटवारा करना चाहे तो वह किसी एक पुत्र को अधिक हिस्सा नहीं दे सकता था। और न किसी पुत्र को कम हिस्सा दे सकता था।[212]
- पुत्रों के वालिग हो जाने पर ही सम्पत्ति का वँटवारा किया जाता था।[213]
- पतित, पतित की सन्तान, नपुंसक, मूर्ख, उन्मत्त, अन्धा और कोढ़ी व्यक्ति दाय–भाग का उत्तराधिकारी नहीं होता था।[214]
- जिस सम्पत्ति का कोई उत्तराधिकारी नहीं होता था उसे राजा ले लेता था।[215]

---

207. शुल्कं स्त्रीधनम्. . . . . . . .बह्वीरपि विन्देत। कौ0 अर्थ0 3/58/2 पृष्ठ 265
208. प्रेतस्य वा भार्या. . . . . . . .ततः पतिसोदर्यं गच्छेत्। कौ0 अर्थ0 3/60/4 पृष्ठ 273
209. अनीश्वराः पितृमन्तः. . . . . .दायविभागः पितृद्रव्याणाम। कौ0 अर्थ0 3/61/5 पृष्ठ 275
210. यतश्चोत्तिष्ठेत स द्वयंशं लभेत्। उपरोक्त
211. रिक्थं पुत्रवतः पुत्रा. . . . , पित्रभावे भ्रातरो भ्रातृपुत्राश्च। उपरोक्त पृष्ठ 276
212. जीवद्विभागे पिता नैकं विशेषयेत्। न चैकमकारणान्निर्विभजेत। उपरोक्त
213. प्राप्तव्यवहाराणां विभागः। उपरोक्त
214. पतितः पतिताज्जातः क्लीबश्चानंशः, जडोन्मत्तान्धकुष्ठिनश्च। उपरोक्त पृष्ठ 277
215. अदायादकं राजा हरेत्। उपरोक्त

- यदि किसी ब्राह्मण की चारो वर्णों की पत्नियाँ हों तो उसकी सम्पत्ति में से ब्राह्मण पत्नी से उत्पन्न पुत्र को चार भाग, क्षत्रिय पत्नी से उत्पन्न पुत्र को तीन भाग, वैश्य पत्नी से उत्पन्न पुत्र को दो भाग तथा शूद्र पत्नी से उत्पन्न पुत्र को एक भाग, वँटवारे में मिलता था।[216]
- राजा के लिए यह नियम बनाया गया था कि वह किसी देश, जाति, संघ और गाँव के लिए जैसा भी धर्मोचित एवं न्यायोचित हो उसी के अनुसार वह वहाँ दाय भाग का निर्धारण करे।[217]
- कौटिल्य के राजदर्शन में उत्तराधिकारियों की सूची में पत्नी का नाम सम्मिलित नहीं था।[218]

(iii) अचल सम्पत्ति संबंधी कानून तथा दण्ड :

- घर, खेत, बाग–बगीचे, सीमाबन्ध, तालाब तथा वाँध आदि अचल सम्पत्ति (वास्तु) कहलाते थे।[219]
- दस दिन के लिए बनाए जाने वाले सूतिकाग्रह को छोडकर बाकी सब घरों में शौचालय, जल–मल निकासी मार्ग, कुआँ तथा पाकशाला अवश्य बनवाए जाते थे। इस नियम का उल्लंघन करने वाले को प्रथम साहस दण्ड (48 पण से 96 पण तक का अर्थदण्ड) दिया जाता था।[220]
- मकान मालिक के मना करने पर भी जो किरायेदार मकान खाली न करे अथवा किराया देने पर भी जो मकान मालिक किरायेदार से जवर्दस्ती मकान खाली कराये, उन्हें 12 पण का अर्थदण्ड दिया जाता था; बशर्ते कि उनके पारस्परिक संबंधो में कठोर भाषण, चोरी, डकैती, व्यभिचार तथा धोखाधड़ी आदि अवांछनीय बातें न आई हों। यदि किरायेदार स्वेच्छा से मकान खाली करता था तो उसे साल भर का किराया मकान मालिक को अदा करना पडता था।[221]

---

216. चातुर्वर्ण्यपुत्राणां. . . . . . .एकं शूद्रापुत्रः। कौ0 अर्थ0 3/62/6 पृष्ठ 280
217. देशस्य जात्याः सङ्घस्य धर्मो . . . . . . .दायधर्मं प्रकल्पयेत्। कौ0 अर्थ0 3/63/7 पृष्ठ 285
218. Gupta, V. K. Kautilyan Jurisprudence p. 106
219. गृहं क्षेत्रमारामः सेतुबन्धस्तटाकमाधारो वा वास्तुः। कौ0 अर्थ0 3/64/8 पृष्ठ 286
220. अवस्करं भ्रममुदपानं वा न . . . . . . .तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः। उपरोक्त
221. प्रतिषिद्धस्य च वसतः. . . . . . . .वर्षावक्रयशेषं दद्यात्। कौ0 अर्थ0 3/64/8 पृष्ठ 288

- भूमि इत्यादि अचल सम्पत्ति बेचने के लिए पहले अपने साथियों, सम्बन्धियों, सामन्तों और धनाढ्य लोगों से पूँछा जाता था। जब वे लोग खरीदने से मना कर देते थे तब अन्य बाहरी लोगों से उस संबंध में बात की जाती थी।[222]
- अचल सम्पत्ति संबंधी विवाद सामन्तों (गाँव के मुखियाओं) के द्वारा निपटाये जाते थे।[223]
- खेत संबंधी विवाद सामन्त लोगों तथा गाँव के बड़े–बूढ़े लोगों के द्वारा निपटाए जाते थे।[224]
- हदवन्दी के सीमाचिन्हों को खिसकाने पर प्रथम साहस दण्ड (48 पण से 96 पण तक का अर्थदण्ड) तथा मिटाने/हटाने पर 24 पण दण्ड दिया जाता था।[225]
- अतिक्रमण रोकने के लिए यह व्यवस्था थी कि जो भी व्यक्ति छोटे–छोटे जानवरों और मनुष्यों के मार्ग पर अतिक्रमण करे उस पर 12 पण का अर्थदण्ड; बड़े–बड़े पशुओं के मार्ग पर अतिक्रमण करे तो 24 पण का अर्थदण्ड; सेतु तथा जंगल के मार्ग पर अतिक्रमण करे तो 600 पण का अर्थदण्ड; श्मशान तथा गाँव के मार्ग पर अतिक्रमण करे तो 200 पण का अर्थदण्ड; द्रोणमुख (मुख्य नगर) के मार्ग पर अतिक्रमण करे तो 500 पण का अर्थदण्ड, स्थानीय, राष्ट्रीय तथा चरागाह के मार्ग पर अतिक्रमण करे तो 1000 पण का अर्थदण्ड दिया जाता था।[226]
- अचल सम्पत्ति पर जवर्दस्ती कब्जा करने वाले को चोरी का दण्ड दिया जाता था।[227]
- ऐसी ऊसर या बंजर जमीन जिसे किसान ने अपने श्रम से खेती योग्य बनाया हो तो उस पर उस किसान का आजीवन मालिकाना हक होता था।[228]

---

222. ज्ञातिसामन्तधनिकाः . . . . . . .ततोऽन्ये बाह्याः। कौ0 अर्थ0 3/65/9 पृष्ठ 289
223. सामन्तप्रत्यया वास्तुविवादाः। कौ0 अर्थ0 3/64/8 पृष्ठ 286
224. क्षेत्रविवादं सामन्तग्रामवृद्धाः कुर्युः। कौ0 अर्थ0 3/65/9 पृष्ठ 290
225. मर्यादापहरणे पूर्वः साहसदण्डः। मर्यादाभेदे चतुर्विंशतिपणः। उपरोक्त पृष्ठ 291
226. क्षुद्रपशुमनुष्यपथं. . . . . . . स्थानीयराष्ट्रविवीतपथं साहस्रः। कौ0 अर्थ0 3/66/10 पृष्ठ 294
227. प्रसह्यादाने वास्तुनि स्तेयदण्डः। कौ0 अर्थ0 3/65/9 पृष्ठ 291
228. अकृतानि कर्तृभ्यो नादेयात्। कौ0 अर्थ0 2/17/1 पृष्ठ 78

(iv) व्यावसायिक लेन–देन संबंधी कानून तथा दण्ड :

- पति–पत्नी, पिता–पुत्र तथा संयुक्त परिवार के रूप में रहने वाले भाइयों के बीच यदि कोई किसी से कर्ज लेता है तो उनका कर्ज संबंधी मुकदमा अदालत में दायर नहीं हो सकता था।[229]
- कर्ज लेने वाला कोई किसान अथवा कोई राज–कर्मचारी यदि अपनी ड्यूटी पर तैनात हो तो कर्ज–वसूली के उद्देश्य से उन्हें उस समय गिरफ्तार नहीं किया जा सकता था।[230]
- कर्जदार व्यक्ति यदि कर्ज लेना स्वीकार कर लेता है तो यह सर्वोत्तम है।[231] लेकिन यदि वह कर्ज लेना स्वीकार नहीं करता है तो फिर विवाद की स्थिति में गवाहों के अनुसार निर्णय किया जाता था। दोनों पक्षों से अनुमत कम से कम तीन गवाह प्रस्तुत करना चाहिए जो विश्वसनीय तथा चरित्रवान हों। अथवा दोनों पक्षों की सहमति से दो गवाह भी हो सकते थे। किन्तु कर्ज के मामले में केवल एक गवाह के आधार पर निर्णय नहीं दिया जा सकता था।[232]
- कर्ज लेने के समान ही धन जमा करने के नियम भी थे।[233]
- शत्रु के षडयन्त्र तथा जंगली जातियों के आक्रमण के कारण दुर्ग तथा राष्ट्र का नाश हो जाने पर; या चोर डकैतों के द्वारा गाँवों, व्यापारिक कम्पनियों तथा पशुओं का नाश कर दिए जाने पर; या आन्तरिक षडयन्त्रों के कारण राज्य के नष्ट हो जाने पर; या गाँव में अग्निकाण्ड अथवा बाढ़ आ जाने पर, या दैवी आपदाओं के कारण नष्ट हुए ताँवा, लोहा आदि कुप्य वस्तुओं के थोडा ही शेष रहने पर, अग्नि की ज्वालाओं से घिर जाने पर; या नाव के डूब जाने पर अथवा नाव के माल की चोरी हो जाने पर कोई व्यक्ति धन जमा करने वाले व्यक्ति पर मुकदमा दायर नहीं कर सकता था।[234]

---

229. दम्पत्योः पितापुत्रयोर्भ्रातृणां चाविभक्तानां परस्परस्कृतमृणमसाध्यम्। कौ0 अर्थ0 3/67/11 पृष्ठ 301
230. अग्राह्याः कर्मकालेषु कर्षका राजपुरुषाश्च। उपरोक्त
231. सम्प्रतिपत्तावुत्तमः। उपरोक्त
232. असम्प्रतिपत्तौ . . . . . . .पक्षानुमतौ वा द्वौ ऋणं प्रति, न त्वेवैकः। उपरोक्त
233. उपनिधिः ऋणेन व्याख्यातः। कौ0 अर्थ0 3/68/12 पृष्ठ 305
234. परचक्राटविकाभ्यां. . . . . .नोपनिधिमभ्याभवेत्। उपरोक्त

- उधारी पर या किराये पर ली गई वस्तु जिस दशा में लायी जाती थी, ठीक उसी दशा में वापस करना पडती थी।[235] लेकिन यदि किसी दैवी आपदा के कारण अथवा देश–काल जन्य विषम परिस्थिति के कारण कोई वस्तु खराब या नष्ट हो जाय तो उस वस्तु के संबंध में जमाकर्ता के विरूद्ध मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था।[236]
- यदि कोई व्यक्ति उधारी या किराये पर ली गई तथा धरोहर के रूप में रखी हुई वस्तु को निर्धारित स्थान व समय पर वापस नहीं करता है तो उसे 12 पण का अर्थदण्ड दिया जाता था।[237]
- अपनी खोई हुई या चोरी गई वस्तु को उसका मालिक यदि किसी अन्य व्यक्ति के पास देखे तो उस व्यक्ति को वह किसी न्यायिक अधिकारी के माध्यम से गिरफ्तार करा सकता था। यदि देश–काल संबंधी परिस्थितियाँ उसकी गिरफ्तारी में बाधक हों तो वह स्वयं उसे गिरफ्तार कर न्यायिक अधिकारी के हवाले कर सकता था।[238]
- खोई हुई वस्तु मिल जाने पर उसके मालिक को वह वस्तु प्राप्त करने के लिए अदालत से अनुमति प्राप्त करनी पड़ती थी। इसका उल्लंघन होने पर मालिक को प्रथम साहस दण्ड (48 पण से 96 पण तक का अर्थदण्ड) दिया जाता था।[239]
- किसी का खोया हुआ या चोरी गया माल मिल जाने पर उसे चुंगीघर में जमा करा दिया जाता था। डेढ़ माह तक यदि उसका मालिक उसे लेने नहीं आता था तो राजा उस माल को जब्त कर लेता था।[240]

---

235. याचितकमवक्रीतकं वा यथाविधं गृह्णीयुस्तथाविधमेव अर्पयेयुः। कौ0 अर्थ0 3/68/12 पृष्ठ 305
236. भ्रेषोपनिपाताभ्यां देशकालोपरोधि दत्तं नष्टं विनष्टं वा नाभ्यामवेयुः। उपरोक्त
237. याचितकापक्रीतकाहितकनिक्षेपकाणां . . . . . .द्वादशपणो दण्डः। कौ0 अर्थ0 3/77/20 पृष्ठ 340
238. नष्टापहृतमासाद्य . . . . . .वा स्वयं गृहीत्वोपहरेत्। कौ0 अर्थ 3/72–73/16 पृष्ठ 324
239. नष्टापहृतमनिवेद्योत्कर्षतः स्वामिनः पूर्वः साहसदण्डः। उपरोक्त
240. शुल्कस्थाने नष्टापहृतोत्पन्नं तिष्ठेत। त्रिपक्षादूर्ध्वमनभिसारं राजा हरेत्। उपरोक्त पृष्ठ 325

- शत्रु राजा तथा जंगली व्यक्तियों द्वारा प्रजा की नष्ट भ्रष्ट की गई वस्तुओं को राजा लाकर उन्हें देता था। यदि राजा उन वस्तुओं को वापस लाने में असमर्थ होता तो वह अपने राजकोष में से उन्हें देता था।[241]
- प्रजा की खोई हुई, भूली हुई तथा छूटी हुई वस्तुऐं 'नागरिक' नामक अधिकारी के संरक्षण में रखी जाती थी।[242]
- जो व्यक्ति दस वर्ष तक दूसरों के द्वारा उपभोग की जा रही अपनी संपत्ति की परवाह नहीं करता उसका उस सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं रह जाता था। लेकिन यदि वह सम्पत्ति किन्हीं ऐसे व्यक्तियों की हो जो बाल, वृद्ध, बीमार, आपदग्रस्त, प्रवासी, देशत्यागी तथा किसी राजकीय कार्य से बाहर गए हों तो ऐसे लोगों का अपनी सम्पत्ति पर दस वर्ष बाद भी अधिकार बना रहता था।[243]
- यदि कोई व्यक्ति अपना मकान बीस वर्ष तक दूसरों को दिए रहता है तो फिर उस पर मकान मालिक का कोई अधिकार नहीं रह जाता था।[244]

(v) उद्योग–व्यापार संबंधी कानून तथा दण्ड :

- उद्योग को अर्थ का मूल तथा उद्योगहीनता को अनर्थो का मूल माना जाता था।[245]
- नदियों, तालाबों, और सरोवरों पर आधारित मत्स्य, नौका, तथा सिंघाडा एवं कमलदण्ड आदि उद्योगों पर राज्य का नियंत्रण होता था।[246]
- शंख, वज्र, मणि, मुक्ता, प्रवाल तथा सभी तरह के क्षार संबंधी उद्योग एवं उनका व्यापार खान–अध्यक्ष के नियंत्रण में रहता था।[247]
- विभिन्न प्रकार के खनिज पदार्थो का क्रय–विक्रय किसी एक नियत स्थान पर ही

---

241. परचक्राटवीहृतं तु, ...प्रत्यानेतुमशक्तो वा। कौ0 अर्थ0 3/72–73/16 पृष्ठ 325
242. नष्टप्रस्मृतापसृतानां च रक्षमण्। कौ0 अर्थ0 2/55/36 पृष्ठ 250
243. यत्स्वं द्रव्यमन्यैर्भुज्यमानं. . . . . . देशत्यागराज्यविभ्रमेभ्यः। कौ0 अर्थ0 3/72–73/16 पृष्ठ 326
244. विंशतिवर्षोपेक्षितमनुवसितं वास्तु नानुयुञ्जीत। उपरोक्त
245. अर्थस्य मूलमुत्थानमनर्थस्य विपर्ययः। कौ0 अर्थ0 1/14/18 पृष्ठ 64
246. मत्स्यप्लवहरितपण्यानां सेतुषु राजा स्वाम्यं गच्छेत्। कौ0 अर्थ0 2/17/1 पृष्ठ 79
247. खन्यध्यक्षः शङ्खवज्र. . . . . . पणनव्यवहारं च। कौ0 अर्थ 2/28/12 पृष्ठ 141

होता था। उससे अन्यत्र खनिज पदार्थो का उत्पादन तथा क्रय–विक्रय करने वालों को दण्डित किया जाता था।[248]

- ताँबा, सीसा, रांगा, पारा, पीतल, स्टील, काँसा तथा ताल आदि खनिज पदार्थो संबंधी उद्योग तथा उनका व्यापार लोहाध्यक्ष के नियंत्रण में रहता था।[249]
- व्यापारी के वेष में रहने वाले'वैदेहक' नामक गुप्तचर विभिन्न प्रकार की खनिज, वनोपज, एवं जलज वस्तुओं की तौल, कीमत तथा करों पर अपनी पैनी नजर रखते थे।[250]
- जो व्यक्ति बिना लाइसेंस के खनिज धातुओं का व्यापार करे, उसे पकड़कर खान के कार्य में लगा दिया जाता था।[251]
- घटिया या मिलावटी नमक बेचने वाले व्यापारी को उत्तम साहस दएझ (500 पण से 1000 पण तक का अर्थदण्ड) दिया जाता था।[252]
- खनिजों को कोश का जनक माना जाता था।[253]
- खनिज पदार्थो की चोरी करने वाले को चोरी का आठ गुना दण्ड दिया जाता था।[254]
- विदेशी माल के आयात को प्रोत्साहन देने हेतु राजकर में छूट दी जाती थी।[205]
- किन्तु जो विदेशी माल अपने देश के लिए हानिकारक अथवा अनुपयोगी हो उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता था।[256]
- आयातित माल पर उसके मूल्य का पाँचवाँ हिस्सा आयात शुल्क के रूप में वसूल किया जाता था।[257]

---

248. कृतमाण्डव्यवहारमेकमुखम अत्ययं चान्यत्रकर्तृक्रेतृविक्रेतृणां स्थाययेत्। कौ0 अर्थ0 2/28/12 पृष्ठ 139
249. लोहाध्यक्षः. . . . . . .लोहमाण्डव्यवहारं च। उपरोक्त पृष्ठ 140
250. एवं वैदेहकव्यञ्जनाः. . . . . . पण्यागारप्रमाणं विद्युः। कौ0 अर्थ0 2/53–54/35 पृष्ठ 243
251. स्तेनमनिसृष्टोपजीविनं च बद्ध्वा कर्म कारयेद्। कौ0 अर्थ0 2/28/12 पृष्ठ 139
252. विलवणमुत्तमं दण्डं दद्यात्। उपरोक्त पृष्ठ 141
253. आकरप्रमवः कोषः। उपरोक्त पृष्ठ 142
254. आकरिमपहरन्तमष्टगुणं दापयेत्। उपरोक्त पृष्ठ 139
255. परमूमिजं. . . . . . परिहारमायतिक्षमं दद्यात्। कौ0 अर्थ0 2/32/16 पृष्ठ 165
256. राष्ट्रपीडाकरं भाण्डमुच्छिन्द्यादफलं च यत्। कौ0 अर्थ0 2/37/21 पृष्ठ 188
257. प्रवेश्यानां मूल्यपञ्चमागः। कौ0 अर्थ0 2/38/22 पृष्ठ 189

- समुद्र, झील, नदियों, तालाबों के किनारों पर बसे हुए ग्रामीणों को निर्धारित कर देना पड़ता था।[258] जैसे मछुवारों तथा मल्लाहों को अपनी आय का छठवाँ हिस्सा, तथा वन्दरगाहों के व्यापारियों को तत्कालीन प्रचलित दर से कर अदा करना पड़ता था।[259]
- चोर–डकैतों की नौकाओं, शत्रु देश की ओर जाने वाली तथा व्यापार नियमों का उल्लघंन करने वाली नौकाओं को नष्ट कर दिया जाता था।[260]

(vi) श्रम संबंधी कानून तथा दण्ड :

- स्वामी और सेवक (श्रमिक) में सेवा–शर्तो संबंधी इकरारनामा उनके पडौसियों के समक्ष होता था।[261]
- उक्त इकरारानामा की शर्तो का उल्लंघन करने पर मालिक अथवा नौकर दोनों को 12 पण दण्ड दिया जाता था।[262]
- जिसका वेतन तय हो गया हो वह नौकर उसी वेतन पर काम करता था। किन्तु जिसका वेतन पहले से तय न हुआ हो उसे उसके कार्य और समय के अनुसार वेतन दिया जाता था।[263]
- मजदूरों को विशेष मान–सम्मान–दान देकर उनसे त्योहारो पर भी काम कराया जाता था।[264]
- काम करते हुए यदि किसी नौकर की मृत्यु हो जाती है तो उसका वेतन भत्ता उसके पुत्र–पत्नी प्राप्त करते थे। इसके अतिरिक्त मृतक के बच्चों, वृद्धों तथा बीमार परिजनों पर राजा को विशेष कृपादृष्टि बनाये रखना पडती थी। उनके घरों पर मृत्यु, बीमारी या प्रसव होने पर उनकी आर्थिक सहायता करते हुए उनके मान–सम्मान की रक्षा की जाती थी।[265]

---

258. तद्वेलाकूलग्रामाः क्लृप्तं दद्युः। कौ0 अर्थ0 2/44/28 पृष्ठ 212
259. मत्स्यबन्धका. . . . . . शुल्कभागं वणिजो दद्युः। उपरोक्त
260. हिंस्रिका निर्घातयेद् अमित्रविषयातिगाः पण्यपत्तनचारित्रोपधातिकाश्च। उपरोक्त पृष्ठ 213
261. कर्मकरस्य कर्मसम्बन्धमासन्ना विद्युः। कौ0 अर्थ0 3/69/13 पृष्ठ 314
262. नान्यस्त्वया कारयितव्यो. . . . . . द्वादशपणो दण्डः। कौ0 अर्थ0 3/70/14 पृष्ठ 316
263. यथासम्भाषितं वेतनं लभेत। कर्मकालानुरूपमसम्भाषितवेतनम। उपरोक्त
264. तिथिषु प्रतिपादनमानैश्च कर्म कारयितव्याः। कौ0 अर्थ0 2/39/23 पृष्ठ 192
265. कर्मसु मृतानां पुत्रदारा. . . . .चैषामर्थमानकर्म कुर्यात। कौ0 अर्थ0 5/91/3 पृष्ठ 423

- महिला रोजगार में उनकी सुरक्षा का पर्याप्त ध्यान रखा जाता था।[266]
- नौकर के अशक्त होने पर, किए जाने वाले कार्य के घृणित होने पर, उसके बीमार होने पर या आपदग्रस्त होने पर इकरारनामा की शर्तो में शिथिलता दी जाती थी।[267]

(vii) लोककल्याण सम्बन्धी कानून तथा दण्ड :

- जनहित को सर्वोच्च वरीयता प्रदान करते हुए यह नियम बनाया गया था कि राजा के द्वारा अपनी प्रजा की रक्षा उसी तरह की जाना चाहिए जैसे एक पिता अपनी सन्तान की करता है।[268]
- राजा के द्वारा आठ प्रकार की महाविपत्तियों (अग्नि, जल, बीमारी, अकाल, चूहे, व्याघ्र, सर्प और राक्षस) से प्रजा की रक्षा किए जाने का नियम था।[269]
- राजा के द्वारा अन्न, बीज, बैल और धन आदि देकर किसानो की कल्याणकारी सहायता करने का नियम था।[270]
- बालक, वृद्ध, रोगी, आपत्तिग्रस्त, अनाथ, का भरण पोषण राजा के द्वारा किया जाता था।[271]
- अनाथ नावालिग बच्चो की संपत्ति की देखरेख गाँव के बड़े–बूढ़े लोगों के द्वारा की जाती थी। उसे वे बढ़ाते रहते थे तथा बच्चे के बालिग हो जाने पर उसकी सम्पत्ति उसे सौंप देते थे।[272]
- सामुदायिक कार्यो में सभी की सहभागिता अपेक्षित थी। सहभागिता न करने वालों को दण्डित किया जाता था।[273]

---

266. याश्चानिष्कासिन्यः. . . . . . वेतनकालातिपातने मध्यमः। कौ0 अर्थ0 2/39/23 पृष्ठ 193
267. अशक्तः कुत्सिते कर्मणि व्याधौ व्यसने वा अनुशयं लभेत। कौ0 अर्थ0 3/70/14 पृष्ठ 316
268. सर्वत्र चोपहतान् पितेवानुगृह्णीयात। कौ0 अर्थ0 4/78/3 पृष्ठ 360
269. देवान्यष्टौ महाभयानि. . . . . तेभ्यो जनपदं रक्षेत्। उपरोक्त पृष्ठ 356
270. धान्यपशुहिरण्यैश्चैनाननुगृह्णीयात। कौ0 अर्थ0 2/17/1 पृष्ठ 78
271. बालवृद्धव्याधितव्यसन्यनाथांश्च. . . . . प्रजातायाश्च पुत्रान्। उपरोक्त पृष्ठ 79
272. बालद्रव्यं ग्रामवृद्धा वर्धयेयुराव्यवहारप्रापणात्। उपरोक्त पृष्ठ 80
273. कर्षकस्य ग्राममभ्युपेत्याकुर्वतो ग्राम एवात्ययं हरेत्। कौ0 अर्थ0 3/66/10 पृष्ठ 297

- जो लोग मिलकर जनहित में पुलों तथा मार्गो का निर्माण करते हैं, गाँवों को सजाते सँवारते तथा रक्षा करते हैं, राजा के द्वारा उन लोगों के हित संरक्षण का विशेष ध्यान रखा जाता था।[274]
- यदि कोई व्यक्ति अपने किसी समीपस्थ व्यक्ति के आपत्तिग्रस्त होने पर उसकी सहायता के लिए नही दौडता है तो उस पर 100 पण का अर्थदण्ड लगाया जाता था।[275]
- जनहित के उद्देश्य से जलापूर्ति हेतु दस परिवारों के एक समूह के बीच एक कुआँ बनवाया जाता था।[276]

(viii) कर संबंधी कानून तथा दण्ड :

कर संबंधी प्रमुख नियमों तथा तद्विषयक दण्ड विधान का उल्लेख पिछले 'वित्तीय प्रशासन' नामक अध्याय में यथास्थान किया जा चुका है; अतः उनका यहाँ पर पुनः उल्लेख हमारा अभीष्ट नहीं है।

(स) संवैधानिक एवं प्रशासनिक कानून तथा दण्ड :

कौटिल्य काल में राजतन्त्रीय शासन पद्धति प्रचलित थी। तद्विषयक संवैधानिक एवं प्रशासनिक नियमों तथा दण्ड विधान का यथालब्ध विवरण इस शोध प्रबन्ध के 'प्रशासनिक व्यवस्था' नामक तृतीय अध्याय में प्रस्तुत किया जा चुका है।

(द) अन्तर्राष्ट्रीय कानून :

कौटिल्यकालीन अन्तर्राष्ट्रीय संबंध तथा तद्विषयक कानून मुख्य रूप से मण्डल सिद्धान्त, षाड्गुण्यनीति, उपायचतुष्टय, दूत एवं गुप्तचर व्यवस्था पर आधारित थे। इन सभी का विस्तृत विवेचन इस शोध प्रबन्ध के 'अन्तर्राज्य सम्बन्ध' नामक पञ्चम अध्याय में किया जा चुका है।

---

274. राजा देशहितान् सेतून् कुर्वतां. . . . . .तेषां प्रियहितं चरेत्। कौ0 अर्थ0 3/66/10 पृष्ठ 298
275. प्रत्यासन्नमापद्यनमिधावतो. . . . . शत्यो दण्डः। कौ0 अर्थ0 3/74-75/20 पृष्ठ 341
276. दशकुलीवाटं कूपस्थानम्। कौ0 अर्थ0 2/20/4 पृष्ठ 93

(ख) न्याय :

आचार्य कौटिल्य ने न्याय कार्य को मुख्य रूप से दो क्षेत्रों में विभाजित किया है। प्रथम क्षेत्र के अन्तर्गत मानव जीवन के पारस्परिक सम्पर्कों को समाविष्ट किया गया है। नागरिकों की परस्पर सम्पर्क–प्रक्रिया में होने वाले विवादों के मूल कारणों का पता लगाकर उनकी विवेचना करना तथा अपराधियों को उनके अपराध के अनुसार दण्ड देना इस क्षेत्र के अन्तर्गत समाहित किया गया है। इस क्षेत्र को आचार्य कौटिल्य ने *'व्यवहार'* की संज्ञा दी है। न्याय कार्य के द्वितीय क्षेत्र के अन्तर्गत मानव को विभिन्न राज्यकर्मियों, अधिकारियों, व्यवसायियों तथा भ्रष्ट एवं दुष्ट प्रकृति के लोगों के द्वारा होने वाले शोषण एवं पीड़न से बचाने की न्यायिक प्रक्रिया को रखा गया है। इस क्षेत्र को आचार्य कौटिल्य ने *'कण्टकशोधन'* की संज्ञा दी है।

(1) न्याय की 'व्यवहार' प्रक्रिया :

आचार्य कौटिल्य ने 'व्यवहार' नामक न्यायिक कार्य के अन्तर्गत स्त्री–पुरुष के धर्म की व्यवस्था, विवाह व्यवस्था, पुनर्विवाह व्यवस्था, स्त्री–पुरुष की द्वेषपूर्ण संबंध–व्यवस्था, दाय विभाग, अंशविभाग, पुत्र विभाग, वास्तु संबंधी विवाद, ऋण संबंधी विवाद, धरोहर संबंधी विवाद, दास तथा श्रमिक संबंधी विधान, साझेदारी संबंधी नियम, क्रय–विक्रय संबंधी नियम, मालकाना हक के बिना वस्तु–विक्रय संबंधी विवाद, मालकाना हक संबंधी विवाद, चोरी–डकैती–जोरजवर्दस्ती (साहस) संबंधी विवाद, गाली–गलौच (वाक्पारुष्य) संबंधी विवाद, झगड़ा तथा मारपीट (दण्डपारुष्य) सबंधी विवाद एवं द्यूत संबंधी विवाद आदि प्रकरण निर्धारित किए हैं।[277]

(2) न्याय की 'कण्टकशोधन' प्रक्रिया :

आचार्य कौटिल्य ने 'कण्टकशोधन' नामक न्यायिक कार्य के अन्तर्गत मुख्य रूप से तीन प्रकार के विषय समाहित किए हैं। प्रथम प्रकार के वे विषय हैं जिनमें राज्य के व्यवसायियों के शोषण से प्रजा की रक्षा संबंधी विभिन्न प्रकार के नियम आते हैं। द्वितीय प्रकार

---

277. विस्तृत विवरण हेतु कौटिलीय अर्थशास्त्र का 'धर्मस्थीय' नामक तृतीय अधिकरण देखें।

के विषयों में दुष्टजनों के उत्पीडन से प्रजा की रक्षा संबंधी नियम तथा तृतीय प्रकार के विषयों में राज्यकर्मियों के उत्पीड़न से प्रजा की रक्षा संबंधी नियमों को अन्तर्निहित किया गया है। इस संबंध में विशेष रूप से उल्लेखनीय तथ्य यह है कि अन्तिम दो प्रकार के विषयों में आचार्य कौटिल्य के द्वारा गुप्तचरों की तैनाती को विशेष महत्व दिया गया है। उनका स्पष्ट निर्देश है कि गुप्तचरों की व्यापक स्तर पर तैनाती करते हुए आपराधिक प्रवृत्ति के दुष्टजनों[278] तथा भ्रष्ट राज्यकर्मियों[279] को क्रमशः रंगे हाथों गिरफ्तार करवा देना चाहिए तथा उनका देश निष्कासन कर देना चाहिए। ताकि प्रजा का किसी भी प्रकार का शोषण एवं उत्पीडन न हो सके।

(3) न्यायालय तथा न्यायाधीश :

आचार्य कौटिल्य ने राजा को सर्वोच्च न्यायालय के रूप में मान्यता प्रदान की है। किसी भी राज्य के न्यायालय वहाँ के कानूनों पर आश्रित होते हैं। आचार्य कौटिल्य ने कानून के जो चार स्रोत– धर्म, व्यवहार, चरित्र तथा राजाज्ञा, माने हैं, उनमें राजाज्ञा को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है।[280] लेकिन इसका अर्थ यह भी नही है कि न्याय करने में राजा सर्वथा निरंकुश था। अपितु उसे धर्मपूर्वक निष्पक्ष न्याय करते हुए अपने पुत्र और शत्रु को समान रूप से दण्डित करना पड़ता था।[281] राज्य में अनेक 'धर्मस्थीय' तथा 'कण्टकशोधन' नामक न्यायालयों की स्थापना होती थी। जो अमात्य 'धर्मोपधा' नामक परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते थे उन्हें 'धर्मस्थ' तथा 'कण्टकशोधन' न्यायालयों में न्यायाधीश पद पर नियुक्त किया जाता था।[282] न्यायालयों की स्थापना के संबंध में आचार्य कौटिल्य का निर्देश है कि दो जनपदों के सीमास्थल पर, दस गाँवो के मुख्यालय (संग्रहण) पर, चार सौ गाँवो के मुख्यालय (द्रोणमुख) पर, तथा आठ सौ गाँवो के मुख्यालय (स्थानीय) पर न्यायालयों की स्थापना की जाना चाहिए। जिनमें अमात्य के गुणों से युक्त तीन–तीन न्यायाधीश नियुक्त हों।[283] न्यायाधीशों का यह कर्तव्य था कि वे

---

278. सत्रिप्रयोगादूर्ध्वं सिद्धव्यञ्जना. . . . . .योगसुरामत्तान् वा ग्राहयेयुः। कौ0 अर्थ0 4/80/5 पृष्ठ 364–66
279. समाहर्ता जनपदे. . . . . . दद्युर्दोषविशेषतः। कौ0 अर्थ0 4/79/4 पृष्ठ 361–63
280. शास्त्रं विप्रतिपद्येत . . . . पाठो हि नश्यति। कौ0 अर्थ0 3/56–57/1 पृष्ठ 259
281. राज्ञः स्वधर्मः स्वगार्य प्रजा. . . . . .यथादोषं समं धृतः। उपरोक्त
282. तत्र धर्मोपधाशुद्धान् धर्मस्थीयकण्टकशोधनेषु स्थापयेत्। कौ0 अर्थ0 1/5/9 पृष्ठ 26
283. धर्मस्थास्त्रयस्त्रयोऽमात्या. . . . .व्यावहारिकानर्थान् कुर्युः। कौ0 अर्थ0 3/56–57/1 पृष्ठ 255

निष्पक्ष, निश्छल एवं निष्कपट न्याय करते हुए जनता का विश्वास तथा लोकप्रियता अर्जित करें।[284] 'कण्टकशोधन' न्यायालयों के संबंध में आचार्य कौटिल्य का विशेष निर्देष है कि इनमें अमात्य के गुणों से युक्त 'प्रदेष्टा' नामक तीन तीन न्यायाधीश नियुक्त होना चाहिए।[285]

कौटिलीय न्यायिक प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि उसमें न्यायिक प्रक्रिया को सरलीकृत एवं विकेन्द्रीकृत करते हुए ग्रामीण जनता को सरल, सुलभ एवं त्वरित न्याय दिलाने हेतु गाँवो के बृद्धजनों तथा सामन्तों को भी न्यायिक अधिकार दिए गए थे। वही गाँवो के खेत–खलिहानों संबंधी विवादों का निपटारा करते थे।[286]

(ग) सुरक्षा :

आचार्य कौटिल्य का सुरक्षा संबंधी चिन्तन व्यापक एवं दूरदर्शी था। उन्होंने राजा और प्रजा दोनों की सुरक्षा को आवश्यक समझा है। क्योंकि उनकी दृष्टि में राजा तभी सुरक्षित रह सकता है जब प्रजा सुरक्षित हो। दूसरे शब्दों में, एक के असुरक्षित रहने पर दूसरे की सुरक्षा की गारण्टी नहीं ली जा सकती है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में राजा और प्रजा के जो सुरक्षा उपाय निर्दिष्ट किए गए हैं, उनका यहाँ संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करना ही हमारा अभीष्ट है।

(1) राजा के सुरक्षा उपाय :

आचार्य कौटिल्य का यह दृढ़ मन्तव्य है कि कोई भी राजा आन्तरिक तथा बाह्ययप खतरों से सुरक्षित रहकर ही अपने राज्य की रक्षा कर सकता है। इसलिए सर्वप्रथम राजा को चाहिए कि वह अपनी रानियों तथा पुत्रों से अपनी रक्षा करे।[287] रानियों से अपनी रक्षा के संबंध में राजा को निर्दिष्ट किया गया है कि वह रनिवास में अपनी रानी से अकेला कभी नहीं, अपितु किसी विश्वस्त वृद्ध परिचारिका के साथ मिले। क्योंकि ऐसे अनेक ऐतिहासिक प्रमाण हैं कि रानियों ने ही धोखा करके अपने राजाओ को मरवा डाला था।[288] आत्मरक्षा के द्वितीय उपाय के रूप में राजा को चाहिए कि वह सिर मुड़ी हुई या जटाधारी,

---

284. एवं कार्याणि धर्मस्थाः . . . . . . विश्वास्या लोकसम्प्रियाः। कौ0 अर्थ0 3/74–75/20 पृष्ठ 342
285. प्रदेष्टारस्त्रयस्त्रयोऽमात्याः कण्टकशोधनं कुर्युः। कौ0 अर्थ0 4/76/1 पृष्ठ 345
286. क्षेत्रविवादं सामन्तग्रामवृद्धाः कुर्युः। कौ0 अर्थ0 3/65/9 पृष्ठ 290
287. रक्षितो राजा राज्यं. . . . . पूर्वं दारेभ्यः पुत्रेभ्यश्च। कौ0 अर्थ0 1/12/16 पृष्ठ 53
288. अन्तर्गृहगतः. . . . . . तस्मादेतान्यास्पदानि परिहरेत्। कौ0 अर्थ0 1/15/19 पृष्ठ 67

धूर्त तथा वाहरी दासियों से अपनी रानियों का सम्पर्क न होने दे। रानियों के सगे सम्बन्धी भी उनसे प्रसव या बीमारी के अतिरिक्त और कभी न मिलने पायें।[289] इसके अतिरिक्त अन्तःपुर के सभी सेवक–सेविकाऐं अपने–अपने स्थान पर ही रहें; एक दूसरे के स्थान पर न जाने पायें। तथा अन्तःपुर का कोई भी व्यक्ति किसी बाहरी व्यक्ति से न मिलने पायें। अन्तःपुर में आने जाने वाली सभी वस्तुओं पर पैनी नज़र रखी जाय तथा प्रत्येक वस्तु पर राजकीय मुहर लगाई जाय।[290]

अपने पुत्रों से आत्मरक्षा करने के लिए राजा को सलाह दी गई है कि वह अपने राजपुत्रों पर जन्म से ही कड़ी निगरानी रखे। क्योंकि केंकडे की भाँति राजपुत्र भी कभी कभी अपने ही पिता के भक्षक बन जाते हैं।[291] ऐसा तभी संभव होता है जब किसी राजपुत्र में पितृ भक्ति जैसे अच्छे संस्कार न हों। इस संबंध में कौटिल्य का मन्तव्य है कि जैसे घुन लगी लकड़ी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है उसी प्रकार अशिक्षित/कुसंस्कारित राजपुत्रों का कुल बिना युद्ध आदि के ही नष्ट हो जाता है। इसलिए राजा को चाहिए कि जब रानी ऋतुमती हो तो भावी सन्तति के ऐश्वर्य, विद्या, बुद्धि के निमित्त ऋत्विक, इन्द्र तथा वृहस्पति आदि देवताओं के लिए हविदान किया जाय। जब महारानी गर्भवती हो तो शिशु–चिकित्सा विशेषज्ञों के निर्देशानुसार उसके गर्भ की पुष्टि तथा सुखद प्रजनन हेतु प्रयत्न करें। प्रसव हो जाने पर विद्वान पुरोहित विधिपूर्वक उस राजपुत्र का संस्कार करें। जब वह समझने योग्य हो जाये तो विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ विद्वान उसको शिक्षा प्रदान करें।[292]

यदि किसी राजपुत्र का युवा मन परस्त्री के लिए बेचैन हो उठता है तो उस समय उसके संरक्षकों को चाहिए कि आर्यावेश धारण करने वाली अपवित्र, तथा घृणित स्त्रियों को रात्रि के एकान्त में राजकुमार के निकट भेजकर उसके मन में ऐसी घृणा तथा खिन्नता पैदा की जाय कि परस्त्री की चाह से उसका मन सर्वथा विरक्त हो जाये।[293] यदि वह मद्यपान

---

289. मुण्डजटिलकुहक. . . . . गर्भव्याधिसंस्थाभ्यः। कौ0 अर्थ0 1/15/19 पृष्ठ 67
290. स्वभूमौ च वसेत् सर्वः . . . . . .मुद्रासंक्रान्तभूमिकम्। उपरोक्त पृष्ठ 68
291. पुत्ररक्षणं जन्मप्रभृति. . . . .जनकभक्षां राजपुत्राः। कौ0 अर्थ0 1/12/16 पृष्ठ 53
292. काष्ठमिव हि घृणजग्धं. . . . . समर्थ तद्विदो विनयेयुः। उपरोक्त पृष्ठ 54–55
293. यौवनोत्सेकात् परस्त्रीषु . . . . . रात्रावुद्वेजयेयुः। उपरोक्त पृष्ठ 56

की इच्छा करने लगे तो मद्य में कोई ऐसा पदार्थ मिलाकर उसे दिया जाय जिससे मद्य के प्रति उसकी हमेशा के लिए अरुचि हो जाये।[294] यदि वह जुआ खेलने की इच्छा करने लगे तो छली–कपटी लोगों के साथ बैठाकर उसको इतना उद्विग्न किया जाय कि जुआ का वह कभी नाम भी न ले।[295] यदि वह शिकार खेलने की इच्छा करे तो कपटवेश धारण करने वाले राजपुरुष उसको उद्विग्न करके शिकार के प्रति विरक्ति पैदा कर दें।[296]

यदि कोई राजपुत्र अपने पिता पर ही आक्रमण करने की सोचने लगे तो पहले तो उसे प्रोत्साहित किया जाय। किन्तु ऐन वक्त पर उससे कहे, 'देखो, राजा के साथ कभी द्वेष नहीं करना चाहिए। यदि तुम अपनी इस योजना में असफल हो गए तो तुम्हारी मृत्यु अवश्यम्भावी है; और यदि जीत भी गए तो पितृघातक होने के कारण तुम्हे घोर नरक भोगना पडेगा। सारी प्रजा तुम्हे लांछित करेगी और कोई असम्भव नहीं कि सारी प्रजा एकजुट होकर तुम्हें मार डाले। इसलिए तुम्हें ऐसा भयंकर पापकर्म नहीं करना चाहिए।[297]

कौटिलीय राजदर्शन में राजा की दिनचर्या में पल–पल तथा पग–पग पर उसकी सुरक्षा का ध्यान रखा गया है। प्रातःकाल राजा के विस्तर से उठते ही धनुष–बाण लिए स्त्रियाँ उसे अपने सुरक्षा घेरे में ले लेती थीं। शयनकक्ष से उठकर राजा जब दूसरे कक्ष में प्रवेश करता था तो वहाँ कुर्ता–पगडी धारण किए हुए नपुंसक तथा दूसरे सेवक राजा की देखरेख के लिए उपस्थित रहते थे। तीसरे कक्ष में कुबड़े, बौने तथा निम्न जाति के परिजन उसकी देखरेख करते थे। चौथे कक्ष में मंत्रियों, संबंधियों तथा हाथ में भाला धारण करने वाले द्वारपालों के द्वारा उसकी सुरक्षा का ध्यान रखा जाता था।[298] इसके अतिरिक्त योग्य तथा विश्वस्त अंगरक्षकों तथा आन्तरिक सेना द्वारा राजा तथा उसके रनिवास की पूरी सुरक्षा जाती थी।[299]

खान–पान के संबंध में भी राजा की सुरक्षा के प्रति बडी चौकसी वरती जाती थी। पाकशाला प्रभारी किसी एकान्त स्थान में भोज्य पदार्थो का स्वाद ले लेकर उन्हें सुस्वादु तथा

294. मद्यकामं योगपानेनोद्वेजयेयुः। कौ0 अर्थ0 1/12/16 पृष्ठ 56
295. द्यूतकामं कापटिकैः पुरुषैरुद्वेजयेयुः। उपरोक्त
296. मृगयाकामं प्रतिरोधकव्यञ्जनैस्त्रासयेयुः। उपरोक्त
297. पितरि विक्रमबुद्धिं . . . . .प्रजाभिरेकलोष्टवधश्चेति। उपरोक्त
298. शयनादुत्थितः. . . . . .सम्बन्धिभिर्दौवारिकैश्च प्रासपाणिभिः। को0 अर्थ0 1/16/20 पृष्ठ 69
299. पितृपैतामहं. . . . . .राजानमन्तःपुरं च रक्षेत्। उपरोक्त

सुरक्षापूर्वक तैयार करवाता था। भोजन तैयार हो जाने पर सुरक्षा की दृष्टि से राजा पहले अग्नि तथा पक्षियों को वह भोजन खिलाता था; उसके बाद वह स्वयं भोजन करता था।[300] यदि उस भोजन में विष मिला होगा तो उसे अग्नि में डालने से अग्नि और लपटें– दोनों नीले रंग के हो जाते हैं तथा उसमें चट–चट की आवाज आती है। उसी भोजन को यदि पक्षी खायेंगे तो वे मर जायेंगे।[301] इसी तरह दाल, सब्जी, घी, तेल, दूध, मदिरा, जल, दही, शहद, आम, सूखे हुए भोज्य पदार्थ (Dry Food), ओढने–विछाने के कपडे तथा सोने–चाँदी एवं स्फटिक मणि आदि धातुओं पर यदि विष का प्रयोग किया गया होगा तो उनकी अलग–अलग सूक्ष्म पहचान–विधियाँ निर्दिष्ट की गई हैं।[302] इसी क्रम में विष देने वाले के वाचिक, कायिक तथा मानसिक लक्षणों के द्वारा उसकी भी पहचान कर ली जाती थी।[303] राजा की सुरक्षा की दृष्टि से यह प्राविधान किया गया था कि विषविद्या–विशेषज्ञ तथा वैद्य लोग राजा के समीप अवश्य रहें।[304] उनका यह दायित्व था कि वे औषधालय में स्वयं खाकर परखी गई औषधि को राजा के सामने लाकर उसका थोडा सा हिस्सा उसे पकाने–पीसने वालों को खिलाकर तथा कुछ हिस्सा स्वयं खाने के बाद फिर उसे वे राजा को दें। यही नियम मदिरा तथा जल आदि अन्य पेय पदार्थों के साथ था।[305]

राजा को यह निर्देश था कि वह दर्शनार्थ आए हुए किसी सिद्ध या तपस्वी से मिलते समय अपने सशस्त्र पुरुषों को साथ में अवश्य रखे।[306] पुरुषों की भीड में उसका जाना सर्वथा निषिद्ध था।[307] एक विजिगीषु राजा जैसे अपने गुप्तचरों द्वारा दूसरों पर नजर रखता है, उसी प्रकार वह अपने लिए दूसरो के द्वारा उत्पन्न किए गए खतरों से स्वयं की भी रक्षा करे।[308]

---

300. गुप्ते देशे माहानसिकः. . . . . पूर्वमग्नये वयोभ्यश्च बलिं कृत्वा। कौ0 अर्थ0 1/16/20 पृष्ठ 69
301. अग्नेर्ज्वालाधूमनीलता शब्दस्फोटनं च विषयुक्तस्य, वयसां विपत्तिश्च। उपरोक्त पृष्ठ 70
302. व्यञ्जनानामाशुशुष्कत्वं. . . . . . इति विषयुक्तलिङ्गानि। उपरोक्त
303. विषप्रदस्य तु. . . . . . . स्वभूमौ चानवस्थानमिति। उपरोक्त पृष्ठ 71
304. तस्मादस्य जाङ्गलीविदो भिषजश्चासन्नाः स्युः। उपरोक्त
305. भिषग्भैषज्यागारात्. . . . . . . पानं पानीयं चौषधेन व्याख्यातम्। उपरोक्त
306. आप्तशस्त्रग्राहाधिष्ठितः सिद्धतापसं पश्येत्। उपरोक्त पृष्ठ 72
307. न पुरुषसम्बाधमवगाहेत। उपरोक्त पृष्ठ 73
308. यथा च . . . . रक्षेदात्मानमात्मवान्। उपरोक्त

(2) राज्य के सुरक्षा उपाय :

आचार्य कौटिल्य ने राज्य को 'जनपद' की संज्ञा देते हुए उसकी सुरक्षा के प्रति गहन चिन्तन मनन किया है। 'समाहर्ता' को राज्य की सुरक्षा व्यवस्था का गुरुतर दायित्व सौंपतें हुए निर्दिष्ट किया गया है कि वह निरन्तर उद्यमशील रहता हुआ 'जनपद' की सुरक्षा की चिन्ता करे तथा उसके अधीनस्थ कार्य करने वाले विभिन्न गुप्तचर तथा उनके विभिन्न संघ भी 'जनपद' के सुरक्षा–प्रबन्ध में तत्पर रहें।[309] गृहस्थ वेष में रहने वाले गुप्तचरों के माध्यम से राज्य में घटित होने वाली सभी अनर्थकारी गतिविधियों की जानकारी 'समाहर्ता' को यथासमय मिलती रहना चाहिए।[310] व्यापारी के वेष में रहने वाले गुप्तचरों के माध्यम से उसे इस बात की पूर्ण जानकारी मिलती रहना चाहिए कि व्यापारी लोग सभी प्रकार के टैक्स अदा कर रहे हैं अथवा नहीं।[311] तपस्वी के वेष में रहने वाले गुप्तचर वहाँ के किसानों, ग्वालों, व्यापारियों तथा विभागीय अध्यक्षों की ईमानदारी तथा बेईमानी का पता लगाते रहें।[312] उन तापस गुप्तचरों के वे शिष्य जो पुराने चोरों के वेष में कार्य करते हैं, वे देवालयों, चौराहों, निर्जन स्थानों, तालाबों, नदियों तथा कुओं के समीप स्थित जलाशयों, तीर्थस्थानों, आश्रमों, जंगलों, पहाड़ों तथा घने जंगलों आदि में ठहर कर वहाँ शत्रु के वीर पुरुषों (गुप्तचरो) तथा चोरों के आने, जाने तथा रुकने के प्रयोजनों का पता लगाते रहें।[313]

इसके अतिरिक्त आचार्य कौटिल्य ने राज्य के ऊपर आने वाली सम्भावित आपदाओं को अपने संज्ञान में लेते हुए उनके निवारण उपाय भी समझाए हैं। ये आपदाऐं मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है– बाह्य आपदाऐं तथा आन्तरिक आपदाऐं। आचार्य कौटिल्य के अनुसार उक्त दोनों प्रकार की राज्य–आपदाऐं चार तरह से उत्पन्न होती हैं। बाह्य लोगों के द्वारा उत्पन्न तथा आन्तरिक लोगों के द्वारा प्रोत्साहित आपदा प्रथम प्रकार की

---

309. समाहर्ता जनपदं . . . . . . संस्थाश्चान्याः स्वयोनयः। कौ0 अर्थ0 2/53–54/35 पृष्ठ 244
310. समाहर्तृप्रदिष्टाश्च. . . . . . .चारप्रचारं च विद्युः। उपरोक्त पृष्ठ 243
311. एवं वैदेहकव्यञ्जनाः . . . . .भक्तपण्यागारप्रमाणं विद्युः। उपरोक्त
312. एवं समाहर्तृप्रदिष्टाः. . . . . .च शौचाशौचं विद्युः। उपरोक्त
313. पुराणचोरव्यञ्जनाः. . . . . .प्रयोजनान्युपलमेरन्। उपरोक्त

आपदा है। द्वितीय आपदा आन्तरिक लोगों के द्वारा उत्पन्न तथा बाह्य लोगों के द्वारा प्रोत्साहित होती है। इसी प्रकार आन्तरिक लोगों के द्वारा उत्पन्न तथा उन्हीं के द्वारा प्रोत्साहित आपदा चौथे प्रकार की आपदा होती है।[314] बाह्य आपदा की अपेक्षा आन्तरिक आपदा घर में छिपे सर्प की तरह अत्यधिक अनर्थकारी होती है। इसलिए सबसे पहले उसी का प्रतीकार करना चाहिए।[315] आचार्य कौटिल्य के अनुसार आभ्यन्तर कोप एवं बाह्य कोप– दोनों के शमन–दमन हेतु राजा को कोश तथा दण्ड (सेना) अपने ही हाथ में रखना चाहिए।[316] उपरोक्त चार प्रकार की आपदाओं में उत्तरवर्ती की अपेक्षा पूर्ववर्ती आपदा लघु होती है। फिर भी जिस आपदा के पीछे बलशाली व्यक्ति का हाथ हो उसका प्रतीकार पहले करना चाहिए और जिसके पीछे निर्बल व्यक्ति का हाथ हो उस बड़ी आपदा को भी लघु ही समझना चाहिए।[317]

आचार्य कौटिल्य का स्पष्ट मत है कि षाड्गुण्य (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय, तथा द्वैधीभाव) नीति का समुचित उपयोग न करना ही 'अपनय' कहलाता है तथा इसी 'अपनय' के कारण उपरोक्त सभी राज्य आपदाऐं उत्पन्न होती हैं।[318] इसलिए इन आपदाओं के निवारण हेतु षाड्गुण्य नीति तथा उपायचतुष्टय (साम, दान, भेद, दण्ड) का समुचित प्रयोग करना चाहिए।[319]

(3) प्रजा के सुरक्षा उपाय :

आचार्य कौटिल्य के समग्र चिन्तन में प्रजाहित को सर्वोपरि रखा गया है। उनका स्पष्ट मत है कि प्रजा के सुख में ही राजा का सुख तथा प्रजा के हित में ही राजा का हित निहित है।[320] प्रजा हित की कसौटी उसकी सुरक्षा है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्रजा के अनेकविध सुरक्षा उपायों का उल्लेख है; जिनकी संक्षिप्त विवेचना यहाँ प्रस्तुत है।

---

314. बाह्योत्पत्तिरभ्यन्तर प्रतिजापा . . . . . इत्यापदः। कौ0 अर्थ0 9/143/5 पृष्ठ 613
315. एतासां चतसृणामापदाम. . . . . . . .इत्युक्तं पुरस्तात्। उपरोक्त पृष्ठ 616
316. राज्ञः आभ्यन्तरो बाह्यो वा . . . . . .दण्डशक्तिमात्मसंस्थां कुर्वीत। कौ0 अर्थ0 8/128/2 पृष्ठ 562
317. पूर्वां पूर्वां . . . . .गुर्वीं लध्वीं विपर्यये। कौ0 अर्थ0 9/143/5 पृष्ठ616
318 सन्ध्यादीनामयथोद्देशावस्थापनमपनयः। तस्मादापदः सम्भवन्ति। उपरोक्त पृष्ठ 613
319. विवरण के लिए देंखे-- कौ0 अर्थ0 का 'बाह्याभ्यन्तराश्चापदः' नामक अध्याय (9/143/5 पृष्ठ 613–16)
320. प्रजासुखे सुखं राज्ञः . . . . . . .तु प्रियं हितम्। कौ0 अर्थ0 1/14/18, पृष्ठ 64

(अ) शिल्पकारों से प्रजा की रक्षा :

समाज में अनेक तत्व प्रजा को काँटो की तरह सताने का प्रयास करते हैं। इन समाज विरोधी तत्वों के प्रति सजग रहते हुए आचार्य कौटिल्य ने उनके निवारण उपाय 'कण्टकशोधन' नामक चतुर्थ अधिकरण में निर्दिष्ट किए हैं। उन्होंनें सर्वप्रथम शिल्पकारों को अपने संज्ञान में लेते हुए उनके द्वारा होने वाला प्रजा-पीड़न तथा उसके सुरक्षा उपाय इंगित किए हैं। जो शिल्पकार निर्धारित समय पर काम पर उपस्थित न हों उनका चौथाई वेतन काटने तथा उन पर उससे दुगुना जुरमाना किए जाने का प्राविधान था। यदि किसी कारीगर से कोई कार्य बिगड़ जाता था तो उसे उसकी क्षतिपूर्ति करना पडती थी।[321] इसी प्रकार जुलाहे[322] धोबी[323], दर्जी[324], सुनार[325], लुहार[326], वैद्य[327], नट-नर्तक[328], आदि अनेक शिल्पकारों के शिल्प-व्यवसाय से संबंधित विस्तृत नियम बनाये गये थे; जिनका पालन करना प्रत्येक शिल्पकार के लिए आवश्यक था। इन नियमों का उल्लंघन करने वाले शिल्पकार को दण्डित किया जाता था। इस प्रकार शिल्पकारों से प्रजा की सुरक्षा के पर्याप्त प्राविधान किए गए थे।

(ब) व्यापारियों से प्रजा की रक्षा :

व्यापारियों के द्वारा व्यापारिक गड़बड़ी करके ग्राहक के रूप में जनता का शोषण किया जाना हर युग की एक सामान्य बात है। लेकिन आचार्य कौटिल्य ने जनता को इससे मुक्ति दिलाने के लिए प्रशंसनीय प्रयास किया है। व्यापारियों के द्वारा सर्वाधिक गड़बड़ी विक्रेय वस्तुओं की माप-तौल में की जाती है। इसलिए इस संबंध में यह प्राविधान किया गया था कि हाट-अध्यक्ष (संस्थाध्यक्ष) तराजू तथा बाट-माप के वर्तनों का समय समय पर सम्यक् निरीक्षण करता रहे ताकि माप-तौल में व्यापारी लोग कोई गड़बड़ी न कर सकें।[329] माप-तौल

---

321. कालातिपातने पादहीनं. . . . . . . वेतननाशस्तद्द्विगुणश्च दण्डः। कौ0 अर्थ0 4/76/1 पृष्ठ 345
322. तन्तुवाया दशैकादशिकं. . . . . . .विहननच्छेदो रोमच्छेदश्च। उपरोक्त पृष्ठ 346
323. रजकाः काष्ठफलक. . . . . द्वितीये पञ्चभागः। तेनोत्तरं व्याख्यातम्। उपरोक्त पृष्ठ 346-47
324. रजकैस्तुन्नवाया व्याख्याताः। उपरोक्त पृष्ठ 347
325. सुवर्णकाराणाम्. . . . . . . शिक्षाविशेषेण द्विगुणा वेतनवृद्धिः। तेनोत्तरं व्याख्यातम्। उपरोक्त पृष्ठ 347-48
326. ताम्रवृत्तकंस. . . . . काकणीद्वयं चास्य पलवेतनम्। तेनोत्तरं व्याख्यातम्। उपरोक्त पृष्ठ 348-49
327. भिषजः प्राणाबाधिकम्. . . . . .मर्मवेधवैगुण्यकरणे दण्डपारुष्यं विद्यात्। उपरोक्त पृष्ठ 350
328. कुशीलवा वर्षारात्रिम्. . . . . .तावन्तः शिफाप्रहारा दण्डाः। उपरोक्त पृष्ठ 350-51
329. संस्थाध्यक्षः . . . . .पौतवापचारात्। कौ0 अर्थ0 4/77/2 पृष्ठ 352

में गड़बड़ी पाये जाने पर व्यापारियों को समुचित दण्ड का प्राविधान था।[330] जो व्यापारी घटिया माल को बढ़िया कहकर रखता या बेचता है उस पर उस वस्तु की कीमत का आठ गुना जुरमाना किया जाता था।[331] नकली माल को असली बताकर बेचने वाला व्यापारी उस वस्तु के मूल्य का 100 गुना तक अर्थदण्ड अदा करता था।[332] संगठन बनाकर जमाखोरी और कालाबाजारी करने वाले व्यापारियों को एक-एक हजार पण का अर्थदण्ड दिया जाता था।[333] वस्तुओं का सञ्चय करने के लिए हाट-अध्यक्ष (संस्थाध्यक्ष) की अनुमति लेना पड़ती थी। बिना अनुमति के संग्रह की गई वस्तुओं को हाट-अध्यक्ष जब्त कर लेता था।[334] हाट-अध्यक्ष द्वारा वस्तुओं की विक्री व्यवस्था इस तरह की जाती थी जिससे प्रजा का उपकार होता रहे।[335] उसके द्वारा दूसरे देश तथा दूसरे समय में उत्पन्न होने वाली वस्तुओं का नियोजन मूल्य, उत्पादन लागत, उत्पादन शुल्क, व्याज, भाडा और अन्य व्ययों की संगणना करते हुए उन वस्तुओं का उचित मूल्य निर्धारित किया जाता था।[336] इस प्रकार कौटिल्य काल में मुक्त बाजार के स्थान पर नियंत्रित बाजार की अवधारणा प्रचलित थी। जिसके अन्तर्गत व्यापारियों से प्रजा की यथेष्ट सुरक्षा सम्भव हो पाती थी।

(स) दैवी-आपदाओं से प्रजा की रक्षा :

आचार्य कौटिल्य ने आठ प्रकार की दैवी-आपदाओं- अग्नि, जल, व्याधि, दुर्भिक्ष, चूहे, व्याघ्र, सर्प तथा राक्षस, से प्रजा की सुरक्षा के पर्याप्त उपाय सुझाये हैं। कौटिलीय अर्थशास्त्र में दैवी-आपदाओं के प्रतीकार हेतु एक स्वतंत्र अध्याय 'उपनिपातप्रतीकारः'[337] प्रस्थापित किया गया है। इनमें सर्वप्रथम अग्नि-आपदा को गम्भीरता से लेते हुए आचार्य कौटिल्य ने अग्निशमन के उपाय करना प्रत्येक गृहस्वामी तथा किरायेदार का एक अनिवार्य

---

330. परिमाणीद्रोणयोः. . . . . . .तुलामानविशेषाणामतोऽन्येषामनुमानं कुर्यात। कौ0 अर्थ0 4/77/2 पृष्ठ 352
331. काष्ठलोहमणिमयं. . . . . .नयतों मूल्याष्टगुणों दण्डः। उपरोक्त पृष्ठ 353
332. सारमाण्डमित्यसारभाण्डं. . . . द्विपणमूल्यं द्विशतः। उपरोक्त
333. वैदेहकानां वा सम्भूय. . . . . . .वा सहस्रं दण्डः। उपरोक्त
334. तेन धान्यपण्य. . . . . . .पण्याध्यक्षो गृह्णीयात्। उपरोक्त पृष्ठ 354
335. तेन धान्यपण्यविक्रये व्यवहरेतानुग्रहेण प्रजानाम्। उपरोक्त
336. देशकालान्तरितानां. . . . .स्थाययेदर्घमर्घवित्। उपरोक्त पृष्ठ 355
337. कौ0 अर्थ0 4/78/3 पृष्ठ 356-60

कर्तव्य / दायित्व माना है। जिसका निर्वाह न करना उसके अनुसार एक दण्डनीय अपराध है।[338] इतना ही नहीं, अग्निजनित आपदा के प्रति सभी का सावधान रहना आवश्यक है। इस संबंध में यदि कोई असावधानी बरतता है तो वह एक गम्भीर दण्डनीय अपराध होता है।[339]

अग्नि जनित आपदा प्रायः भोजन बनाते समय होने वाली असावधानी से उत्पन्न हुआ करती है। प्राचीन काल में, अधिकांशतः आज भी, ग्रामीण जनता के घर–द्वार चूँकि लकडी व घासफूस के बने होते हैं, इसलिए वे ग्रीष्मऋतु में जल्दी ही आग पकड लेते हैं। अतः कौटिल्य ने आग से रक्षा का एक सरल उपाय यह बताया है कि ग्रामवासी ग्रीष्मऋतु में भोजन बनाने की व्यवस्था घर से बाहर करें।[340] इसके अतिरिक्त अग्निशमन के अनेक एहतियाती उपाय भी निर्दिष्ट किए गए हैं। जैसे एक एहतियाती उपाय के रूप में राजा को ग्रीष्म ऋतु में मध्यान्ह के चार भागों में आग जलाना निषिद्ध कर देना चाहिए तथा जो भी इस राजाज्ञा का उल्लंघन करे उसे दण्डित किया जाना चाहिए।[341] एक अन्य एहतियात के रूप में अग्निशमन हेतु लोगों को ग्रीष्म ऋतु में अपने घर के सामने पानी से भरे घडे, पानी से भरी नाद, सीढी, कुल्हाड़ा, सूप, छाज, कौंचा, फूसा आदि को निकालने के लिए लम्बा लट्ठा तथा मशक आदि आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था करके रखना चाहिए। जो लोग यह व्यवस्था करके न रखें उन्हें दण्डित किया जाना चाहिए।[342]

इसके अतिरिक्त ग्रीष्म ऋतु में घासफूस तथा चटाई से बनी छतों को हटा देना चाहिए।[343] सुनार और लुहार जैसे अग्निजीवी लोगों को किसी एक ही जगह में बसाया जाना चाहिए।[344] गृहस्वामियों को रात में इधर–उधर न सोकर अपने घर के दरवाजे पर ही सोना चाहिए।[345] गलियों, बाजारों, नगर के मुख्य द्वारों, खजानों, कोष्ठागारों, गजशालाओं और अश्वशालाओं में पानी से भरे एक–एक हजार घड़ों का हर समय प्रबन्ध रहना चाहिए।[346]

338. प्रदीप्तमनभिधावतो गृहस्वामिनो द्वादशपणो दण्डः। कौ0 अर्थ0 2/55/36 पृष्ठ 247
339. प्रमादाद्दीप्तेषु चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः। उपरोक्त
340. ग्रीष्मे बहिरधिश्रयणं ग्रामाः कुर्युः। कौ0 अर्थ0 4/78/3 पृष्ठ 356
341. अग्निप्रतीकारं च ग्रीष्मे मध्यमयोरह्नश्चतुर्भागयोः। अष्टभागोऽग्निदण्डः। कौ0अर्थ0 2/55/36 पृष्ठ 246
342. कुम्भद्रोणीनिःश्रेणीपरशुशूर्पाङ्कुशकचग्रहणीदृतीनां चाकरणे। उपरोक्त पृष्ठ 247
343. तृणकटच्छन्नान्यपनयेत्। उपरोक्त
344. अग्निजीविनं एकस्थानं वासयेत्। उपरोक्त
345. स्वगृहद्वारेषु गृहस्वामिनो बसेयुरसम्पातिनो रात्रौ। उपरोक्त
346. रथ्यासु कुटब्रजाः सहस्रं तिष्ठेयुः, चतुष्पथद्वारराजपरिग्रहेषु च। उपरोक्त

आचार्य कौटिल्य के अनुसार मकान में आग लगाने वाला यदि पकड़ लिया जाये तो उसे प्राणदण्ड दिया जाना चाहिए।[347]

कौटिलीय अर्थशास्त्र में जल–आपदा के सुरक्षा उपाय भी निर्दिष्ट किए गए हैं। जल–आपदा निवारणार्थ आचार्य कौटिल्य का निर्देश है कि नदी किनारे बसे हुए जल–बहुल प्रदेश के ग्रामवासियों को चाहिए कि वर्षा ऋतु की रातों में वे जल–तट को छोड़कर कहीं दूर जा बसें; तथा लकड़ी, बाँस के बेड़े और नाव आदि साधन हर समय वे संग्रह करके रखें।[348] नदी के प्रवाह में बहते/डूबते हुए आदमी को तुम्बी, मशक, तमेड़ तथा लकड़ी के बेड़े से बचाया जाय। जो व्यक्ति डूबते हुए आदमी को बचाने का प्रयत्न नहीं करता है, उसे आचार्य कौटिल्य ने एक दण्डनीय अपराधी घोषित किया है।[349] मंत्रवेत्ता तथा अथर्ववेद के ज्ञाताओं से अतिवृष्टि की शान्ति के लिए जप, होम, यज्ञ आदि अनुष्ठान कराये जायें।[350]

व्याधि-आपदा पर विचार करते समय आचार्य कौटिल्य ने मानव रोगों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है– कृत्रिम, अकृत्रिम तथा संक्रामक बीमारियाँ। औषधियों तथा मंत्रो का घातक प्रयोग करके शत्रु–पक्ष में जो बीमारियाँ जानबूझकर उत्पन्न की जाती है, वे कृत्रिम बीमारियाँ कहलाती हैं। इनका विस्तृत विवरण कौटिलीय अर्थशास्त्र के 'औपनिषदिक' नामक चौदहवें अधिकरण के 'प्रलम्भने भैषज्यमन्त्रप्रयोगः' नामक तृतीय अध्याय में उपलब्ध है। इसके तुरन्त बाद 'स्वबलोपघातप्रतीकारः' नामक चतुर्थ अध्याय में वह इन कृत्रिम बीमारियों का प्रतीकार भी विस्तारपूर्वक निर्दिष्ट करता है। ताकि शत्रु–पक्ष द्वारा विजिगीषु राजा के स्वपक्ष में उत्पन्न इन कृत्रिम बीमारियों को सरलतापूर्वक दूर किया जा सके। इसलिए आचार्य कौटिल्य का निर्देश है कि 'औपनिषदिक' नामक अधिकरण में निर्दिष्ट उपायों द्वारा कृत्रिम बीमारियों का निवारण किया जाय।[351]

---

347. प्रादीपिकोऽग्निना बध्यः। कौ0 अर्थ0 2/55/36 पृष्ठ 247
348. वर्षारात्रमनूपग्रामाः पूरवेलामुत्सृज्य वसेयुः। काष्ठवेणुनावश्चावगृह्णीयुः। कौ0 अर्थ0 4/78/3 पृष्ठ 356
349. उह्यमानमलाबूदृति. . . . . .अनभिसरतां द्वाद्वशपणो दण्डः। उपरोक्त
350. मायायोगविदो वेदविदो वर्षमभिचरेयुः। उपरोक्त पृष्ठ 357
351. व्याधिभयमौपनिषदिकैः प्रतीकारैः प्रतिकुर्युः। उपरोक्त

मानव शरीर में जो बीमारियाँ आहर विहार की विकृति के कारण प्रकृति–प्रदत्त / स्वतः जनित होती है, वे अकृत्रिम बीमारियाँ कहलाती हैं। इनके निवारणार्थ आचार्य कौटिल्य ने दो उपाय निर्दिष्ट किए हैं– (अ) वैद्यों द्वारा की जाने वाली चिकित्सा तथा (आ) सिद्ध पुरुषों तथा तपस्वियों द्वारा कराये जाने वाले शान्तिकर्म, व्रत, उपवास तथा प्रायश्चित्त आदि अनुष्ठान।[352] जो बीमारियाँ संक्रमित होती हुई एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलती हैं, वे संक्रामक बीमारियाँ कहलाती हैं। जैसे– हैजा, प्लेग, चेचक आदि। इनके उपचार हेतु अकृत्रिम बीमारियों के उपरोक्त उपायों के साथ–साथ गंगा स्नान, समुद्र पूजन, शमशान में गोदोहन, चावल तथा सत्तू से बने सिर रहित पुतले का शमशान में दाह तथा रात्रि जागरण करके ग्राम देवता की पूजा आदि उपायों का उल्लेख कौटिलीय अर्थशास्त्र में किया गया है।[353]

दुर्भिक्ष–आपदा से प्रजा की रक्षा हेतु आचार्य कौटिल्य ने राजा को निर्दिष्ट किया है कि उसे अपने राज्य में दुर्भिक्ष पड़ने पर बीज तथा अन्न का वितरण करके जनता पर अनुग्रह करना चाहिए। अथवा दुर्भिक्ष–पीड़ितों को काम के बदले अनाज देकर उनसे दुर्ग या सेतु आदि का निर्माण कराया जाना चाहिए।[354] काम करने में असमर्थ लोगों को केवल अन्न देना चाहिए; अथवा उनको समीप के किसी दूसरे दुर्भिक्ष रहित देश तक पहुँचाने का प्रबन्ध करना चाहिए; अथवा दुर्भिक्ष निवारण हेतु मित्र राजा से सहायता लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त अपने देश के धन सम्पन्न व्यक्तियों पर विशेष 'कर' लगाकर तथा उनसे एकमुश्त रकम लेकर इस आपदा का प्रतीकार करना चाहिए।[355] दुर्भिक्ष निवारण का एक उपाय यह भी है कि समुद्र के किनारे अथवा बडे–बडे तालाबों के पास जाकर बसा जाय; जहाँ पर धान्य, शाक, मूल, फल आदि की खेती की जा सके, अथवा मृग, पशु, पक्षी, व्याघ्र, और मछली आदि का शिकार कर प्राण रक्षा की जा सके।[356]

---

352. औषधैश्चिकित्सकाः शान्तिप्रायश्चित्तैर्वा सिद्धतापसाः। कौ० अर्थ० 4 / 78 / 3 पृष्ठ 357
353. तेन मरको व्याख्यातः. . . . . कबन्धदहनं देवरात्रिं च कारयेत्। उपरोक्त
354. दुर्भिक्षे राजा वीजभक्तोपग्रहं. . . . . . वा भक्तानुग्रहेण। कौ० अर्थ० 4 / 78 / 3 पृष्ठ 357
355. भक्तसंविभागं वा. . . . . . कर्शनं वमनं वा कुर्यात्। उपरोक्त
356. समुद्रसरस्तटाकानि वा . . . . . .मृगपशुपक्षिव्यालमत्स्यारम्भान वा। उपरोक्त पृष्ठ 358

जब किसी देश में चूहो की संख्या अधिक बढ जाती है तथा वे व्यापक स्तर पर फसलों तथा खाद्यान्न आदि को क्षति पहुँचाते हैं तो उसे मूषिक–आपदा कहते हैं। जिसके निवारण हेतु आचार्य कौटिल्य का अभिमत है कि चूहों का उत्पात बढ़ जाने पर जगह जगह पालतू बिल्ली और नेवले छोड दिए जायें। ताकि वे चूहों को नष्ट कर सकें। इस आपदा निवारण हेतु बिल्लियों और नेवलों की महत्ता को अंगीकार करते हुए आचार्य कौटिल्य इनको पकड़ना अथवा मारना निषिद्ध करता है तथा ऐसा करने वाले को एक दण्डनीय अपराधी घोषित करता है।[357] इतना ही नहीं, वह इनकी सुरक्षा–संरक्षा के प्रति इतना अधिक सजग है कि वह बडी दूरदर्शिता के साथ कुत्तों को रोककर अपने नियंत्रण में रखने का निर्देश देता है तथा ऐसा न करने वाले को वह एक दण्डनीय अपराधी घोषित करता है।[358] क्योंकि वह जानता है कि कुत्ता और बिल्ली परस्पर पैतृक शत्रु होते हैं तथा कुत्ते देखते ही बिल्लियों को मार देते हैं। इसलिए बिल्लियों को सुरक्षित रखने के लिए कुत्तों को नियंत्रण में रखना नितान्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त चूहों के प्रतीकार के लिए आचार्य कौटिल्य कुछ अन्य उपाय भी देता है। उसके अनुसार सेंहुड़ के दूध में सने हुए अनाज को अथवा कुछ विषैले रसायनों से मिले हुए अनाज को इधर–उधर विखेर देना चाहिए।[359] ताकि चूहे उस विषैले अनाज को खाकर नष्ट हो सकें। अथवा चूहादानी द्वारा चूहों को पकडने का प्रबन्ध करना चाहिए। या सिद्ध पुरुषों तथा तपस्वियों द्वारा चूहों को नष्ट करने के लिए शान्ति कर्म करवाना चाहिए।[360]

व्याघ्र–आपदा के निवारण हेतु आचार्य कौटिल्य का निर्देश है कि हिंसक पशुओं का भय बढ़ जाने पर धतूरा जैसे विषैले रसायनों के कारण मृत पशुओं की लाशें जंगल में छुड़वा दी जायें।[361] ताकि व्याघ्र उन विषैले पशु–शवों को खाकर स्वयं नष्ट हो जायें। एक

---

357. मूषिकभये मार्जारनकुलोत्सर्गः। तेषां ग्रहणहिंसाया द्वादशपणो दण्डः। कौ0 अर्थ0 4/78/3 पृष्ठ 358
358. शुनामनिग्रहे च अन्यत्रारण्यचरेभ्यः। उपरोक्त
359. स्नुहीक्षीरलिप्तानि धान्यानि विसृजेत्। उपनिषद्योगयुक्तानि वा। उपरोक्त
360. मूषिककरं वा प्रयुञ्जीत। शान्तिं वा सिद्धतापसाः कुर्युः। उपरोक्त
361. व्यालमये. . . . . . . मदनकोद्रवपूर्णान्यौदर्याणि वा। उपरोक्त

अन्य उपाय के रूप में व्याघ्र—आपदा दूर करने के लिए शिकारी और बहेलिए गड्ढों में छिपकर व्याघ्रों को मार दें। अथवा कवच पहनकर शस्त्रों के द्वारा व्याघ्रों को नष्ट कर दें।[362] व्याघ्र—आपदा निवारण हेतु व्यापक जनचेतना—प्रसार के उद्देश्य से आचार्य कौटिल्य ने जहाँ व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं से घिरे हुए व्यक्ति की सहायता न करने को एक दण्डनीय अपराध ा घोषित किया है, वहीं पर व्याघ्र का शिकार करने को उसने एक पुरस्करणीय कृत्य के रूप में मान्यता प्रदान की है।[363] यद्यपि आज के पविर्तित परिवेश में व्याघ्र का शिकार किया जाना सामान्यतया अनुमन्य नहीं है।

सर्प—आपदा के संबंध में आचार्य कौटिल्य का निर्देश हैं कि सर्प भय का प्रतीकार मन्त्र और जड़ी बूटियों को जानने वाले विषवैद्यों को करना चाहिए; अथवा नगरवासी जहाँ भी साँप देखें, उसको मार डालें। अथवा अथर्ववेद के ज्ञाता अभिचार क्रियाओं द्वारा साँपो को मार दें।[364] प्राचीन काल की राक्षस-आपदा आज हमारे समक्ष रूपान्तरित होकर एक आतंकवादी, खूँखार डकैत, कातिल तथा साम्प्रदायिक हिंसक—आपदा क रूप में विद्यमान है। इस आपदा का स्वरूप बदलने के साथ ही उसके निवारण उपाय भी बदल गए हैं। लेकिन यहाँ पर आचार्य कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट राक्षस—आपदा निवारण के उपायों का उल्लेख करना ही हमारा अभीष्ट है। आचार्य कौटिल्य के अनुसार राक्षसों का भय पैदा होने पर तन्त्र विद्या तथा अथर्ववेद के ज्ञाता विद्वान अभिचारक तथा मायायोग क्रियाओं द्वारा उसका प्रतीकार करें। इसके अतिरिक्त अनुष्ठान, तथा पूजार्चन आदि को भी आचार्य कौटिल्य इस आपदा के निवारण उपाय के रूप में परिगणित करता है।[365]

(द) भ्रष्ट अधिकारियों/कर्मचारियों तथा जालसाजी करने वालों से प्रजा की रक्षा :

रिश्वतखोरी दलाली और जालसाजी आदि अनैतिक कार्यो के माध्यम से कुछ लोग भयावह प्रजा—पीडन का कार्य करते हैं। ऐसे लोगों को चिन्हित करते हुए आचार्य

---

362. लुब्धका श्वगणिनो. . . . . . व्यालानभिहन्युः। कौ0 अर्थ0 4/78/3 पृष्ठ 359
363. अनभिसर्तुर्द्वादशपणो दण्डः। स एव लाभो व्यालघातिनः। उपरोक्त
364. सर्पभये मन्त्रैरोषधिभिश्च. . . . . अथर्ववेदविदो वाभिचरेयुः। कौ0 अर्थ0 4/78/3 पृष्ठ 359
365. रक्षोभये रक्षोघ्नान्यथर्ववेदविदो. . . . . पूजाः कारयेत्। उपरोक्त

कौटिल्य ने उनकी संख्या तेरह बताई है– (1) धर्मस्थ (न्यायाधीश) (2) प्रदेष्टा (न्याययिक अधिकारी) (3) ग्राम प्रधान, (4) विभागीय अध्यक्ष, (5) कूट साक्षी (फर्जी गवाह) (6) कूटश्रावणकारक (फर्जी बयान/दस्तावेज बनाने वाले), (7) संवननकारक (वशीकरण का कार्य करने वाले) (8) कृत्याभिचारशील (जादूटोना–टोटका करने वाले) (9) रसद (जहर देने वाले) (10) मदनयोगव्यवहारी (मादक द्रव्यों को बेचने वाले), (11) कूटरूपकारक (जाली सिक्के बनाने वाले), (12) रागस्यापहर्ता (सोने आदि का रंग उड़ा देने वाले) तथा (13) कूटसुवर्णव्यवहारी (नकली सोने का व्यापार करने वाले)। इन तेरह लोगों को 'गूढाजीवी' (गुप्त अजीविका या अवैध आयस्रोत रखने वाले) की संज्ञा देते हुए निर्दिष्ट किया गया है कि ये सभी लोग प्रजा को पीडित करने वाले होते हैं। इसलिए इन गूढ़ाजीवियों को अपराध सिद्ध होने पर या तो देश–निष्कासन का दण्ड अथवा अपराध के अनुसार उन्हें अर्थ–दण्ड दिया जाना चाहिए।[366]

उक्त गूढाजीवियों की कारगुजारियों का पता लगाने के लिए 'समाहर्ता' को निर्दिष्ट किया गया है कि वह तरह तरह की वेशभूषाओ में तथा पर्याप्त संख्या में गुप्तचर नियुक्त करे जो उक्त लोगों की ईमानदारी व वेईमानी का पता लगाते रहें।[367]

(घ) आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता :

(1) आचार्य कौटिल्य का कानून संबंधी यह मत आज भी प्रासंगिक है कि यदि कभी धर्म तथा राजाज्ञा में विरोध की स्थिति उत्पन्न होती है तो वहाँ राजाज्ञा को ही प्रमाण माना जायेगा, धर्म को नही।[368] वर्तमान राजनीति में धर्मनिरपेक्षता के नाम पर अपना वोट बैंक कायम रखने के लिए तुष्टिकरण की नीति अपनाते हुए किसी धर्म विशेष को राजाज्ञा तथा कानून से भी बड़ा मानने में राजनयिन्ताओं को कोई गुरेज–परहेज नहीं है। उदाहरणार्थ एक अल्पसंख्यक समुदाय के दबाव में आकर भारत सरकार द्वारा 1988 में 'अहमद खान बनाम शाहबानो' प्रकरण में उच्चतम न्यायालय के निर्णय को भी

---

366. आरब्धारस्तु हिंसायां ....दद्युर्दोषविशेषतः। कौ0 अर्थ0 4/79/4 पृष्ठ 363
367. विवरण के लिए देखें– कौ0 अर्थ0 का 'गूढाजीविनां रक्षा' नामक अध्याय (4/79/4 पृष्ठ 361–63)
368. शास्त्रं विप्रतिपद्येत् ....पाठो हि नश्यति। कौ0 अर्थ0 3/56–57/1 पृष्ठ 259

निष्प्रभावी करने के लिए तथा भारतीय संविधान के अनुच्छेद–44, जिसमें सभी देशवासियों के साथ समान नागरिक संहिता लागू किए जाने का निर्देश है, की मूल भावना के विपरीत 'मुस्लिम महिला अधिकार कानून' बना दिया गया था। इसलिए धर्मनिरपेक्षता का दुरुपयोग रोकने के लिए तथा साम्प्रदायिक सौहार्द्र कायम रखने के लिए हमें आचार्य कौटिल्य के विचारों का क्रियान्वयन करते हुए राजाज्ञा (कानून) को किसी भी धर्म से गुरुतर मानना होगा।

(2) कौटिल्य का यह मत कि कानून की दृष्टि में सभी समान है, आज भी बड़ा प्रासंगिक है। उसके द्वारा राजा को दिया गया यह निर्देश कि चाहे कोई उसका शत्रु हो अथवा पुत्र, सभी को कानूनी दृष्टि से एक समान मानते हुए निष्पक्ष न्याय एवं दण्ड देना चाहिए,[369] वर्तमान समाज एवं राजनीति के लिए नितान्त उपयोगी है। आचार्य कौटिल्य के अकेले उक्त मत के निष्ठापूर्ण अनुपालन से ही भारतीय राजनीति की सारी कलुषता तथा गन्दगी स्वतः ही दूर हो सकती है। जब शासक के शत्रु तथा पुत्र को समान न्याय तथा दण्ड मिलेगा तो जिसका स्थान जहाँ होगा, वह वहीं पहुँचेगा। अपराधियों का स्थान जेल में ही होग", विधानसभा तथा लोकसभा में वे कभी नहीं पहुँच पायेंगे। दूसरी ओर निर्दोष तथा ईमानदार व्यक्तियों को कभी जेल यातनाऐं नहीं भोगना पडेंगी।

(3) हत्या जैसे जघन्य अपराध करने पर आचार्य कौटिल्य द्वारा दो तरह के प्राणदण्डों– शुद्ध वध (कष्टरहित प्राणदण्ड) तथा चित्रघात (सता सता कर दिया जाने वाला प्राणदण्ड) का प्राविधान किया गया है।[370] इसी प्रकार किसी का अंगभंग करने वाले अपराधी का भी वही अंगभंग किए जाने का कठोर कानून बनाया गया है।[371] वर्तमान युग में मानवाधिकारों से संबंधित सरकारी– गैरसरकारी संस्थाऐं तथा संगठन अपराधियों को शारीरिक यातनाऐं तथा मृत्युदण्ड दिए जाने पर गम्भीर आपत्ति कर रहे हैं। लेकिन राजनीति तथा समाज के अपराधीकरण के इस भयावह दौर में उन्हें अपनी इस अवधारणा पर पुनर्विचार करना होगा। नृशंस एव जघन्य अपराधों पर अंकुश लगाने के

---

369. दण्डो हि केवलो. . . . . . यथादोषं समं धृतः। कौ0 अर्थ0 3/56–57/1 पृष्ठ 259
370. देखें– कौ0 अर्थ0 का 'शुद्धचित्रश्च दण्डकल्पः' नामक अध्याय, पृष्ठ 389–92
371. देखें– कौ0 अर्थ0 का 'एकाङ्गवधनिष्क्रयः' नामक अध्याय, पृष्ठ 386–88

लिए न्याय हित में कठोर दण्ड का प्राविधान तो करना ही होगा। हाँ, इतनी सतर्कता अवश्य रखनी होगी कि कोई निर्दोष तथा सम्भ्रान्त नागरिक किसी प्रकार के पूर्वाग्रह, दुराग्रह अथवा प्रतिशोध की भावना के कारण कानूनी यातना का शिकार न होने पाये। यदि मानवाधिकारों की दुहाई देकर गंभीर अपराधियों के प्रति कठोरता की जगह उदारता बरती जाती रही तो देश में कानून का राज नहीं, अपितु अपराधियों का जंगल राज सृजित होने की विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिए आचार्य कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट दो प्रकार के मृत्युदण्डो में से चित्रघात (सता सता कर मृत्युदण्ड दिया जाना) को तो इस मानवाधिकार–युग में अनुमन्य नहीं किया जा सकता; हाँ, एकल हत्या तथा सामूहिक हत्या जैसे जघन्य अपराधियों को शुद्धवध (कष्ट रहित सदा प्राणदण्ड) देने में किसी को कोई आपत्ति नहीं होना चाहिए।

(4) आचार्य कौटिल्य के द्वारा गर्भपात को एक दण्डनीय अपराध घोषित किया जाना[372] आज भी प्रासंगिक है। इसे आधुनिक राजनयिन्ताओ की अदूरदर्शिता ही कहेंगे कि उन्होंने कुछ समय पूर्व जनसंख्या वृद्धि से घबड़ाकर गर्भपात को वैधता प्रदान कर दी थी तथा शासकीय चिकित्सालयों में गर्भवती महिलाओं को बेरोक–टोक गर्भपात कराना अनुमन्य था। लेकिन इससे जब कुछ समय बाद ही समाज में लिङ्गानुपात गम्भीर रूप से असन्तुलित होने लगा तो उन्हें पुनः घवड़ाकर गर्भपात को अवैध एवं दण्डनीय अपराध घोषित करना पडा। दूसरी ओर आचार्य कौटिल्य का अभूतपूर्व दूरदर्शी चिन्तन था जिसमें गर्भपात को कभी भी वैध नहीं ठहराया गया, बल्कि उसे सदैव अवैध एवं दण्डनीय अपराध ही माना गया।

(5) किसी स्त्री के साथ बलात्कार किए जाने को दण्डनीय अपराध घोषित करना[373] आज भी प्रासंगिक है। विशेष रूप से नाबालिक कन्याओं के साथ बलात्कार करने वालों को कठोर दण्ड दिया जाना[374] और भी आवश्यक है। इससे यौन अपराधों पर प्रभावी अंकुश लग सकेगा।

---

372. प्रहारेण गर्भ पातयत. . . . . . परिक्लेशेन पूर्वः साहसदण्डः। कौ0 अर्थ0 4/86/11 पृष्ठ 389
373. मिथ्याभिशंसिनश्च पुंसः। कौ0 अर्थ0 4/87/12 पृष्ठ 394
374. सवर्णामप्राप्तफलां कन्यां. . . . . . मृतायां वधः। उपरोक्त पृष्ठ 393

(6) किसी का अपहरण किए जाने को दण्डनीय अपराध घोषित करना आज भी प्रासंगिक है।

(7) सरेआम सड़कों पर तथा घरों में चोरी करने वालों को शूली पर चढाये जाने का कानून था।[375] यह कानून आज पूर्णतः प्रासंगिक तो नहीं माना जा सकता है लेकिन उसकी आंशिक प्रासंगिकता इस रूप में अवश्य है कि ऐसे अपराधियों को कठोर दण्ड का प्राविधान किए जाने की आवश्यकता है। ताकि दिन दहाड़े बैंक, बाजार तथा खजाने लूटने वालों के हौंसले पश्त पड सकें।

(8) मूर्ति चोरों को प्राणदण्ड दिए जाने का प्राविधान था।[376] देश में मूर्ति चोरी के दिनोंदिन बढ रहे गम्भीर अपराधों को रोकने के लिए उपरोक्त कौटिलीय अवधारणा से प्रेरणा लेकर इस संबंध में कठोर दण्ड का प्राविधान किया जा सकता है।

(9) किसी चारागाह, खेत, खलिहान, घर और जंगल में आग लगाने वाले को आग में ही जला दिए जाने का कानून था।[377] इतने कठोर कानून को आज पूर्णतः प्रासंगिक तो नहीं माना जा सकता। लेकिन ऐसा अमानवीय अपराध करने वाले को कठोर दण्ड का प्राविधान अवश्य किया जाना चाहिए ताकि देश में 'गोधरा–काण्ड' जैसे वीमत्स काण्डों की पुनरावृत्ति न हो सके।

(10) राजद्रोह करने वाले अपराधी को जलती आग में झोंककर मरवा दिए जाने का कानून था।[378] ऐसे अपराधियों को कठोर दण्ड देकर देश में पनप रही राजद्रोही प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाया जा सकता है।

(11) बार बार अपराध करने वालों को प्राणदण्ड दिए जाने का कानून था।[379] इससे प्रेरणा लेकर पेशेवर अपराधियों पर अंकुश लगाने के लिए कठोर दण्ड का प्राविधान किया जा सकता है।

---

375. पथिवेश्मप्रतिरोधकान .... स्तेनान् वा शूलानारोहयेयुः। कौ0 अर्थ0 4/86/11 पृष्ठ 389
376. देवपशुप्रतिमा........उत्तमोदण्डः शुद्धवधो वा। कौ0 अर्थ0 4/85/10 पृष्ठ 388
377. विवीतक्षेत्रखलवेश्मद्रव्यहस्तिवनादीपिकमग्निना दाहयेत्। कौ0 अर्थ0 4/86/11 पृष्ठ 391
378. राज्यकामुकमन्तःपुर.......ब्राह्मणं तमः प्रवेशयेत्। उपरोक्त पृष्ठ 390
379. सर्वाधिकरणेषु युक्तोपयुक्त......पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः। कौ0 अर्थ0 2/21/5 पृष्ठ 97

(12) कोषाध्यक्ष जैसे उच्च अधिकारी द्वारा कोश–क्षय किए जाने पर उसे प्राणदण्ड दिया जाता था।[380] इससे प्रेरणा लेकर हम उच्च अधिकारियों को भी अपराधी पाये जाने पर उन्हें कठोर दण्ड देने का साहस जुटा सकते हैं।

(13) न्यायिक अधिकारियों द्वारा रिश्वत लिये जाने पर अथवा न्यायिक प्रक्रिया अनुचित ढंग से चलाने पर उन्हें दण्डित किए जाने का प्राविधान[381] आज भी प्रासंगिक है।

(14) यदि कोई व्यक्ति किसी कैदी को जेल से भगाता है या भागने के लिए प्रेरित करता है तो उसकी सारी सम्पत्ति जब्त करके उसे प्राणदण्ड दिया जाता था।[382] कठोर जेल कानून बनाकर वर्तमान जेलों की बदतर हालत को सुधारा जा सकता है।

(15) आर्थिक एवं व्यापारिक कानूनों के अन्तर्गत वस्तुओं की विक्री में मुनाफा की अपेक्षा जन–कल्याण का विशेष ध्यान रखा जाता था।[383] इस दृष्टिकोण से वर्तमानमें मुक्त बाजार की मुक्त अर्थव्यवस्था पर पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता है। ताकि एक ऐसी अर्थव्यवस्था अस्तित्व में आये जिसमें बाजार को नहीं अपितु जन–कल्याण को प्रमुखता दी जाय।

(16) अपराध–अन्वेषण में ऐसी तत्परता वरती जाती थी कि अपराध घटित होने के तीन दिन के अन्दर सन्दिग्ध लोगो से पूँछताछ पूरी कर ली जाती थी। तीन दिन के बाद किसी भी सन्दिग्ध व्यक्ति को गिरफ्तार नहीं किया जाता था। क्योंकि इतने दिन बीतने के बाद उससे सही बातें मालूम नहीं हो सकती हैं।[384] किसी छोटे बड़े अपराध की तीन–तीन महीने तक चलने वाली वर्तमान अन्वेषण प्रक्रिया को कौटिल्य की उक्त अवधारणा से प्रेरणा लेकर सुधारा जा सकता है।

(17) आज के सामाजिक अपराधीकरण के भयावह दौर में जबकि कातिल लोग मृतक का कत्ल करने के बाद उसकी लाश को एक अज्ञात एवं लावारिश लाश के रूप में फेंक

---

380. कोशाधिष्ठितस्य कोशावच्छेदे घातः। कौ0 अर्थ0 2/21/5 पृष्ठ 97
381. धर्मस्थश्चेद्विदमानं. . . . . तदष्टगुणं दण्डं दद्यात्। कौ0 अर्थ0 4/84/9 पृष्ठ 382–83
382. बन्धनागारात्सर्वस्वं वधश्च। उपरोक्त पृष्ठ 384
383. विस्तृत विवरण हेतु देखें– कौ0 अर्थ0 का 'वैदेहकरक्षणम' नामक अध्याय, 4/77/2 पृष्ठ 352–55
384. त्रिरात्रादूर्ध्वमग्राह्यः शङ्कितकः पृच्छाभावादन्यत्रोपकरणदर्शनात्। कौ0 अर्थ0 4/83/8 पृष्ठ 376

देते हैं। चिकित्सा विज्ञान की आधुनिक नवीनतम तकनीकें भी उस पर पड़े इन रहस्मय पर्दो को नहीं हटा पाती हैं कि आखिर मृतक की हत्या किन परिस्थितियों में और किन कारणों से हुई है ? इस कारण जाँच एजेन्सियाँ अपराध की तह तक नहीं पहँच पाती हैं। तथा अपराधी बिना कोई दण्ड पाये छूट जाता है। इस प्रकार समाज में अपराधवृत्ति निरंकुश होकर बढती चली जा रही है। इन विषम परिस्थितियों में आचार्य कौटिल्य द्वारा 'आशुमृतकपरीक्षा' नामक अध्याय[385] में मृतक के शव–परीक्षण की जो अनूठी तकनीकें दी गई हैं; अपराध की तह तक जाने की जो सूक्ष्म पगडण्डियाँ दिखाई गई हैं उनसे आज की निरंकुश अपराधवृत्ति पर प्रभावी अंकुश लगाया जा सकता है।

(18) विधवा पुनर्विवाह संबंधी कौटिलीय मत[386] का अनुसरण करके वर्तमान नारी दशा को सुधारा जा सकता है।

(19) खेत खलिहान संबंधी विवादों का निपटारा सामन्त लोगों तथा गाँव के बड़े बूढ़े लोगों के द्वारा किए जाने संबंधी कौटिलीय मत[387] आज भी प्रासंगिक है। इससे न्यायिक प्रक्रिया का सरलीकरण तथा सस्तीकरण हो सकता है।

(20) आचार्य कौटिल्य के निर्देशानुसार किसी की अचल सम्पत्ति पर जवर्दस्ती कव्जा करने वाले को चोरी का दण्ड दिया जाता था।[388] इस नियम का अनुपालन करके आधुनिक भू–माफियाओं की निरंकुश गतिविधियों पर प्रभावी अंकुश लगाया जा सकता है।

(21) आचार्य कौटिल्य ने राजपुत्रों के बहाने युवा पीढ़ी के संस्कार–परिष्कार तथा शिक्षा–दीक्षा पर सर्वाधिक बल दिया है।[389] इस रूप में युवाओं को सुसंस्कारित करके एक सुदृढ़ राष्ट्र की आधारशिला रखी जा सकती है।

(22) आचार्य कौटिल्य की अर्थनीति 'मुक्त बाजार' पर नहीं अपितु 'नियंत्रित बाजार' पर आधारित थी। क्योंकि 'मुक्त बाजार' की नीति से जन–सामान्य को भारी कठिनाइयों का सामना करना पडता है। इसलिए आम आदमी की परेशानियों को बढ़ाने वाली 'मुक्त

---

385. कौ0 अर्थ0 4/82/7 पृष्ठ 372–75
386. प्रेतस्य वा भार्या. . . . . ततः पतिसोदर्य गच्छेत्। कौ0 अर्थ0 3/60/4 पृष्ठ 273
387. क्षेत्रविवादं सामन्तग्रामबृद्धाः कुर्युः। कौ0 अर्थ0 3/65/9 पृष्ठ 290
388. प्रसह्यादाने वास्तुनि स्तेयदण्डः। उपरोक्त पृष्ठ 291
389. काण्ठमिव हि घृणजग्धं. . . . . .समर्थ तद्विदो विनयेयुः। कौ0 अर्थ0 1/12/16 पृष्ठ 54–55

बाजार' की वर्तमान अर्थनीति पर आज पुनर्विचार किए जाने की तत्काल आवश्यकता है।

(23) आचार्य कौटिल्य का यह निर्देश कि 'गुप्तचरों की व्यापक स्तर पर तैनाती करते हुए आपराधिक प्रवृत्ति के दुष्टजनों तथा भ्रष्ट राज्यकर्मियो को क्रमशः रंगे हाथों गिरफ्तार करवा देना चाहिए तथा उनका देश–निष्कासन कर देना चाहिए ताकि प्रजा का किसी भी प्रकार का शोषण एवं उत्पीड़न न हो सके;[390] आज भी नितान्त उपयोगी है। ऐसी व्यवस्था का पालन करके दुष्ट अपराधियों तथा भ्रष्ट कर्मचारियों को सुधारा जा सकता है।

(24) न्यायाधीशों की 'उपधा परीक्षा' के प्राविधान से प्रेरणा लेकर वर्तमान न्यायाधीशों की चारित्रिक शुचिता के परीक्षण हेतु किसी अनौपचारिक विधि पर विचार करने की नितान्त आवश्यकता है।

(25) राजा, राज्य तथा प्रजा की सभी संभावित खतरो से सुरक्षा के जो व्यवहारिक उपाय अर्थशास्त्र में निर्दिष्ट किए गए है वे वर्तमान में भी अनुकरणीय है। इन उपायों को लागू करके वर्तमान राज्य, प्रजा व उच्च श्रेणी के नेताओं की सुरक्षा से जुड़े जटिल प्रश्नों को हल किया जा सकता है।

(ङ) आधुनिक राजनीति में अप्रासंगिकता :

(1) ब्राह्मण को सभी प्रकार के अपराधों में अनुत्पीडनीय बताया जाना[391] आधुनिक युग के लिए प्रासंगिक नहीं माना जा सकता है। क्योंकि इससे राज्य की समतामूलक अवधारणा पर आघात पहुँचता है।

(2) इसी प्रकार अन्य वर्णो की अपेक्षा शूद्र वर्ण को कठोरतम दण्ड दिया जाना[392] भी वर्तमान युग के लिए प्रासंगिक नहीं माना जा सकता है।

(3) सता सता कर प्राणदण्ड दिए जाने (चित्रघात) को आधुनिक मानवाधिकारवादी युग में प्रासंगिक नहीं माना जा सकता है।

---

390. विस्तृत विवरण के लिए देंखे– कौ0 अर्थ0 का 'गूढ़ाजीविनां रक्षा' नामक अध्याय 4/79/4 पृष्ठ 361–63
391. सर्वापराधेष्वपीडनीयो ब्राह्मणः। कौ0 अर्थ0 4/83/8 पृष्ठ 379
392. शूद्रो येनाङ्गेन ब्राह्मणमभिहन्यात् तदस्य छेदयेत्। कौ0 अर्थ0 3/76/19 पृष्ठ 335

(4) इसी प्रकार अंग–भंग के दण्ड को भी मानवाधिकार की दृष्टि से आधुनिक युग के लिए प्रासंगिक नहीं माना जा सकता है।

(5) कौटिल्य द्वारा अनुमन्य 'बहुपत्नी प्रथा' आधुनिक युग के लिए प्रासंगिक नहीं मानी जा सकती है।

(6) आचार्य कौटिल्य के अनुसार बारह वर्ष की कन्या तथा सोलह वर्ष का युवक वालिक माने गए हैं जबकि आधुनिक युग में उक्त आयु के युवक–युवती नावालिग माने जाते हैं। इस प्रकार कौटिल्य का उक्त मत आज अप्रासंगिक हो चुका है।

(7) कौटिल्य काल में वयस्क होने पर विवाह न करना एक दण्डनीय अपराध था जिसे आधुनिक युग में प्रासंगिक नहीं माना जा सकता है।

(8) कौटिल्य के मतानुसार यदि किसी पत्नी से केवल कन्याऐं ही पैदा होती है तो उसके पति को बारह वर्ष तक प्रतीक्षा करना चाहिए। उसके बाद पुत्रेच्छा रखने वाला पति अपना पुनर्विवाह कर सकता था।[393] उक्त नियम को आज प्रासंगिक नहीं माना जा सकता है।

(9) नपुंसक, अन्धे और कुष्ठ रोगी को आचार्य कौटिल्य ने दायभाग का उत्तराधिकारी नहीं माना है।[394] इस नियम को भी आधुनिक युग के लिए प्रासंगिक नहीं माना जा सकता है।

(10) कौटिल्य ने उत्तराधिकारियो की सूची में पत्नी को सम्मिलित नहीं किया है। उनका यह मत भी वर्तमान राजनीति में प्रासंगिक नहीं माना जा सकता है।

---

393. वर्षाण्यष्टावप्रजायमानाम् . . . . .द्वादशकन्या प्रसविनीम। कौ0 अर्थ0 3/58/2 पृष्ठ 264
394. पतितः पतिताज्जातः क्लीबश्चानंशः जडोन्मत्तान्धकुष्ठिनश्च। कौ0 अर्थ0 3/61/5 पृष्ठ 277

पञ्चम अध्याय— अन्तर्राज्य सम्बन्ध

षड्गुणसंयोगदृढा उपायपरिपाटीघटितपाशमुखी।
चाणक्यनीतिरज्जू रिपुसंयमनोद्यता जयति।।

(मुद्राराक्षस 6/4)

[शत्रु को वश में करने के लिए चाणक्य की सदैव उद्यत रहने वाली 'षाड्गुण्य नीति' रूपी वह रज्जू (रस्सी) सदैव विजयी होती है जो सन्धि–विग्रह आदि छः गुणों (लड़ियों) में भँजी होने के कारण अत्यधिक मजबूत है तथा शत्रु को बाँधने के लिए जिसमें चारों उपायों (साम, दान, भेद, दण्ड) से निर्मित पाश रूपी मुख (गोल फन्दा) बना हुआ है।]

पञ्चम अध्याय (अन्तर्राज्य सम्बन्ध)

प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट होती है कि प्राचीन हिन्दू शासकों द्वारा न केवल राज्य के कोश, कानून, न्याय, दण्ड और सुरक्षा–तंत्र को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया जाता था; अपितु दूसरे राज्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के प्रति भी उन्होंने पर्याप्त ध्यान दिया है। दूसरे, उक्त तथ्य की पुष्टि हेतु राज्य के 'सप्ताङ्ग सिद्धान्त' को उद्‌धृत किया जा सकता है। प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तकों ने राज्य के 'सप्ताङ्ग सिद्धान्त' के अन्तर्गत राज्य की सप्त प्रकृतियों में 'मित्र' को भी एक स्वतंत्र स्थान देकर यह स्पष्ट किया है कि प्राचीन काल में विभिन्न राज्यों के मध्य परस्पर मैत्रीपूर्ण संबंधों का विशेष महत्व था। क्योंकि उस समय भारत में असंख्य छोटे बड़े राज्यों का अस्तित्व था जिनके परस्पर सम्बन्ध अस्थिर थे। छोटे राज्यों को सदैव इस बात का भय रहता था कि कोई शक्तिशाली राज्य उन पर आक्रमण कर उन्हें अपने अधीन न बना लें। इस कारण सभी राज्य अपनी सुरक्षा हेतु मित्र राज्यों का एक समूह अपने पक्ष में रखने का प्रयास करते थे जो संकट काल में उसकी सहायता करे। उस काल में युद्ध का एकदम त्याग असम्भव था। अतः अपने समान या अपने से अधिक बल वाले राजा से मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक था। पड़ोसी राज्यों से संबंधों की इसी राजनीति को 'अन्तर्राज्य सम्बन्ध' की संज्ञा दी गई है।

(क) मण्डल सिद्धान्त

अन्य प्राचीन भारतीय राजशास्त्र प्रणेताओं की भाँति आचार्य कौटिल्य ने भी राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या के लिये एवं विभिन्न राज्यों के बीच शान्तिपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के लिये 'मण्डल सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया है। मण्डल का अर्थ है–राज्यों का वृत्त (Circle of the states)। आचार्य कौटिल्य ने विजिगीषु राजा को केन्द्र बिन्दु मानते हुये अपने 'मण्डल सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया है। वस्तुतः 'मण्डल सिद्धान्त' कौटिल्य की विदेश नीति का मूलाधार चक्र है। इस सिद्धान्त के द्वारा कौटिल्य ने यह स्पष्ट

करने का प्रयास किया है कि एक विजिगीषु को किन किन राज्यों से किस किस प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये। जिससे वह अपने राज्य की सुरक्षा कर सके एवं अवसरों के अनुकूल साम्राज्य का विस्तार भी कर सके।

कौटिलीय अर्थशास्त्र में 'मण्डल सिद्धान्त' के द्वारा जिस राज मण्डल (Circle of the states) का प्रतिपादन किया गया है उसमें विजिगीषु राजा को केन्द्र बिन्दु मानते हुये उसके आसपास एवं दूरवर्ती ग्यारह अन्य राज्य (राजा) सम्मिलित होते हैं, जिन्हें मिलाकर कुल 12 राजाओं का एक 'द्वादश राजमण्डल' कहलाता है।[1] विजिगीषु राजा का उक्त राजमण्डल के राजाओं में से किसी के साथ मित्रता का, किसी के साथ शत्रुता का, किसी के साथ उदासीनता का तथा किसी के साथ मध्यस्थता का संबंध होता है। इन्हीं सम्बन्धों के आधार पर कौटिल्य द्वारा 'द्वादश राजमण्डल' की राजनीतिक परिकल्पना प्रस्तुत की गई है। उक्त बारह प्रकार के राज्यों (राजाओं) का परिचयात्मक विवरण भी उन्होंने विस्तार में प्रस्तुत किया है।

(i) विजिगीषु राजा

अपने राज्य–विस्तार एवं विजय की सदैव अभिलाषा रखने वाला राजा 'विजिगीषु' कहलाता है। जो 'द्वादश राजमण्डल' का केन्द्र बिन्दु होता है। आचार्य कौटिल्य के अनुसार जो राजा 'आत्मसम्पत्' गुणों से युक्त, अमात्य आदि द्रव्य प्रकृति सम्पन्न तथा नीति का आश्रय लेने वाला हो उसे 'विजिगीषु' कहते है।[2] यहाँ पर विशेष रूप से उल्लेखनीय बिन्दु यह है कि सशक्त एवं सक्षम होने पर विजिगीषु राजा को अपना राज्य विस्तार करना सहज सुलभ होता है लेकिन जब वह अशक्त एवं अक्षम हो तो ऐसी विषम परिस्थितियों में एक शक्तिहीन विजिगीषु के लिये आचार्य कौटिल्य ने शक्ति–संचय के अनेकानेक व्यावहारिक उपाय सुझाये हैं।[3] उनमें से कतिपय उपाय यहाँ पर उल्लेखनीय है। आचार्य कौटिल्य के

---

1. द्वादश राजप्रकृतयः। कौ० अर्थ० 6/97/2 पृष्ठ 447
2. राजा आत्मद्रव्यप्रकृतिसम्पन्नो नयस्याधिष्ठानं विजिगीषुः। उपरोक्त पृष्ठ 446
3. विवरण के लिए देखें– कौ० अर्थ० का 'हीनशक्तिपूरणम' नामक अध्याय (7/118/14 पृष्ठ 522–526)

अनुसार यदि अनेक राजा मिलकर विजिगीषु राजा पर एक साथ आक्रमण कर दें तो विजिगीषु राजा उन राजाओं के मुखिया से इस प्रकार कहे 'मैं आपसे सन्धि करना चाहता हूँ, यह रहा हिरण्य। अब से मैं आपका मित्र हूँ। मुझे मित्र बनाने से आपको भी दुगुना लाभ हो जायेगा। इसलिये अब आपको यह उचित नहीं है कि आप अपने जन–धन की क्षति करके इन मित्र बने शत्रुओं को बढ़ावा दें। क्योंकि बाद में ये आप पर ही टूट पड़ेंगे।'[4] यदि ऐसा संभव न हो तो वह उनकी आपस में फूट करा दे। फूट डालने के लिये वह ऐसा कहे कि–'जैसे मुझ निरपराध पर इन सबने आक्रमण किया है वैसे स्वयं उन्नत होने पर या आपके ऊपर कोई विपत्ति आने पर ये आप पर भी आक्रमण कर देंगें। क्योंकि यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि 'बल व्यक्ति के चित्त को विकृत कर देता है।' इसलिये आपको उचित यही है कि आप अभी से इनके संगठित बल को तहस–नहस कर दें।'[5] आचार्य कौटिल्य के अनुसार विजिगीषु राजा को तीन प्रकार की शक्तियों से युक्त होना चाहिये। (i) मन्त्र शक्ति (ज्ञान बल) (ii) प्रभु शक्ति (कोशदण्ड बल) (iii) उत्साह शक्ति (विक्रम बल) तथा उपरोक्त शक्तियों से प्राप्त होने वाली तीन प्रकार की सिद्धियों – (i) मन्त्र सिद्धि (ii) प्रभु सिद्धि (iii) उत्साह सिद्धि से सम्पन्न होना चाहिये। उनके मतानुसार उपरोक्त शक्तियों से सम्पन्न राजा श्रेष्ठ, उनसे रहित राजा अधम तथा समान शक्ति वाला राजा मध्यम कहलाता है। इसलिये विजिगीषु राजा को चाहिये कि वह अपनी शक्ति तथा सिद्धि को बढ़ाने का निरन्तर प्रयास करता रहे।[6]

(ii) अरि राजा

विजिगीषु राजा के सामने के सीमावर्ती राजाओं को 'अरि राजा' कहा गया है।[7] ये अरि–राजा विजिगीषु राजा से शत्रुता रखते हैं। कौटिल्य की यह दृढ़ मान्यता रही है कि जिन राज्यों की सीमायें परस्पर सम्बद्ध होती हैं, उन राज्यों के बीच परस्पर शत्रुता होना सहज स्वाभाविक है। इस प्रकार के राज्यों के हित समान होने के कारण उनमें प्रतिद्वन्द्विता

---

4. समवायिकैरेवम्. . . . . . .एते हि वृद्धास्त्वामेव परिमविष्यन्ति। कौ0 अर्थ0 7/118/14 पृष्ठ 522
5. शक्तिस्त्रिविधा. . . . . . घटेतात्मन्यावेशयितुम्। कौ0 अर्थ0 6/97/2 पृष्ठ 448
6. भेदं वा ब्रूयात्. . . . . . .तदेषां विघातय इति। कौ0 अर्थ0 7/118/14 पृष्ठ 522
7. तस्य समन्ततो मण्डलीभूता भूम्यनन्तरा अरिप्रकृतिः। कौ0 अर्थ0 6/97/2 पृष्ठ 446

एवं प्रतिस्पर्द्धा का भाव स्भावाविक रूप से उत्पन्न होता है। इसलिये कौटिल्य ने सीमावर्ती राज्यों को 'अरि–राज्य' माना है। विजिगीषु राजा को 'अरि राजा' के साथ किस प्रकार की नीति अपनाना चाहिये; कौटिल्य ने इस संबंध में स्पष्ट निर्देश दिये हैं। उनके मतानुसार जब विजिगीषु राजा शत्रु की तुलना में अपने को निर्बल समझे तो उसे शत्रु राजा से सन्धि कर लेना चाहिये। यदि वह शत्रु की तुलना में स्वयं को बलवान समझे तो उसके साथ विग्रह (अपकार) करना चाहिये। यदि वह शत्रु–बल और आत्मबल में कोई अन्तर न समझे तो उसे 'आसन' (उपेक्षा भाव के साथ चुप बैठना) नीति को अपनाना चाहिये। यदि वह स्वयं को शत्रु की अपेक्षा अधिक गुण सम्पन्न एवं शक्ति सम्पन्न समझे तो उसे 'यान' (चढ़ाई) नीति को अपनाना चाहिये। लेकिन यदि वह स्वयं को बिल्कुल अशक्त समझे तो उसे 'संश्रय' (आत्मसमर्पण) का आश्रय लेना चाहिये। दूसरी ओर यदि वह शत्रु से सहायता की अपेक्षा रखता हो तो उसे 'द्वैधी भाव' (सन्धि एवं विग्रह दोनों) को अपनाना चाहिये।[8]

आचार्य कौटिल्य ने 'अरि राजा' के तीन भेद किये हैं –

(अ) प्रकृति अरि : विजिगीषु राजा की सीमा से लगा हुआ राजा 'प्रकृति अरि' कहलाता है। क्योंकि पड़ोसी राज्य के साथ बैर स्वाभाविक होता है।

(ब) सहज अरि : विजिगीषु राजा के वंश में उत्पन्न दायभागी राजा को 'सहज अरि' कहा गया है।

(स) कृत्रिम अरि : विजिगीषु राजा का स्वयं विरोधी बनने वाला अथवा किसी दूसरे को विजिगीषु का विरोधी बना देने वाला राजा 'कृत्रिम अरि' कहलाता है।[9] ये स्वभाव से या जन्म से शत्रु नहीं होते है वरन किसी विशेष कारणवश शत्रु बन जाते हैं।

(iii) मित्र राजा

उपरोक्त 'अरि राजाओं' की सीमा से लगे हुये राजा को 'मित्र राजा' कहते है।[10] आचार्य कौटिल्य के अनुसार मित्र ऐसा होना चाहिये जो वंश पारम्परागत हो, स्थायी हो,

---

8. परस्माद्धीयमानः सन्दधीत. . . . . द्वेधीभावं गच्छेत्। कौ0 अर्थ0 7/98–99/1 पृष्ठ 453
9. भूम्यनन्तरः प्रकृत्यमित्रः तुल्यामिजः सहजः। विरुद्धो विरोधयिता वा कृत्रिमः। कौ0अर्थ0 6/97/2 पृ0446
10. तथैव भूम्येकान्तरा मित्र प्रकृतिः। उपरोक्त

अपने वश में रहने वाला हो, जिससे विरोध की सम्भावना न हो, प्रभु शक्ति–मन्त्र शक्ति तथा उत्साह शक्ति से सम्पन्न हो तथा समय आने पर सहायता करने वाला हो।[11] आचार्य कौटिल्य ने 'अरि राजा' की भाँति 'मित्र–राजा' के भी निम्नांकित तीन भेद किये हैं –

(अ) प्रकृति मित्र : विजिगीषु राजा के राज्य से एक राज्य को छोड़कर उसके बाद लगे हुये राज्य को 'प्रकृति मित्र' कहा गया है।

(ब) सहज मित्र : विजिगीषु राजा के मेमेरे या फुफेरे भाई को 'सहज मित्र' की संज्ञा दी गई है।

(स) कृत्रिम मित्र : धन सम्पत्ति, जीवन/जीविका के लोभवश आश्रय लेने वाला राजा 'कृत्रिम मित्र' कहलाता है।[12]

(iv) अरि–मित्र राजा

'मित्र–राजा' की सीमा से लगा हुआ राजा 'अरि–मित्र राजा' कहलाता है। चूँकि यह विजिगीषु के शत्रु का मित्र होता है, इसलिये वह विजिगीषु का भी शत्रु होता है।

(v) मित्र–मित्र राजा

उपरोक्त 'अरि मित्र राजा' की सीमा से लगा हुआ राजा 'मित्र मित्र राजा' कहलाता है। चूँकि यह विजिगीषु राजा के मित्र का मित्र होता है इसलिये वह विजिगीषु का भी मित्र होता है।

(vi) अरि मित्र–मित्र राजा

'मित्र मित्र राज्य' की सीमा से लगा हुआ राज्य 'अरिमित्र–मित्र' कहलाता है। चूँकि वह शत्रु के मित्र का मित्र होता है, इसलिये वह शत्रु का भी मित्र होता है।

इस प्रकार उपरोक्त पाँच प्रकार के राज्य–अरि राज्य, मित्र राज्य, अरिमित्र राज्य, मित्र मित्र राज्य तथा अरिमित्र–मित्र राज्य विजिगीषु राजा के सामने की ओर स्थित होते हैं।[13] विजिगीषु राजा को

---

11. पितृपैतामहं नित्यं . . . . . . इति मित्र सम्पत्। कौ0 अर्थ0 6/96/1 पृष्ठ 443
12. भूम्येकान्तरं प्रकृतिमित्रम्. . . . . धनजीवितहेतोराश्रितं कृत्रिममिति। कौ0 अर्थ0 6/97/2 पृष्ठ 447
13. इत्यरि विशेषाः। तस्मान्मित्रम्. . . . भूमीनां प्रसज्यते पुरस्तात। कौ0 अर्थ0 6/97/2 पृष्ठ 446

अपनी विदेश नीति निर्धारित करते समय इन पाँचों राजाओं को दृष्टि में रखना चाहिये। इसी प्रकार विजिगीषु राजा के पीछे की ओर भी निम्नांकित (चार प्रकार के) राज्य स्थित होते हैं–

(vii) पार्ष्णिग्राह राजा

विजिगीषु राजा के पीछे की ओर वाली सीमा से लगा हुआ राज्य 'पार्ष्णिग्राह' कहलाता है। 'अरि' की भाँति वह भी 'विजिगीषु राजा' का शत्रु होता है।

(viii) आक्रन्द राजा

उपरोक्त 'पार्ष्णिग्राह' के पीछे लगी हुई सीमा वाले राज्य को 'आक्रन्द' कहते है। यह विजिगीषु का मित्र तथा पार्ष्णिग्राह का शत्रु होता है।

(ix) पार्ष्णिग्राहासार राजा

उपरोक्त 'आक्रन्द' के पीछे लगी हुई सीमा वाले राज्य को 'पार्ष्णिग्राहासार' कहते हैं। यह पार्ष्णिग्राह का मित्र तथा विजिगीषु का शत्रु होता है।

(x) आक्रन्दासार राजा

'पार्ष्णिग्राहासार' के पीछे लगी हुई सीमा वाले राजा को 'आक्रान्दासार' कहते हैं। चूँकि वह 'आक्रन्द' का मित्र होता है इसलिये विजिगीषु का भी मित्र होता है।[14] विजिगीषु राजा को अपनी विदेश नीति का निर्धारण करते समय अपने पीछे की ओर स्थित उक्त चारों राजाओं का विचार करना पड़ता था।

(xi) मध्यम राजा

मध्यम राज्य एक विशेष प्रकार का राज्य होता था जो शत्रु एवं मित्र की संयुक्तशक्ति से भी अधिक शक्तिशाली होता था। वह विजिगीषु व उसके शत्रु–राज्य की सीमा पर स्थित रहता था, जिसमें दोनों को मदद देने या रोकने की ताकत होती थी; किन्तु जो उनके झगड़े में भाग लेना पसन्द नहीं करता था। ऐसे बलिष्ठ राजा को 'मध्यम' कहा गया है। दूसरे शब्दों में 'अरि राजा' तथा 'विजिगीषु राजा' के बीच यदि सन्धि होती है तो उस

---

14. पश्चात्पार्ष्णिग्राह आक्रन्दः पार्ष्णिग्राहासार आक्रन्दासार इति। कौ० अर्थ० 6/97/2 पृष्ठ 446

सन्धि का समर्थन करने वाले, और यदि उनके बीच विग्रह (युद्ध) होता है तो उस विग्रह का भी समर्थन करने वाले राजा को 'मध्यम' कहा गया है। इस मध्यम राज्य की सीमा विजिगीषु तथा अरि राज्य दोनों की सीमाओं से लगी हुई होती है।

(xii) उदासीन राजा

उदासीन राजा का राज्य अरि, विजिगीषु तथा मध्यम इन तीनों राज्यों की सीमाओं से परे होता है। तथा वह इन तीनों की प्रकृतियों से अधिक शक्तिशाली होता है। दूसरे शब्दों में वह तीनों प्रकार के राज्यों को एक साथ या पृथक पृथक रूप से अनुग्रह एवं निग्रह करने में समर्थ होता था। अरि, विजिगीषु तथा मध्यम राजा के बीच यदि सन्धि होती है तो उनका समर्थन करने में सक्षम; और यदि उनमें विग्रह होता है तो उन्हें दण्डित करने में भी सक्षम राजा को 'उदासीन' कहा गया है।[15] उक्त ' द्वादश राजमण्डल' को आगे एक रेखाचित्र के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। यहाँ पर विशेष रूप से उल्लेखनीय तथ्य यह है कि कौटिल्य ने इस सन्दर्भ में राज्य और राजा को एक ही रूप में परिलक्षित किया है।[16]

मण्डल सिद्धान्त को और आगे बढ़ाते हुये आचार्य कौटिल्य विजिगीषु राजा की अठारह प्रकृतियाँ निर्दिष्ट करते हैं। उनके अनुसार विजिगीषु की तीन मुख्य प्रकृतियाँ हैं–विजिगीषु, मित्र तथा मित्रमित्र। उक्त तीनों प्रकृतियों की पुनः निम्नांकित पाँच अलग–अलग अवान्तर प्रकृतियाँ निर्दिष्ट की गई हैं – (i) अमात्य (ii) जनपद (iii) दुर्ग (iv) कोष तथा (v) दण्ड। विजिगीषु की उक्त अठारह प्रकृतियों को आगे एक रेखा चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है।

विजिगीषु मण्डल की तरह कौटिल्य ने 18–18 प्रकृतियों वाले पृथक–पृथक अरि मण्डल, मध्यम मण्डल तथा उदासीन मण्डल का भी प्राविधान किया है।[17] जिन्हें आगे रेखाचित्रों द्वारा स्पष्ट किया गया है। विजिगीषु राजा तभी अपने साम्राज्य-विस्तार के प्रयास

15. अरिविजिगीष्वोर्भूम्यनन्तरः. . .चासंहतानामुदासीनः। कौ0 अर्थ0 6/97/2 पृष्ठ 447
16. R. P. Kangle, The Kautilya Arthasastha Vol. III p. 128, 248
17. अनेन मण्डलपृथक्त्वं व्याख्यातमरिमध्यमोदासीनानाम्। कौ0 अर्थ0 6/97/2 पृष्ठ 447
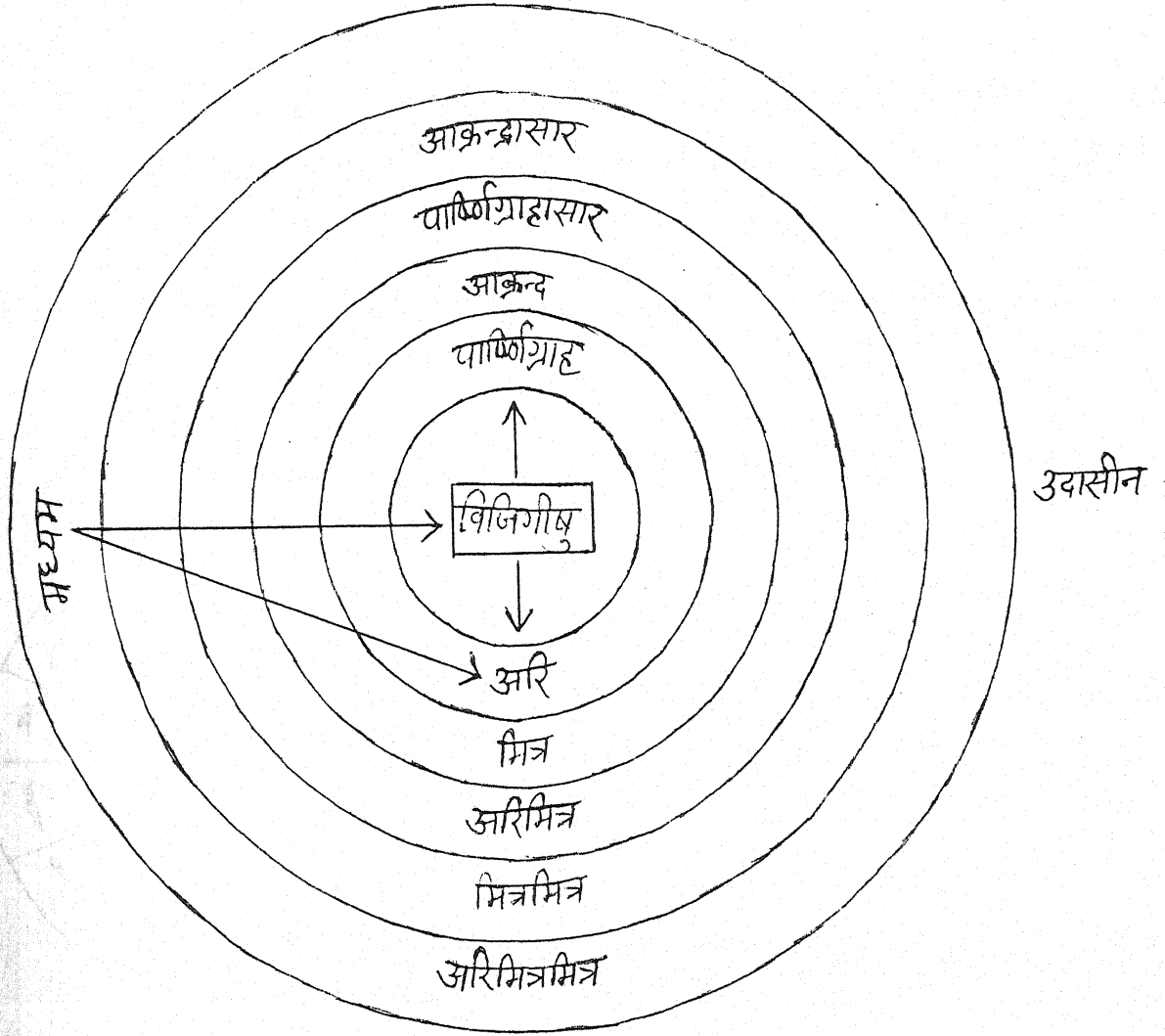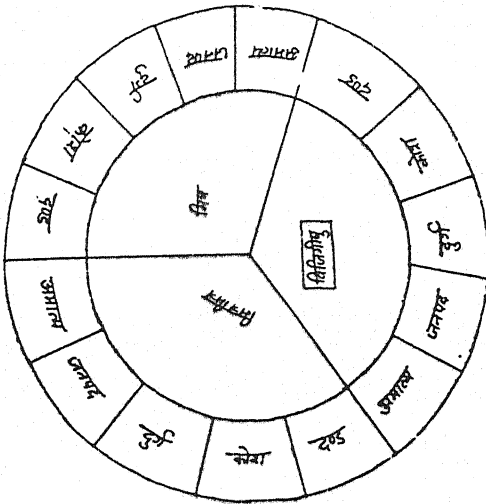
द्वादश राजमण्डल

आक्रन्द्रासार
पार्ष्णिग्राहासार
आक्रन्द
पार्ष्णिग्राह
विजिगीषु
मध्यम
उदासीन
अरि
मित्र
अरिमित्र
मित्रमित्र
अरिमित्रमित्र

विजिगीषु मण्डल की अठारह (3+15=18) प्रकृतियाँ

अरिमण्डल की अठारह (3+15=18) प्रकृतियाँ
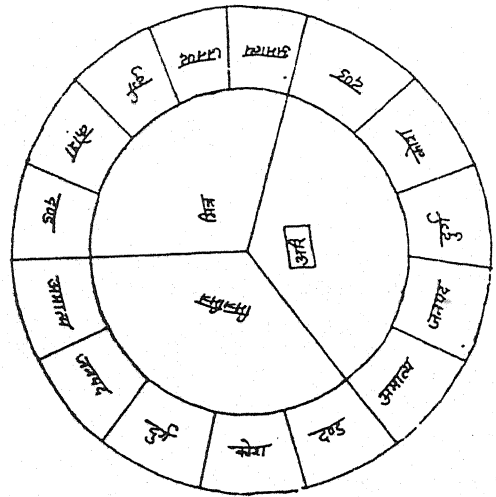
मध्यम मण्डल की अठारह (3+15=18) प्रकृतियाँ
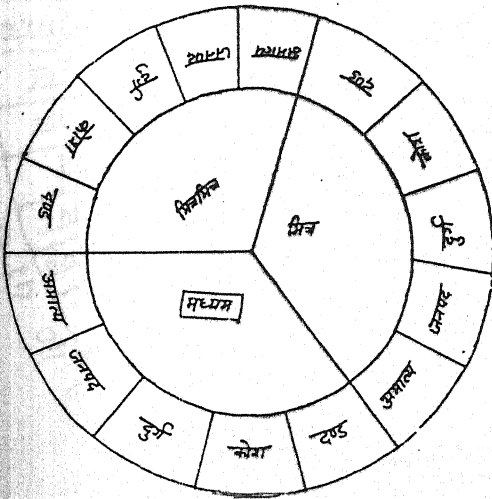
मध्यम
मित्र
मित्रमित्र
अमात्य
जनपद
दुर्ग
कोश
दण्ड
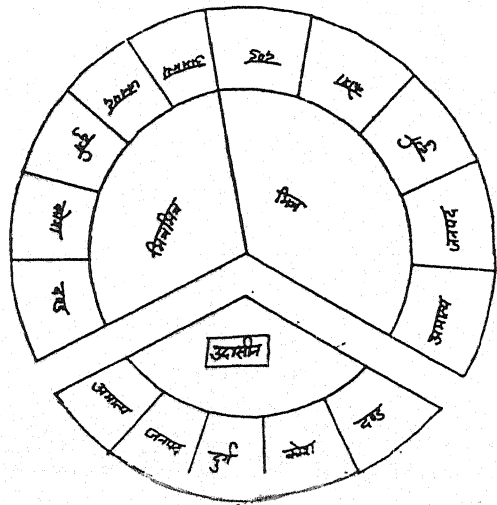
उदासीन मण्डल की अठारह (3+15=18) प्रकृतियाँ

मण्डल सिद्धान्त की बहत्तर (12+60=72) प्रकृतियाँ
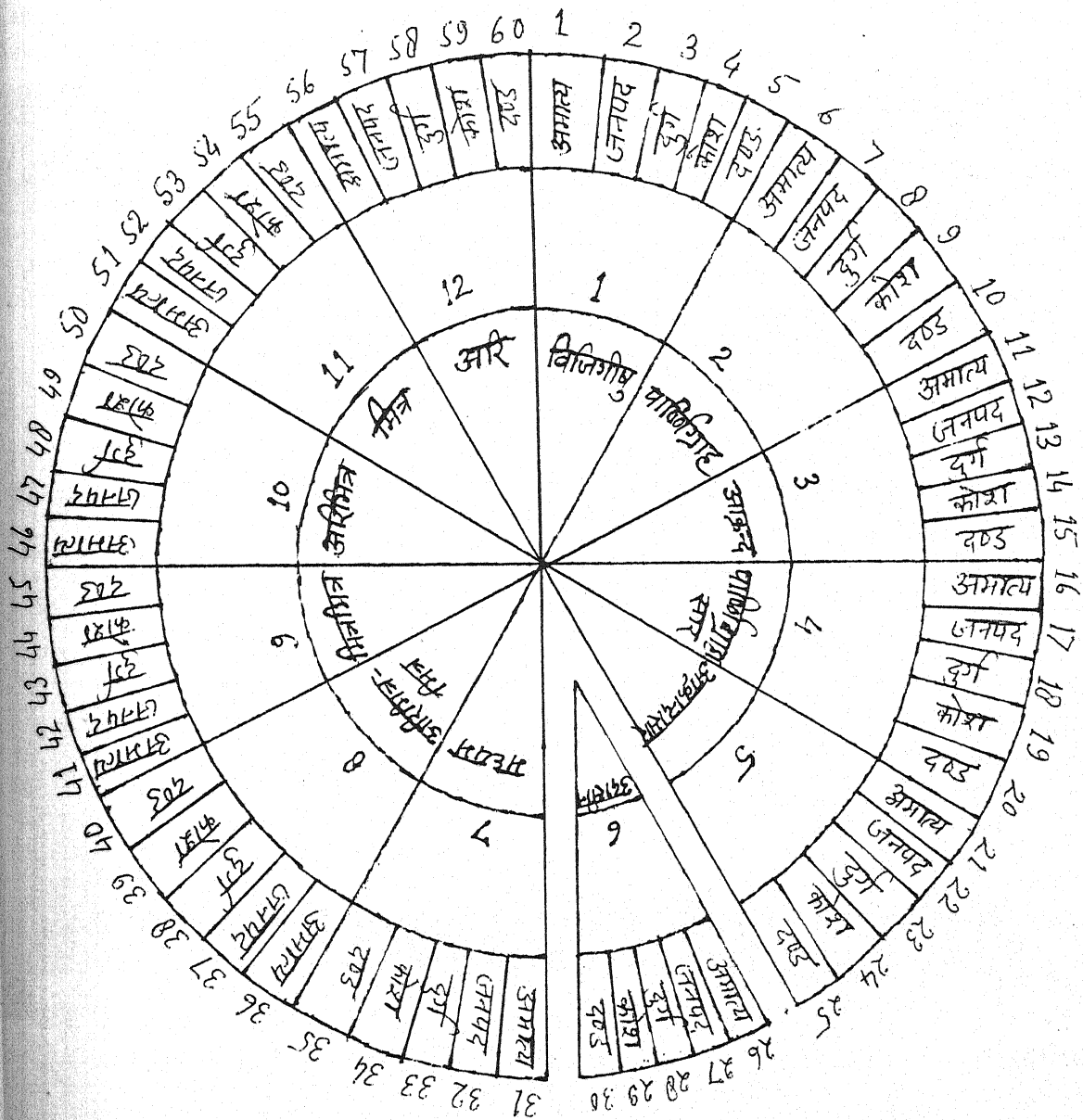
में सफल हो सकेगा जबकि वह उक्त चारों मण्डलों (विजिगीषु मण्डल, अरि मण्डल, मध्यम मण्डल और उदासीन मण्डल) के अठारह–अठारह (कुल 4 × 18 = 72) तत्वों के बल और अबल का विवेचन कर अपनी नीति निर्धारित करे। कौटिल्य के अनुसार जिस शक्ति का विवेचन करके विजिगीषु राजा सफलता प्राप्त कर सकता है वह तीन प्रकार की होती है – (i) मन्त्र शक्ति (ii) प्रभु शक्ति (iii) उत्साह शक्ति। इन तीनों शक्तियों को स्पष्ट करते हुये कौटिल्य ने कहा है कि ज्ञान बल ही मंत्र शक्ति है, कोष–सेना बल ही प्रभुशक्ति है और विक्रम बल ही उत्साह शक्ति है।[18] जब तक इन तीनों प्रकार की शक्तियों को दृष्टिगत रखकर अपनी नीति का निर्धारण नहीं किया जायेगा, तब तक विजिगीषु अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता।

इस प्रकार आचार्य कौटिल्य द्वारा बारह राजप्रकृतियाँ तथा साठ अमात्य आदि द्रव्य-प्रकृतियाँ मिलाकर कुल बहत्तर प्रकृतियाँ निर्दिष्ट की गई। मण्डल सिद्धान्त की उक्त बहत्तर प्रकृतियों को समेकित रूप में आगे एक रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

(ख) षाड्गुण्य सिद्धान्त

कौटिल्य की विदेश नीति को 'षाड्गुण्य नीति' कहा जाता है; जो उन के मण्डल सिद्धान्त का एक अभिन्न अंग है। षाड्गुण्य नीति के अन्तर्गत कौटिल्य ने छैः गुणों को परिगणित किया है – (1) सन्धि (2) विग्रह (3) आसन (4) यान (5) संश्रय एवं (6) द्वैधी–भाव।[19] आचार्य कौटिल्य का षाड्गुण्य सिद्धान्त उनके प्रौढ़ चिन्तन–मनन की सुदृढ़ नींव पर निर्मित एक भव्य राजनीतिक प्रासाद है। वस्तुतः उन्होंने 'योगक्षेम प्राप्ति' को परम लक्ष्य निर्धारित करते हुये 'कर्म' को उसका मूलाधार माना है। 'कर्म' को दो भागों–दैव कर्म एवं मानुष कर्म, में विभाजित करते हुये उन्होंने कहा है कि अदृष्ट (दैवी शक्ति) द्वारा कराया गया कर्म 'दैव कर्म' तथा दृष्ट (मानवी शक्ति) द्वारा किया गया कर्म 'मानुष कर्म' है। उनके अनुसार

---

18. शक्तिस्त्रिविधा–ज्ञानबलं मन्त्रशक्तिः . . . . विक्रमबलमुत्साहशक्तिः। कौ0अर्थ0 6/97/2 पृ0 448
19. सन्धिविग्रहासनयानद्वैधीभावः षाड्गुण्यम् इति कौटिल्यः। कौ0 अर्थ0 7/98–99/1 पृष्ठ 453

ये दोनों कर्म ही लोक–जीवन के संचालक हैं। उनमें भी 'मानुष कर्म' करता हुआ विजिगीषु राजा षाड्गुण्य सिद्धान्त के उक्त सभी छैः गुणों का प्रयोग देश, काल, परिस्थिति के अनुसार करता है। उक्त छैः गुणों के सफल प्रयोग से उसे 'शम' एवं 'व्यायाम' की प्राप्ति होती है। 'शम' एवं 'व्यायाम' ही 'योगक्षेम' के मूल कारण हैं।[20] कौटिल्य के षाड्गुण्य सिद्धान्त के सम्यक् बोध हेतु उक्त सभी छैः गुणों की स्वतंत्र विवेचना यहाँ अपेक्षित है –

(1) सन्धि

सन्धि को परिभाषित करते हुये आचार्य कौटिल्य निर्दिष्ट करते हैं कि कुछ शर्तों के आधार पर दो राजाओं में जो सम्बन्ध स्थापित होता है उसी को सन्धि कहते है। राजा को किन परिस्थितियों में शत्रु राजा से सन्धि कर लेना चाहिये, इस विषय पर अपना मन्तव्य प्रकट करते हुये आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि यदि विजिगीषु राजा अपने शत्रु–राजा से स्वयं को दुर्बल समझता है तो उसे सन्धि कर लेना चाहिये।[21] इसके अतिरिक्त आचार्य कौटिल्य निम्न परिस्थितियों में भी सन्धि कर लेने की सलाह देता है–

(अ) यदि विजिगीषु राजा यह देखे कि सन्धि कर लेने पर मैं अपने शक्तिशाली कर्मों से शत्रु राजा के कर्मों का उन्मूलन कर दूँगा।

(ब) अथवा यदि वह यह देखे कि मैं अपने उत्तम कार्य सम्पादित करने के साथ साथ शत्रु के उत्तम कार्यों का भी लाभ उठा सकूँगा।

(स) अथवा यदि वह यह देखे कि शत्रु से सन्धि कर लेने के बाद जब शत्रु में मेरे प्रति विश्वास हो जायेगा तो गुप्तचरों अथवा विष प्रयोग आदि के द्वारा मैं शत्रु का नाश कर सकूँगा।[22]

(द) अथवा यदि वह यह देखे कि सन्धि के बहाने शत्रु के कार्यकुशल व्यक्तियों को उत्तम फल तथा पर्याप्त लाभ का प्रलोभन देकर अपने पक्ष में कर लूँगा।

(य) अथवा जब वह यह देखे कि अधिक बलवान शत्रु के साथ सन्धि करने पर शत्रु को

20. शमव्यायामौ योगक्षेमयोर्योनिः. . . . . दैवमानुषं हि कर्म लोकं यापयति। कौ0 अर्थ0 6/97/2 पृ0 445
21. तत्र पणबन्ध सन्धिः . . . . परस्माद्धीयमानः सन्दधीत। कौ0 अर्थ0 7/98–99/1 पृष्ठ 453
22. यदि वा पश्येत्–सन्धौ स्थितौ. . . . .परकर्माण्युपहनिष्यामि। उपरोक्त पृष्ठ 455

बहुत धन देना पड़ेगा और इस प्रकार कोश क्षीण होने पर वह अपने कर्मों को भी क्षीण कर लेगा।

(र) अथवा जब वह यह देखे कि शत्रु का जिसके साथ विग्रह हो उसके साथ सन्धि करके मैं अपने शत्रु के साथ होने वाले विग्रह को अधिक दिनों तक बनाये रखूँगा।

(ल) अथवा जब वह यह देखे कि इसके साथ सन्धि कर लेने पर यह मेरे शत्रु–राजा को पीड़ा पहुँचायेगा।

(व) अथवा जब वह यह देखे कि दूसरे से सताया हुआ दूसरा राष्ट्र, इसके साथ सन्धि कर लेने पर मेरे अधीन हो जायेगा। जिससे मैं अपने कार्यों को बढ़ा सकूँगा।

(श) अथवा यदि वह यह देखे कि दुर्ग आदि के नष्ट हो जाने पर आपत्ति में पड़ा मेरा शत्रु मुझ पर आक्रमण न कर सकेगा।

(ष) अथवा यदि वह यह देखे कि किसी दूसरे शत्रु की सहायता से मेरे शत्रु–राजा ने अपने कार्यों का पुनरूद्धार करना प्रारंभ कर दिया है तो भी मैं उन दोनों के साथ सन्धि करके अपने कार्यों को विकसित कर सकूँगा।

(स) अथवा जब वह यह देखे कि मैं अपने शत्रु के साथ सन्धि करके उसके साथ मिले हुये राजमण्डल में फूट डाल दूँगा तथा उस राजमण्डल से अलग हुये राजा को अपने वश में कर लूँगा।

(ह) अथवा यदि वह यह देखे कि मैं अमुक शत्रु–राजा को सैन्य सहायता देकर जब वह किसी राजमण्डल से मिलना चाहेगा तो मैं उस राजमण्डल से उसे मिलने न दूँगा (अर्थात् उसका उससे विरोध करा दूँगा) और विरोध हो जाने पर मैं उस शत्रु राजा को उसी राजमण्डल द्वारा नष्ट करा दूँगा।[23]

कौटिल्य ने सन्धियों पर विस्तापूर्वक विचार करते हुए उनके अनेक अवान्तर भेद किए हैं; जिन्हें आगे एक रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है।

---

23. सुखं वा सानुग्रहपरिहारसौकर्यं . . . . . विद्विष्टं तेनैव घातयिष्यामि। कौ0 अर्थ0 7/98–99/1 पृ0 455–56

आचार्य कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित सन्धि-भेद
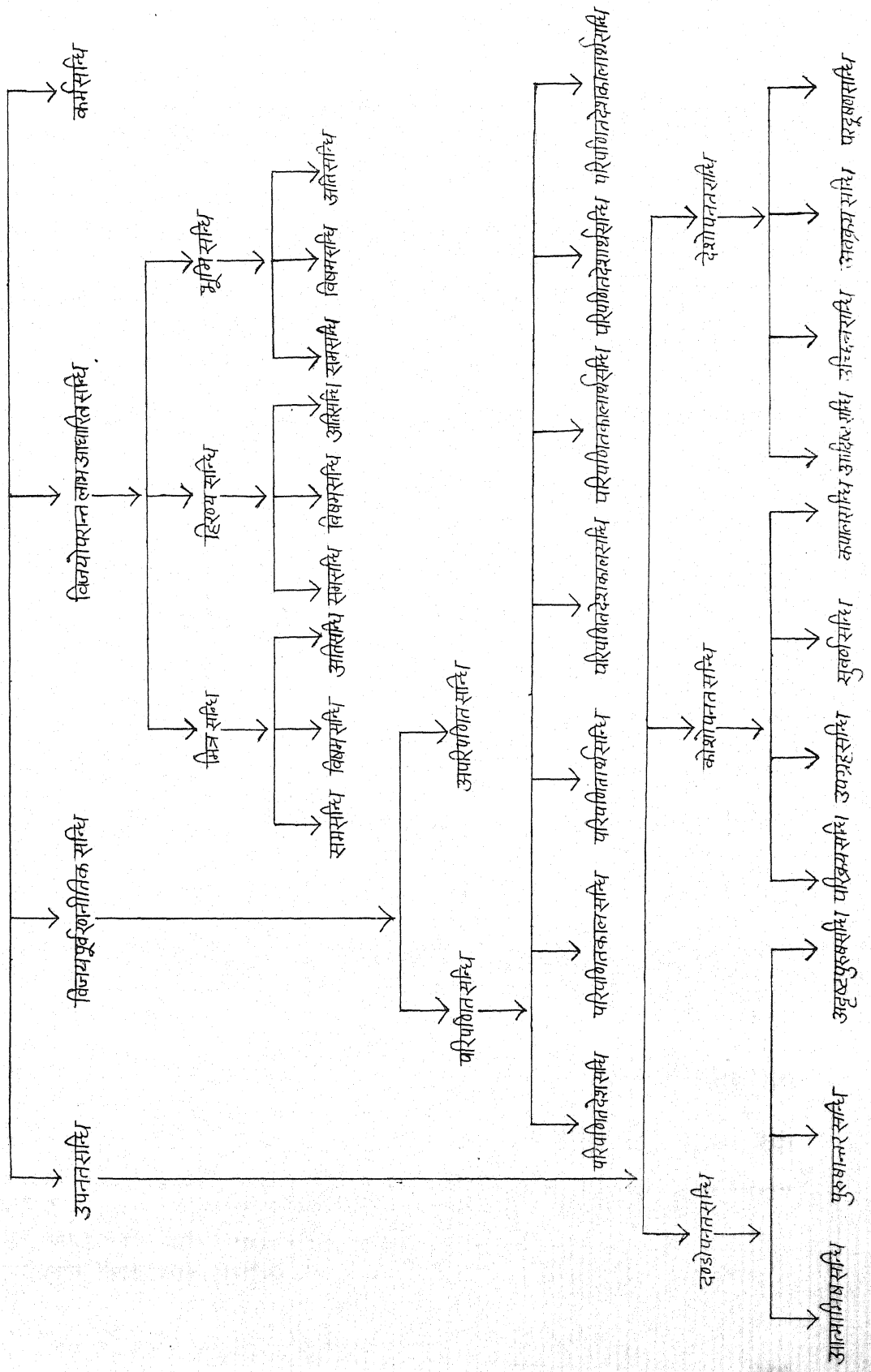
सन्धि धर्म :

आचार्य कौटिल्य के अनुसार सन्धि के चार धर्म है – (i) अकृतचिकीर्षा (ii) कृतश्लेषण (iii) कृतविदूषण तथा (iv) अवशीर्णक्रिया। विजिगीषु राजा की किसी राजा के साथ साम, दान आदि उपायों से पहली बार सन्धि होना तथा उसके अनुसार ही समान बल वाले, निर्बल तथा सबल राजाओं के अधिकारों का पूरा ध्यान रखना 'अकृतचिकीर्षा' कहलाता है। जो सन्धि की जाय उसका प्रिय तथा हितकर आचरण द्वारा निर्वाह करना, अपनी वचनवद्धता को इस प्रकार निभाना तथा उसकी रक्षा करना कि कोई भी शत्रु उसे छिन्न भिन्न न कर सके तो ऐसे सन्धि–कार्य को 'कृतश्लेषण' कहते हैं। जब विजिगीषु राजा पहले किसी राजा के साथ सन्धि करता है और बाद में उस पर यह दोष लगा देता है कि 'उसने किसी अन्य शत्रु के साथ सन्धि कर ली है, इसलिये अब वह सन्धि करने योग्य नही है।' इस प्रकार उसका दोष सिद्ध करके विजिगीषु राजा जब सन्धि भङ्ग कर देता है तो उसे 'कृतविदूषण' कहते हैं। किसी दोष के कारण सन्धि भङ्ग किये गये सेवक या मित्र के साथ जब विजिगीषु पुनः सन्धि कर लेता है तो उसे 'अवशीर्णक्रिया' कहते हैं।[24]

(2) विग्रह

आचार्य कौटिल्य ने 'षाड्गुण्य सिद्धान्त' के अन्तर्गत 'विग्रह' नामक द्वितीय गुण को परिभाषित करते हुये कहा है कि राजाओं का परस्पर एक दूसरे के अपकार में संलग्न होना 'विग्रह' कहलाता है।[25] दूसरे शब्दों में यह युद्ध करना है। उनके मतानुसार विजिगीषु राजा को 'विग्रह' गुण का अवलम्बन तभी लेना चाहिये जब वह अपने शत्रु की तुलना में स्वयं को अधिक बलवान समझे।[26] कौटिल्य ने उन विशेष परिस्थितियों का उल्लेख किया है जिनके अन्तर्गत विजिगीषु को 'विग्रह' गुण का आश्रय लेना चाहिये। उनके अनुसार विजिगीषु राजा यदि यह समझे कि – 'मेरे राज्य में प्रायः लोग शस्त्राजीवी तथा संगठित हैं, पर्वत, वन, नदी

---

24. अपूर्वस्य सन्धेः. . . . . .प्रतिसन्धानमवशीर्णक्रिया। कौ0 अर्थ0 7/111/6 पृष्ठ 479–80
25. अपकारो विग्रहः। कौ0 अर्थ0 7/98–99/1 पृष्ठ 453
26. अभ्युच्चीयमानो विग्रहणीयात्। उपरोक्त

तथा दुर्ग पर्याप्त हैं; केवल एक ही प्रवेश द्वार है; शत्रु द्वारा किये गये आक्रमण का वह वीरतापूर्वक प्रतीकार करने में समर्थ है; अपने राज्य की सीमा के दृढ़ दुर्ग में स्थित होकर शत्रु के कार्यों को नष्ट करने में मैं समर्थ हूँ; व्यसन और कष्टों से उसके शत्रु का सारा उत्साह नष्ट हो गया है; शत्रु के कार्यों का विनाशकाल अब समीप आ पहुँचा है; यदि युद्ध छिड़ गया तो वह शत्रु के कुछ भू–भागों पर अधिकार करने में समर्थ हो सकेगा। ऐसी परिस्थितियों में विजिगीषु राजा को 'विग्रह' गुण का आश्रय लेकर अपनी वृद्धि करना चाहिये।[27] इसके अतिरिक्त कौटिल्य के अनुसार विग्रह तभी किया जाये जब वह शत्रु से निपुण हो, उसकी अपनी दुर्ग व्यवस्था ठीक हो, शत्रु संकटग्रस्त हो एवं उसे अपने मित्रों से सहायता प्राप्त हो रही हो।

(3) आसन

आचार्य कौटिल्य के अनुसार उचित एवं अनुकूल समय की प्रतीक्षा में शत्रु की उपेक्षा करते हुये चुपचाप बैठे रहना 'आसन' गुण कहलाता है।[28] वस्तुतः स्थान, आसन तथा उपेक्षण–इन तीन शब्दों को आचार्य कौटिल्य ने 'आसन' का पर्यायवाची माना है। जब विजिगीषु राजा स्वयं में शत्रु कृत अपकार का बदला लेने की शक्ति न होने के कारण चुप बैठा रहता है तब इस गुण को 'स्थान' कहना उपयुक्त होता है। जब वह अपनी वृद्धि के लिये अनुकूल समय आने की प्रतीक्षा में चुप बैठा रहता है तब इसी गुण को 'आसन' कहना समीचीन होता है। जब वह अपने शत्रु के साथ साम–दान–भेद–दण्ड आदि उपायों का प्रयोग न करता हुआ चुप बैठता है तो यही गुण 'उपेक्षण' कहलाता है। आचार्य कौटिल्य ने 'आसन' गुण के निम्नांकित दो उपभेद किये है –

(i) विगृह्य आसन

एक दूसरे को क्षति पहुँचाने में असमर्थ तथा सन्धि करने के इच्छुक विजिगीषु एवं शत्रु राजा जब कुछ समय के लिये परस्पर विग्रह (अपकार) करने के बाद चुप बैठ जाते हैं तो उसे 'विगृह्य आसन' कहते हैं।

27. यदि वा पश्येत् 'आयुधीयप्रायः......विग्रहे स्थितो वृद्धिमातिष्ठेत्। कौ० अर्थ० 7/98–99/1 पृष्ठ 456
28. उपेक्षणमासनम। उपरोक्त पृष्ठ 453

(ii) सन्धाय आसन

जब वही दोनों राजा सन्धि करके चुप बैठते है तो उसे 'सन्धाय आसन' कहते हैं।[29]

'आसन' गुण का आश्रय लेने हेतु विभिन्न परिस्थितियों का उल्लेख करते हुये आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि जब विजिगीषु राजा यह देखे कि – 'मैं अपनी तथा मित्र राजा की अथवा आटविक राजा की सेना के द्वारा किसी समशक्ति अथवा अधिक शक्ति वाले शत्रु–राजा की सेना को पराजित कर लूँगा' तो अपनी आन्तरिक तथा बाह्य व्यवस्थाओं को सुव्यवस्थित करके वह विग्रह करने के बाद चुप होकर बैठ जाये। इसके अतिरिक्त जब वह यह देखे कि 'मेरी अयात्य आदि प्रकृतियाँ पूरे उत्साह पर हैं, संगठित तथा प्रगति पर हैं, एवं निर्विरोध रूप से अपने कर्मों की रक्षा तथा शत्रु के कर्मों को नष्ट करने में सक्षम हैं' तो उसे विग्रह करके चुप बैठना उपयुक्त है।

जब उसे लगे कि 'मेरे शत्रु का प्रकृतिमण्डल दुश्चरित्र, क्षीण, लोमी है; अपनी ही सेना, चोर एवं आटविकों से पीड़ित है; वे स्वयं अथवा भेद आदि उपायों के द्वारा मेरे पक्ष में आ जायेंगे, मेरी वार्ता (कृषि, पशुपालन और व्यापार) सफल तथा शत्रु की विफल है; उसके दुर्भिक्षपीड़ित प्रकृति जन मेरे पक्ष में आ जायेंगे; अथवा मेरी वार्ता (कृषि, पशुपालन और व्यापार) विफल तथा शत्रु भी सफल है; फिर भी मेरा प्रकृति मण्डल शत्रु के पक्ष में नही जायेगा। बल्कि विग्रह करके मैं शत्रु के धनधान्य, पशु, हिरण्य आदि नष्ट करने में सक्षम हूँ; मैं अपने व्यापार को क्षति पहुँचाने वाले शत्रु–व्यापार का निवारण कर सकूँगा; विग्रह करके शत्रु के व्यापार–मार्ग से हाथी, घोड़े आदि सारवान वस्तुयें मेरे पास आ जायेंगी तथा मेरी वही वस्तुयें शत्रु के पास नहीं जा सकेंगी; अथवा विग्रह करके शत्रु अपने दूष्य, शत्रु और आटविकों को वश में नही कर सकेगा; या उनके साथ भी उसका विग्रह हो जायेगा; अथवा विग्रह के द्वारा शत्रु के कार्यों में रूकावट डालकर मैं अपने मित्र–राजा का अल्प समय में इतना अधिक

---

29. स्थानमासनुपेक्षणं . . . . . . विगृह्यासनं सन्धाय वा। कौ0 अर्थ0 7/103–107/4 पृष्ठ 466

उपकार कर दूँगा कि वह धनधान्य से सम्पन्न हो जायेगा; अथवा इस प्रकार मेरे द्वारा अनादृत यह शत्रु–राजा अत्यन्त उपजाऊ भूमि को लेने के लिये अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ कहीं आक्रमण न कर दे; इन सम्भावनों के रहते विजिगीषु राजा को यही उपयुक्त है कि वह अपनी अभ्युन्नति तथा शत्रु की अवनति के लिये विग्रह करके 'आसन' गुण का आश्रय ले। विग्रह करके 'आसन' गुण का सेवन करने हेतु जो उपरोक्त परिस्थितियाँ निर्दिष्ट हो गई हैं; यदि उनसे विपरीत परिस्थितियाँ सामने हों तो फिर विजिगीषु राजा को (विग्रह करके नहीं अपितु) सन्धि करके 'आसन' गुण का आश्रय लेना चाहिये।[30] एक विशेष परिस्थिति का उल्लेख करते हुये आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि–यदि राजा यह समझे कि न तो उसका शत्रु और न वह स्वयं ही इतना समर्थ है कि वे एक दूसरे के कार्यों में क्षति पहुँचा सकें; यद्यपि शत्रु राजा व्यसन ग्रस्त है फिर भी कलह का आश्रय लेने में कुत्ते और शूकर के आक्रमण के तुल्य उसका कोई फल नहीं निकलेगा; यदि वह अपना काम करता रहा हो तो वृद्धि को प्राप्त होगा; ऐसी स्थिति में राजा को 'आसन' गुण का आश्रय लेकर अपनी उन्नति करना चाहिये।[31] इस प्रकार शत्रु बल एवं आत्मबल को समान पाने पर अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिये, सन्धि न करने की इच्छा वाले राजा के द्वारा उपयुक्त समय की प्रतीक्षा में बैठ जाने को 'आसन' कहा जाता है। इसका एक और उपाय है युद्ध की घोषणा करके चुपचाप बैठ जाना।

(4) यान

आचार्य कौटिल्य के अनुसार एक राजा का दूसरे राजा पर आक्रमण करना 'यान' गुण कहलाता है।[32] दूसरे शब्दों में 'यान' का अर्थ है– चढ़ाई करना। उनके मतानुसार जब 'विजिगीषु' राजा यह समझे कि शत्रु–राजा के कर्मों का नाश उस पर आक्रमण किये जाने पर ही हो सकता है तथा उसने स्वयं अपने राज्य की रक्षा का समुचित प्रबन्ध कर लिया है तो ऐसी स्थिति में उसे 'यान' गुण का आश्रय लेना चाहिये।[33] कौटिल्य का कहना है कि 'यान'

---

30. यदा वा पश्येत्.... विग्रह्यासनहेतुप्रातिलोम्ये सन्धायासीत। कौ0अर्थ0 7/103–107/4 पृष्ठ 466–68
31. यदि वा मन्येत्....... इत्यासनेन वृद्धिमातिष्ठेत। कौ0 अर्थ0 7/98–99/1 पृष्ठ 456–57
32. अभ्युच्चयो यानम्। उपरोक्त पृष्ठ 453
33. यदि वा मन्येत्–यानसाध्यः .... इति यानेन वृद्धिमातिष्ठेत्। उपरोक्त पृष्ठ 457

का प्रयोग तभी किया जाये जब शत्रु राज्य निर्बल या निर्धन हो, जब वे आपस में कलहरत हों, उनमें आपसी एकता न हों, उनके राज्य में योग्य राजा का अभाव हो, उनमें अकाल आदि के प्राकृतिक संकट हों तो विजिगीषु स्वयं शक्ति संग्रह करके यान का प्रयोग करे। कौटिल्य यह भी कहते हैं कि स्वयं शक्तिशाली न होने पर वह मित्र राज्यों के साथ मिलकर संयुक्त रूप से 'यान' का प्रयोग करे।

(5) संश्रय

आचार्य कौटिल्य के मत में किसी शक्तिशाली शत्रु राजा के समक्ष आत्मसमर्पण कर देना ही 'संश्रय' गुण कहलाता है।[34] उनके मतानुसार यदि विजिगीषु राजा यह समझे कि न तो वह शत्रु के कार्यों में हानि पहुँचा सकता है और न स्वयं अपने कार्यों की रक्षा कर सकता है तो ऐसी स्थिति में उसे किसी दूसरे शक्तिशाली राजा का आश्रय (संश्रय) लेना चाहिये। तदुपरान्त वह अपना कार्य साधते हुये इस 'क्षय' से 'स्थान' तथा 'स्थान' से 'वृद्धि' की आकांक्षा करे।[35] बलहीन राजा को किस राजा का संश्रय लेना चाहिये, इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डालते हुये आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि एक हीनबल राजा का शत्रु जितना बलशाली हो उससे अधिक शक्तिशाली राजा का आश्रय उसे ग्रहण करना चाहिये। यदि उसे ऐसा बलवान राजा कोई न मिले तो फिर अपने शत्रु–राजा का ही आश्रय लेना चाहिये तथा कोश, सेना, स्त्री अथवा भूमि देकर उस शत्रु–राजा को सन्तुष्ट करना चाहिये; परन्तु स्वयं उसके सम्मुख न जाये। क्योंकि बलवान राजा का आश्रय लेना कभी कभी बड़ा अनिष्टकारी होता है। लेकिन उस बलवान राजा ने यदि किसी शत्रु से दुश्मनी ठान रखी हो तो फिर उसका आश्रय लेने में कोई हानि नही है। यदि बलवान राजा के निकट गये बिना उसको प्रसन्न करना असम्भव हो तो अपनी सेना देकर उससे मिल–जुलकर नम्रतापूर्वक उसी के पास रहे। समीपस्थ दो बलवान राजाओं में जिसकी ओर से शीघ्र ही भय की आशंका दिखाई दे उसी का आश्रय लेता हुआ वह अपनी भावी आपत्ति का प्रतीकार करे। जब दोनों ही राजा

---

34. परार्पणं संश्रयः। कौ० अर्थ० 7/98–99/1 पृष्ठ 453
35. यदि वा मन्येत–'नास्मि शक्तः. . . . . . .वृद्धिं चाकांक्षेत्। उपरोक्त पृष्ठ 457

उसके लिये कष्टदायी हों तो फिर या तो उसे मण्डल का आश्रय लेना चाहिये या फिर मध्यम, अथवा उदासीन राजा का आश्रय लेना चाहिये। 'संश्रय' गुण का उपसंहार करते हुये आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि जो जिसका प्रिय है उन दोनों में कौन किसके लिये प्रिय नही होता अर्थात् उनमेंवे दोनों एक दूसरे को प्रिय होते हैं। इसलिये जिसे जो प्रिय हो वह उसी का आश्रय ले, यही उत्तम 'आश्रय' स्थान है।[36] कौटिल्य के विचारानुसार 'संश्रय' द्वारा दुर्बल राजा भी सबल बन जाता है।

(6) द्वैधीभाव

आचार्य कौटिल्य के अनुसार विजिगीषु राजा द्वारा सन्धि एवं विग्रह दोनों से काम लेना 'द्वैधीभाव गुण' कहलाता है।[37] किन परिस्थितियों में एक विजिगीषु राजा को 'द्वैधीभाव गुण' को प्रयोग में लाना चाहिये ? इस विषय पर आचार्य कौटिल्य का निर्देश है कि विजिगीषु राजा जब यह समझे कि मैं अपने एक शत्रु के साथ सन्धि करके अपने कार्यों को यथावत् सम्पन्न करता रहूँगा तथा अपने दूसरे शत्रु के साथ विग्रह करके उसके कार्यों को नष्ट कर सकूँगा; तो ऐसी स्थिति में उसे 'द्वैधीभाव' गुण का अवलम्बन लेकर अपनी वृद्धि हेतु चेष्टा करनी चाहिये।[38] कौटिल्य के मतानुसार विजिगीषु राजा अवसर के अनुसार सन्धि एवं विग्रह दोनों उपायों का एक साथ प्रयोग करें किन्तु उनमें से किसी को ऐसा करने की प्रतीति न होने दे।

आचार्य कौटिल्य ने अपने षाड्गुण्य सिद्धान्त का उपसंहार करते हुये लिखा है कि जो राजा इन छः गुणों का विचारपूर्वक प्रयोग करता है वह निश्चित ही अपनी बुद्धिरूपी श्रंखला से बाँधे हुये राजमण्डल के अन्य राजाओं के साथ इच्छानुसार क्रीडा करता है।[39]

(ग) उपायचतुष्टय

आचार्य कौटिल्य सहित प्रायःसभी प्राचीन भारतीय राजशास्त्र प्रणेताओं ने

---

36. यद्बलः सामन्तः . . . . . गच्छेदित्याश्रयगतिः परा। कौ0 अर्थ0 7/100/2 पृष्ठ 458–60
37. सन्धिविग्रहोपादानं द्वैधीभाव इति षड् गुणाः। कौ0 अर्थ0 7/98–99/1 पृष्ठ 453
38. यदि वा मन्येत. . . . .इति द्वैधीभावेन वृद्धिमातिष्ठेत्। उपरोक्त पृष्ठ 457
39. एममन्योन्यसंचारं . . . . . .क्रीडति पार्थिवः। कौ0 अर्थ0 7/124–126/18 पृष्ठ 550

षाड्गुण्य नीति के सफल क्रियान्वयन हेतु चार प्रकार के उपाय निर्दिष्ट किये हैं–(i) साम (ii) दान (iii) भेद (iv) दण्ड। उक्त चारों उपायों के संबंध में कौटिलीय अर्थशास्त्र के दिशा–निर्देश निम्न प्रकार हैं –

(i) साम

आचार्य कौटिल्य के अनुसार किसी को विशेष महत्व तथा मान सम्मान देते हुये समझाना 'साम' कहलाता है।[40] इसके उन्होंने निम्नांकित पाँच भेद किये हैं–

(अ) गुणसंकीर्तन

वंश, शरीर, कार्य, स्वभाव, विद्वत्ता, हाथी–घोड़े–रथ आदि द्रव्यों, गुणों, और अवगुणों को जानकर उनकी प्रशंसा तथा स्तुति करना 'गुण संकीर्तन' कहलाता है। इसमें मधुर वाणी द्वारा समझा बुझा कर शत्रु को अपने अनुकूल बनाया जाता है।

(ब) सम्बन्धोपाख्यान

समान कुल, विवाह, गुरु–शिष्य, पुरोहित–यजमान, वंशपरम्परागत, हार्दिक और मैत्रीभाव आदि सम्बन्धों में से किसी एक का कथन करना 'सम्बन्धोपाख्यान' कहलाता है।

(स) परस्परोपकारसंदर्शन

परस्पर एक दूसरे द्वारा किये गये उपकार का कथन करना 'परस्परोपकार–संदर्शन' कहलाता है।

(द) आयतिप्रदर्शन

'इस कार्य के करने में हम दोनों को ऐसा फल प्राप्त होगा' इस प्रकार की आशा प्रदर्शित करना 'आयतिप्रदर्शन' है।

(य) आत्मोपनिधान

'जो मैं हूँ वही आप हैं तथा जो मेरा धन है उसे आप इच्छानुसार अपने कार्यों में लगा सकते हैं' इस प्रकार की समर्पण भावना को 'आत्मोपनिधान' कहते हैं।[41]

40. स्थानमानकर्म सान्त्वम्। कौ0 अर्थ0 9/143/5 पृष्ठ 614
41. तत्राभिजनशरीरकर्म. . . . .इत्यात्मोपनिधानमिति। कौ0 अर्थ0 2/26/10 पृष्ठ 123

साम उपाय को आगे और स्पष्ट करते हुये आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि गाँव या वन में रहने वाली गाय–भैंसों की तथा जलीय एवं स्थलीय व्यापार मार्गों की रक्षा करना; दूसरे राजा के भय से भागे हुये या स्वयं अपकार करके भागे हुये दूष्य, अमात्य आदि प्रकृतियों को खोज–खोज कर देना; आदि उपकार कार्यों के द्वारा शत्रु–राजा को वश में करने के लिये 'साम' नामक उपाय का प्रयोग करना चाहिये।[42] 'साम' का प्रयोग दो प्रकार से होता है– तथ्य साम तथा अतथ्य साम। सच्चे हृदय से किये गए प्रयोग को 'तथ्य साम' कहते हैं; जबकि ऊपरी मन से किया गया प्रयोग 'अतथ्य साम' कहा जाता है।

(ii) दान

आचार्य कौटिल्य के अनुसार धन देना, कर्ज तथा कर आदि से मुक्त करना तथा विशेष कार्यों से प्राप्त सम्पूर्ण फल को दे देना 'दान' कहलाता है।[43] अथवा धन आदि के द्वारा उपकार करना 'दान' है।[44] इस उपाय के प्रयोग के संबंध में आचार्य कौटिल्य का निर्देश है कि भूमिदान, द्रव्यदान, कन्यादान तथा अभयदान आदि उपकार करके शत्रु–राजा के साथ 'दान' नामक उपाय का प्रयोग करना चाहिये।[45] आचार्य कौटिल्य ने 'दान' के पाँच भेद किये हैं – (i) देयविसर्ग (किसी की देय वस्तु को उसी के लिये छोड़ देना) (ii) गृहीतानुवर्तन (किसी से ली गई वस्तु पर उसके प्रति कृतज्ञता/प्रसन्नता व्यक्त करना) (iii) आत्तप्रतिदान (किसी से लुटी हुयी सम्पत्ति, जीती हुयी भूमि अथवा ली गई वस्तु उसी को वापस कर देना) (iv) स्वद्रव्यदानमपूर्वम् (पहले कभी न दी गई अपनी वस्तु को देना) (v) परस्वेषुस्वयंग्राहदानम (दूसरों की वस्तु को स्व्यं जब्त कर अपने अभीष्ट व्यक्ति को देना)।[46]

(iii) भेद

पूर्वोक्त दोनों उपायों के प्रयोग द्वारा भी शत्रु के वश में न आने पर 'भेद' का प्रयोग किया जाता था। शत्रु के हृदय में शङ्का एवं उलझन पैदा करन देना 'भेद' कहलाता

42. ग्रामारण्योपजीवि. . . . . . .सान्त्वमाचरेत्। कौ0 अर्थ0 7/121/16 पृष्ठ 532
43. अनुग्रपरिहारौ कर्मस्वायोगो वा दानम्। कौ0 अर्थ0 9/143/5 पृष्ठ 614
44. उपप्रदानमर्थोपकारः। कौ0 अर्थ0 2/26/10 पृष्ठ 123
45. भूमिद्रव्यकन्यादानमभयस्य चेति दानमाचरेत्। कौ0 अर्थ0 7/121/16 पृष्ठ 532

47. तत् पञ्चविधम्. . . . . चेति दानकर्म। कौ0 अर्थ0 9/144/6, पृष्ठ 619

है।[47] दूसरे शब्दों में, युक्ति द्वारा संगठित उपायों से, अपने से आशा एवं अन्य से भय दिखाकर शत्रु–राज्यों में फूट डालना 'भेद' है। इस उपाय के प्रयोग के संबंध में आचार्य कौटिल्य का निर्देश निम्न प्रकार है – 'विजिगीषु राजा को चाहिये कि वह सामन्त, आटविक, शत्रु–राजा का संबंधी अथवा नजरबन्द शत्रु–राजा का पुत्र आदि; इनमें से किसी एक को अपने वश में करके उसके द्वारा कोश, सेना, भूमि और दायभाग की माँग करवाकर बलवान राजा एवं उसके उक्त सामन्त आदि के बीच अन्तर्कलह करवाते हुये उसे 'भेद' नामक उपाय का प्रयोग करना चाहिये।[48]

(iv) दण्ड

तीनों उपायों के असफल होने पर अन्त में 'दण्ड' उपाय का प्रयोग किया जाता था। शत्रु को मार देना, पीड़ित करना तथा उसके धन का अपहरण करना 'दण्ड' कहलाता है।[49] कौटिलीय अर्थशास्त्र निर्देश देता है कि प्रकाश युद्ध (देशकाल की सूचना देकर किया जाने वाला युद्ध), कूट युद्ध (देशकाल की सूचना दिये बिना अथवा भ्रामक सूचना देकर किया जाने वाला युद्ध) तथा तूष्णी युद्ध (छिपे तौर पर गुप्तचरों द्वारा शत्रु बन्ध करवाना) एवं अन्य कपट उपायों द्वारा शत्रु को अपने वश में करने के लिये 'दण्ड' नामक उपाय का प्रयोग करना चाहिये।[50] दण्ड के अन्तर्गत शारीरिक दण्ड, उत्पीड़न, बन्दी बनाना, बध करना एवं ध ान हरण करना आदि अनेक प्रकार के दण्डों का निर्धारण है।

आचार्य कौटिल्य के मत में उपरोक्त चारों उपायों में उत्तर की अपेक्षा पूर्व का उपाय लघु (हलका अर्थात् कम महत्वपूर्ण) होता है। अर्थात् पूर्ववर्ती उपाय से उत्तरवर्ती उपाय अधिक महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि प्रथम उपाय 'साम' में केवल एक ही गुण 'साम' होता है। जबकि उससे उत्तरवर्ती उपाय 'दान' में दो गुण निहित होते हैं – साम तथा दान। उससे उत्तरवर्ती उपाय 'भेद' में तीन गुण होते हैं – साम, दान तथा भेद। तथा उससे भी उत्तरवर्ती उपाय 'दण्ड' में चारों गुण होते है – साम, दान, भेद तथा दण्ड।[51]

---

47. शङ्काजननं निर्भर्त्सनं च भेदः। कौ0 अर्थ0 2/26/10 पृष्ठ 123
48. सामन्ताटविकतत्कुलीन . . . . . .इति भेदमाचरेत्। कौ0 अर्थ0 7/121/16 पृष्ठ 533
49. वधः परिक्लेशोऽर्थहरणं दण्ड इति। कौ0 अर्थ0 2/26/10 पृष्ठ 124
50. प्रकाशकूटतूष्णीयुद्ध. . . . . दण्डमाचरेत। कौ0 अर्थ0 7/121/16 पृष्ठ 533.
51. पूर्वः पूर्वश्चास्य लघिष्ठः. . . . .दण्डश्चतुर्गुणः सान्त्वदानभेदपूर्वः। कौ0 अर्थ0 9/144/6 पृष्ठ 622

आचार्य कौटिल्य ने उपरोक्त चारों उपायों का आवश्यकतानुसार संयुक्त रूप से अथवा पृथक पृथक प्रयोग करने का निर्देश देते हुये कहा है कि परिस्थितियों के अनुकूल ही उक्त उपायों के 'नियोग', 'विकल्प' तथा 'समुच्चय' का विचार करते हुये उनका प्रयोग करना चाहिये। कौटिल्य के अनुसार – 'केवल इसी एक उपाय से कार्य सिद्धि होगी, दूसरे से नहीं, इस प्रकार का निश्चय करना 'नियोग' कहलाता है। या तो इस उपाय से कार्य सिद्धि होगी या इस उपाय से; इस प्रकार की वैकल्पिक स्थिति 'विकल्प' कहलाती है। इस उपाय को तथा दूसरे उपाय को मिलाकर करने से कार्य सिद्धि होगी। ऐसी स्थिति को 'समुच्चय' कहते हैं।[52] कौटिलीय अर्थशास्त्र में उक्त उपायों के व्यवहारिक प्रयोग हेतु निर्दिष्ट किया गया है कि दुर्बल राजाओं को प्रारंभिक दो उपायों–साम और दान के द्वारा तथा सबल राजाओं को अन्तिम दो उपायों–भेद और दण्ड के द्वारा वश में किया जाना चाहिये।[53]

(घ) दूत व्यवस्था एवं गुप्तचर व्यवस्था

दूत व्यवस्था

अन्तर्राज्य सम्बन्ध स्थापित करने में 'दूत' की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। दूत का अर्थ है– सन्देश वाहक। इसे 'वार्ताहर' भी कहा गया है। 'दूत' को राजा का मुख निरूपित करते हुये आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि दूत रूपी मुख से ही राजागण परस्पर बात करते हैं।[54] प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक केवल मित्र देश में ही नहीं अपितु शत्रु देश में भी 'दूत' की आवश्यकता एवं उपयोगिता अनवरत रूप से स्वीकार की जाती रही है।

दूतों के कर्त्तव्य एवं दायित्व

कौटिलीय अर्थशास्त्र में 'दूत' के निम्नांकित कार्य निर्दिष्ट किये गये हैं – (i) शत्रु राज्य में अपने स्वामी का सन्देश लेकर जाना (ii) राजाओं के बीच हुई सन्धि को बनवाये रखना (iii) समय आने पर अपने पराक्रम का प्रदर्शन करना (iv) अपने स्वामी के अधिक से

---

52. 'अनेनैवोपायेन नान्येन' . . . . .'अनेनान्येन च' इति समुच्चयः। कौ० अर्थ० 9/145–46/7 पृष्ठ 632
53. सामदानाभ्यां दुर्बलानुपनमयेद भेददण्डाभ्यां बलवतः। कौ० 7/121/16 पृष्ठ 532
54. दूतमुखा वै राजानस्त्वं चान्ये च। कौ० अर्थ० 1/11/15 पृष्ठ 50

अधिक मित्र बनाना (v) शत्रु के कृत्य पक्ष में फूट डालना (vi) शत्रु के मित्रों को उससे विमुख करना (vii) तीक्ष्ण एवं रसद आदि गुप्तचरों तथा सेना को शत्रु–राज्य में भेजना (viii) शत्रु राजा के वान्धवों एवं रत्नों को छीनना (ix) शत्रु राज्य में रहकर गुप्तचरों के कार्यों की निगरानी करना (x) सन्धि के तहत जमानत के रूप में रखे हुये राजकुमार को मुक्त कराना, तथा (xi) कार्य सिद्धि हेतु मारण, मोहन, उच्चाटन आदि तांत्रिक उपायों का प्रयोग करना।

कौटिल्य का स्पष्ट निर्देश है कि विजिगीषु राजा उपरोक्त सभी कार्य अपने दूतों के द्वारा करवाये तथा शत्रु–राजा के दूतों पर अपने दृश्य तथा अदृश्य (गुप्त) रक्षक कर्मचारियों एवं गुप्तचरों के माध्यम से कड़ी नजर रखे।[55] कौटिल्य के मतानुसार 'दूत' को पर–राज्य में वहाँ के राजा की आज्ञा प्राप्त कर लेने के बाद ही उस राज्य में प्रवेश करना चाहिये। वहाँ पर उसे प्राणबाधा उत्पन्न होने पर भी अपने राजा का आदेश/सन्देश ज्यों का त्यों प्रस्तुत करना चाहिये। जब तक शत्रु राजा उसे अपने राज्य से जाने की आज्ञा न दे तब तक उसे वहीं रहना चाहिये। पर–राज्य में किये गये सत्कार से उसे अधिक प्रफुल्लित नहीं होना चाहिये। पर–राज्य में रहते हुये वह स्वयं को बलवान न समझे। यदि वहाँ कोई अनिष्ट वचन भी बोलता है तो उन्हें उसे सहन कर लेना चाहिये। पर–स्त्रीगमन तथा मदिरापान से उसे स्वयं को अलग रखना चाहिये; तथा उसे अकेला ही सोना चाहिये। क्योंकि मदिरापान करने तथा दूसरों के साथ सोने से प्रमादवश या स्वप्नावस्था में मन के भावों (गुप्त रहस्यों) के प्रकट हो जाने की सम्भावना रहती है। उसे शत्रु राज्य के कृत्यपक्ष में फूट डालने का कार्य तथा अकृत्य पक्ष को अपने वश में करने का कार्य अपने गुप्तचरों के माध्यम से समझना चाहिये; तथा राजा एवं अमात्य आदि प्रकृतियों का पारस्परिक राग–द्वेष एवं उनकी कमियों का भेद उसे अपने तापस, वैदेहक आदि गुप्तचरों के द्वारा पता करना चाहिये।[56] उसे चाहिये कि उक्त तापस, वैदेहक नामक गुप्तचरों के शिष्य, चिकित्सक तथा पाखण्डी वेश में रहने वाले गुप्तचरों अथवा उभयवेतनभोगी गुप्तचरों के द्वारा वह शत्रु–राजा के गुप्त रहस्यों का पता

55. प्रषणं सन्धिपालत्वं दृश्यादृश्यैश्च रक्षिभिः। कौ0 अर्थ0 1/11/15 पृष्ठ 52
56. पराधिष्ठानमनुज्ञातः प्रविशेत्. . . तापसवैदेहकव्यञ्जनाभ्यामुपलमेत्। कौ0 अर्थ0 1/11/15 पृष्ठ 49–50

लगाता रहे; यदि वे गुप्तचर वाँछित रहस्य बताने में असमर्थ रहें तो फिर भिक्षुक, मत्त उन्मत्त तथा सोते में प्रलाप करने वाले व्यक्तियों के माध्यम से अथवा तीर्थस्थानों, देवालयों, गृहचित्रों तथा लिपि–संकेतों द्वारा वह वहाँ के रहस्यों एवं वृतान्तों का पता लगाता रहे। रहस्यों का पता लग जाने पर वह फूट डालने वाले 'भेद' आदि उपायों का प्रयोग करे। शत्रु–राजा के द्वारा पूछे जाने पर भी वह अपनी राज्य प्रकृतियों की शक्ति एवं संख्या इत्यादि के बारे में यथार्थ जानकारी न दे; बल्कि वह केवल यही कहकर टालता रहे कि 'आप तो सब कुछ जानते हैं' अथवा जब इतना कहने से काम न चले तो वह केवल उतनी न्यूनतम जानकारी दे जिससे उसका काम भर चल जाये।

कार्य सिद्ध हो जाने पर भी यदि शत्रु–राजा दूत को अपने राज्य में रोके रखना चाहता है तो उसे शत्रु राजा की इस गतिविधि को अप्रत्याशित मानते हुये निम्न बिन्दुओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहियेः–

(i) क्या शत्रु–राजा को मेरे स्वामी पर आने वाली किसी सन्निकट विपत्ति का पता लग गया है ?

(ii) क्या शत्रु–राजा मेरे जाने से पूर्व ही अपने किसी व्यसन का प्रतीकार करना चाहता है ?

(iii) क्या वह 'पार्ष्णिग्राह' (स्वामी राजा का शत्रु तथा शत्रु–राजा का मित्र) राजा तथा 'आसार' (शत्रु–राजा के मित्र का मित्र) राजा को मेरे स्वामी के विरूद्ध युद्ध करने के लिये उकसाना चाहता है ?

(iv) क्या उसका उद्देश्य मेरे स्वामी की अमात्य आदि प्रकृतियों को उससे कुपित कराने का तो नही है ?

(v) या कि वह किसी आटविक को मेरे स्वामी से भिड़ाने का षडयन्त्र तो नहीं कर रहा है ?

(vi) या कि वह मेरे स्वामी के 'मित्र' (अग्रवर्ती प्रदेश का मित्र–राजा) तथा 'आक्रन्द' (पृष्ठवर्ती प्रदेश का मित्र–राजा) को मरवाने की योजना तो नहीं बना रहा है ?

(vii) या कि वह अपने ऊपर किये गये आक्रमण का, अपने अमात्य आदि के कोप का, तथा अपने आबविक का, प्रतीकार तो नहीं करना चाहता है ?

(viii) या कि वह मेरे स्वामी के प्रस्तावित आक्रमण को टालने तथा रोकने का यत्न तो नहीं कर रहा है ?

(ix) या कि वह युद्ध की तैयारी के लिये धातु संग्रह, किलेबन्दी तथा सैन्य संग्रह तो नहीं कर रहा है ?

(x) या कि वह सैन्य–शिक्षण तथा उचित देश–काल की प्रतीक्षा में तो नहीं है ?

(xi) या कि वह किसी प्रकार के तिरस्कार, प्रीति, विवाह सम्बन्ध, दोष–वैमनस्य आदि के लिये तो मुझे नहीं रोक रहा है ?

उपरोक्त बातों के आधार पर शत्रु राजा के प्रयोजन को सम्यक् रूप से जानने के बाद यदि वह उचित समझे तो वहाँ रूके अन्यथा वहाँ से चला जाये। आचार्य कौटिल्य का मत है कि अपने स्वामी राजा के सन्देश को सुनाने पर यदि शत्रु राजा क्रुद्ध हो जाये तो फिर उसको अपनी गिरफ्तारी अथवा मृत्यु के भय से बिना अनुमति लिये ही वहाँ से चल देना चाहिये; अन्यथा वहाँ उसकी गिरफ्तारी निश्चित है।[57]

दूतों की अवध्यता का विशेषाधिकार

'दूत' जैसे महत्वपूर्ण पदाधिकारी को कुछ विशेष अधिकार प्राप्त होना स्वामाविक है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में निर्दिष्ट दूतों के कुछ विशेषाधिकारों की ओर इंगित किया जाना यहाँ अपेक्षित है। दूतों के द्वारा अपने नृप–सन्देश का विभिन्न नरेशों के साथ यथार्थ, निष्पक्ष एवं निष्ठापूर्ण आदान–प्रदान किया जाता है। सन्देश–प्रेषण की यह प्रक्रिया जितनी महत्वपूर्ण, उतनी ही जटिल होती है। क्योंकि किसी विजिगीषु राजा द्वारा भेजा गया सन्देश उसके शत्रु

---

57. तयोरन्तेवासिमिः . . . . . . अन्यथा नियम्येत। कौ0 अर्थ0 1/11/15 पृष्ठ 50–52

राजा के लिये कर्णप्रिय भी हो सकता है तथा कर्ण–कटु भी। प्रिय–सन्देश सुनकर प्रसन्न होना तथा अप्रिय सन्देश सुनकर अप्रसन्न एवं क्रुद्ध होना शत्रु–राजा के लिये सहज स्वाभाविक है। अप्रिय एवं असह्य सन्देश से वह क्रोधाविष्ट होकर दूत के साथ निष्कासन, बन्धन, ताड़न, प्रताड़न एवं यहाँ तक कि मारण जैसी अति घातक कार्यवाही भी कर सकता है। इस गम्भीर स्थिति को दृष्टिगत रखते हुये प्राचीन भारतीय राजशास्त्र प्रेणताओं ने दूत–रक्षा हेतु समीचीन व्यवस्था की है। इसी क्रम में आचार्य कौटिल्य ने 'दूत' को अवध्य बताते हुये कहा है कि दूत कार्य में नियुक्त चाण्डाल भी अवध्य होता है।[58] दूत की सुरक्षा संबंधी कुछ एहतियाती उपायों की ओर कौटिलीय अर्थशास्त्र इंगित करता है। उसके अनुसार विजिगीषु राजा द्वारा प्रेषित सन्देश सुनकर शत्रु–राजा प्रसन्न है अथवा अप्रसन्न; यह परखने के लिये दूत को निम्नांकित बातों पर गौर करना चाहिये–

यदि दूत से सन्देश सुनकर शत्रु राजा की वाणी, मुख एवं दृष्टि में प्रसन्नता झलके; दूत के वचनों का वह आदर करे; उसकी कुशलताविषयक प्रिय प्रश्न पूँछे; विजिगीषु राजा के गुण–श्रवण में अनुरक्ति दिखाये; दूत को अपने निकट आसन दे; सम्मान दे; विजिगीषु राजा के इष्टमित्रों का स्मरण करे; तथा दूत पर विश्वास प्रकट करे तो समझना चाहिये कि शत्रु–राजा प्रसन्न है। लेकिन उसका आचरण एवं हाव भाव यदि इसके विपरीत हो तो समझना चाहिये कि वह अप्रसन्न है। उपरोक्त लक्षणों के आधार पर यदि शत्रु–राजा अप्रसन्न दिखे तो दूत को उससे निम्न प्रकार निवेदन करना चाहिये– महाराज ! दूत तो आप तथा आप जैसे अन्य सभी राजाओं के मुख होते हैं तथा उन्हीं के माध्यम से राजागण परस्पर वार्ता किया करते हैं। इसलिये प्राणघातक स्थिति आने पर भी दूत अपने स्वामी द्वारा भेजा गया सन्देश यथावत कहते हैं। दूत–कार्य में यदि चाण्डाल भी नियुक्त हो तो वह भी अवध्य होता है, फिर ब्राह्मण का तो कहना ही क्या ? वस्तुतः राजा के द्वारा कही हुई बात को दुहरा देना मात्र ही दूत का कार्य है।[59]

---

58. तेषामन्तावसायिनोऽप्यवध्याः। कौ0 अर्थ0 1/11/15 पृष्ठ 50
59. परस्य वाचि वक्त्रे दृष्ट्यां. . . . . .परस्यैतद् वाक्यमेष दूतधर्मः इति। उपरोक्त पृष्ठ 49–50

बाल्मीकि रामायण तथा महाभारत जैसे अन्य प्राचीन ग्रन्थों में भी दूत की अवध्यता की पुष्टि की गई है। सुन्दर काण्ड में कहा गया है कि सब समयों में तथा सब स्थानों में दूत अवध्य होता है, ऐसा सन्त पुरुष कहते हैं।[60] महाभारत में निर्देश है कि राजा चाहे जिस आपत्ति में क्यों न हो परन्तु उसे दूत का वध नहीं करना चाहिये।[61]

दूतों के प्रकार

योग्यता एवं अधिकारों के आधार पर आचार्य कौटिल्य ने दूतों के निम्नांकित तीन भेद किये हैं–

(i) निसृष्टार्थ दूत

अमात्य पद की योग्यता से युक्त दूत को 'निसृष्टार्थ' कहा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि 'निसृष्टार्थ' नामक दूत का पद अत्यधिक योग्यतापूर्ण, महत्वपूर्ण एवं प्रतिष्ठापूर्ण था। इसे अपने राज्य की ओर से समस्त विवादास्पद बातों के समाधान का पूर्ण अधिकार प्राप्त था।

(ii) परिमितार्थ दूत

अमात्य पद हेतु निर्धारित गुणों में से चौथाई गुण हीन दूत 'परिमितार्थ दूत' कहलाता है। अर्थात् इस दूत में अमात्य पद की तीन चौथाई योग्यता का होना अपेक्षित है। इसे राजा से प्राप्त निर्देशों के अन्तर्गत कार्य और वार्तालाप करने का सीमित अधिकार था।

(iii) शासनहर दूत

अमात्य पद हेतु निर्धारित गुणों में से अर्ध गुण सम्पन्न दूत को 'शासनहर' कहा गया है।[62] अर्थात् जिस दूत में अमात्य पद के आधे गुण हों और आधे गुण न हों उसे 'शासनहर दूत' कहते हैं।'शासनहर'का कार्य केवल सन्देश पहुँचाना और उत्तर ले आना था। उसे वार्ता करने का अधिकार नहीं था।

---

60. दूता न वध्याः समयेषु राजन्सर्वेषु सर्वत्र वदन्ति सन्तः। सुन्दरकाण्ड 52/13
61. न तु न हन्यान्नृपो जातु दूतं कस्याञ्चिदापदि। शान्ति पर्व 85/26
62. अमात्यसम्पदोपेतो निसृष्टार्थः. . . . . . अर्धगुणहीनः शासनहरः। कौ० अर्थ० 1/11/15 पृष्ठ 49

गुप्तचर व्यवस्था

प्राचीन भारतीय राजशास्त्र प्रणेताओं ने प्रजा के सुख एवं योगक्षेम को ही राजा का सर्वोच्च कर्त्तव्य एवं लक्ष्य माना है। इसी क्रम में आचार्य कौटिल्य निर्दिष्ट करते हैं कि 'प्रजा के सुख में ही राजा का सुख और प्रजा के हित में ही राजा का हित निहित है। स्वयं को प्रिय लगने वाले कार्यों में राजा का हित नहीं है अपितु उसका हित तो प्रजा को प्रिय लगने वाले कार्यों में ही है।[63] इस पुनीत लक्ष्य की प्राप्ति हेतु यह आवश्यक है कि राजा को अपनी प्रजा के दैनन्दिन सुख–दुःख की सूचनायें आधिकारिक तौर पर विधिवत् प्राप्त होती रहें। उसकी शासकीय योजनाओं का प्रजा के दैनन्दिन जीवन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है ? शासनतंत्र में भ्रष्टाचार मूलक कोई ऐसी त्रुटि तो नहीं है जिससे प्रजा को कोई पीड़ा एवं सन्त्रास हो रहा हो ? अधिकारियों, कर्मचारियों एवं आम जनता में से कुछ लोग ऐसे तो नहीं है जो प्रजा–सुख में बाधक बन रहे हों ? इन समस्त बातों की पर्याप्त जानकारी प्राप्त करने के लिये प्राचीन काल से ही प्रभावी गुप्तचर व्यवस्था लागू की गई है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में भी गुप्तचर व्यवस्था का साङ्गोपाङ्ग विवरण उपलब्ध होता है।

गुप्तचरों का प्रथम वर्गीकरण

आचार्य कौटिल्य ने गुप्तचरों का दो प्रकार से वर्गीकरण किया है। प्रथम वर्गीकरण के अन्तर्गत उन्होंने गुप्तचरों के मुख्य रूप से दो भेद किये हैं – संस्था (स्थाई)[64] एवं सञ्चार (अस्थाई अर्थात् भ्रमणशील) गुप्तचर।[65] पुनः 'संस्था' गुप्तचर के पाँच अवान्तर भेद– (i) कापटिक (ii) उदास्थित (iii) गृहपतिक (iv) वैदेहक तथा (v) तापस, एवं 'सञ्चार' गुप्तचर के चार भेद – (i) सत्री (ii) तीक्ष्ण (iii) रसद एवं (iv) भिक्षुकी (परिव्राजिका) करते हुये उन्होंने गुप्तचर के कुल नौ भेद किये हैं।[66] यहाँ पर इनकी स्वतंत्र विवेचना अपेक्षित है।

---

63. प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां. . . . . . तु प्रियं हितम्। कौ0 अर्थ0 1/14/18 पृष्ठ 64
64. इत्येता पञ्चसंस्थाः प्रकीर्तिताः। कौ0 अर्थ0 1/6/10 पृष्ठ 31
65. इति सञ्चाराः। कौ0 अर्थ0 1/7/11 पृष्ठ 32
66. कपटिकोदास्थित. . . . . सत्रितीक्ष्ण रसदभिक्षुकीश्च। कौ0 अर्थ0 1/6/10 पृष्ठ 29

(अ) संस्था (स्थायी) गुप्तचर

(i) कापटिक

दूसरों के रहस्य का पता लगाने वाला, वाचाल तथा विद्यार्थी का कपटी वेष धारण करने वाला गुप्तचर 'कापटिक' कहलाता है। इस गुप्तचर के संबंध में कौटिल्य निर्देश देते हैं कि 'कापटिक' को धन और मान–सम्मान से प्रोत्साहित करके मन्त्री उसे यह निर्देश दे – 'जिस किसी की भी तुम अकुशलता देखो, राजा को और मुझे प्रमाण मानकर तुम तत्काल उसकी सूचना दो।' इससे स्पष्ट होता है कि यह गुप्तचर मंत्री के अधीन होता है।

(ii) उदास्थित

सन्यासी के वेष में रहने वाले बुद्धिमान तथा सदाचारी गुप्तचर को कौटिल्य ने 'उदास्थित' कहा है। उनके मतानुसार यह गुप्तचर कृषि, पशुपालन एवं व्यापार के लिये निर्धारित भूमि पर अपने बहुत से विद्यार्थी एवं बहुत सा धन ले जाकर उनसे वहाँ पर कार्य करवाये। उस कार्य को करने से जो लाभ हो उससे वह सन्यासियों के भोजन, वस्त्र एवं निवास का प्रबन्ध करे। अन्य जो भी इस प्रकार की आजीविका की इच्छा करें, उन्हें अपने वश में करता हुआ वह उनसे कहे – 'तुम्हें इसी वेष में राजा का कार्य करना है। जब तुम्हारे वेतन भत्ते का समय आये, तुम यहाँ उपस्थित हो जाना। इसी प्रकार दूसरे सन्यासी भी अपने अपने सम्प्रदाय के सन्यासियों को वशीभूत कर लें।[67] इससे स्पष्ट होता है कि इन गुप्तचरों का मुख्य कर्त्तव्य वार्ता (कृषि, पशुपालन और व्यापार) से जुड़ी जनता के गुप्त रहस्यों का पता लगाकर उन्हें राजा तक पहुँचाना था। अन्यत्र आचार्य कौटिल्य निर्देश देते हैं कि राजा को राष्ट्र के विभिन्न स्थानों पर 'उदास्थित' तथा 'कर्षक' नामक गुप्तचर नियुक्त करना चाहिये।[68]

(iii) गृहपतिक

गरीब किसान का वेष धारण करने वाले, अल्पवृत्ति वाले, बुद्धिमान तथा सदाचारी गुप्तचर को 'गृहपतिक' कहा गया है। उसका कर्त्तव्य है कि वह कृषि कार्य के लिये निर्धारित भूमि पर जाकर पूर्वोक्त 'उदास्थित' गुप्तचर की भाँति कार्य करे।

---

67. परमर्मज्ञः प्रगल्भश्छात्रः. . . . . . सर्वप्रव्रजिताश्च स्वं स्वं वर्गमुपजपेयुः। कौ0 अर्थ0 1/6/10 पृष्ठ 29
68. कर्षकोदास्थिता राष्ट्रे. . . .। कौ0 अर्थ0 1/7/11 पृष्ठ 35

(iv) वैदेहक

व्यापार करने वाले, अल्पवृत्ति वाले, बुद्धिमान और सदाचारी गुप्तचर 'वैदेहक' कहलाते हैं। उनका कर्त्तव्य है कि वह व्यापार के लिये निर्धारित भूमि पर जाकर पूर्वोक्त 'गृहपतिक' गुप्तचर की भाँति कार्य करें।

(v) तापस

सिर मुँड़ाये अथवा जटा धारण किये हुये तथा जीविका के इच्छुक गुप्तचर 'तापस' कहलाते है।[69] इस गुप्तचर के संबंध में आचार्य कौटिल्य का निर्देश है कि वह नगर के समीप ही कहीं बहुत से सिर मुँड़ाये अथवा जटाधारी विद्यार्थियों के साथ रहे तथा महीने–दो महीने तक आम जनता के सामने हरी सब्जी या मुट्ठी भर अनाज खाता रहे; वैसे छिपे तौर पर वह अपनी इच्छानुसार स्वादिष्ट भोजन भी करता रहे। 'वैदेहक' नामक गुप्तचर तथा उसके अनुचर इस 'तापस' गुप्तचर की पूजा–अर्चना करें। शिष्यगण घूम घूम कर यह प्रचार करें कि यह तपस्वी पूर्ण सिद्ध, भविष्यवक्ता तथा लौकिक शक्तियों से सम्पन्न है। अपना भविष्य फल जानने की इच्छा से आये हुये लोगों की पारिवारिक घटनाओं को उनके शारीरिक चिन्हों एवं हावभावों के माध्यम से तथा अपने शिष्यों के संकेतों के अनुसार बतावे। बीच बीच में वह किसी को अल्प लाभ होने की, किसी के यहाँ आग लगने की, किसी के यहाँ चोरी का भय होने की, किसी के यहाँ दुराचारी के मारे जाने की, किसी को इनाम मिलने की, किसी को विदेश संबंधी जानकारी की, किसी का काम आज या कल होने की, तथा किसी का काम राजा द्वारा कराये जाने की, भविष्यवाणी करता रहे। इस प्रश्नोत्तर प्रसंग में उसकी 'सत्री' आदि दूसरे गुप्तचर सहायता करें। प्रश्नकर्ताओं में यदि कुछ लोग धीर, बुद्धिमान तथा चतुर हों तो फिर उनके सामने वह अधिक लम्बी चौड़ी भविष्यवाणी न करके उन्हें केवल राजा की ओर से सौभाग्यशाली अवसर प्राप्त होने तथा मन्त्रियों के साथ उनका सम्पर्क होने की भविष्यवाणी ही करे। जब मन्त्रीगणों से इन लोगों का सम्पर्क हो तो मंत्रीगण उन्हें धन तथा आजीविका आदि देकर उस गुप्तचर की भविष्यवाणी को सत्य सिद्ध कर दें।[70]

---

69. कर्षको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो. . . . वृत्तिकामस्तापसव्यञ्जनः। कौ0 अर्थ0 1/6/10 पृष्ठ 30
70. स नगराम्याशे. . . . मन्त्री चैषां वृत्तिकर्मभ्यां वियतेत् कौ0 अर्थ0 1/6/10 पृष्ठ 30–31

(आ) सञ्चार (भ्रमणशील) गुप्तचर

(i) सत्री

जो राजा के संवंधी न हों किन्तु जिनका पालन–पोषण करना राजा के लिये आवश्यक हो, जो लक्षण विद्या, अङ्गविद्या, जम्भक-विद्या (जादू) माया-विद्या (इन्द्रजाल), धर्मशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, शकुनशास्त्र, पक्षीशास्त्र तथा कामशास्त्र आदि विद्याओं में पारङ्गत हों वे 'सत्री' गुप्तचर कहलाते हैं।।

(ii) तीक्ष्ण

अपने जनपद के ऐसे शूरवीर लोग जो द्रव्य–प्राप्ति के लिये अपने शरीर की भी परवाह न करते हुये हाथी अथवा सर्प से भी भिड़ जाते हैं, वे 'तीक्ष्ण' गुप्तचर कहलाते हैं।[71]

(iii) रसद

शत्रु–वध हेतु विष देने वाले ऐसे क्रूर और आलसी लोग 'रसद' गुप्तचर कहलाते हैं जो अपने बन्धु–बान्धवों से भी स्नेह नहीं रखते हैं।

(iv) भिक्षुकी (परिव्राजिका)

आजीविका की इच्छुक, दरिद्र, विधवा एवं वाचाल ब्राह्मणी जो अन्तःपुर के लिये सम्मानित हो तथा प्रधानमंत्री तक के आवास में आवागमन हेतु अधिकृत हो, 'परिव्राजिका' (भिक्षुणी) गुप्तचर कहलाता है। इसी प्रकार 'मुण्डा' (सिर मुँडाये हुये बौद्ध भिक्षुणी) तथा 'वृषली' (शूद्रा) नामक स्त्री–गुप्तचरों को समझना चाहिये।

गुप्तचरों का द्वितीय वर्गीकरण

आचार्य कौटिल्य ने गुप्तचरों का अन्य प्रकार से वर्गीकरण करते हुये उनके निम्नांकित दो भेद किये हैं –

---

71. ये चाप्यसम्बन्धिनो. . . . द्रव्यहेतोः प्रतियोधयेयुस्ते तीक्ष्णाः। कौ0 अर्थ0 1/7/11

(अ) आभ्यन्तर गुप्तचर

आचार्य कौटिल्य के अनुसार अन्तःपुर के अन्दर ही विद्यमान रहने वाले वे गुप्तचर 'आभ्यन्तर' कहलाते हैं जो भोजन बनाने वाले, माँस पकाने वाले, स्नान करने वाले, हाथ–पैर दबाने वाले, बिस्तर बिछाने वाले, बाल काटने वाले, रूप–श्रंगार करने वाले, पानी भरने वाले के रूप में कार्यरत हों; जो कुबडे, बौने, किरात, गूँगे, बहरे, मूर्ख, अन्धे आदि का रूप धारण करते हों, तथा नट, नर्तक, गायक, वादक तथा कथावाचक आदि कलाकारों के वेष में जो स्त्रियाँ गुप्तचरी का कार्य करती हैं।

(आ) बाह्य गुप्तचर

जो 'तीक्ष्ण' नामक गुप्तचर छत्र, चामर, व्यजन, पादुका, आसन, यान, वाहन आदि धारण करते हुये अन्तःपुर के बाहर कार्यरत होते हैं उन्हें 'बाह्य' गुप्तचर कहते हैं।[72]

गुप्तचरों के कर्तव्य एवं दायित्व

आचार्य कौटिल्य का निर्देश है कि उपरोक्त सभी गुप्तचरों को राजा उनके देश, वेष, व्यवसाय–कौशल, भाषा तथा कुलीनता आदि के आधार पर उनकी भक्ति और शक्ति की परीक्षा करके अपने राज्य के सभी अठारह उच्च–अधिकारियों (अष्टादश तीर्थ) – (i) मन्त्रि (ii) पुरोहित (iii) सेनापति (iv) युवराज (v) दौवारिक (vi) अन्तर्वंशिक (vii) प्रशास्ता (viii) समाहर्ता (ix) सन्निधाता (x) प्रदेष्टा (xi) नायक (xii) पौर व्यावहारिक (xiii) कार्मान्तिक (xiv) मन्त्रिपरिषदध्यक्ष (xv) दण्डपाल (xvi) दुर्गपाल (xvii) अन्तपाल (xviii) आटविक के पास नियुक्त करे। कौटिल्य कालीन गुप्तचर व्यवस्था की विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि 'संस्था' गुप्तचरों को 'सञ्चार' गुप्तचर तथा 'सञ्चार' गुप्तचरों को 'संस्था' गुप्तचर आपस में एक दूसरे को पहचान भी नहीं सकते थे। यदि अमात्य आदि के आवास पर 'भिक्षुकी' नामक गुप्तचर का प्रवेश निषिद्ध हो तो वहाँ की गुप्त सूचना द्वारपालों के माध्यम से बाहर भिक्षुकी' तक पहुँचायी जाये। यदि यह भी सम्भव न हो तो अन्तःपुर के नौकरों के माता–पिता बनने का

---

72. ये बन्धुषु निःस्नेहा. . . . . . .वाहनोपग्राहिणस्तीक्ष्णा विद्युः। कौ0 अर्थ01/7/11, पृष्ठ 32–33

बहाना करके वृद्ध स्त्री–पुरुष भीतर जाकर गुप्त सूचना प्राप्त करें। या फिर रानियों के केश सँवारने वाली सेविकाओं, नाचने–गाने वाली स्त्रियों अथवा दासियों के द्वारा अथवा निजी संकेतों वाले गीतों, श्लोकों, बाजों, बर्तनों में गुप्त लेख रखकर वहाँ की गुप्त सूचनाओं को बाहर लाया जाये। यदि यह भी सम्भव न हो तो किसी भयंकर बीमारी अथवा पागलपन के बहाने आग लगाकर अथवा किसी को विष देकर (जिससे अन्तःपुर में हो–हल्ला मच जाये) गुप्तचर चुपचाप बाहर निकल आवे। परस्पर अपरिचित तीन गुप्तचरों द्वारा किसी एक ही प्रकरण पर लाई गई गुप्त सूचनायें जब एक जैसी होती थीं तभी उनको स्वीकार्य माना जाता था। यदि उन सूचनाओं में किसी प्रकार का कोई अन्तर्विरोध होता था तो संबंधित गुप्तचरों को या तो सेवा–च्युत कर दिया जाता था या फिर उन्हें तूष्णीदण्ड (धोखे से विषैली दवायें आदि देना) से दण्डित किया जाता था।

आचार्य कौटिल्य का स्पष्ट निर्देश है कि वह शत्रु, मित्र, मध्यम तथा उदासीन राजाओं और उनके मन्त्री, पुरोहित, सेनापति आदि अठारह उच्च अधिकारियों (अष्टादश तीर्थ) के निकट सभी स्थानों पर अपने गुप्तचरों को नियुक्त करे। इसके अतिरिक्त उक्त शत्रु, मित्र, मध्यम तथा उदासीन राजाओं के आवास पर राजा को म्लेच्छ जाति के कुबड़े, बौने, नपुंसक, कारीगर स्त्रियाँ तथा गूँगे के वेष में गुप्तचर नियुक्त करना चाहिये। उसे अपने शत्रु–राजा के दुर्ग में व्यापारियों के वेष में, दुर्ग–सीमा पर सिद्ध तपस्वियों के वेष में, राज्य के विभिन्न स्थानों पर 'कृषक' तथा 'उदास्थित' नामक गुप्तरों को तथा राज्य–सीमा पर चरवाहे के वेष में गुप्तचर नियुक्त करना चाहिये। जंगल में शत्रु–राजा की गतिविधियों को पता लगाने के लिये चतुर वानप्रस्थी तथा जंगली लोगों को गुप्तचर नियुक्त करना चाहिये। राज्य की सीमा पर उन्हीं लोगों को गुप्तचर नियुक्त किया जाना चाहिये जो शत्रु–राजा के किसी प्रलोभन या बहकावे में न आयें तथा जिन्हें शत्रु–पक्ष के लोगों को अपने वश में करने के उपाय बता दिये गये हों।[73]

---

73. तान राजा स्वविषये. . . . . . परापसर्पज्ञानार्थं मुख्यानन्तेषु वासयेत्। कौ० अर्थ० 1/7/11 पृष्ठ 33–36

यहाँ पर यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि आचार्य कौटिल्य ने अन्तर्राज्य संबंधों में गुप्तचरों की महत्वपूर्ण भूमिका निर्दिष्ट करने के साथ ही विजिगीषु राजा के राज्य में प्रशासनिक एवं सामाजिक शुचिता, सत्यनिष्ठा एवं ईमानदारी कायम रखने में भी उनकी महती भूमिका निर्धारित की है। उनके निर्देशानुसार समाहर्ता को चाहिये कि वह अपने जनपद में चल रही अवैध, अनैतिक एवं अवांछनीय गतिविधियों की जानकारी रखने तथा उसे नियंत्रित करने के लिये सिद्ध, तपस्वी, सन्यासी, घुमक्कड़, भाट, जादूगर, मनचले, यमपट को दिखाकर आजीविका चलाने वाले, शकुनशास्त्री, ज्योतिषी, वैद्य, उन्मत्त, गूँगे, बहरे, मूर्ख, अन्धे, व्यापारी, कारीगर, नट, भाँड़, मदिरा–विक्रेता, अपूप (पुआ या रोट) बनाने वाले, पका माँस बेचने वाले तथा खाना बनाने वाले आदि को गुप्तचर नियुक्त करना चाहिये; जो ग्रामीणों तथा ग्राम प्रधानों की शुचिता एवं अशुचिता (ईमानदारी एवं बेईमानी) का पता लगाते रहें।

यहाँ पर विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि समाज में प्रचलित रिश्वतखोरी एवं अवैध आय–भण्डारण को रोकने हेतु आचार्य कौटिल्य ने एक ठोस एवं व्यावहारिक रणनीति प्रस्तुत की है। इसके तहत उन्होंने समाज में अवैध आय–भण्डारण करने वाले तेरह प्रकार के लोगों को चिन्हित करके उन्हें 'गूढाजीवी' की संज्ञा प्रदान की है तथा उन्हें देश–निकाला या अपराध के अनुसार दण्ड दिये जाने का सख्त प्राविधान किया है। पहले 'गूढाजीवी' के रूप में धर्मस्थ (न्यायाधीश) को चिन्हित करते हुये कौटिल्य ने व्यवस्था दी है कि 'सत्री' नामक गुप्तचर गूढाजीवी धर्मस्थ के पास जाकर कहे कि 'यह मुल्जिम मेरा भाई है; इसके जुल्म को आप माफ कर दीजिये, बदले में इतना धन ले लीजिये।' यदि वह ऐसा करने को तैयार हो जाये तो उसे 'रिश्वतखोर' मानते हुये निष्कासित कर देना चाहिये। दूसरा 'गूढाजीवी' कौटिल्य 'प्रदेष्टा' नामक अधिकारी को मानते हुये यही व्यवस्था उसके साथ करते हैं।[74] तीसरा एवं चौथा 'गूढाजीवी' क्रमशः 'ग्रामकूट' (गाँव में जालसाजी करने वाला) तथा 'ग्राम–अध्यक्ष' को मानते हुये वह प्राविधान करते हैं कि उन दोनों से 'सत्री' नामक गुप्तचर

---

74. समाहर्ता जनपदे सिद्धतापस. . . . निष्क्रयार्थं वा दद्युर्दोषविशेषतः। कौ0 अर्थ0 4/79/4 पृष्ठ 361–63

कहे कि यह पापी व्यक्ति बड़ा धनवान है, इस समय इस पर ऐसी आपत्ति आई है; इसलिये आओ, मौके का लाभ उठाकर हम लोग इसकी सारी सम्पत्ति छीन ले।' यदि वे ऐसा करने को तैयार हो जाते हैं तो उन्हें रिश्वतखोर (उत्कोचक) मानते हुये निष्कासित कर देना चाहिये।

'कूटसाक्षी' (झूठा गवाही) को पाँचवा 'गूढाजीवी' चिन्हित करते हुये प्राविधान किया गया है कि 'सत्री' नामक गुप्तचर बनावटी मुल्जिम बनकर 'कूटसाक्षी' के पास जायें और उसे पर्याप्त धन देने का प्रलोभन देते हुये झूठी गवाही देने के लिये प्रेरित करें। यदि वह ऐसा करने को तैयार हो जाता है तो उसे 'कूटसाक्षी' मानते हुये निष्कासित कर दिया जाये। छठवाँ गूढाजीवी 'कूटश्रावण कारक' (गवाह की झूठी सुनवाई करने वाला अर्थात् गलत बयान लिखने वाला) को चिन्हित करते हुये यही व्यवस्था उसके साथ भी की गई है। सातवें 'गूढाजीवी' के रूप में मन्त्रों–औषधियों के द्वारा वशीकरण का जाल फैलाने वालों को चिन्हित करते हुये उन पर अंकुश लगाने हेतु प्राविधान किया गया है कि जो व्यक्ति मन्त्रों, औषधियों या श्मशान की क्रियाओं द्वारा वशीकरण का कार्य करता है उससे 'सत्री' नामक गुप्तचर कहे कि– 'मैं अमुक व्यक्ति की पत्नी, पुत्रवधू या पुत्री से प्रेम करता हूँ; इसलिये आप कोई ऐसा उपाय करो जिससे वह भी मुझसे प्रेम करने लगे; बदले में आप इतना धन ले लो।' यदि वह ऐसा करने को तैयार हो जाये तो उसे वशीकरण करने वाला मानते हुये निष्कासित कर देना चाहिये।[75] आठवें एवं नौवें 'गूढाजीवी' के रूप में क्रमशः 'कृत्याशील' (जादू–टोना करने वाले) तथा 'अभिचारशील' (तांत्रिक क्रियायें करने वाले) के साथ भी यही प्राविधान किया गया है। 'रसद' (विष देने वाले) को दसवाँ 'गूढाजीवी' मानते हुये प्राविधान किया गया है कि यदि विष के बनाने वाले, खरीदने वाले, बेचने वाले तथा औषधियों एवं भोज्य सामग्री का व्यापार करने वाले पर यह सन्देह हो कि वह लोगों को विष देकर मारता है तो 'सत्री' नामक गुप्तचर उससे कहे कि 'अमुक व्यक्ति मेरा शत्रु है, उसे आप विष देकर मार दीजिये; बदले में आप इतना धन ले लीजिये।' यदि वह ऐसा करने को तैयार हो जाता है तो फिर उसे 'विषदायी' (रसद)

---

75. ग्रामकूटमध्यक्षं वा. . . . .संवननकारक इति प्रवास्येत। कौ0 अर्थ0 4/79/4 पृष्ठ 361–62

मानते हुये निष्कासित कर देना चाहिये। 'मदनयोग व्यापारी' (मादक द्रव्यों का व्यापार करने वाले) को ग्यारहवाँ 'गूढाजीवी' मानते हुये उस पर अंकुश लगाने हेतु भी यही प्राविधान किया गया है। 'कूटरूपकारक' (नकली सिक्के बनाने वाले) को बारहवाँ 'गूढाजीवी' मानते हुये व्यवस्था दी गई है कि जो व्यक्ति अनेक प्रकार का लोहा, खार, कोयला, धौंकनी, सनसी, हथौड़ी, निहाई, तस्वीर, छेनी और मूषा आदि वस्तुओं को बार–बार खरीदे; जिसके हाथों या कपड़ों पर स्याही, राख तथा धुयें के चिन्ह हो; जो लोहार और सोनार के सभी औजार रखता हो; 'सत्री' नामक गुप्तचर को चाहिये कि वह ऐसे व्यक्ति का शिष्य बनकर तथा उसके साथ मेल–मिलाप का अच्छा व्यवहार बनाकर उसे सारे रहस्यों का पता लगा ले तथा उससे राजा को अवगत करा दे। जब यह बात अच्छी तरह से ज्ञात (प्रर्माणित) हो जाये कि यह व्यक्ति 'कूटरूपकारक' (जाली सिक्के बनाने वाला) है तो उसे निष्कासित कर देना चाहिये। सोने आदि का रंग उड़ा देने वाले तथा नकली सोने का व्यापार करने वाले को तेरहवाँ एवं अन्तिम 'गूढाजीवी' मानते हुये उसके साथ में यही प्राविधान किया गया है।[76]

(ङ) कौटिलीय अन्तर्राज्य–सम्बन्धों की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता

'कौटिलीय अन्तर्राज्य–सम्बन्धों की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता' विषय पर विचार करते समय हमें कौटिल्य युग और वर्तमान युग की तात्कालिक परिस्थितियों के पारस्परिक अन्तर को ध्यान में रखना आवश्यक है। क्योंकि कौटिल्य युग तथा आधुनिक युग के बीच एक विराट परिवर्तन–चक्र चला है। कहाँ तो राजतंत्र प्रधान वह कौटिल्य–युग था जिसमें सैनिक और गुप्तचर कोसों–योजनों दूर पैदल चलने के लिये विवश थे; तलवार और भाले आदि पुराने युद्धास्त्रों से केवल अपने सामने के दृश्य–शत्रु को ही मारने की सीमित क्षमता वाले थे; और कहाँ लोकतंत्र प्रधान एक आधुनिक युग है जिसके सैनिकों और गुप्तचरों को पैदल चलना तो दूर, अपने स्थान पर बैठे बैठे ही रिमोट कण्ट्रोल से परमाणु युद्ध तथा साइवर युद्ध के माध्यम से केवल दृश्य–शत्रु ही नहीं,अपितु अनगिनत अदृश्य शत्रुओं का भी

---

76. तेन कृत्याभिचारशीलौ . . . . . कूटसुवर्णव्यवहारी च व्याख्यातः। कौ0 अर्थ0 4/79/4 पृष्ठ 362–63

पल भर में सफाया करने की असीमित क्षमता प्राप्त है। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि कौटिल्य कालीन राजतंत्र तथा सैनिकों के लिये जो व्यवस्थायें दी गई होगीं, वे सारी व्यवस्थायें वर्तमान लोकतंत्र तथा आधुनिक सैनिकों के लिये प्रासंगिक नहीं हो सकती हैं। हाँ, कुछ नीतिगत व्यवस्थायें अवश्य प्रासंगिक हो सकती हैं। इस दृष्टि से 'कौटिलीय अन्तर्राज्य–सम्बन्धों की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता' विषय पर विचार करने पर निष्कर्ष रूप में यही तथ्य सामने आता है कि उक्त विषयक आचार्य कौटिल्य के कुछ विचार जहाँ आधुनिक राजनीति में पूरी तरह प्रासंगिक बने हुये है, वहीं उनके कुछ विचार इक्कीसवीं सदी की आधुनिक राजनीति के लिये अप्रासंगिक भी हो चुके हैं। अतः 'नीर क्षीर विवेकी' निष्पक्ष प्रयास के माध्यम से यहाँ पर कौटिलीय अन्तर्राज्य सम्बन्धों की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता एवं अप्रासंगिकता–दोनों का प्रस्तुतीकरण किया जा रहा है।

प्रासंगिकता

(i) आचार्य कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित यह मत आज भी प्रासंगिक है कि किसी देश के विजिगीषु शासक को 'मन्त्रशक्ति' (ज्ञानबल), प्रभुशक्ति (कोशदण्ड बल) तथा उत्साहशक्ति (विक्रम बल) से सम्पन्न होना चाहिये। उक्त तीन शक्तियों में भी 'मन्त्रशक्ति' (ज्ञानबल) को आचार्य कौटिल्य सर्वोपरि मानते हैं। इस सम्बन्ध में उनका यह मत यहाँ पर विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि 'एक धनुर्धारी के धनुष से छोड़ा गया वाण तो संभव है किसी एक ही व्यक्ति को मारे अथवा निशान चूकने पर संभव है वह एक भी व्यक्ति को न मारे; किन्तु एक ज्ञानशील व्यक्ति के द्वारा किया गया बुद्धि–प्रयोग तो गर्भस्थ प्राणियों को भी नष्ट कर देता है।[77] वर्तमान में उक्त तथ्य की पुष्टि स्वरूप हम देख सकते हैं कि उक्त तीनों शक्तियों से सम्पन्न कोई छोटा राष्ट्र भी किसी शक्तिहीन बड़े राष्ट्र पर आक्रमण करके उसे पराजित कर देता है। इसका एक प्रमुख आधुनिक उदाहरण है– 1905 में जापान द्वारा रूस जैसे विशाल देश को पराजित किया जाना।

77. एकं. हन्यान्न वा. . . . . . हन्याद गर्मगतानपि। कौ0 अर्थ0 10/158–59/6 पृष्ठ 666

(ii) कौटिलीय अर्थशास्त्र का यह मत आज भी प्रासंगिक है कि एक विजिगीषु शासक को साम, दान, भेद और दण्ड इन चार उपायों के द्वारा मित्रों और शत्रुओं को वश में करना चाहिये। यहाँ पर विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि कौटिल्य ने 'दण्ड' उपाय को वरीयता क्रम में सबसे अन्त में रखा है। क्योंकि इसका प्रयोग करने में पर्याप्त जन–धन की क्षति होती है। इसलिये आचार्य कौटिल्य का निर्देश है कि 'दण्ड' का प्रयोग करने से पहले 'साम', 'दान' और 'भेद' उपायों का प्रयोग करना चाहिये। जब इन तीनों उपायों का प्रयोग करने पर भी लक्ष्य–प्राप्ति में सफलता न मिले तभी 'दण्ड' का प्रयोग केवल अन्तिम विकल्प के रूप में करना चाहिये। आज भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उक्त उपायों का भरपूर प्रयोग हो रहा है। हम देखते हैं कि किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय समस्या के समाधान हेतु संबंधित देशों के बीच राजनीतिक वार्तायें होती है, जो एक प्रकार से 'साम' नामक उपाय का व्यावहारिक प्रयोग है। अनेक प्रकार के समझौते और अनुबंध करते हुये युद्धेतर उपायों के द्वारा समस्या–समाधान के बहुविध प्रयास किये जाते हैं जो 'दान' एवं 'भेद' नामक उपायों का व्यवहार में प्रयोग है। जब किसी भी प्रकार से समस्या का समाधान होता दिखाई नहीं देता है तभी संबंधित देश दण्ड (युद्ध) उपाय अपनाने पर विचार करते हैं। कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट इन उपायों के मांगलिक प्रयोग से वर्तमान में 'विश्वबन्धुत्व' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा को बल मिला है।

(iii) यद्यपि कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित मण्डल सिद्धान्त को वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में यथावत् लागू करना असम्भव है। क्योंकि राज्यों के परस्पर सम्बन्ध परिवर्तनशील होने के कारण शत्रु या मित्र राज्यों की स्थिति को एक स्थिर रूप देना कठिन है; फिर भी कूटनीतिक दृष्टिकोण से इस सिद्धान्त का आधुनिक युग में पर्याप्त महत्व हैं।

प्रथम, यद्यपि आज दुनिया के अधिकांश राज्य शान्ति की बात करते नहीं अघाते है परन्तु उनमें परस्पर सम्बन्ध प्रतिद्वन्द्विता का है। यदि कोई दो राष्ट्र शक्ति में लगभग

समान हैं तो उनमें किसी न किसी बात को लेकर विवाद चलता ही रहता है। वे परस्पर घनिष्ठ मित्र कम ही होते हैं। यह एक व्यवहारिक तथ्य है। जिसे भारत–पाकिस्तान तथा इंग्लैण्ड–फ्रांस जैसे देशों के राजनीतिक इतिहास से भलीभाँति समझा जा सकता है।

द्वितीय, मण्डल सिद्धान्त विभिन्न राज्यों के मध्य परस्पर गुट बनने के समान है जिससे राज्यों का अस्तित्व अधिक सुरक्षित हो जाता है। एक दुर्बल राज्य पर हमले की स्थिति में उसके सभी मित्र राज्य उसकी सहायता करते हैं। यह एक प्रकार की सुरक्षा सन्धि पर आधारित है जिसकी तुलना हम द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिका द्वारा निर्मित सैनिक सन्धि– NATO, SEATO, CENTO और रूस के वार्सा पैक्ट से कर सकते हैं। अतः कौटिल्य के मण्डल सिद्धान्त को आधुनिक राज्यों हेतु संकट काल के लिये उपयोगी माना जा सकता है।

तृतीय, शत्रु एवं मित्र राज्यों के पृथक पृथक गठबन्धन बन जाने से शक्ति सन्तुलन का सिद्धान्त स्थापित होता है जिससे एक पक्ष दूसरे पक्ष पर आक्रमण करने से भय खाता है एवं युद्ध की सम्भावना कम हो जाती है। इस प्रकार के गठबन्धनों की स्थापना द्वितीय विश्व युद्ध के बाद रूस और अमेरिका ने की थी।

चतुर्थ, इस सिद्धान्त द्वारा राज्यों के मध्य स्थायी सम्बन्ध स्थापित होने की सम्भावना बढ़ जाती है। हमारे मित्र स्थायी और विश्वस्त हो जाते हैं।

पञ्चम, मण्डल सिद्धान्त राज्यों की विदेशनीति के निर्धारण में सहायक होता है। यह निर्णय लेना आसान हो जाता है कि किन राज्यों के साथ मित्रता का सम्बन्ध बनाये रखना अपने राष्ट्रीय हित के लिये जरूरी है।

(iv) कौटिलीय अर्थशास्त्र में निर्दिष्ट 'षाड्गुण्य सिद्धान्त' आज भी प्रासंगिक है। उसके सभी छैः गुणों–सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय तथा द्वैधीभाव के विवेक सम्मत प्रयोग से किसी राष्ट्र की रक्षा, सुरक्षा, उन्नति और विस्तार में अभीष्ट सफलता मिल सकती है। उक्त छैः गुणों में भी आचार्य कौटिल्य ने 'सन्धि' नामक गुण को सर्वोच्च

वरीयता दी है। क्योंकि यह एक पूर्णतः हानिरहित गुण है। वर्तमान में विभिन्न राष्ट्रों के बीच आये दिन हो रहे सन्धि समझौते कौटिल्य के 'षाड्गुण्य सिद्धान्त' की प्रासंगिकता को प्रमाणित कर रहे हैं। अतीत के दोनों विश्वयुद्धों में भी उपरोक्त छः गुणों का यथासम्भव प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ – प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति वार्साय की 'सन्धि' द्वारा हुयी (28 जून, 1919)। इस 'सन्धि' द्वारा पराजित देश जर्मनी के कुछ भू भाग पर मित्र राष्ट्रों ने अधिकार कर लिया। जर्मनी को हर प्रकार से अपमानित किया गया।

इसी अपमान का बदला लेने के लिये जर्मनी ने शक्ति संग्रह क्रिया एवं अपने शत्रुओं को असावधान पाकर उन पर हमला (विग्रह एवं यान) कर दिया (1 सितम्बर, 1939)। जर्मनी ने रूस को अपने साथ मिलाकर 'साम' उपाय का एवं 'सन्धि' गुण का प्रयोग किया। जर्मनी ने रूस को मित्र राष्ट्रों से अलग रखकर 'भेद' उपाय का प्रयोग किया। परन्तु पुनः जर्मनी द्वारा रूस पर आक्रमण उसकी 'द्वैधीभाव' नीति का प्रयोग था। रूस का मित्र राष्ट्रों के साथ मिल जाना एक प्रकार से 'संश्रय' नीति का प्रयोग था।

द्वितीय विश्व युद्ध के मध्य तक स्पष्ट रूप से दुनिया के देश दो गुटों में बँट चुके थे– धुरी राष्ट्र एवं मित्र राष्ट्र;जो एक सीमा तक 'मण्डल सिद्धान्त' का प्रयोग था। युद्ध के चतुर्थ चरण में अफ्रीका महाद्वीप में जर्मनी और इटली की पराजय के बाद जर्मनी कुछ समय के लिये चुपचाप बैठ जाता है। जिस जर्मनी को समाचार पत्रों में Sitting War कहा गया; वह उसकी 'आसन' नीति का ही प्रतिरूप था। शत्रु पक्ष को भ्रम में डालकर वह गुप्त रूप से सैनिक तैयारी करता रहा एवं पुनः उसने नार्वे, डेनमार्क, हालैण्ड आदि देशों पर आक्रमण कर दिया। उसके द्वारा यह 'द्वैधीभाव' एवं 'यान' गुणों का प्रयोग था। इस प्रकार षाड्गुण्य नीति के गुणों का आधुनिक युग में भी अनेक रूपों में प्रयोग होता आया है।

यहाँ पर इस तथ्य का उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि संस्कृत वाङ्मय के एक प्राख्यात नाटक में 'कौटिलीय षाड्गुण्य नीति' की तुलना एक ऐसी विजयशालिनी रस्सी

से की गई है जो शत्रु को वश में करने के लिये सदैव उद्यत रहती है; शत्रु को बाँधने के लिये जिसमें चारों उपायों (साम, दान, भेद, दण्ड) से निर्मित पाश रूपी मुख (गोल फन्दा) बना हुआ है तथा जो रस्सी 'षाड्गुण्य' रूपी छैः गुणों (लड़ियों) में भँजी होने के कारण अत्यधिक मजबूत है।[78] इसी नाटक के अन्तिम अङ्क में उपलब्ध सम्राट चन्द्रगुप्त का यह कथन भी इस सन्दर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि 'गुरुवर चाणक्य तथा महामान्य राक्षस के षाड्गुण्य–चिन्तन के प्रति जागरूक रहने पर संसार में मैंने आज क्या नही जीत लिया है ? (अर्थात् सभी कुछ तो जीत लिया है।[79]

(v) आचार्य कौटिल्य का यह मत आज भी प्रासंगिक है कि एक विजिगीषु शासक को अपनी विदेश नीति की सफलता के लिये योग्य दूतों एवं गुप्तचरों की नियुक्ति करना चाहिये। दूसरे शब्दों में दूत एवं गुप्तचर ही सफल विदेशनीति की कसौटी हैं। वर्तमान राजनीति में देखा जा रहा है कि जिस देश की दूत व्यवस्था एवं गुप्तचर व्यवस्था जितनी सुदृढ़ है उसकी विदेशनीति उतनी ही सफल है। दुर्भाग्यवश आज कौटिल्य के देश भारत में ही उसकी इस नीति का पालन साङ्गोपाङ्ग नहीं, अपितु आंशिक रूप से हो रहा है। परिणामस्वरूप उसकी विदेशनीति के कुछ पक्ष विफल हो रहे हैं। भारत की वर्तमान दूत व्यवस्था तो सन्तोषप्रद कही जा सकती है। विभिन्न देशों में भारतीय राजदूत तथा भारत में उन के विदेशी राजदूत नियुक्त हैं तथा अन्तर्राज्य सम्बन्धों की स्थापना में वे अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। लेकिन भारत की गुप्तचर व्यवस्था आज आचार्य कौटिल्य की परिकल्पना के अनुरूप कुशल नहीं है। यही कारण है कि अनेक विदेशी गुप्तचर एजेन्सियाँ तथा आतंकवादी संगठन हमारे देश के भीतर तथा बाहर बड़े पैमाने पर भारत विरोधी गतिविधियाँ संचालित कर रहे हैं और हमें अपनी लचर गुप्तचर व्यवस्था के कारण उनका आभास तक नहीं हो पाता है। हमारी आँखे तब खुलती हैं जब आतंकवादियों का सहारा लेकर कोई विदेशी

---

78. षड्गुणसंयोगदृढा. . . . . रिपुसंयमनोद्यता जयति। मुद्राराक्षक नाटक 6/4
79. जगतः किं न विजितं. . . . . चार्ये च जाग्रति। उपरोक्त 7/13

गुप्तचर एजेन्सी यहाँ पर राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की कोई बड़ी दुर्घटना घटित करा देती है; राष्ट्र को एक अपूरणीय क्षति पहुँचा देती है। इस दिशा में कौटिलीय अर्थशास्त्र के अनुसार प्रयोग किये जा सकते हैं। आज भारत के नीति–निर्धारण में कौटिल्य के उन नौ प्रकार के विभिन्न वेशभूषाधारी योग्य एवं सक्षम गुप्तचर, जो देश के भीतर और बाहर घटित होने वाली प्रत्येक छोटी–बड़ी संदिग्ध गतिविधि की जानकारी शासन तक पहुँचाते थे, को तैनात कुछ सीमा तक नये प्रयोग किये जा सकते हैं। जो सफल भी हो सकते हैं।

यहाँ पर यह बात विशेष रूप से गौर तलब है कि गुप्तचर व्यवस्था चुस्त दुरूस्त न होने के कारण हम विदेशनीति के साथ साथ अपनी गृहनीति में भी विफल हो रहे हैं। अभी 29 जून 2006 को भारत के सेनाध्यक्ष जनरल जे. जे. सिंह ने एक अत्यन्त विस्मयकारी रहस्योद्‌घाटन किया कि भारत में घुसपैठ के लिये आतंकवादी वैसे तो नये नये हथकण्डे अपनाते रहे हैं, लेकिन अब तो वे पाकिस्तान सरकार से पासपोर्ट लेकर भी घुसपैठ कर रहे हैं। एक पत्रकारवार्ता में उन्होंने खुलासा किया कि पाक से आये दो आतंकियों ने जम्मू कश्मीर में पिछले दिनों कुपवाडा के पास त्रेगाम में सेना के सामने आत्मसमर्पण किया और इन दोनों ने पाकिस्तान सरकार द्वारा उन्हें जारी पासपोर्ट भी दिखाये। उन्होंने कहा कि ये आतंकी कराची से पहले काठमाँडों पहुँचे और वहाँ से भारत में घुसे। इसके बाद ये आतंकी गोरखपुर और दिल्ली होते हुये श्रीनगर पहुँचे।[80] यह एक उदाहरण है हमारी गृहनीति (गुप्तचर व्यवस्था) की विफलता का। हमारी लचर गुप्तचर व्यवस्था के कारण ही विदेशी आतंकवादी सारे भारत में बेखौफ घूम रहे हैं, और अपने अभीष्ट षडयन्त्रों को अंजाम दे रहे हैं। प्रभावी गुप्तचर व्यवस्था के अभाव में जहाँ देश के अन्दर एक ओर भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी निरंकुश तरीके से बढ़ रहे हैं वही दूसरी ओर देश की बहुसंख्यक बेरोजगार युवा पीढ़ी अनेक दुर्व्यवसनों का शिकार होती हुई विदेशी गुप्तचर एजेन्सियों के हाथ लग रही है। इस रूप में

---

80. दैनिक जागरण, झाँसी दिनांक 30–06–2006, मुख्य प्रष्ठ

हम अपनी गृहनीति में विफल हो रहे हैं। इसलिये भ्रष्टाचार रोकने के लिये आचार्य कौटिल्य ने तेरह प्रकार के 'गूढाजीवी' (गुप्त रूप में भारी अवैध आय वाले) लोगों को गुप्तचरों के माध्यम से चिन्हित करने तथा उन पर अंकुश लगाने के जो उपाय निर्दिष्ट किये हैं उन्हें समयानुकूल बनाकर अपनाने की आज नितान्त आवश्यकता है। चौकस गुप्तचर व्यवस्था का उपयोग भ्रष्टाचार निवारण में दूसरे प्रकार से भी किया जा सकता है। आचार्य कौटिल्य का दृढ़ मत है कि भ्रष्टाचार हमेशा ऊपर से पनपता व फैलता है। इसलिये उन्होंने व्यवस्था दी है कि शासन–प्रशासन के जो अठारह उच्च अधिकारी (अष्टादर्श तीर्थ) है उन सबके पास गुप्तचर नियुक्त होना चाहिये,जो उनकी सन्दिग्ध गतिविधियों की सूचना शासक को देते रहें। उच्च शीर्षस्थ पदों पर व्याप्त भ्रष्टाचार पर प्रभावी अंकुश लगाने हेतु कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट उपरोक्त गुप्तचर व्यवस्था का उपयोग आज लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

इतना ही नही, कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्र तो ऐसे हैं जिनके लिये आचार्य कौटिल्य ने विशेष प्रकार के गुप्तचर नियुक्त करने का निर्देश दिया है। लेकिन आज उन क्षेत्रों में गुप्तचर व्यवस्था को समाप्त करके उन्हें अपने हाल पर छोड़ दिया गया है। उदाहरणार्थ कौटिल्य ने कृषि एवं पशुपालन क्षेत्र के लिये सन्यासी तथा गरीब किसान के वेष में रहने वाले 'उदास्थित, कर्षक एवं 'गृहपतिक' नामक गुप्तचरों का प्राविधान किया है; ताकि वे किसानों का शोषण, उत्पीड़न एवं अहित करने वाले अधिकारियों/कर्मचारियों/साहूकारों/दलालों/विचौलियों की सूचना शासन तक पहुँचाते रहें। लेकिन आज इस व्यवस्था के अभाव में किसानों की जो दुर्दशा है वह किसी से छिपी नही है। इसलिये आज 'राष्ट्र की रीढ़' कहे जाने वाले किसानों की दशा सुधारने के लिये कौटिल्य की 'उदास्थित' एवं 'गृहपतिक' नामक गुप्तचर व्यवस्था का प्रयोग किया जा सकता है।

(vi) एक शक्तिशाली राजा द्वारा किसी शक्तिहीन राजा पर आक्रमण करने के कौटिलीय मत को सम्प्रभुता सिद्धान्त के विपरीत होने के कारण आधुनिक राजनीति में यद्यपि अप्रासंगिक माना जा रहा है; फिर भी एक दृष्टि से उस पर पुनर्विचार करने पर वह

आज भी प्रासंगिक प्रतीत होता है। एक दुर्बल राजा का अर्थ है– उसके राज्य में कुशासन और अन्याय होना। क्योंकि कमजोर राजा कभी अपने राज्य में सुशासन एवं न्याय स्थापित नहीं कर सकता है। इसलिये एक शक्तिशाली राजा का कर्त्तव्य बनता है कि वह दुर्बल राजा के दुशासन एवं अन्याय से प्रजा को मुक्ति दिलाये। सम्भवतः इसी दृष्टिकोण के आधार पर सोमालिया के सन्दर्भ में अमेरिका के पूर्व विदेशमंत्री हेनरी किसिंजर ने कुछ समय पहले सुझाव दिया था कि असफल राज्यों की सम्प्रभुता को स्थगित कर दिया जाना चाहिये।[81] इसलिये आज उक्त कौटिलीय सिद्धान्त को विचारणीय मानते हुये सम्प्रभुता की पवित्रता को बनाये रखने तथा दुर्बल राजा द्वारा स्थानीय कुशासन एवं अन्याय से प्रजा को मुक्ति दिलाने के लिये कुछ नवीन व्यावहारिक उपाय खोजने की राजनैतिक आवश्यकता है। अमेरिका इस कूटनीति का आज भी प्रयोग करता है।

(vii) 'विजिगीषु राजा को तीन प्रकार की शक्तियों–प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति, उत्साह शक्ति से सम्पन्न होना चाहिये' कौटिल्य का यह मत आधुनिक राजनीति की इस अवधारणा के अनुकूल है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तथा विदेश नीति के निर्धारण में 'शक्ति' आज भी बुनियादी तत्व है।[82] इन शक्तियों से युक्त राज्य का अस्तित्व हमेशा सुरक्षित रहता है।

(viii) सीमावर्ती राज्य को शत्रु मानने का कौटिलीय मत नित्य एवं स्थायी रूप से तो स्वीकार नहीं किया जा सकता है, किन्तु उसे पूरी तरह से अविचारणीय भी नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि भारतीय विदेश नीति के अब तक के परिणाम कौटिल्य के उक्त मत पर पुनर्विचार किये जाने की प्रबल सम्भावना व्यक्त करते हैं। भारतीय विदेशनीति जहाँ अपने सभी पड़ोसी राष्ट्रों के साथ मधुर संबंध बनाने की रही है, वहीं आजादी के बाद भारत पर जितने भी आक्रमण हुये हैं वे किसी और ने नहीं अपितु उसके

---

81. डा0 भरत झुनझुनवाला, आर्थिक चिन्तन का आधार, दैनिक जागरण झाँसी, दि0 23–3–06
82. डा0 वी0 एल0 फडिया, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति (भाग–1 सैद्धान्तिक पक्ष) पृष्ठ 103

पड़ोसी राष्ट्रों ने ही किये हैं। इसलिये कौटिल्य के उक्त मत को ध्यान में रखते हुये पड़ोसी राष्ट्रों को शत्रु राष्ट्र भले ही न माना जाये किन्तु उनकी विद्वेषपूर्ण सन्दिग्ध गतिविधियों पर पैनी नजर तथा नियंत्रण सदैव रखा जाये। क्योंकि दो पड़ोसी राज्यों में अधिकांशतया सम्बन्ध प्रतिद्वन्द्विता का होता है जो कभी भी शत्रुता में बदल सकता है। उनमें मतभेद स्थायी होते हैं। उदाहरणार्थ भारत–पाकिस्तान तथा इंग्लैण्ड–फ्रांस के पारस्परिक संबंध देखे जा सकते हैं।

(ix) वर्तमान में किसी भी राष्ट्र की विदेश नीति का निर्धारण उसके राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर ही किया जाता है। वस्तुतः राष्ट्रीय हित किसी भी राष्ट्र की विदेशनीति का प्राणतत्व होते हैं। सफल विदेशनीति वही मानी जाती है जो अपने राष्ट्रीय हितों की समुचित सुरक्षा एवं अभिवृद्धि करने में सफल होती है। लेकिन यदि वह ऐसा करने में असफल रहती है तो उसे असफल विदेशनीति माना जाता है। इसलिये राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा एवं अभिवृद्धि की दृष्टि से कौटिलीय विदेशनीति की प्रासंगिकता पर विचार करना यहाँ आवश्यक है। आधुनिक राजनीति में राष्ट्रीय हितों की अभिवृद्धि हेतु मुख्य रूप से सात प्रकार के साधन निर्धारित किये गये हैं – (1) कूटनीति (2) प्रचार (3) राजनैतिक युद्ध (4) आर्थिक साधन (5) साम्राज्यवाद (6) उपनिवेशवाद तथा (7) युद्ध।[83] कौटिलीय अर्थशास्त्र में उक्त साधनों का कहाँ किस रूप में प्रयोग हुआ; इसका सिंहावलोकन मात्र करना यहाँ विषयानुकूल होगा।

कौटिलीय अर्थशास्त्र में विजिगीषु राजा के द्वारा अपने शत्रु राजा को वश में करने के लिये जो अनेकानेक कूटनीतिक उपाय निर्दिष्ट किये गये हैं उन्हें 'कूटनीति' नामक प्रथम साधन के अन्तर्गत प्रासंगिक माना जा सकता है।

(x) कौटिलीय अर्थशास्त्र के 'उपजाप' नामक अध्याय में शत्रु–देश की प्रजा को तरह–तरह के कुप्रचार एवं दुष्प्रचार के द्वारा बहला फुसलाकर शत्रु राजा के विरूद्ध करने के जो

---

83. डा0 बी0 एल0 फड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति (भाग–1 सैद्धान्तिक पक्ष) पृष्ठ 146

अद्भुत उपाय निर्दिष्ट किये गये हैं [84] उन्हें 'प्रचार' नामक द्वितीय साधन के अन्तर्गत परिगणित किया जा सकता है।

(xi) राष्ट्रीय–हितों की अभिवृद्धि का तीसरा महत्वपूर्ण साधन है–राजनीतिक युद्ध। राजनीतिक युद्ध एक ऐसा युद्ध है जिसका रणक्षेत्र कोई भौतिक स्थल नहीं अपितु, मनुष्य का मस्तिष्क होता है। यह किसी तोप तलवार से नहीं, अपितु मनुष्य के मन–मस्तिष्क से लडा जाने वाला युद्ध है। अपने सामान्य रूप में प्रयुक्त होने वाले 'प्रचार' एवं 'कूटनीति' नामक साधनों का उद्देश्य जब शत्रु–राज्य को निर्बल बनाना, डराना या धमकाना हो जाता है तो वही साधन 'राजनीतिक युद्ध' का रूप धारण कर लेते हैं।[85] चूँकि कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट उपरोक्त 'प्रचार' एवं 'कूटनीति' नामक उपाय इसी रूप में प्रयुक्त हुये हैं, इसलिये वे आधुनिक राजनीति में 'राजनीतिक युद्ध' नामक तृतीय साधन के रूप में विचारणीय हैं। आधुनिक काल में यह एक प्रकार से 'शीत युद्ध' के रूप में अभिहित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ – रूस–अमेरिका के मध्य [illegible] चले गत शीत युद्ध को लिया जा सकता है।

(xii) राष्ट्रीय–हितों की अभिवृद्धि हेतु आयात–निर्यात होने वाली वस्तुओं पर विभिन्न प्रकार के आयात–निर्यात एवं सीमा शुल्क लगाना; आयात–निर्यात होने वाली वस्तुओं पर राष्ट्रीय हित की दृष्टि से तरह तरह के प्रतिबन्ध लगाना; विभिन्न राष्ट्रों के साथ अनेक प्रकार के आर्थिक एवं व्यापारिक सन्धि–समझौते करना आदि 'आर्थिक साधन' कहलाते है।[86]

इनका मुख्य उद्देश्य अपने राष्ट्र को आर्थिक दृष्टि से समृद्ध करना तथा दूसरे राष्ट्रों पर यथासम्भव आर्थिक दबाव बनाना है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में उपरोक्त 'आर्थिक साधनों' का भरपूर प्रयोग हुआ है। जिनका विवरण इसी शोध प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में 'वित्तीय प्रशासन' के अन्तर्गत द्रष्टव्य है; जो आधुनिक काल में प्रासंगिक ही नहीं, व्यवहार में भी विभिन्न देशों द्वारा प्रयोग में लाया जा रहा है।

---

84. कौ० अर्थ० 13 / 171 / 1 पृष्ठ 705–708
85. डा० बी० एल० फड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति (भाग–1 सैद्धान्तिक पक्ष) पृष्ठ 191
86. उपरोक्त पृष्ठ 232–235

(xiii) राष्ट्रीय–हितों की अभिवृद्धि का पाँचवा साधन है–साम्राज्यवाद। साम्राज्यवाद का मूल तत्व एक राज्य द्वारा दूसरे राज्यों पर अपना आधिपत्य जमाना है। इसके दो स्वरूप हैं–राजनैतिक साम्राज्यवाद एवं आर्थिक साम्राज्यवाद। जिनके क्रमशः सहज अर्थ है–एक देश द्वारा दूसरे देश पर राजनीतिक एवं आर्थिक प्रभुत्व स्थापित किया जाना।[87] इस संबंध में यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि पूरा का पूरा कौटिलीय अर्थशास्त्र 'राजनीतिक साम्राज्यवाद' पर ही केन्द्रित है; जिसका एकमात्र उद्देश्य विजिगीषु राजा द्वारा दूसरे देशों पर येन केन प्रकारेण विजय प्राप्त करके वृहद साम्राज्य विस्तार के यथासम्भव उपाय निर्दिष्ट करना हैं।[88] उसमें 'आर्थिक साम्राज्यवाद' पर कोई विशेष बल नहीं दिया गया है। फिर भी 'करद' राज्यों को लेकर ही साम्राज्य बनता था। सम्राट को 'करद' राज्य नियमित 'कर' देते थे। आज कुछ परिवर्तित रूप में आर्थिक साम्राज्यवाद की नीति का प्रयोग, दुनिया के अनेक देश कर रहे हैं, जिनमें अमेरिका प्रमुख है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिका एक महाशक्ति के रूप में उभर कर आया और उसने अफ्रीका एवं एशिया के अविकसित देशों के प्रति विभिन्न योजनाओं द्वारा आर्थिक वृत्तीकरण की नीति अपनायी। आज भी उसकी यह नीति विविध रूपों में जारी है। उन्हें भारी मात्रा में आर्थिक सहायता देकर सैदव के लिए अपना पिछलग्गू बना लेना ही उसका लक्ष्य है। यहाँ तक कि आज विश्व व्यापार संगठन एवं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोश जैसी संस्थाओं के संचालन में भी अमेरिका का ही वर्चस्व है।

(xiv) 'उपनिवेशवाद' को राष्ट्रीय–हितों की अभिवृद्धि के छठवें साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। व्यावहारिक दृष्टि से 'साम्राज्यवाद' एवं 'उपनिवेशवाद' में कोई विशेष अन्तर नहीं है। इसलिये हाब्सन जैसे विद्वानों ने इन दोनों शब्दों को एक दूसरे का

---

87. डा0 वी0 एल0 फड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति (भाग–1, सैद्धान्तिक पक्ष) पृष्ठ 194

88. देशः पृथिवी. . . . . तेषु यथास्वबलवृद्धिकरं कर्म प्रयुञ्जीत। कौ0 अर्थ0 9/135–36/1 पृष्ठ 590–91

पर्यायवाची माना है। फिर भी ई. एफ़. पैनरोज ने इन दोनों के बीच एक सूक्ष्म विभाजक–रेखा खीचने का निम्न प्रकार प्रयास किया है–'साम्राज्यवाद में नये भू–प्रदेशों और क्षेत्रों (उपनिवेशों) पर साम्राज्यवादी देश की विधि व्यवस्था तथा शासन प्रणाली पूरी तरह थोप दी जाती है; जबकि 'उपनिवेशवाद' में अधीनस्थ प्रदेशों पर विजयी देश की विधि व्यवस्था एवं शासन प्रणाली पूरी तरह नहीं थोपी जाती है। साम्राज्यवादी देश केवल उससे अपनी अधीनता स्वीकार कराकर छोड़ देता है तथा उसकी विधि व्यवस्था एवं साम्राज्यवादी देश के कुछ विशेष नियम–निर्देशों के साथ शासन प्रणाली, बहुलांश में पूर्ववत चलती रहती है। यहाँ तक कि उनकी सभ्यता, संस्कृति, जीवन मूल्य तथा सामाजिक–आर्थिक एवं राजनीतिक नीतियाँ–रीतियाँ भी बिना किसी भारी फेर–बदल के अधिकांशतः यथावत् कायम रहती हैं।[89] आचार्य कौटिल्य द्वारा दो राजाओं के बीच नये 'उपनिवेश' बसाने की शर्त के आधार पर की जाने वाली 'अनवसित'[90] नामक महत्वपूर्ण सन्धि को वर्तमान 'उपनिवेशवाद' की शैशवावस्था का रूप माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त कौटिलीय अर्थशास्त्र के "लब्ध प्रशमनम' नामक अध्याय (13/176/5, पृष्ठ 731–34) में विजिगीषु राजा द्वारा विजित देश में शान्ति स्थापना हेतु वहाँ की प्रजा पर कोई अपनी व्यवस्था न थोपकर विजित देश की ही सामाजिक, विधिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था को यथावत् कायम रखने के निर्देश उपरोक्त निष्कर्ष की ही पुष्टि करते हैं।[91]

(xv) राष्ट्रीय–हितों की अभिवृद्धि का सातवाँ और अन्तिम साधन माना जाता है – युद्ध। प्राचीन भारत में युद्ध को अपरिहार्य माना गया। वैसे युद्ध को देखने सुनने में कभी भी अच्छे नही लगते हैं। किन्तु ऐसा नहीं है कि युद्ध सदैव बुरे और हानिकारक होते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्राचीन युग में लंका–युद्ध तथा कुरूक्षेत्र युद्ध

---

89. डा0 बी0 एल0 फडिया, अन्तर्राष्ट्रीय रानजीति (भाग–1 सैद्धान्तिक पक्ष) पृष्ठ 208 से उदधृत।
90. कौ0 अर्थ0 7/116/11 पृष्ठ 505–510
91. सत्यकेतु विद्यालंकार, प्राचीन भारत की शासन पद्धति और राजशास्त्र, पृष्ठ 181–82

से तथा आधुनिक युग में अमरीकी गृहयुद्ध तथा द्वितीय विश्व युद्ध से संबंधित राष्ट्रों सहित समूचे विश्व को अनेक लाभ हुये हैं। इसीलिये शोटवैल और क्विंसीराइट जेसे आधुनिक विद्वानों का मत है कि 'युद्धों ने विश्व–पुर्ननिर्माण और आधुनिकीकरण के लिये हमारा मार्ग प्रशस्त किया है। संसार की तकनीकी और औद्योगिक प्रगति उस कच्चे माल तथा खनिज सम्पत्ति के बिना नहीं हो सकती थी जिसे शक्तिशाली राज्यों ने तलवार की नोंक पर दुर्बल राज्यों से छीना है। उदाहरणार्थ अफ्रीकनों के हाथ में कोबाल्ट का कोई मूल्य नहीं था परन्तु जब वह यूरोप के वैज्ञानिकों के हाथ में आ गया तो वही तकनीकी प्रगति को आगे बढ़ाने में एक महत्वपूर्ण कारक बन गया।'[92] हमारा अनुभव भी यही कहता है कि विश्व शान्ति की चाहत रखने वाले आधुनिक विश्व में भी जब किसी अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का समाधान अन्य साधनों से नहीं हो पाता है तो संबंधित राष्ट्र हमारे इसी अन्तिम साधन 'युद्ध' का ही प्रयोग खुलकर करते हैं। इस दृष्टि से कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट पाँच प्रकार के युद्ध – (1) प्रकाश युद्ध (2) कूट युद्ध (3) तूष्णी युद्ध[93] (4) व्यायाम युद्ध तथा (5) मन्त्रयुद्ध,[94] आवश्यकतानुसार आज भी प्रासंगिक माने जा सकते हैं।

इस प्रकार उक्त विवेचन से एक महत्वपूर्ण तथ्य उद्घाटित होता है कि यद्यपि कौटिल्य काल तक राष्ट्रीय भावना का समुचित विकास नहीं हो सका था तथापि उसके बीजांकुर कौटिल्य चिन्तन में प्रस्फुटित हो रहे थे। अतः कौटिल्य द्वारा उद्घाटित अन्तर्राज्य सम्बन्ध के अनेक गूढ़ तत्व ऐसे हैं जिन्हें प्रासंगिक बनाकर मानवजाति के लाभ के लिये प्रयोग में लाया जा सकता है।

अप्रासंगिकता

(i) कौटिल्य–युग में विजिगीषु राजा का नीति–अनीति एवं शुभ–अशुभ का विचार किये बिना येन केन प्रकारेण राज्य–विस्तार करने का जो चरम लक्ष्य था वह आधुनिक राजनीति में अप्रासंगिक माना जा सकता है। क्योंकि आधुनिक राज्य का चरम लक्ष्य

---

92. डा0 बी0 एल0 फडिया, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति (भाग–1 सैद्धान्तिक पक्ष) पृष्ठ 243 से उद्घुत
93. प्रकाशयुद्धं निर्दिष्टो देशे . . . . . .तुष्णींयुद्धस्य लक्षणम्। कौ0 अर्थ0 7/111/6 पृष्ठ 483
94. पार्ष्णिग्रहणाभियानयोस्तु. . . . . . .इत्याचार्याः। कौ0 अर्थ0 7/117/13 पृष्ठ 519

राज्य–विस्तार नहीं, अपितु उसकी सम्प्रभुता, एकता एवं अखण्डता को सुरक्षित रखते हुये उसका बहुमुखी विकास करना है। 'राज्य विस्तार' का एकमात्र लक्ष्य बनाकर हम अपने 'शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व' के सिद्धान्त पर नहीं चल सकते हैं। दूसरे, ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी उक्त कौटिलीय मत अप्रासंगिक प्रतीत होता है। कौटिलीय मत की ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विवेचना करने के बाद यह एक मौलिक प्रश्न उभरकर सामने आता है कि कौटिलीय सिद्धान्तों पर प्रतिष्ठापित मौर्य–साम्राज्य दीर्घकाल तक क्यों नही चल सका ? सम्राट अशोक के बाद ही उसका शीघ्र पतन क्यों हो गया ? विवेचना के फलस्वरूप इसका एक प्रमुख कारण संभवतः कौटिलीय नीति में समविष्ट अनैतिक, अशुभ तथा हिंसक दृष्टिकोण ही प्रतीत होता है। क्योंकि ऐसे किसी राजा को वहाँ की प्रजा किसी विवशतावश तो स्वीकार कर लेती है, किन्तु आत्मा और मन से उसके प्रति सदैव घृणा एवं उपेक्षा का भाव ही रखती है; और प्रजा के यही भाव अन्त में जाकर उसके पतन का कारण बनते हैं। जबकि इसके विपरीत शुभ, नैतिक एवं अहिंसक दृष्टिकोण रखने वाले मनुस्मृति जैसे धर्मशास्त्रीय सिद्धान्तों पर प्रतिपादित हिन्दू साम्राज्य हजारों वर्ष की दीर्घावधि तक कायम रहे हैं।[95] फिर भी आज के युग में शान्ति का दिखावा करते हुये अपने राज्य–विस्तार का प्रभाव विस्तार के लक्ष्य पर कार्य करने वाले राज्यों की भी कमी नहीं है। जैसे– पाक, चीन, अमेरिका आदि।

(ii) इसी प्रकार शक्तिशाली राजा द्वारा एक शक्तिहीन राजा पर आक्रमण करने का कौटिलीय मत आधुनिक राजनीति में अप्रासंगिक हो रहा है। नार्थ ईस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर एल. के. झा जैसे कुछ आधुनिक विद्वानों के अनुसार आचार्य कौटिल्य का उक्त सुझाव आज स्वीकार करने योग्य नहीं है। क्योंकि वर्तमान युग की मान्यता है कि किसी देश की सम्प्रभुतां पर आक्रमण करने का किसी दूसरे देश को कोई नैतिक एवं विधिक अधिकार नहीं है।[96] किन्तु व्यवहार में अमेरिका जैसे देश इस कूटनीति का प्रयोग कर ही रहे हैं।

---

95. डा0 भरत झुनझुनवाला, आर्थिक चिन्तन का आधार, दैनिक जागरण झाँसी, दि0 22–03–06
96. उपरोक्त।

(iii) कौटिल्य का यह मत आधुनिक राजनीति में पूर्णतः प्रासंगिक नही माना जा सकता है कि एक राज्य की सीमा से लगा हुआ राज्य 'अरि राज्य' माना जाये। आज कुछ अपवादों को छोड़कर प्रत्येक राष्ट्र अपने पड़ोसी राष्ट्र से मैत्री–सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। जिन पड़ोसी राज्यों के आपस में मैत्री सम्बन्ध स्थापित नहीं भी हो पाते हैं वे भी एक दूसरे को सिद्धान्ततः 'अरि राज्य' घोषित नहीं करते हैं। बल्कि उन्हें अपना मित्र बनाने हेतु सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। फिर भी दुनियाँ में अनेक पड़ोसी देश ऐसे हैं जो परस्पर प्रतिद्वन्द्वी होने के कारण सच्चे मित्र नहीं हैं।

(iv) कौटिल्य का षाड्गुण्य सिद्धान्त यों तो समग्र रूप में प्रासंगिक है किन्तु छैः गुणों के वरीयता क्रम में 'यान' (आक्रमण या चढ़ाई) को तृतीय स्थान पर रखना प्रासंगिक प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि आधुनिक राजनीति में प्रायः सभी राष्ट्र अपने विरोधी राष्ट्र पर नियंत्रण हेतु षाड्गुण्य सिद्धान्त के पाँच गुणों (यान के अतिरिक्त) का उपयोग करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर 'यान' का प्रयोग तो केवल अन्तिम विकल्प के रूप में ही होता है।

(v) इसी प्रकार उपाय चतुष्टय के सम्बन्ध में आचार्य कौटिल्य का यह मत कि इन चारों उपायों में पूर्ववर्ती उपाय की अपेक्षा उत्तरवर्ती उपाय अधिक महत्वपूर्ण होता है अर्थात् 'साम' से अधिक महत्वपूर्ण 'दान', 'दान' से अधिक 'भेद', तथा 'भेद' से अधिक महत्वपूर्ण 'दण्ड' उपाय है। इस रूप में उनके अनुसार 'दण्ड' उपाय सर्वाधिक महत्वपूर्ण है; क्योंकि उसमें पूर्ववर्ती तीनों उपाय– साम, दान, भेद सन्निहित रहते हैं। यह मत आधुनिक राजनीति में प्रासंगिक नहीं माना जा सकता है। क्योंकि 'विश्वबन्धुत्व' तथा 'विश्वग्राम' की परिकल्पना वाली आधुनिक राजनीति में 'दण्ड' उपाय को श्रेष्ठ नहीं, अपितु एक निकृष्ट उपाय के रूप में परिगणित किया जाता है। यही कारण है कि आज यदि एक भी राष्ट्र के साथ 'दण्ड' उपाय का प्रयोग किया जाता है तो सारे विश्व में प्रतिक्रियात्मक हलचल पैदा हो जाती है। इसलिये आधुनिक राजनीति में

सभी देश प्रायः 'दण्ड' उपाय के प्रयोग से बचने का प्रयास करते हैं। क्योंकि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का मूलाधार अपने राष्ट्रीय हितों को देखते हुये मित्र देशों के साथ अधिकाधिक सहयोग बढ़ाना तथा गैर मित्र देशों के साथ संबंधों को और ज्यादा खराब होने से रोकना है।[97]

(vi) आचार्य कौटिल्य ने अपने मण्डल सिद्धान्त के अन्तर्गत भौगोलिक आधार पर जो शत्रु–मित्र आदि बारह राजाओं वाले 'द्वादश राज मण्डल' का गठन किया है, आधुनिक राजनीति में वह प्रासंगिक नही माना जा सकता है। क्योंकि आज किसी भी राष्ट्र के शत्रु या मित्र होने का निर्धारण भौगोलिक आधार पर नहीं अपितु उसकी नीति, नीयत, कार्यप्रणाली तथा उद्देश्य के आधार पर किया जाता है। यही कारण है कि कौटिलीय अवधारणा के विपरीत आज एक दूसरे की सीमा से लगे हुये अनेक राष्ट्र मित्र भी हैं तथा सीमा से दूरवर्ती अनेक राष्ट्र सिद्धान्ततः/व्यवहारतः एक दूसरे के विरोधी भी हैं। दूसरे, यह मत इस आधार पर भी प्रासंगिक नहीं माना जा सकता है कि कोई भी अन्तर्राज्य सम्बन्ध कभी नित्य एवं स्थायी नहीं होते हैं। संभव है, जो राष्ट्र आज हमारे शत्रु हैं, समस्याओं और शिकायतों का समाधान हो जाने पर कल वही राष्ट्र हमारे मित्र भी बन जायें। इसी प्रकार जो राष्ट्र आज हमारे मित्र हैं, राष्ट्रीय हित–संरक्षण की प्रतिस्पर्द्धा में कल वही हमारे विरोधी बन जायें। इसलिये केवल भौगोलिक आधार पर किसी राज्य को नित्य–शत्रु या नित्य–मित्र मान लेना आधुनिक राजनीति के लिये प्रासंगिक नहीं है।

(vii) आचार्य कौटिल्य के मण्डल सिद्धान्त में 'विजिगीषु राजा' की अवधारणा आधुनिक राजनीति में प्रासंगिक प्रतीत नहीं होती है। क्योंकि उसकी 'साम्राज्यवादी नीति' को अन्य देशों का समर्थन एवं अनुमोदन प्राप्त नहीं हो सकता है। बल्कि अन्य देश उक्त नीति से उसके विरोधी ही हो सकते हैं।

---

97. के0 सुब्रहमण्यम्, 'सही दिशा में परमाणु सैदा", दैनिक जागरण, झाँसी दि0 30–06–06

(viii) आचार्य कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित विदेश नीति, आधुनिक राजनीति में इस दृष्टि से भी प्रासंगिक नहीं है कि वह केवल बड़े एवं शक्तिशाली राज्यों का ही हित संरक्षण करती है। जबकि आज के अन्तर्राष्ट्रीय कानून छोटे–बड़े सभी राष्ट्रों के हित–संरक्षण को प्रथम वरीयता देते हैं। यह छोटे राज्यों की सुरक्षा की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

(ix) भूमण्डलीकरण एवं वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में जबकि सारी दुनियाँ 'विश्वग्राम' (Global Village) के रूप में एक छतरी के नीचे आ रही है, केवल दर्जन भर राजाओं के बीच अन्तर्राज्य सम्बन्ध स्थापित करने वाला, कौटिलीय मण्डल सिद्धान्त प्रासंगिक नहीं हो सकता। इसे एक निश्चित संख्या–सीमा में नही बाँधा जा सकता है।

(x) आचार्य कौटिल्य का यह मत आधुनिक राजनीति के लिये प्रासंगिक नही माना जा सकता है कि जन–धन का कितना भी क्षय–व्यय क्यों न हो, हर हाल में शत्रु का नाश करना ही उद्देश्य होना चाहिये।[98]

(xii) कौटिलीय गुप्तचर व्यवस्था कुछ सीमा तक आधुनिक राजनीति में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है किन्तु ढोंग, आडम्बर तथा पाखण्ड फैलाने वाले 'तापस' जैसे गुप्तचर वर्तमान में प्रासंगिक नही माने जा सकते हैं।

(xi) इसी प्रकार कौटिल्य द्वारा विकलांगों को भी गुप्तचरी के अत्यन्त जोखिम भरे कार्यों में लगाया जाना वर्तमान राजनीति में प्रासंगिक नहीं माना जा सकता है। इसलिये कुछ आलोचकों ने तो कौटिल्य के इस मत की यह कहकर तीव्र आलोचना की है कि विकलांगों को गुप्तचरी के काम में लगाकर उन्होंने ऐसा काम किया है मानो नाजीवादी हिटलर ने दूसरे विश्वयुद्ध में रैडक्रास की एम्बुलैंस में परमाणु बम ढोने शुरू कर दिये हों।[99]

---

98. नेति कौटिल्यः. . . . . . शत्रुविनाशोऽभ्युपगन्तव्यः। कौ0 अर्थ0 7!117!13 पृष्ठ 520
99. डा0 धर्मवीर, कौटिल्य का सामाजिक वैर, पृष्ठ 27

षष्ठम अध्याय– कौटिलीय राजदर्शन में व्यसन एवं आपदा चिन्तन

असतां प्रग्रहः कामः कोपश्चावग्रहः सताम्। व्यसनं दोषबाहुल्यादत्यन्तमुभयं मतम्।
तस्मात्कोपं च कामं च व्यसनारम्भमात्मवान्। परित्यजेन्मूलहरं वृद्धसेवी जितेन्द्रियः।।
(कौ० अर्थ० 8/129/3)

['काम' दुर्जनों के सत्कार का हेतु तथा 'क्रोध' सज्जनों के तिरस्कार का हेतु होता है। दोषों की अधिकता के कारण 'काम' और 'क्रोध' को महान व्यसन माना गया है। इसलिए धैर्यशाली, वृद्धसेवी तथा जितेन्द्रिय राजा को चाहिए कि वह प्राणों तक का नाश करने वाले तथा दुःखोत्पादक 'काम' और 'क्रोध' का सर्वथा परित्याग कर दे।]

कौटिल्य का व्यसन संबंधी दृष्टिकोण :

आचार्य कौटिल्य ने 'व्यसन एवं आपदाओं' पर गम्भीर चिन्तन–मनन करते हुए तद्विषयक अपना मत प्रतिपादित किया है। वस्तुतः उनका व्यसन संबंधी समस्त चिन्तन मनन 'योगक्षेम' पर आधारित है। 'योगक्षेम' की प्राप्ति में जो भी तत्व अवरोधक हो सकते हैं उनको चिन्हित करना तथा उनके निवारण–उपायों पर सम्यक्रूपेण विचार करना ही उनके व्यसन–चिन्तन का मूलाधार है। उनके मतानुसार 'योगक्षेम' में 'योग' का मूल 'शम' तथा 'क्षेम' का मूल 'व्यायाम' है। अपने इस गूढार्थी मत का अर्थ सुस्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि 'सन्धि' आदि कर्मफलो में आने वाली विघ्नों को शान्त करना 'शम' का कहलाता है तथा उन 'सन्धि' आदि कार्यों के सफल क्रियान्वयन हेतु कुशल व्यक्तियों को नियुक्त करना 'व्यायाम' कहलाता है। उपरोक्त 'शम' और 'व्यायाम' का मूल है– षाड्गुण्य (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय, द्वैधीभाव) तथा षाड्गुण्य के फल हैं– वृद्धि (उन्नति), क्षय (अवनति) तथा स्थान (समस्थिति अर्थात् न उन्नति न अवनति)। उक्त तीनों प्रकार के फल प्रदान करने वाले हैं– कर्म, जो दो प्रकार के होते हैं– (i) मानुष कर्म (मानवी शक्ति द्वारा किए जाने वाले कर्म) तथा (ii) दैव कर्म (अदृष्ट शक्ति द्वारा किए जाने वाले कर्म)। पुनः उक्त दोनों कर्मो के दो–दो उपभेद करते हुए आचार्य कौटिल्य ने निर्दिष्ट किया है कि मानुष कर्म के (i) नय कर्म (ऐसे कर्म जिनसे 'योगक्षेम' की प्राप्ति हो) तथा (ii) अपनय कर्म (ऐसे कर्म जिनसे विपत्ति की प्राप्ति हो); एवं दैव कर्म के (i) अय कर्म (ऐसे कर्म जिनसे अभीष्ट फल की प्राप्ति हो) तथा (ii) अनय कर्म (ऐसे कर्म जिनसे प्रतिकूल फल की प्राप्ति हो) नामक दो–दो भेद होते हैं।[1]

आचार्य कौटिल्य का स्पष्ट मत है कि उपरोक्त 'अपनय' नामक मानुषकर्म तथा 'अनय' नामक दैवकर्म के कारण ही सभी प्रकार के 'व्यसन' उत्पन्न होते हैं। जो तदनुसार

1. शमव्यायामौ योगक्षेमयोर्योनिः. . . . . विपत्तिरपनयः। कौ० अर्थ० 6/97/2 पृष्ठ 445

'मानुष'व्यसन' एवं 'दैव व्यसन' कहलाते हैं। आचार्य कौटिल्य के 'व्यसन संबंधी उक्त गम्भीर दृष्टिकोण को आगे एक सरलीकृत रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। चूँकि उक्त दोनो कर्मो से प्रतिकूल फल एवं विपत्ति की प्राप्ति होती है, इसलिए आचार्य कौटिल्य ने 'व्यसन' शब्द को परिभाषित करते हुए कहा है कि जो कर्म किसी को उसके कल्याण मार्ग से पतित/वंचित कर दे उसे 'व्यसन' कहते हैं।[2] इसलिए राज्य में किसी भी प्रकार के व्यसन उत्पन्न न होने देने के लिए तथा सब प्रकार से 'योगक्षेम' बनाये रखने के लिए आचार्य कौटिल्य ने विजिगीषु राजा को निर्दिष्ट किया है कि वह आलस्य का परित्याग कर अपने प्रकृति वर्ग में व्यसनो के उत्पन्न होने से पहले ही उनके कारणों का प्रतिकार कर दे।[3] आचार्य कौटिल्य ने व्यसनों के प्रति सतर्क करते हुए निर्दिष्ट किया है कि गुणों की प्रतिकूलता, गुणों का अभाव, दोषों की अधिकता, विषयों के प्रति आसक्ति तथा शत्रु द्वारा उत्पीडन किए जाने से व्यसन उत्पन्न होते हैं।[4] इस प्रकार आचार्य कौटिल्य ने विजिगीषु राजा और उसके राज्य को सर्वथा निरापद एवं व्यसन मुक्त रखने के लिए 'अर्थशास्त्र' के 'व्यसनाधिकारिकम्' नामक अष्टम् अधिकरण में अनेक प्रकार के व्यसनों पर विस्तृत चर्चा की है।

(क) राज्य की विभिन्न प्रकृतियो के व्यसन :

आचार्य कौटिल्य ने व्यसनों पर विचार विमर्श करते समय सर्वप्रथम उस गम्भीर स्थिति को अपने संज्ञान में लिया है जब राज्य की विभिन्न प्रकृतियों को व्यसन–चक्र एक साथ घेर लेते हैं। उस स्थिति में विजिगीषु राजा का तद्विषयक यह मन्तव्य सुस्पष्ट होना चाहिए कि विभिन्न प्रकृतियों में कौन सी प्रकृति व्यसन युक्त होने पर अपेक्षाकृत अधिक कष्टप्रद होती है। जो व्यसनग्रस्त प्रकृति अधिक भयप्रद हो, 'योगक्षेम' की दृष्टि से उसी प्रकृति के व्यसन–निवारण को विजिगीषु द्वारा सर्वोच्च वरीयता दी जाना चाहिए। यह गम्भीर परिचर्चा आचार्य कौटिल्य ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यो के मत से प्रारम्भ की है। इन आचार्यो के

2. दैवं मानुषं वा. . . . . व्यस्यत्येनं श्रेयस इति व्यसनम्। कौ0 अर्थ0 8/127/1 पृष्ठ 555
3. यतो निमित्तं व्यसनं. . . . . तन्निमित्तमतन्द्रितः। कौ0 अर्थ0 8/133–34/5 पृष्ठ 586
4. गुणप्रातिलोम्यमभावः प्रदोषः प्रसङ्गः पीडा वा व्यसनम्। कौ0 अर्थ0 8/127/1 पृष्ठ 555

योगक्षेम

योगक्षेम
शम
व्यायाम
वृद्धि
क्षय
स्थान
सन्धि
विग्रह
यान
आसन
संश्रय
द्वैधीभाव
कर्म
मानुषकर्म
दैवकर्म
नय
(योगक्षेम की प्राप्ति)
अपनय
(विपत्ति की प्राप्ति)
अय
(अभीष्ट फल की प्राप्ति)
अनय
(प्रतिकूल फल की प्राप्ति)
व्यसन
मानुषव्यसन
दैव व्यसन
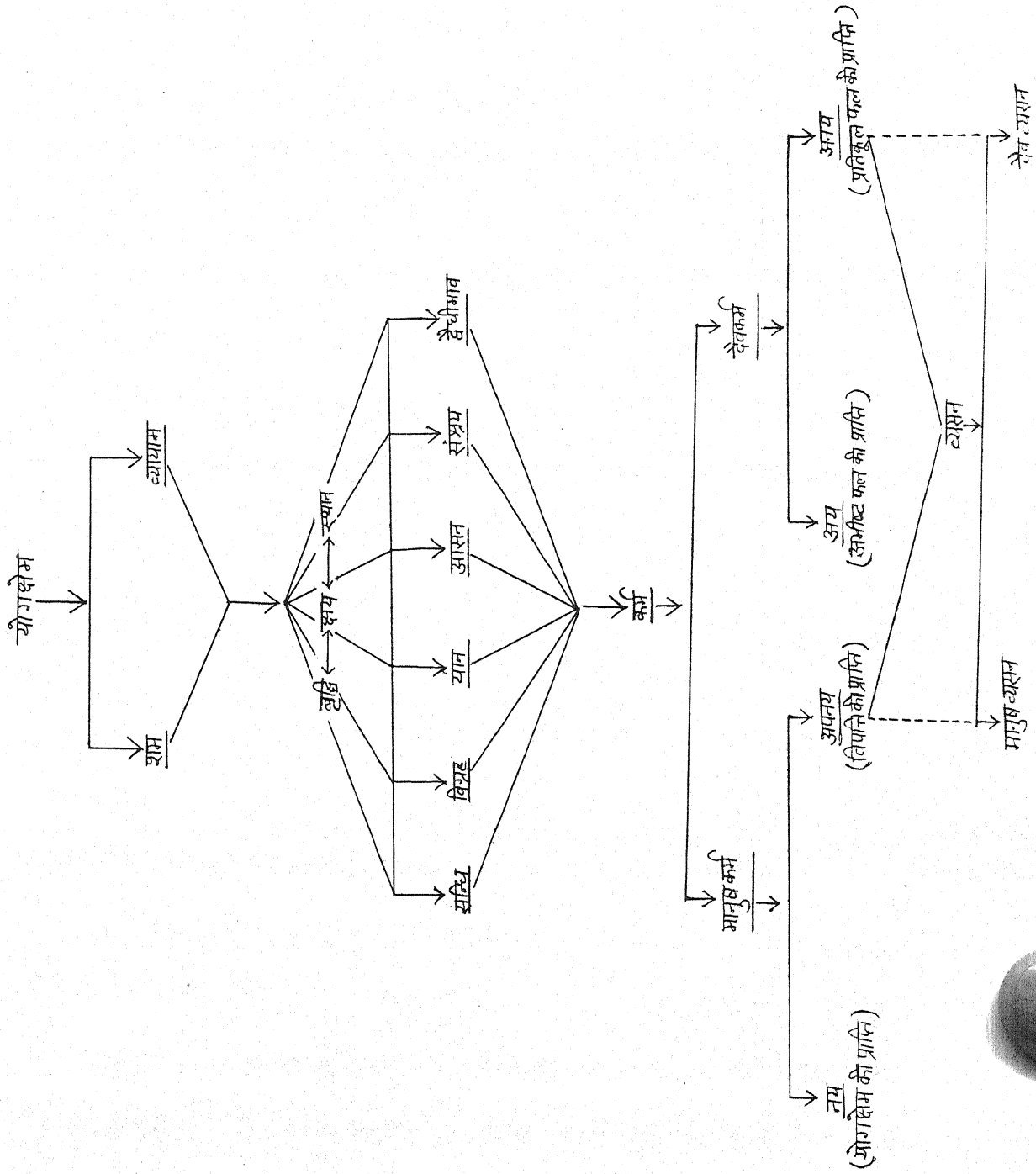
मतानुसार राज्य की सात प्रकृतियों— स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, सेना और मित्र में अपनी उत्तरवर्ती प्रकृति की अपेक्षा पूर्ववर्ती प्रकृति की विपत्ति अत्यन्त कष्टप्रद होती है।[5] अर्थात् उनके अनुसार मित्र से अधिक सेना, सेना से अधिक कोश, कोश से अधिक दुर्ग, दुर्ग से अधिक जनपद, जनपद से अधिक अमात्य तथा अमात्य से अधिक स्वामी की व्यसनग्रस्तता कष्टकर होती है।

किन्तु आचार्य भारद्वाज उपरोक्त मत पर अपनी असहमति व्यक्त करते हुए कहते हैं कि स्वामी और अमात्य में से स्वामी की नहीं अपितु अमात्य की व्यसनग्रस्तता ही अधिक भयप्रद होती है। क्योंकि महत्वपूर्ण राजकार्यो पर मन्त्रणा करना, मन्त्रणा की फल–प्राप्ति करना, विभिन्न कार्यो को क्रियान्वित करना, आय–व्यय की व्यवस्था करना, सैन्य संग्रह करना, शत्रुओं तथा आटविकों का प्रतीकार करना, राज्य की सुरक्षा करना, विभिन्न प्रकार के व्यसनों का प्रतीकार करना, राजकुमारों की रक्षा करना तथा उनका राज्याभिषेक करना आदि अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य अमात्यों पर ही निर्भर होते हैं। अमात्यों के अभाव में उपरोक्त कार्य सम्पन्न नहीं हो सकते हैं। बल्कि अमात्यों के बिना राजा की स्थिति एक पर कटे पक्षी के समान होती है जिसके सारे अभीष्ट कार्यो का नाश हो जाता है। तथा उसकी इस विपत्ति का लाभ उठाकर उसके शत्रु षड्यन्त्रों का जाल बिछा देते हैं। यहाँ तक कि अमात्यों के व्यसनग्रस्त होने पर राजा की जानमाल तक का खतरा उत्पन्न हो जाता है। क्योंकि अमात्यगण राजाओं के प्राणतुल्य होते हैं।[6]

किन्तु आचार्य भारद्वाज का उपरोक्त मत आचार्य कौटिल्य को मान्य नहीं है। क्योंकि उनके अनुसार राजा और अमात्यों के एक साथ व्यसनग्रस्त होने पर अमात्यों की अपेक्षा राजा की व्यसनग्रस्तता अधिक हानिप्रद होती है। इसके पीछे आचार्य कौटिल्य कुछ ठोस तर्क प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार यदि अमात्य व्यसनी हो जाते हैं तो राजा उनके स्थान पर अव्यसनी अमात्यों को नियुक्त कर सकता है। दूसरे, राजा अपने राजयोग्य गुणों

---

5. स्वाम्यमात्यजनपद. . . . . . पूर्वं पूर्वं गरीय इत्याचार्याः। कौ0 अर्थ0 8/127/1 पृष्ठ 555
6. नेति भारद्वाजः. . . . . . . प्राणान्तिकचरत्वाद्राज्ञ इति। उपरोक्त पृष्ठ 555–56

से अपनी अमात्य आदि प्रकृतियों के व्यसनों को दूरकर उन्हें सम्पन्न बना सकता है। क्योंकि राजा का स्वभाव जैसा होता है, उसकी प्रकृतियों का स्वभाव भी वैसा ही हो जाता है। तथा राजा पर ही उसकी प्रकृतियों का उत्थान एवं पतन निर्भर होता है। क्योंकि राजा ही राज्य की सात प्रकृतियों में प्रधान (कूटस्थानीय) होता है।[7]

'अमात्य' एवं 'जनपद' नामक प्रकृतियों के एक साथ व्यसनग्रस्त होने पर कौन सी प्रकृति अधिक कष्टकर है ? इस जटिल प्रश्न के उत्तर हेतु आचार्य कौटिल्य ने पहले अपने पूर्वाचार्य विशालाक्ष का मत प्रस्तुत किया है। आचार्य विशालाक्ष के अनुसार अमात्य–व्यसन की अपेक्षा जनपद–व्यसन अधिक कष्टदायी होता है। क्योंकि कोश, सेना, वन तथा खनिज संबंधी सामग्री, हाथी–घोड़े आदि वाहन; यह समस्त सामग्री जनपद से ही प्राप्त होती है। जब जनपद नहीं होगा तो उक्त सारी सामग्री भी नहीं होगी और उस स्थिति में राजा और अमात्य आदि का अस्तित्व भी सङ्कटमय हो जाता है।[8]

किन्तु आचार्य विशालाक्ष के उपरोक्त मत पर असहमति व्यक्त करते हुए आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि जनपद–व्यसन की अपेक्षा अमात्य–व्यसन अधिक चिन्तनीय होता है। क्योंकि समस्त राजकाज अमात्यों पर ही निर्भर होते हैं। जैसे– जनपद की कार्य सिद्धियाँ, स्वयं के द्वारा तथा दूसरे अधिकारियों के द्वारा 'योगक्षेम' का साधन, व्यसनों का प्रतीकार, उपनिवेशों की स्थापना एवं उनकी उन्नति, अपराधियों को दण्ड तथा राजकर का निग्रह आदि महत्वपूर्ण कार्य अमात्यों द्वारा ही सम्पन्न होते हैं।[9]

'जनपद' और 'दुर्ग' इन दोनों प्रकृतियों के एक साथ व्यसनग्रस्त होने पर कौन सी प्रकृति अधिक हानिकारक है ? इस संबंध में आचार्य पराशर के अनुयायियों का मत है कि जनपद–व्यसन की अपेक्षा दुर्ग–व्यसन अधिक खतरनाक होता है। क्योंकि दुर्ग में ही कोश और सेना स्थित रहते हैं तथा जनपद पर कोई विपत्ति आने पर दुर्ग ही उस समय उसका

---

7. नेति कौटिल्यः . . . . . . तत्कूटस्थानीयो हि स्वामीति। कौ० अर्थ० 8/127/1 पृष्ठ 556
8. अमात्यजनपदव्यसनयोः. . . . . . स्वाम्यमात्ययोश्चानन्तर इति। उपरोक्त पृष्ठ 556–57
9. नेति कौटिल्यः. . . . . . . दण्डकरानुग्रहश्चेति। उपरोक्त पृष्ठ 557

एकमात्र आश्रय–स्थल होता है। इसके अतिरिक्त जनपद के निवासियों तथा नागरिकों की अपेक्षा दुर्ग अधिक शक्तिशाली तथा स्थायी होते हैं; किसी भी विपत्ति में वह विजिगीषु राजा के सहायक होते हैं। जनपद के निवासियों को तो शत्रुवत् समझना चाहिए; क्योंकि प्रतिकूल परिस्थितियों में वे शत्रु–राजा को कर आदि देकर उसकी सहायता भी करते हैं। इस रूप में उनका विजिगीषु राजा के प्रति शत्रुवत् व्यवहार होता है।[10]

किन्तु आचार्य कौटिल्य को उपरोक्त मत स्वीकार नहीं है। उनके अनुसार दुर्ग–व्यसन की अपेक्षा जनपद–व्यसन अधिक चिन्ताजनक होते हैं। क्योंकि दुर्ग, कोश, सेना, सेतु, कृषि–पशुपालन–व्यापार आदि महत्वपूर्ण कार्य 'जनपद' पर ही निर्भर होते हैं। इसके अतिरिक्त शूरता, स्थिरता, दक्षता तथा बहुलता आदि गुण 'जनपद' के पुरुषों में ही होते हैं। यदि जनपद ही व्यसनग्रस्त हो जाता है तो फिर नदी और पर्वतों में बने बड़े–बड़े अजेय दुर्ग भी सूने पड़ जाते हैं। हाँ, यह अवश्य है कि जैसे जनपद रहित दुर्ग सूने हो जाते हैं वैसे ही दुर्ग रहित जनपदो में रहना भी दुष्कर हो जाता है। इस दृष्टि से कृषि प्रधान जनपदों में दुर्ग–व्यसन तथा आयुध प्रधान जनपदो में जनपद-व्यसन अधिक चिन्ताजनक होता है।[11]

'दुर्ग' तथो 'कोष' नामक प्रकृतियों के एक साथ व्यसनग्रस्त होने पर कौन सी प्रकृति अधिक भयावह होती है ? इस जिज्ञासा के शमन हेतु आचार्य पिशुन (नारद) का कथन है कि दुर्ग–व्यसन की अपेक्षा कोश–व्यसन अधिक हानिकारक होता है। क्योंकि दुर्ग की मरम्मत तथा उसकी रक्षा कोश पर ही निर्भर है। इसके अतिरिक्त कोश के बल पर शत्रुओं के दुर्ग में भी सेंध लगाई जा सकती है; कोश के ही द्वारा जनपद, मित्र और शत्रु आदि सभी का निग्रह किया जा सकता है; तथा सैन्य बल का उपयोग भी कोश पर ही निर्भर है। इस संबंध में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि कोई आकस्मिक विपत्ति आने पर यदि भागना पडे तो भागते समय कोश को भी साथ ले जाया जा सकता है; किन्तु ऐसी दशा में 'दुर्ग' को साथ में लेकर नहीं भागा जा सकता है।[12]

10. जनपददुर्गव्यसनयोः. . . . . . जानपदास्त्वमित्रसाधारणा इति। कौ० अर्थ० 8/127/1 पृष्ठ 557
11. नेति कौटिल्यः. . . . . तू जनपदे जनपदव्यसनमिति। उपरोक्त पृष्ठ 557–58
12. दुर्गकोशव्यसनयोः. . . . . . .व्यसने शक्यमपयातुं न दुर्गमिति। उपरोक्त पृष्ठ 558

लेकिन आचार्य कौटिल्य उपरोक्त मत से सहमत नहीं है। उनके अनुसार कोश–व्यसन की अपेक्षा दुर्ग–व्यसन अधिक कष्टकर होता है। क्योंकि कोश और सेना दोनों की रक्षा दुर्ग के द्वारा ही की जा सकती है। इसके अतिरिक्त तूष्णीयुद्ध, (छद्मयुद्ध), अपने पक्ष के राजद्रोहियों का निग्रह, सैन्य बल का उपयोग, शत्रु सेना का प्रतीकार तथा आटविकों का प्रतिषेध आदि सभी महत्वपूर्ण कार्य दुर्ग के द्वारा ही किए जा सकते हैं। दुर्ग के अभाव में कोश पर शत्रुओं का कब्जा हो सकता है। ऐसा भी देखा गया है कि जिनके पास पर्याप्त कोश तो नहीं है किन्तु अजेय दुर्ग अवश्य हैं, उनका उच्छेदन आसानी से नहीं किया जा सकता है।[13]

'कोश' और 'सेना' नामक प्रकृतियों के एक साथ व्यसनग्रस्त होने पर कौन सी प्रकृति अधिक हानिप्रद है ? इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य कौणपदन्त (भीष्म) कहते हैं कि कोश–व्यसन की अपेक्षा सेना–व्यसन ही अधिक कष्टकर है। क्योंकि शत्रु तथा मित्र का निग्रह, शत्रु सेना को अपनी सहायता के लिए प्रेरित करना तथा अपनी सेना का अधिक संग्रह करना आदि महत्वपूर्ण कार्य सेना पर ही निर्भर हैं। इसके अतिरिक्त सेना के अभाव में कोश का नष्ट होना निश्चित होता है; क्योंकि उसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं रह जाता है। जबकि कोश का अभाव उतना कष्ट कर नहीं होता। क्योंकि कोश के अभाव में भी जंगली तथा खनिज सामग्री के द्वारा, भूमि के द्वारा, अथवा शत्रु की भूमि पर स्वयं कब्जे द्वारा सैन्यबल विकसित किया जा सकता है तथा उस सैन्यबल से कोश–संग्रह भी किया जा सकता है। सदैव राजा के समीप रहने के कारण सेना भी अमात्यों के ही समान उसकी उपकारिणी होती है।[14]

किन्तु आचार्य कौटिल्य उक्त मत से असहमत हैं। उनके अनुसार सेना–व्यसन की अपेक्षा कोश–व्यसन ही अधिक कष्टप्रद है। क्योंकि सेना का सारा दारोमदार कोश पर ही निर्भर है। कोश के अभाव में या तो सेना शत्रु के अधीन हो जाती है या फिर वह अपने

13. नेति कौटिल्यः. . . . . .दुर्गवतामनुच्छिन्तिरिति। कौ0 अर्थ0 8/127/1 पृष्ठ 558
14. कोशदण्डव्यसनयोः. . . . .अमात्यसधर्मा दण्ड इति। उपरोक्त पृष्ठ 559

ही स्वामी का वध कर डालती है। सभी कार्य कोश पर ही निर्भर हैं तथा वही धर्म का मूल है। किन्तु इस संबंध में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि देश, काल और कार्य की दृष्टि से कोश और सेना दोनों को प्रधान माना जा सकता है (जिनके द्वारा विजिगीषु राजा की कार्यसिद्धि सम्भव हो)। सेना तो केवल कोश की रक्षा करती है जबकि कोश दुर्ग और सेना दोनों की रक्षा करता है। इसलिए दुर्ग आदि सभी द्रव्य प्रकृतियो की प्रयोजन सिद्धि होने के कारण 'कोश' नामक प्रकृति की व्यसनग्रस्तता बड़ी कष्टकारिणी होती है।[15]

'सेना' और 'मित्र' नामक प्रकृतियों पर एक साथ विपत्ति आने पर कौन सी प्रकृति अधिक चिन्तनीय होती है ? इस पृच्छा के प्रत्युत्तर में आचार्य वातव्याधि का कथन है कि सेना–व्यसन की अपेक्षा मित्र–व्यसन अधिक चिन्ताजनक होता है। क्योंकि दूर रहता हुआ भी 'मित्र' बिना कुछ लिए विजिगीषु राजा का अभीष्ट कार्य करता रहता है तथा पार्ष्णिग्राह का, पार्ष्णिग्राह के मित्र–बल का, शत्रु का तथा आटविक का सदैव प्रतीकार करने के लिए तैयार रहता है। कोश, सेना और भूमि के द्वारा वह विजिगीषु राजा का निरन्तर उपकार करता रहता है तथा विपत्ति में भी उसका साथ नहीं छोडता है।[16]

किन्तु आचार्य कौटिल्य को उक्त मत पर आपत्ति है। उनके अनुसार मित्र-व्यसन की अपेक्षा सेना–व्यसन अधिक भयावह होता है। क्योंकि जिसके पास अच्छा सैन्यबल होता है उसके मित्र तो मित्र, शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। सेना और मित्र– इन दोनों में इनके साधारण कार्य में लाभ के अनुसार अपने युद्ध, देश और काल की दृष्टि से इन दोनों को प्रधान माना जा सकता है। तात्कालिक आक्रमण होने पर अथवा शत्रु और आटविकों के द्वारा आभ्यन्तर कोप उत्पन्न करा देने पर 'मित्र' उसका कोई प्रतीकार नहीं करा सकते हैं; बल्कि सेना ही ऐसे अवसरों पर काम आती है। विजिगीषु तथा उसके शत्रु पर एक साथ विपत्ति आने पर अथवा विजिगीषु शत्रु के शक्तिशाली हो जाने पर मित्र केवल अपने ही हित–संरक्षण की बात सोचता है, विजिगीषु के हित–संरक्षण की नहीं।[17]

---

15. नेति कौटिल्यः. . . . . .कोशव्यसनं गरीय इति। कौ0 अर्थ0 8/127/1 पृष्ठ 559
16. दण्डमित्रव्यसनयोः. . . . .व्यसनावस्थायोगमिति। उपरोक्त पृष्ठ 560
17. नेति कौटिल्यः. . . . मित्रमर्थयुक्तौ तिष्ठति। उपरोक्त

आचार्य कौटिल्य के मत में यदि किसी प्रकृति के कुछ अंगो पर विपत्ति आ पडी हो तो उन विपत्तिग्रस्त अंगों के संख्याधिक्य, विजिगीषु राजा के प्रति उनका अनुराग और उनके निजी सामर्थ्य आदि गुण ही कार्यसाधक होते हैं; अर्थात् जिन अंगो में उपरोक्त संख्याधिक्य, अनुराग और सामर्थ्य आदि गुण होते हैं वे अंग अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। विजिगीषु राजा को तदनुसार उन अंगो के व्यसन–निवारण हेतु वरीयता के आधार पर प्रयास करना चाहिए। यदि किन्हीं दो प्रकृतियों पर आई हुई विपत्ति एक समान हो तो जिस प्रकृति में गुणों का क्षय अधिक हो उसकी व्यसनग्रस्तता अधिक चिन्ताजनक होती है। किन्तु यदि किसी विजिगीषु राजा की एक व्यसनग्रस्त प्रकृति के अतिरिक्त उसकी शेष सभी प्रकृतियाँ गुणसम्पन्न बनी रहती है तो फिर उसकी व्यसनग्रस्तता उतनी अधिक चिन्ताजनक नहीं होती है। इसी प्रकार यदि एक प्रकृति–व्यसन के कारण शेष प्रकृतियों का नाश होता हो तो वह प्रकृति व्यसन सर्वाधिक चिन्ताजनक होता है, भले ही वह प्रधान अथवा अप्रधान किसी भी प्रकृति से सम्बद्ध क्यों न हो।[18]

(ख) राजा और राज्य के व्यसन :

राजा और राज्य को एक दूसरे का पर्याय मानते हुए आचार्य कौटिल्य ने इन दोनों के व्यसनों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की है। क्योंकि इनमें से किसी के भी व्यसनग्रस्त होने पर व्यापक अनिष्ट की सम्भावना रहती है। इस संबंध में उन्होंने सर्वप्रथम राजा के प्रति होने वाले राज्य के दो प्रकार के कोप–आभ्यन्तर कोप एवं बाह्य कोप पर ध्यान आकृष्ट किया है। इनमें भी घर में छिपे सर्प की तरह आभ्यन्तर कोप को आचार्य कौटिल्य ने बाह्य कोप की अपेक्षा अत्यन्त अनर्थकारी माना है। यह आभ्यन्तर कोप भी दो प्रकार का होता है–(i) अन्तःकोप तथा (ii) अन्तरमात्य कोप। इनमें भी अन्तरमात्य कोप अत्यन्त खतरनाक होता है। इसलिए उपरोक्त सभी प्रकार के कोप–शमन हेतु आचार्य कौटिल्य का निर्देश है कि विजिगीषु राजा को कोश एवं सेना की सम्पूर्ण शक्ति को सदैव आत्मकेन्द्रित करके रखना चाहिए।

---

18. प्रकृत्यवयवानां तु व्यसनस्य . . . . तद्गरीयः स्यात्प्रधानस्येतरस्य वा। कौ०अर्थ० 8/127/1 पृष्ठ 560–61

द्वैराज्य (ऐसा राज्य जिसके दो राजा हों) तथा वैराग्य (ऐसा राज्य जिसमें केवल किसी एक विजेता राजा का शासन हो) में कौन सा राज्य श्रेष्ठ है ? इस प्रश्न का उत्तर निर्विवाद नहीं है। आचार्य कौटिल्य के पूर्ववर्ती आचार्यों का मत है कि 'द्वैराज्य' की अपेक्षा 'वैराज्य' श्रेष्ठ होता है। क्योंकि द्वैराज्य नामक राज्य तो शासन करने वाले दो राजाओं के पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य एवं स्पर्धा के कारण शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जबकि प्रजा की चित्तवृत्ति के अनुसार चलाये जाने वाला 'वैराज्य' हमेशा अपनी यथास्थिति बनाये रखता है।[19]

किन्तु आचार्य कौटिल्य का मत इससे भिन्न है। उनके अनुसार'वैराज्य'की अपेक्षा 'द्वैराज्य' श्रेष्ठ होता है। क्योंकि पिता, पुत्र तथा दो भाइयों में दायभाग संबंधी विरोध के कारण ही 'द्वैराज्य' की स्थापना होती है, जिसमें दोनों राजाओं का 'योगक्षेम' समान होता है तथा उनके अमात्यों द्वारा उनका पारस्परिक वैमनस्य शान्त कराया जा सकता है। इस दृष्टि से 'द्वैराज्य' में कोई विशेष दोष नहीं है। जबकि 'वैराज्य' में सबसे बड़ा दोष यह है कि विजेता राजा अपने जीवित शत्रु को नष्ट करके, बलपूर्वक उससे राज्य छीनकर उस राज्य के प्रति 'यह मेरा नहीं है' ऐसी भावना रखता हुआ जुर्माना तथा टैक्स आदि के द्वारा कष्ट पहुँचता है अथवा अच्छी रकम लेकर उसे दूसरे के हाथ बेच देता है; अथवा वहाँ की प्रजा को अपना विरोधी मानते हुए उस राज्य को छोडकर वहाँ से चला जाता है।

अन्धशास्त्र–राजा (जिस राजा ने शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया है) और चलितशास्त्र–राजा (जिस राजा ने शास्त्रों का अध्ययन तो किया है किन्तु वह उनके अनुसार आचरण नहीं करता है) में कौन सा राजा श्रेष्ठ माना जाय ? इस संबंध में आचार्य कौटिल्य के पूर्ववर्ती आचार्यों का मत है कि 'अन्धशास्त्र–राजा' से 'चलितशास्त्र राजा' उत्तम होता है। क्योंकि शास्त्ररूपी चक्षुओं से हीन अन्धशास्त्र–राजा बिना विचारे ही कार्य करने वाला, हठबुद्धि वाला तथा पराई बुद्धि से चलने वाला होकर अन्यायपूर्वक अपने राज्य को नष्ट कर डालता

---

19. राजा राज्यमिति प्रकृतिसंक्षेपः . . . . .यथास्थितिमन्यैर्भुज्यत इत्याचार्याः। कौ0 अर्थ0 8/128/2 पृष्ठ 562

है। जबकि एक चलितशास्त्र–राजा को शास्त्र विरुद्ध आचरण करने पर अनुनय–विनय के द्वारा रोका जा सकता है। इसलिए 'अन्धशास्त्र राजा' से 'चलितशास्त्र–राजा' श्रेष्ठ होता है।[20]

किन्तु आचार्य कौटिल्य का मत इससे भिन्न है। उनके अनुसार 'चलितशास्त्र राजा' की अपेक्षा 'अन्धशास्त्र राजा' श्रेष्ठ होता है। क्योंकि 'अन्धशास्त्र राजा' को अमात्य आदि की हितकर बुद्धि से इच्छानुसार अच्छे मार्ग पर लाया जा सकता है। जबकि 'चलितशास्त्र राजा' तो शास्त्र विरुद्ध कार्य करते हुए अपनी हठवादिता तथा अन्याय के कारण स्वयं को तथा अपने राज्य को नष्ट कर डालता है।

'व्याधिग्रस्त राजा' और 'नवीनराजा' में कौन श्रेष्ठ होता है ? इसका निर्णय करते हुए प्राचीन आचार्यो ने अपना मत प्रस्तुत किया है कि 'व्याधिग्रस्त राजा' की अपेक्षा 'नवीन रजाा' उत्तम होता है। क्योंकि व्याधिग्रस्त राजा अपने अमात्यों के षडयन्त्र से राज्य को गँवा बैठता है या राज्य के सहित अपने प्राण भी खो बैठता है; जबकि नवीन राजा अपने धर्म, अनुग्रह, परिहार और मान आदि कार्यो से लोकप्रिय बनकर राज्य सञ्चालन कर सकता है।

किन्तु इससे भिन्न मत व्यक्त करते हुए आचार्य कौटिल्य का कथन है कि 'नवीन राजा' की अपेक्षा 'व्याधिग्रस्त राजा' ही श्रेष्ठ होता है। क्योंकि व्याधिग्रस्त राजा पूर्ववत् ही राजकाज बराबर चलाता रहता है। जबकि नवीन राजा 'बलपूर्वक जीता हुआ यह मेरा राज्य है' ऐसी भावना रखता हुआ स्वेच्छाचारी बनकर मनमाना शासन करता है। अथवा जब कभी अपने समुन्नत साथी राजाओं से घिर जाता है तो राज्य की क्षति को चुपचाप देखता रहता है। प्रजा का उसके प्रति अनुराग न होने के कारण वह शत्रुओं के द्वारा सुखपूर्वक उच्छेदनीय होता है। परन्तु इस संबंध में यह एक विशेष रूप से घ्यातव्य तथ्य है कि व्याधिग्रस्त राजा भी दो तरह के होते है– (i) पापरोगी (कोढ जैसे असाध्य रोगों से ग्रस्त) तथा (ii) अपाप रोगी (साधारण रोगों से ग्रस्त)। आचार्य कौटिल्य के अनुसार इनमें अपापरोगी राजा के संबंध में ही उक्त कथन लागू होता है।[21]

---

20. नेति कौटिल्यः पितापुत्रयो. . . . . .शक्यानुनय' भवतीत्याचार्याः। उपरोक्त पृष्ठ 562–63
21. नेति कौटिल्यः अन्धोराजा. . . . . . .पापरोग्यपापरोगी च। कौ0 अर्थ0 8/128/2 पृष्ठ 563–64

पुनः एक जटिल प्रश्न खडा होता है कि नये राजाओ में भी 'उच्चकुलीन राजा' श्रेष्ठ होता है या 'नीचकुलीन' ? उनमें भी उच्च कुल का दुर्बल राजा उत्तम होता है या नीच कुल का बलवान राजा ? इस संबंध में प्राचीन आचार्यो का मत है कि उच्चकुलीन दुर्बल राजा के अमात्य आदि प्रकृतिजन तथा प्रजाजन बडी कठिनाई से उसके वश में रहते हैं। किन्तु नीच कुलोत्पन्न सबल राजा के शक्ति-शौर्य के कारण सम्पूर्ण प्रजा तथा अमात्य आदि प्रकृतियाँ सुखपूर्वक उसके वशीभूत रहती हैं। इसलिए 'दुर्बल अभिजात' राजा की अपेक्षा 'बलवान अनभिजात' राजा ही श्रेष्ठ होता है।

किन्तु उपरोक्त मत पर अपनी असहमति व्यक्त करते हुए आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि 'बलवान अनभिजात राजा' की अपेक्षा 'दुर्बल अभिजात राजा' ही श्रेष्ठ होता है। क्योंकि जो राजा उच्च कुलोत्पन्न होता है वह चाहे दुर्बल भी हो फिर भी प्रकृतिजन अपने आप ही उसके सामने विनम्र बने रहते हैं। क्योंकि उच्चकुलीन ऐश्वर्य का लोग प्राकृतिक रूप से अनुगमन करते हैं। जबकि बलवान होने पर भी नीचकुलोत्पन्न राजा के प्रकृतिजन विराग के कारण उसका विरोध करने लगते हैं। क्योंकि अनुराग ही समस्त गुणों का आश्रय होता है।

प्राचीनकाल से आज तक कृषि भारत की आम जनता का मुख्य व्यवसाय रहा है। इसलिए राज्य के व्यसनों पर चिन्तन करते समय आचार्य कौटिल्य ने 'कृषि-व्यसन' पर भी विचार करना नितान्त आवश्यक समझा है। क्योंकि किसी भी राज्य के कोश एवं अर्थनीति कृषि पर ही निर्भर होते हैं। कृषि पर होने वाले दो प्रकार के गम्भीर व्यसनों की ओर आचार्य कौटिल्य ने सर्वप्रथम ध्यान आकृष्ट कराया है। पहला व्यसन उन आलसी और अकर्मण्य किसानों से सम्बद्ध है जो आलस्यवश खेतों में जुताई-बुवाई आदि का प्रयास ही नहीं करते हैं। इस प्रकार फसल की क्षति करने वाले उक्त व्यसन को आचार्य कौटिल्य ने 'प्रयास वध' की संज्ञा दी है। दूसरा व्यसन उन दैवी एवं मानुषी आपदाओं से संबंधित है जिनके कारण खेतों में तैयार हुई एवं पकी पकाई पूरी फसल नष्ट हो जाती है। इस व्यसन को कौटिलीय अर्थशास्त्र में 'मुष्टिवध' कहा गया है। उक्त दोनों प्रकार के कृषि-व्यसनों के संबंध में सर्वप्रथम

इस महत्वपूर्ण चिन्तन–बिन्दु पर विचार किया गया कि प्रयासवध (खेतों में जुताई–बुवाई आदि के प्रयास न करना) तथा मुष्टिवध (जुताई–बुवाई के फलस्वरूप तैयार हुई फसल का किसी आपदा के कारण नष्ट होना) नें कौन सा व्यसन अधिक कष्टदायी है ? इसके प्रत्युत्तर में आचार्य कौटिल्य की सम्मति है कि इनमें 'प्रयासवध' ही अधिक कष्टदायी होता है। क्योंकि उससे आलसी किसानों के द्वारा एक प्रकार से कृषि प्रयासों की हत्या (प्रयास–वध) की जाती है। तदुपरान्त 'अवृष्टि' तथा 'अतिवृष्टि' नामक दो कृषि–व्यसनों की गम्भीर चिन्ता करते हुए आचार्य कौटिल्य ने सचेत किया है कि 'अतिवृष्टि' की अपेक्षा 'अवृष्टि' अधिक हानिकारक होती है। क्योंकि 'अवृष्टि' से तो जीवन का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है।[22]

इस प्रकार भिन्न–भिन्न व्यसनों में प्रकृतियों के बल–अबल का सम्यक् निरूपण करते हुए विजिगीषु राजा को 'यान' (शत्रु पर चढाई करना) अथवा 'स्थान' (चुप होकर बैठना) का आश्रय लेना चाहिए। अर्थात् विजिगीषु और उसके शत्रु दोनों के व्यसनग्रस्त होने पर यदि विजिगीषु का व्यसन लघु तथा शत्रु का व्यसन गुरू हो तो विजिगीषु को 'यान' का आश्रय लेना चाहिए। इसके विपरीत यदि विजिगीषु का व्यसन गुरू तथा शत्रु का व्यसन लघु हो तो फिर विजिगीषु को 'स्थान' का आश्रय लेना चाहिए।[23]

(ग) सामान्य जनों के व्यसन :

आचार्य कौटिल्य ने व्यसनों के अगाध समुद्र में गहरा गोता लगाकर व्यसनों की मूल जड़– अशिक्षा, को पकड़ने में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की है। इसीलिए उन्होंने कहा है कि अशिक्षा ही मनुष्य के व्यसनों की मूल जड़ है। क्योंकि अशिक्षित व्यक्ति व्यसनों से पैदा होने वाले दोषों को समझ नहीं पाता है।[24] इसलिए कौटिलीय अर्थशास्त्र के 'पुरुषव्यसन वर्गः'[25] नामक अध्याय में कुछ ऐसे ही व्यसनों तथा उनसे होने वाले दोषों का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया गया है। 'काम' और 'क्रोध' नामक व्यसनों को सबसे गम्भीर व्यसन मानते हुए

---

22. नवेऽप्यभिजातोऽनभिजात. . . . . निराजीवत्वादवृष्टिरतिवृष्टित इति। कौ० अर्थ० 8/128/2 पृष्ठ 564–65
23. द्वयोर्द्वयोर्व्यसनयोः. . . . . . स्थाने च कारणम्। कौ० अर्थ० 8/128/2 पृष्ठ 565
24 अविद्याविनयःपुरुषव्यसनहेतुः। अविनीतो हि व्यसनदोषान्न पश्यति। कौ० अर्थ० 8/129/3 पृष्ठ 566
25. कौ० अर्थ० 8/129/3 पृष्ठ 566–572

आचार्य कौटिल्य ने उनसे उत्पन्न होने वाले घातक दोषों के प्रति गम्भीरतापूर्वक आगाह किया है। वैसे तो उक्त दोनों ही व्यसन बडे खतरनाक होते हैं फिर भी उन दोनों में कौन अधिक दोषोत्पादक है ? इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य कौटिल्य का कथन है कि काम और क्रोध में क्रोध ही अधिक भयावह होता है। क्योंकि क्रोध का सर्वत्र प्रवेश है। प्रायः ऐसा सुना गया है कि कोप के वशीभूत हुए अनेक राजा अपनी प्रकृतियों के कोप से ही मारे गए।[26]

किन्तु आचार्य भारद्वाज का मत कौटिलीय अर्थशास्त्र के उक्त मत से भिन्न है। उनके अनुसार क्रोध करना तो श्रेष्ठ लोगों का आचार धर्म है। कोप से ही शत्रु का प्रतीकार तथा दूसरे के द्वारा किए गए तिरस्कार का बदला लिया जाता है। क्रोधी पुरुष की बुराई करने से सभी डरते हैं, क्रोध से मानव का नित्य (अटूट) संबंध होता है तथा क्रोध से ही पापकर्मो का निग्रह होता है। इसी प्रकार 'काम' भी अनेक प्रकार से सिद्धिद्वाता है। क्योंकि उसी के कारण शान्ति, त्यागशीलता तथा सौम्यता आदि गुण उत्पन्न होते हैं। 'काम' से मानव का स्थायी संबंध होता है तथा अपने कर्मो का फल भोगने के लिए प्रत्येक पुरुष के द्वारा 'काम' का आश्रय लिया जाना आवश्यक भी है।[27]

किन्तु आचार्य कौटिल्य के द्वारा उपरोक्त भारद्वाज–मत का प्रबल खण्डन किया गया है। उनके अनुसार 'कोप' और 'काम' को गुणों की श्रेणी में कदापि रखा ही नहीं जा सकता है। क्योंकि उनमें तो दोष ही दोष भरे हैं। जैसे 'कोप' में द्वेष्यता, शत्रु–पीडा, तथा दुःखासक्ति आदि अनेक दोष हैं, इसी प्रकार 'काम' में तिरस्कार, द्रव्यनाश तथा चोर–जुआरी, लोभी आदि अनेक अनर्थकारी लोगों की संगति जैसे अनेक दोष सन्निहित होते हैं।[28]

'काम' और 'क्रोध' से उत्पन्न होने वाले उपरोक्त दोषों में कौन अधिक हानिप्रद होता है ? इस प्रश्न के प्रत्युत्तर हेतु आचार्य कौटिल्य ने उक्त दोनों व्यसनों के एक–एक दोष का तुलनात्मक विवेचन करते हुए अपना विवेक सम्मत निर्णय दिया है। सर्वप्रथम 'कोपजन्य द्वेष्यता' तथा 'कामजन्य तिरस्कार' में आचार्य कौटिल्य' क्रोधजन्य द्वेष्यता' को ही अधिक

26. तयोः कोपो गरीयान्. . . . . . .राजानः प्रकृतिकोपैर्हताः श्रूयन्ते। कौ0 अर्थ0 8/129/3 पृष्ठ 566
27. नेति भारद्वाजः. . . . . कृतकर्मणः फलोपभोगार्थ इति। कौ0 अर्थ0 8/129/3 पृष्ठ 566
28. नेति कौटिल्यः . .. . अनर्थ्यैः संयोगः कामः। उपरोक्त पृष्ठ 567

हानिकर मानते हैं। क्योंकि तिरस्कृत व्यक्ति तो अपने या पराये लोगों के द्वारा कभी न कभी अनुगामी बनाया जा सकता है किन्तु द्वेष्यताग्रस्त व्यक्ति तो नष्ट ही हो जाता है।[29] इसी प्रकार 'कामजन्य-द्रव्यनाश' तथा 'कोपजन्य शत्रु-पीडन' में आचार्य कौटिल्य 'कोपजन्य शत्रु पीडन' को ही अधिक हानिप्रद मानते हैं। क्योंकि द्रव्यनाश से तो केवल कोश को ही बाधा पहुँचती है किन्तु शत्रुपीडन से तो प्राण तक संकट में पड़ जाते हैं। 'कामजन्य अनर्थकारी लोगों की संगति' तथा 'कोपजन्य दुःख संयोग' में आचार्य कौटिल्य 'कोपजन्य दुःख–संयोग' को अधिक कष्टकारी मानते हैं। क्योंकि अनर्थकारी लोगों की संगति परिणाम में दुःखदायी होने के बाद भी थोडे समय के लिए तो प्रसन्न करने वाली होती ही है। किन्तु दुःख–संयोग तो हमेशा दुःखद ही होता है। इसलिए उपरोक्त विवेचन के आधार पर आचार्य कौटिल्य ने यह निर्णय–सार निकाला है कि कामजन्य दोषों की अपेक्षा कोपजन्य दोष ही अधिक हानिकारक होते हैं।[30]

'काम' और 'क्रोध' नामक व्यसनों का यह केवल प्राथमिक विवेचन है। उक्त दोनो गम्भीर व्यसनो का आचार्य कौटिल्य ने आगे विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है।

(i) कोपजन्य त्रिवर्ग :

आचार्य कौटिल्य के अनुसार कोप से उत्पन्न होने वाले तीन दोषों– वाक्पारुष्य, अर्थदूषण तथा दण्डपारुष्य, को 'कोपजन्य त्रिवर्ग' कहते हैं।[31] उक्त तीनों दोषों को परिभाषित करते हुए आचार्य कौटिल्य ने कहा है कि गाली–गलौच करना, निन्दा करना तथा धमकाना, 'वाक्पारुष्य' कहलाता है;[32] किसी की आजीविका नष्ट करना 'अर्थदूषण'[33] तथा हाथापाई एवं मारपीट करना –दण्डपारुष्य'[34] कहलाता है।

'वाक्पारुष्य' तथा 'अर्थदूषण' दोषों में कौन सा दोष बड़ा होता है ? इसके

---

29. तयोः परिमवाद, ...द्वेष्यः समुच्छिद्यत इति। कौ0 अर्थ0 8/129/3 पृष्ठ 567
30. द्रव्यनाशाच्छत्रुवेदनं. . . . . . . तस्मात्कोपो गरीयान। कौ0 अर्थ0 8/129/3 पृष्ठ 567
31. वाक्पारुष्ययमर्थदूषणं दण्डपारुष्यमिति. . . . . . .कोपजस्त्रिवर्गः। उपरोक्त पृष्ठ 567–68
32. वाक्पारुष्यमुपवादः कुत्सनमभिमर्त्सनमिति। कौ0 अर्थ0 3/75/18 पृष्ठ 331
33. वृत्तिविलोपस्त्वर्थदूषणम्। कौ0 अर्थ0 8/129/3 पृष्ठ 568
34. दण्डपारुष्यं स्पर्शनमवगूर्णं प्रहतमिति। कौ0 अर्थ0 3/76/19 पृष्ठ 334

प्रत्युत्तर में आचार्य विशालाक्ष कहते हैं कि उनमें 'अर्थदूषण' की अपेक्षा 'वाक्पारुष्य' दोष ही बड़ा होता है। क्योंकि आत्मतिरस्कार सहन न करने वाले व्यक्ति के साथ 'वाक्पारुष्य' (कठोर वाक्यों) का प्रयोग करने पर वह तिरस्कृत व्यक्ति 'वाक्पारुष्य' के प्रयोक्ता पर अपने तेज के द्वारा आक्रमण करता है। क्योंकि ह्रदय में चुभा हुआ दुर्वचन व्यक्ति के भीतरी तेज को भड़काने वाला और इन्द्रियों को संतप्त करने वाला होता है।

किन्तु आचार्य कौटिल्य उपरोक्त विशालाक्ष–मत से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार 'वाक्पारुष्य' की अपेक्षा 'अर्थदूषण' दोष ही बड़ा होता है। क्योंकि 'अर्थ' द्वारा की गई पूजा दुर्वचन रूपी शल्य को नष्ट कर देती है। किन्तु वाणी द्वारा की गई पूजा 'अर्थदूषण' दोष की क्षतिपूर्ति नहीं कर सकती है। इस सन्दर्भ में आचार्य कौटिल्य ने 'अर्थदूषण' के चार उपभेद किए हैं– (i) अदान (कार्य करने पर भी पारिश्रमिक न देना), (ii) आदान (दण्ड आदि के द्वारा धन छीन लेना), (iii) विनाश (धनसंग्रह को नष्ट करना) तथा (iv) अर्थत्याग (रक्षणीय अर्थ की रक्षा न करना)।

'अर्थदूषण' तथा 'दण्डपारुष्य' दोषो में कौन सा दोष बड़ा है ? इस संबंध में 'आचार्य पराशर' के अनुयायियों का मत है कि 'दण्डपारुष्य' की अपेक्षा 'अर्थदूषण' दोष ही बड़ा होता है। क्योंकि धर्म, काम तथा लोकनिर्वाह सभी कुछ 'अर्थ' पर ही निर्भर होता है। ऐसे महत्वपूर्ण 'अर्थ' काम तथा लोकनिर्वाह सभी कुछ 'अर्थ' पर ही निर्भर होता है। ऐसे महत्वपूर्ण 'अर्थ' का उपघात होना निश्चित ही बड़ा हानिकारक होता है। किन्तु उपरोक्त मत आचार्य कौटिल्य को अमान्य है। उनके अनुसार 'अर्थदूषण' की अपेक्षा 'दण्डपारूष्य' दोष ही बड़ा होता है। क्योंकि बहुत बड़ा धन प्राप्त करने के बदले में कोई अपने शरीर को नष्ट नहीं करना चाहता है। जबकि 'दण्डपारुष्य' से आत्मरक्षा करने के लिए वह उतनी ही धनराशि व्यय करने के लिए तैयार रहता है।[35]

---

35. वाक्पारुष्यार्थदूषणयोः. . . . . . तमेव दोषमन्येभ्यः प्राप्नोति। कौ0 अर्थ0 8/129/3 पृष्ठ 567–68

(ii) कामजन्य चतुर्वर्ग :

'काम' से उत्पन्न होने वाले चार दोषों–मृगया, द्यूत, स्त्री तथा मदिरापान, को आचार्य कौटिल्य ने 'कामजन्य चतुर्वर्ग' कहा है। इनका तुलनात्मक विवेचन करते हुए यह निष्कर्ष निकाला गया है कि इनमें से कौन सा दोष बडा होता है। सर्वप्रथम 'मृगया' तथा 'द्यूत' नामक दोषों में आचार्य पिशुन (नारद) 'द्यूत' की अपेक्षा 'मृगया' दोष को बडा मानते हैं। क्योंकि –'मृगया' दोष में सर्वथा चोर, शत्रु, सर्प, दावाग्नि तथा लड़खड़ाकर गिर पड़ने का भय बना रहता है; व्यक्ति दिशाओं में भटक जाता है तथा भूख प्यास से कभी कभी प्राण–संकट तक आ जाता है। जबकि एक कुशल जुआरी जुआ में अवश्य ही विजयी होता है; जैसा कि अतीत में जयत्सेन तथा दुर्योधन नामक कुशल जुआरियों ने क्रमशः राजा नल और युधिष्ठिर को जुआ में जीत लिया था।

किन्तु आचार्य कौटिल्य उपरोक्त मत का खण्डन करते हैं। उनके अनुसार 'मृगया' की अपेक्षा 'द्यूत' दोष ही बड़ा होता है। क्योंकि जुआ खेलने वालों में एक की हार अवश्य होती है, जैसे नल और युधिष्ठिर जुआ में हारे थे। इसके अतिरिक्त जुआ में जीता हुआ धन पराये माँस की तरह है और फिर पराजित जुआरी विजेता जुआरी से बैर भी ठान लेता है। जुआ में एक ओर धर्मपूर्वक कमाये हुए धन का दुरुपयोग होता है तो दूसरी ओर उसमें अधर्मपूर्वक धन का संग्रह होता है। संग्रह किया हुआ धन फिर जुआ में ही गँवा दिया जाता है। जुआ खेलते समय पेशाब, पाखाना, तथा भूख–प्यास आदि रोकने से अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसके विपरीत 'मृगया' में व्यायाम, कफ–पित्त का नाश, मेदा का न बढ़ना, पसीना निकलने से देह का हल्का होना, चंचल या स्थिर लक्ष्य पर निशाना बाँधना, क्रोध तथा भय से उत्पन्न होने वाली वन्य–पशुओं की मनोवृत्तियों का ज्ञान होना, तथा हमेशा नहीं अपितु यदा–कदा ही शिकार पर निकलना आदि अनेक गुण पाये जाते हैं।[36]

---

36. कामजस्तु–मृगया, द्यूतं. . . . .मृगाणां चित्तज्ञानमनित्ययानं चेति। कौ0 अर्थ0 8/129/3 पृष्ठ 568–69

'द्यूत' तथा 'स्त्री' दोषों में कौन सा दोष बड़ा है ? इस विषय में आचार्य कौणपदन्त का कथन है कि 'स्त्री' की अपेक्षा 'द्यूत' दोष बडा होता है। क्योंकि जुआरी दिन के अलावा रात में भी दीपक जलाकर जुआ खेलता है; यहाँ तक कि माता के मर जाने पर भी उसकी दाहक्रिया आदि की कुछ भी परवाह न करके जुआ में ही जुटा रहता है। किसी संकट के आने पर यदि उससे कुछ कहा या पूछा जाय तो वह कुपित हो जाता है। इसके विपरीत स्त्री–व्यसनी व्यक्ति से स्नान के समय, वस्त्र पहनते हुए या भोजनालय में भोजन करते समय धर्म–अर्थ आदि के संबंध में कहा/पूछा जा सकता है। वह व्यक्ति जिस स्त्री पर आसक्त हो उसे राजा के ध्येय कार्यों की ओर मोड़ा जा सकता है। यदि वह स्त्री नहीं मानती है तो उसे 'उपांशुदण्ड' (गुप्त तरीकों से चुपचाप मरवा देना) से मरवाया जा सकता है। यदि ऐसा भी संभव न हो तो विषैली दवाओं से उसमें रोग पैदा करके इलाज के बहाने से दूसरी जगह भेजा जा सकता है।

किन्तु आचार्य कौटिल्य को उक्त मत स्वीकार नहीं है। उनके अनुसार 'द्यूत' की अपेक्षा 'स्त्री–व्यसन' ही अधिक हानिकर होता है। क्योंकि 'द्यूत' में तो जो चीज एक बार हार दी जाती है उसे जुए के द्वारा ही पुनः जीता जा सकता है। जब कि स्त्री–व्यसन में जो चीज एक बार हाथ से निकल गई उसका वापस मिलना असंभव होता है। स्त्री–व्यसनी राजा से उसके मन्त्री आदि तक नहीं मिल पाते हैं, इस कारण उसके मन्त्रीगण भी राजकार्यों के प्रति उदासीन हो जाते हैं। इस प्रकार कुछ समय बाद राजा के धर्म और अर्थ, दोनों ही पुरुषार्थ नष्ट हो जाते हैं। उसका राजतन्त्र दुर्बल हो जाता है। इसके अतिरिक्त स्त्री–व्यसन के सहयोगी अन्य व्यसन जैसे मदिरापान, जुआ आदि उसके पीछे लग जाते हैं।[37]

'स्त्री–व्यसन' तथा 'मद्यपान' के संबंध में आचार्य वातव्याधि का मत है कि 'मद्यपान' की अपेक्षा 'स्त्री–व्यसन' ही अधिक कष्टकर है। क्योंकि स्त्रियों में अनेक प्रकार के अवगुण व मूर्खताऐं होती हैं। यहाँ तक कि वे अपने पतियों को भी मरवा देती हैं। जबकि

---

37. द्यूतस्त्रीव्यसनयोः. . . . . .तन्त्रदौर्बल्यं पानानुबन्धश्चेति। कौ० अर्थ० 8/129/3 पृष्ठ 569–70

मद्यपान में तो केवल इन्द्रियों के विषय 'शब्द' आदि का ही उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त मद्यपान से प्रेम का विस्तार, तथा परिजनों का सत्कार करने की प्रवृत्ति बढ़ती है तथा अधिक कार्य करने से उत्पन्न थकावट भी उससे दूर होती है। किन्तु आचार्य कौटिल्य को उपरोक्त मत मान्य नहीं है। उनके अनुसार तो 'स्त्री–व्यसन' की अपेक्षा 'मद्यपान' ही अधिक घातक होता है। क्योंकि 'स्त्री–व्यसन' यदि केवल अपनी पत्नियों तक ही सीमित है तब तो उनसे पुत्र पैदाकर उनके द्वारा अपनी रक्षा होने में लाभ ही है। लेकिन यदि वही व्यसन गणिका आदि स्त्रियो में हो तो उससे उक्त लाभ नहीं होता और यदि वह अन्य अगम्य स्त्रियों तक असीमित हो जाय तो उससे राजा का विनाश हो जाता है। इस प्रकार बाह्य एवं अगम्य स्त्रियों में आसक्ति होने के कारण ही स्त्री–व्यसन को दोषपूर्ण बुराई माना जाता है। किन्तु मद्यपान में न तो पुत्र आदि के पैदा होने की कोई सम्भावना रहती है। तथा उसमें सर्वनाश का ही खतरा अधिक रहता है। इसके अतिरिक्त मद्यपान में अन्य अनेक दोष पाये जाते हैं; जैसे– बुद्धि विवेक का नष्ट होना, अप्रमत्त व्यक्ति का भी मदमत्त हो जाना, जीवित व्यक्ति का भी मृतक की तरह निश्चेष्ट हो जाना, मद्यपायी व्यक्ति के गुप्त पापों का पर्दापाश हो जाना, उसके शास्त्रज्ञान, बृद्धि, बल, धन और मित्र आदि का नाश होना, उसका सत्संगति से दूर होना तथा कुसंगति से संयोग होना, धन को नष्ट करने वाले गीत–वाद्य आदि में आसक्ति होना आदि।[38]

कुछ आचार्यो का मत है कि 'द्यूत' और 'मद्यपान' में 'द्यूत' ही अधिक हानिकारक है। क्योंकि जुआ के कारण हुई जय अथवा पराजय; चेतन प्राणियों अथवा जड़ वस्तुओ में उत्पन्न हुई परस्पर विरोधी भावना प्रकृतियों में कोप को पैदा कर देती है। द्यूत के कारण एक साथ रहने वाले तथा समान बृद्धि विचार वाले राजकुलों में भी परस्पर मतभेद हो जाता है; जिससे उसका नाश हो जाता है। दुर्जनों का सत्कार करने वाला यह 'द्यूत' व्यसन सभी व्यसनों में सर्वाधिक पापपूर्ण होता है; क्योंकि उससे सारा राजतन्त्र दुर्बल हो जाता है।[39]

---

38. स्त्रीपानव्यसनयोः . . . . . .चार्थघ्नेषु प्रसङ्ग इति। कौ0 अर्थ0 8/129/3 पृष्ठ 570–71
39.द्यूतमद्ययोर्द्यूतमेकेषाम्. . . . .तन्त्रदौर्बल्यादिति। उपरोक्त पृष्ठ 571

उपरोक्त विवेचन का उपसंहार करते हुए आचार्य कौटिल्य ने निर्दिष्ट किया है कि 'काम' दुर्जनों के सत्कार का हेतु तथा 'क्रोध' सज्जनों के तिरस्कार का हेतु है। कुल मिलाकर दोषों की बहुलता के कारण उक्त दोनों को महान व्यसन माना गया है। इसलिए आत्मवेत्ता, वृद्धसेवी तथा जितेन्द्रिय व्यक्ति को चाहिए कि वह प्राणों तक को नष्ट करने वाले तथा दुःखोत्पादक 'काम' और 'क्रोध' का सर्वथा परित्याग कर दे।[40]

(घ) सेना व्यसन एवं मित्र व्यसन :

(1) सेना व्यसन :

आचार्य कौटिल्य ने सैन्य व्यसनो पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए सेना के संभावित चौंतीस व्यसनों की ओर ध्यान आकृष्ट कराया है–(i) अमानित (जिस सेना का सत्कार न किया गया हो), (ii) विमानित (जिस सेना का तिरस्कार किया गया हो), (iii) अभृत (जिस सेना को वेतन भत्ता न दिया गया हो), (iv) व्याधित (जो सेना व्याधिग्रस्त/रोगी हो), (v) नवागत (जिस सेना में नये सैनिक भर्ती किए गए हों), (vi) दूरायात (जो सेना दूर से आई हो) (vii) परिश्रान्त (जो सेना थकी–मादी हो), (viii) परिक्षीण (जो सेना योग्य सैनिको से हीन हो), (ix) प्रतिहत (ऐसी सेना जो पराजित हो चुकी हो), (x) हताग्रवेग (ऐसी सेना जो हतोत्साहित हो चुकी हो), (xi) अनृतुप्राप्त (ऐसी सेना जिसे युद्ध के लिए अनुकूल समय न मिला हो), (xii) अभूमिप्राप्त (ऐसी सेना जिसे कवायद के लिए उपयुक्त भूमि न मिली हो), (xiii) आशानिर्वेदी (ऐसी सेना जो आशारहित हो), (xiv) परिसृप्त (ऐसी सेना जो नेतृत्व विहीन हो चुकी हो), (xv) कलत्रगर्ही (ऐसी सेना जो स्त्री आदि की निन्दा करने वाली हो), (xvi) अन्तःशल्य (ऐसी सेना जो अन्दर से शत्रुता रखती हो), (xvii) कुपितमूल (ऐसी सेना जो क्रोधी स्वभाव की हो), (xviii) भिन्नवर्ग (ऐसी सेना जो आपसी वैर रखती हो), (xix) अपसृत (ऐसी सेना जो एक ही राज्य में दूसरी सेना द्वारा कष्ट प्राप्त हो), (xx) अतिक्षिप्त (ऐसी सेना जो अनेक राज्यों में दूसरी अनेक सेनाओं द्वारा कष्ट प्राप्त हो), (xxi) उपनिविष्ट (ऐसी सेना जो शत्रु के पास स्थित हो किन्तु शत्रु–विमुख हो), (xxii) समाप्त (ऐसी सेना जो शत्रु के साथ ही

40. असतां प्रग्रहः कामः . . . . . बृद्धसेवी जितेन्द्रियः। कौ० अर्थ० 8/129/3 पृष्ठ 572

ठहरने तथा आक्रमण करने वाली हो), (xxiii) उपरुद्ध (ऐसी सेना जो एक ओर से घिरी हो), (xxiv) परिक्षिप्त (ऐसी सेना जो चारों ओर से घिरी हो), (xxv) छिन्नधान्य (ऐसी सेना जिसका अपने देश से खाद्यान्न आदि मँगाने का संबंध टूट गया हो), (xxvi) छिन्नपुरुषवीवध (जिस सेना का अपने देश से खाद्य पदार्थ तथा सैन्य संबंध टूट चुका हो), (xxvii) स्वविक्षिप्त (अपने ही देश में इधर–उधर विखरी पड़ी सेना), (xxviii) मित्रविक्षिप्त (मित्र देश में भेजी गई सेना), (xxix) दूष्ययुक्त (राजद्रोहियों से युक्त सेना), (xxx) दुष्टपार्ष्णिग्राह (ऐसी सेना जिसके पीछे दुष्ट सेना लगी हो), (xxxi) शून्यमूल (राजधानी की अत्यल्प सेना), (xxxii) अस्वामिसंहत (राजा तथा सेनापति रहित सेना), (xxxiii) भिन्नकूट (प्रधान सेनापति से रहित सेना), तथा (xxxiv) अन्ध (शत्रु–व्यवहारों से सर्वथा अनभिज्ञ सेना)।[41]

उपरोक्त सेना–व्यसनों की पारस्परिक तुलना करते हुए आचार्य कौटिल्य ने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं कि उनमें कौन सी सेना युद्ध के लिए तैयार हो सकती है और कौन सी नहीं। सर्वप्रथम 'अमानित' और 'विमानित' सेनाओ। का उल्लेख करते हुए आचार्य कौटिल्य ने कहा है कि 'अमानित' (असत्कृत) सेना सत्कार पाने के बाद युद्ध के लिए तैयार हो सकती है किन्तु 'विमानित' (तिरस्कृत) सेना नहीं, क्योंकि तिरस्कार के कारण वह सदा अन्दर ही अन्दर कुपित बनी रहती है। इसी प्रकार 'अभृत' तथा 'व्याधित' सेनाओं में 'अभृत' (जिसे वेतन भत्ता न दिया गया हो) सेना तो वेतन–भत्ता दिए जाने पर युद्ध के लिए तैयार हो सकती है किन्तु 'व्याधित' (व्याधिग्रस्त/रोगी) सेना नहीं; क्योंकि वह वीमारी के कारण कार्य करने में अक्षम रहती है। 'नवागत' और 'दूरायात' सेनाओं में 'नवागत' (जिसमें नवीन सैनिक भर्ती किए गए हों) सेना दूसरे अनुभवी व्यक्तियों से जानकारी प्राप्त करके तथा पुराने आदमियों के साथ मिलकर युद्ध कर सकती है, किन्तु 'दूरायात' (दूर से आई हुई) सेना नहीं। क्योंकि वह लम्बी यात्रा से थकी हुई होने के कारण असमर्थ रहती है।

'परिश्रान्त' तथा 'परिक्षीण' सेनाओं में 'परिश्रान्त' (थकी हुई) सेना स्नान, भोजन, निद्रा आदि साधनों के द्वारा विश्राम प्राप्त कर युद्ध के लिए तैयार हो सकती है, किन्तु

---

41. बलव्यसनानि. . . . . . . भिन्नकूटम अन्धमिति। कौ0 अर्थ0 8/133–34/5 पृष्ठ 581

'परीक्षीण' (योग्य सैनिकों से हीन) सेना नहीं। क्योंकि उसमें योग्य सैनिकों का अभाव होता है। 'प्रतिहत' तथा 'हताग्रवेग' सेनाओं में 'प्रतिहत' (पराजित) सेना वीर पुरुषों के साथ मिलकर पुनः युद्ध कर सकती है किन्तु 'हताग्रवेग' (हतोत्साहित) सेना नहीं। क्योंकि युद्धारम्भ में ही वीर पुरुषों के वध से वह हतोत्साहित हो चुकती है।[42] 'अनृतुप्राप्त' तथा 'अभूमिप्राप्त' सेनाओं में 'अनृतुप्राप्त' (जिसे युद्ध के लिए अनुकूल समय न मिले) सेना प्रतिकूल समय में भी युद्धोपयोगी साधन प्राप्त कर युद्ध के लिए तैयार हो सकती है, किन्तु 'अभूमिप्राप्त' (जिसे कवायद के लिए उपयुक्त भूमि प्राप्त न हो) सेना नहीं। क्योंकि वह अनुपयुक्त भूमि में फँसकर चलने–फिरने तथा युद्ध सम्बन्धी कार्य करने में अक्षम रहती है। 'आशानिर्वेदी' तथा 'परिसृप्त' सेनाओं में 'आशानिर्वेदी' (आशारहित) सेना अपना कोई स्वार्थलाभ देखकर युद्ध के लिए तैयार हो सकती है, किन्तु 'परिसृप्त' (नेतृत्वहीन) सेना नहीं। क्योंकि उसका मुख्य सेनानायक ही नहीं होता है।

'कलत्रगर्ही' तथा 'अन्तःशल्य' सेनाओं में 'कलत्रगर्ही' (स्त्री आदि की निन्दा करने वाली) सेना स्त्री–निन्दा आदि को छोडकर युद्ध के लिए तैयार हो सकती है किन्तु 'अन्तःशल्य' (अन्दर से शत्रुता रखने वाली) सेना नहीं। क्योंकि उसके अन्दर घातक शत्रु भाव छिपा रहता है। 'कुपितमूल' तथा 'भिन्नगर्भ' सेनाओं में 'कुपितमूल' (क्रोधी स्वभाव वाली) सेना साम, दान आदि उपायों के द्वारा शान्त होकर युद्ध के लिए तैयार हो सकती है, किन्तु 'भिन्नगर्भ' (परस्पर वैर रखने वाली) सेना नहीं। क्योंकि पारस्परिक अनबन के कारण वह सुसंगठित ही नहीं हो पाती है। 'अपसृत' तथा 'अतिक्षिप्त' सेनाओं में 'अपसृत (एक ही राज्य में दूसरी सेना द्वारा कष्ट पाने वाली) सेना विशेष उपायों तथा कवायद आदि के द्वारा जंगल और मित्र का सहारा पाकर युद्ध के लिए तैयार हो सकती है, किन्तु 'अतिक्षिप्त' (अनेक राज्यों में दूसरी अनेक सेनाओं द्वारा कष्ट पाने वाली सेना) नहीं। क्योंकि वह अनेक राज्यों के बहुत से कष्टों के कारण संकटग्रस्त रहती है।[43] 'उपनिविष्ट' तथा 'समाप्त' सेनाओं में 'उपनिविष्ट'

---

42. तेषाममानितविमानितयोः. . . . .हताग्रवेगमग्रपातहतप्रवीरम्। कौ0 अर्थ0 8/133–34/5 पृष्ठ 581–82
43. अनृत्वभूमिप्राप्तयोः. . . . . .राज्यातिकान्तं बह्वाबाधत्वात्। उपरोक्त पृष्ठ 582–83

(शत्रु के समीप स्थित किन्तु शत्रु–विमुख रहने वाली) सेना पृथक यान एवं स्थान होने के कारण शत्रु को प्रताडित कर युद्ध कर सकती है, किन्तु 'समाप्त' (शत्रु के साथ ही स्थित तथा आक्रमण करने वाली) सेना नहीं। क्योंकि शत्रु के साथ मिलजुलकर रहने कारण उसके सब भेद शत्रु को मालूम रहते हैं।

'उपरुद्ध' तथा 'परिक्षिप्त' सेनाओं में 'उपरुद्ध' (एक ओर से घिरी हुई) सेना दूसरी ओर से बच निकलकर आक्रमण कर सकती है, किन्तु 'परिक्षिप्त' (चारों ओर से घिरी हुई) सेना नहीं। क्योंकि चारों ओर से घिरी होने के कारण उसके निकलने का कोई रास्ता ही नहीं बचता है। 'छिन्नधान्य' तथा 'छिन्नपुरुषवीवध' सेनाओं में 'छिन्नधान्य' (जिसका अपने देश से खाद्यान्न आदि मँगाने का संबंध टूट गया हो) सेना किसी दूसरे देश से खाद्यान्न आदि मँगाकर युद्ध कर सकती है, किन्तु 'छिन्नपुरुषवीवध' (जिसका अपने देश से खाद्य तथा सैन्य सम्बन्ध टूट चुका हो) सेना नहीं। क्योंकि वह सब प्रकार से असहाय हो जाती है। 'स्वविक्षिप्त' तथा 'मित्रविक्षिप्त' सेनाओं में 'स्वविक्षिप्त' (अपने ही देश में इधर–उधर विखरी हुई) सेना को आपातकाल में आवश्यकतानुसार एकत्रित किया जा सकता है, किन्तु 'मित्रविक्षिप्त' (मित्र देश में भेजी हुई) सेना को नहीं। क्योंकि दूर देश में होने के कारण उसे आवश्यकतानुसार समय पर एकत्रित नहीं किया जा सकता है। 'दूष्ययुक्त' तथा 'दुष्टपार्ष्णिग्राह' सेनाओं में 'दूष्ययुक्त' (राजद्रोहियो से युक्त) सेना को राजद्रोही पुरुषों पर पैनी नजर रखने के लिए अपने विश्वस्त पुरुषों को नियुक्त करके युद्ध के लिए तैयार किया जा सकता है, किन्तु 'दुष्टपार्ष्णिग्राह' (जिसके पीछे दुष्ट सेना लगी हो) सेना को नहीं। क्योंकि उसे अपने पीछे से आक्रमण होने का सदा भय बना रहता है।[44]

'शून्यमूल' तथा 'अस्वामिसंहत' सेनाओ में 'शून्यमूल' (राजधानी की अत्यल्प सेना) नगरवासियों तथा जनपद निवासियों की सहायता से युद्ध कर सकती है, किन्तु 'अस्वामि संहत' (राजा तथा सेनापति रहित) सेना नहीं। क्योंकि वह नेतृत्वहीन होती है। 'भिन्नकूट'

---

44. उपनिविष्टसमाप्तयोः. . . . . दुष्टपार्ष्णिग्राहं पृष्ठाभिघातत्रस्तम्। कौ0 अर्थ0 8/133–34/5 पृष्ठ 583–84

तथा 'अन्ध' सेनाओं में 'भिन्नकूट' (प्रधान सेनापति से रहित) सेना किसी दूसरे के सेनापतित्व में युद्ध के लिए तैयार हो सकती है, किन्तु 'अन्ध' (शत्रु–व्यवहारों से सर्वथा अनभिज्ञ) सेना नहीं। क्योंकि उसके सैनिक शत्रु–व्यवहारों से सर्वथा अपरिचित रहते हैं।[45]

सेना–व्यसनों के निवारण–उपाय :

आचार्य कौटिल्य ने उपरोक्त सेना–व्यसनों के निवारण–उपाय निर्दिष्ट क़रते हुए कहा है कि अमानन, विमानन आदि उपरोक्त दोषों को दूर करना, नवीन सैन्य निवेश करना, जंगल आदि सुरक्षित स्थानों में सेना की स्थिति बनाए रखना, छद्म उपायों से शत्रुबल का भेदन करना तथा अपने से बलवान शत्रु के साथ सन्धि करना आदि सेना–व्यसनों के प्रमुख निवारण–उपाय हैं। इसलिए विजिगीषु राजा को चाहिए कि वह सदैव सजग एवं सक्रिय रहता हुआ व्यसन काल में शत्रु सेना से अपनी सेना की रक्षा करे तथा बडी सक्रियता के साथ शत्रु सेना की दुर्बलताओं का पता लगाकर उन पर सदैव प्रहार करता रहे।[46]

(2) मित्र–व्यसन :

'मित्र व्यसन' के अन्तर्गत आचार्य कौटिल्य ने उन विषम परिस्थितियों की ओर इंगित किया है जिनमें विजिगीषु राजा के द्वारा अपने किसी मित्र राजा के साथ उपेक्षा, असम्मान, तिरस्कार, अविश्वास, असहयोग, परित्याग, प्रवंचना तथा विश्वासघात आदि अप्रत्याशित व्यवहार जब किया जाता है तो फिर वह मित्र राजा कुण्ठित एवं क्षुब्ध होकर विजिगीषु राजा से मन और आत्मा से इतना दूर हो जाता है कि उसको पुनः वश में करना विजिगीषु राजा के लिए बड़ा कठिन हो जाता है। इन सारी परिस्थितियों को आचार्य कौटिल्य ने 'मित्र व्यसन' के रूप में विवेचित किया है।

आचार्य कौटिल्य के अनुसार एक ऐसा मित्र–राजा जिसने विजिगीषु के शत्रु के वशीभूत होकर, अथवा स्वयं को शत्रु की अपेक्षा निर्बल पाकर, अथवा किसी लोभ के कारण अथवा शत्रु के प्रति लगाव उत्पन्न होने के कारण अपने उसी मित्र राजा का परित्याग कर दिया हो तो फिर वह मित्र–राजा बडी कठिनाई से पुनः विजिगीषु राजा के वश में आता है।[47]

---

45. शून्यमूलास्वामिसंहतयोः. . . . . नान्धमदेशिकमिति। उपरोक्त पृष्ठ 584
46. दोषशुद्धिर्बलाबापः. . . . . शत्रूणां नित्यमुत्थितः। कौ0 अर्थ0 8/133–34/5 पृष्ठ 584
47. अभियातं स्वयं मित्रं . . . . . वा लोमेन प्रणयेन वा। कौ0 अर्थ0 8/133–34/5 पृष्ठ 585

इसी प्रकार शत्रु राजा से धन आदि लेकर युद्ध स्थल से पीछे हटता हुआ विजिगीषु राजा जब युद्ध में जूझ रहे अपने किसी मित्र–राजा को शत्रु के हाथ बेच देता है अथवा 'द्वैधीभाव' (सन्धि और विग्रह दोनों) गुण को अपनाते हुए जिस शत्रु पर आक्रमण करना तय हो, विजिगीषु के द्वारा उससे सर्वथा भिन्न शत्रु पर जब आक्रमण किया जाता है तो विजिगीषु की इन विश्वासघाती गतिविधियों से आहत वह मित्र–राजा बड़ी कठिनाई से पुनः विजिगीषु राजा के वश में आता है। पृथक आक्रमण करने वाले अथवा विजिगीषु के साथ मिलकर आक्रमण करने वाले मित्र–राजा के साथ विजिगीषु द्वारा जब पहले विश्वास दिलाकर बाद में विश्वासघात किया जाता है; अथवा उस व्यसनग्रस्त मित्र को विजिगीषु राजा जब किसी भय, अपमान अथवा आलस्य के कारण व्यसनों से मुक्ति नहीं दिलाता है तो विजिगीषु की ओर से सर्वथा हताश हुआ वह मित्र–राजा बड़ी कठिनता से पुनः विजिगीषु राजा के वश में आता है।

इसी प्रकार विजिगीषु द्वारा अपनी भूमि पर आने से रोका हुआ अथवा किसी भय के कारण विजिगीषु के पास से वियुक्त हुआ, अथवा बलपूर्वक धन अपहृत किया हुआ, अथवा देय धन को प्राप्त न करता हुआ अथवा विजिगीषु द्वारा धन देने के बाद अपमानित किया हुआ मित्र–राजा बडी कठिनाई से पुनः विजिगीषु राजा के वश में आता है। स्वयं विजिगीषु के द्वारा अथवा किसी अन्य के द्वारा धन अपहृत किया हुआ, अथवा अतिकष्टकर कार्य सम्पन्न कर उपस्थित होते ही पुनः अन्य किसी दुःसाध्य कार्य में लगाया हुआ, मित्र–राजा बडी मुश्किल से पुनः विजिगीषु राजा के वश में आता है।[48] विजिगीषु के द्वारा अक्षम होने के कारण उपेक्षित किया हुआ, अथवा पहले मित्रता के लिए प्रार्थना करके बाद में अपना विरोधी बनाया हुआ मित्र–राजा बड़ी कठिनाई से पुनः विजिगीषु राजा के वश में आता है। आचार्य कौटिल्य द्वारा इंगित उपरोक्त विषम परिस्थितियों के संबंध में एक विशेष रूप से उल्लेखनीय तथ्य यह है कि विजिगीषु राजा की इन अनिष्टकारी गतिविधियों से क्षुब्ध हुआ मित्र–राजा एक तो बड़ी कठिनाई से पुनः विजिगीषु राजा के वश में आता है; दूसरे यदि वह वश में आ भी जाता है

---

48. विक्रीतमभियुञ्जाने संग्रामे . . . . .भङ्क्त्वा परमुपस्थितम्। कौ0 अर्थ0 8/133–34/5 पृष्ठ 585

तो बहुत शीघ्र वह उससे विरक्त भी हो जाता है। क्यों अन्तर्मन के एक बार टूटे हुए सूक्ष्म तन्तुओं को दुबारा टूटने में अधिक विलम्ब नहीं होता है।

लेकिन आचार्य कौटिल्य की दृष्टि में एक ऐसा मित्र सरलतापूर्वक विजिगीषु के वश में पुनः आ सकता है तथा वश में आने पर उसके प्रति निष्ठावान भी हो सकता है जिसने विजिगीषु के 'योगक्षेम' हेतु पूर्ण प्रयास किया हो, जो सम्मानीय हो किन्तु किसी भ्रमवश विजिगीषु द्वारा सम्मानित न किया गया हो, अथवा जिसका समुचित सम्मान न किया गया हो, अथवा जिसे शक्ति संचय करने से रोका गया हो, अथवा जो विजिगीषु द्वारा किसी दूसरे मित्र के साथ किए गए आघात को देखकर भयभीत हो, अथवा जो विजिगीषु द्वारा किसी शत्रु के साथ की गई सन्धि को देखकर सशङ्कित हो, अथवा जिसे राजद्रोही पुरुषों द्वारा फोड़ा गया हो।

इसलिए आचार्य कौटिल्य ने विजिगीषु को निर्दिष्ट किया है कि वह मित्रों के लिए उपघातक बनने वाले उक्त दोषों को एक तो अपने में कभी उत्पन्न ही न होने दे; दूसरे, यदि कोई दोष किसी कारणवश उत्पन्न भी हो जाये तो उसे दोषनाशक गुणों के द्वारा तत्काल शान्त कर देना चाहिए।[49] उसका यह भी दायित्व है कि वह निरालस्य होकर अपनी प्रकृतियों में उक्त व्यसनों के उत्पन्न होने से पहले ही उनके कारणों का प्रतिकार कर दे।[50]

(ङ) आपदाऐं, आर्थिक अवरोध एवं वित्तीय घोटाले :

(1) आपदाऐं :

आचार्य कौटिल्य ने 'व्यसनाधिकारिक' नामक अधिकरण में विभिन्न प्रकार के व्यसनों पर विचार करते हुये राज्य पर आने वाली बहुमुखी आपदाओं पर भी सम्यक् विचार मन्थन किया है। सर्वप्रथम दैवी आपदाओं को 'पीडनवर्ग' के अन्तर्गत समाहित करते हुए उन्होंने उनके पाँच भेद किए है– (i) अग्नि, (ii) जल (iii) व्याधि (iv) दुर्भिक्ष (v) महामारी। उक्त दैवी आपदाओं की पारस्परिक तुलना करते हुए आचार्य कौटिल्य ने यह निष्कर्ष निकाला है कि उनमें कौन सी आपदा अधिक भयावह होती है। सर्वप्रथम अग्नि–आपदा एवं

49. उपेक्षितमशक्त्या वा प्रार्थयित्वा. . . . . .गुणैर्दोषोपघातिभिः। कौ0 अर्थ0 8/133–34/5 पृष्ठ 586
50. यतो निमित्तं व्यसनं. . . . . .तन्निमित्तमतन्द्रितः। उपरोक्त

जल–आपदा को सन्दर्भित करते हुए उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यो का यह मत उद्धृत किया है कि इन दोनों आपदाओं में जल–आपदा की अपेक्षा अग्नि–आपदा ही अधिक कष्टप्रद होती है; क्योंकि आग लगने पर उसका सरलता से कोई प्रतीकार नहीं किया जा सकता है तथा वह अग्निकाण्ड सभी वस्तुओं को जलाकर भस्म कर देता है। जबकि जल–आपदा के साथ ऐसा नहीं होता है। क्योंकि एक तो शीतल होने से उसका स्पर्श सह्य होता है, दूसरे नौका आदि साधनों के द्वारा जल–आपदा का प्रतीकार भी किया जा सकता है।

किन्तु आचार्य कौटिल्य उक्त मत से असहमत हैं। उनके अनुसार अग्नि–आपदा की अपेक्षा जल–आपदा ही अधिक कष्टप्रद होती है। क्योंकि अग्नि तो किसी एकाध गाँव को ही जला सकती है, जबकि जल का प्रवाह एक साथ सैकड़ो गाँवों को बहा ले जाता है।[51] इसी प्रकार 'व्याधि' तथा 'दुर्भिक्ष' आपदाओं की तुलना करते हुए प्राचीन आचार्यो ने अपनी सम्मति दी है कि इन दोनों में 'दुर्भिक्ष–आपदा' की अपेक्षा 'व्याधि–आपदा' अधिक भयावह होती है। क्योंकि इससे लोग मर जाते हैं, बीमार हो जाते हैं तथा कृषि आदि सब कार्य ठप हो जाते हैं। परन्तु 'दुर्भिक्ष' के कारण ये सब काम नहीं रुकते हैं। दुर्भिक्षजन्य अन्नाभाव में हिरण्य तथा पशु आदि के द्वारा सरकारी कर चुकाया जा सकता है। किन्तु आचार्य कौटिल्य को उपरोक्त मत स्वीकार नहीं है। उनके अनुसार 'व्याधि' की अपेक्षा 'दुर्भिक्ष' अधिक कष्टदायी होता है। क्योंकि 'व्याधि' से तो किसी एक ही देश की हानि होती है तथा औषधि आदि के द्वारा उसका प्रतीकार भी किया जा सकता है। जबकि 'दुर्भिक्ष' के कारण सारा राष्ट्र पीडित होता है और उससे प्राणिमात्र का जीवन संकट में पड़ जाता है। इसी प्रकार 'दुर्भिक्ष' तथा 'महामारी' में –महामारी' अधिक कष्टप्रद होती है। क्योंकि 'दुर्भिक्ष' का तो दूसरे देशों से खाद्यान्न–आयात आदि उपायों के द्वारा प्रतीकार किया जा सकता है किन्तु 'महामारी' के शिकार हुए अनगिनत लोग उपचार के पहले ही अपना जीवन गँवा बैठते हैं।

उपरोक्त दैवी आपदाओं के अतिरिक्त राज्य को प्रभावित करने वाली अन्य विपदाओं को भी आचार्य कौटिल्य ने अपने संज्ञान में लिया है। इनमें से सर्वप्रथम 'क्षुद्रकक्षय'

51. दैवपीडनमग्निरुदकं. . . . .उदकवेगस्तु ग्रामशतप्रवाहीति। कौ0 अर्थ0 8/130–32/4 पृष्ठ 573

तथा 'मुख्यक्षय' पर विचार करते हुए उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यो के इस मत का उल्लेख किया है कि 'क्षुद्रकक्षय' (छोटे कर्मचारियों का क्षय) 'मुख्य क्षय' (मुख्य अधिकारियों का क्षय) की अपेक्षा अधिक हानिकारक होता है। क्योंकि छोटे कर्मचारियों के अभाव में कार्यो का 'योगक्षेम' सिद्ध नहीं हो पाता है। जबकि मुख्य अधिकारियों का क्षय केवल कार्यो की निगरानी में ही बाधक होता है। किन्तु आचार्य कौटिल्य को उक्त मत स्वीकार नहीं है। उनके अनुसार 'क्षुद्रकक्षय' की अपेक्षा 'मुख्यक्षय' अधिक हानिकारक है। क्योंकि छोटे कर्मचारियों की कमी को तो दूसरी नियुक्तियाँ करके पूरा किया जा सकता है। जबकि प्रमुख अधिकारी हजारो में से एक मिलता है या कभी कभी वह भी नहीं मिलता है तथा वह अपने बल–बुद्धि की अधिकता के कारण छोटे कर्मचारियों का आश्रय होता है।[52]

इसी प्रकार 'स्वचक्र' (अपने देश का विप्लव) तथा 'परचक्र' (दूसरे देश का विप्लव) के संबंध में प्राचीन आचार्यो का मत है कि 'परचक्र' की अपेक्षा 'सचक्र' ही अधिक भयावह होता है। क्योंकि वह अत्यधिक मात्रा में लगाए गए जुरमाना एवं टैक्स आदि के द्वारा प्रजा को पीडित करता है; इस प्रकार जनविरोध के रूप में तैयार उक्त विप्लव का प्रतीकार संभव नहीं होता। जबकि 'परचक्र' का प्रतीकार या तो उस देश को छोड़कर किया जा सकता है या फिर कुछ धन देकर उस देश से सन्धि की जा सकती है। किन्तु आचार्य कौटिल्य उक्त मत से असहमत हैं। उनके अनुसार 'स्वचक्र' की अपेक्षा 'परचक्र' अधिक भयङ्कर होता है। क्योंकि 'स्वचक्र' का प्रतीकार अमात्य आदि प्रकृतियों को अनुकूल बनाकर या उनको हटा करके किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त 'स्वचक्र' से किसी क्षेत्र विशेष को ही पीडा पहुँचती है। जबकि 'परचक्र' के द्वारा विलय करना, मारना, आग लगाना, विध्वंस करना तथा अपने देश से निकालना आदि क्रियाओं के कारण सारे राष्ट्र को अनेक प्रकार की पीडाऐं झेलना पडती हैं।

'प्रकृतिविवाद' तथा 'राजविवाद' के संबंध में पूर्वाचार्यो का मत है कि इन दोनों में 'राजविवाद' की अपेक्षा 'प्रकृतिविवाद' अधिक हानिकारक होता है। क्योंकि वह अमात्य

---

52. व्याधिदुर्भिक्षयोर्व्याधि. . . . . क्षुद्रकाणामिति। कौ0 अर्थ0 8/130–132/4 पृष्ठ 573–74

आदि प्रकृतियों में परस्पर फूट डालने वाला तथा शत्रु–कार्यो में परोक्ष रूप से सहायक होता है। जबकि 'राजविवाद' में प्रकृतियों के वेतन भत्ते दुगुने बढ़ जाते हैं तथा प्रजा के अधिकांश कर माफ कर दिए जाते हैं।[53] किन्तु आचार्य कौटिल्य को उपरोक्त मत अमान्य है। उनके अनुसार 'प्रकृतिविवाद' की अपेक्षा 'राजविवाद' अधिक भयावह होता है। क्योंकि 'प्रकृतिविवाद' तो अमात्य आदि मुख्य प्रकृतियों को अनुकूल बनाकर तथा कलह–कारणों का निवारण करके शान्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त 'प्रकृतिविवाद' में परस्पर विरोधी प्रकृतियाँ स्पर्धावश राजा का उपकार ही करती हैं। जबकि 'राजविवाद' में प्रजा की सारी ऊर्जा, शक्ति एवं समृद्धि नष्ट हो जाती है तथा उसको शान्त करने के लिए दुगुना यत्न करना पडता है।

'देश विहार' (मौजमस्ती में डूबा देश) तथा 'राजविहार (मौजमस्ती में डूबा राजा) के संबंध में प्राचीन आचार्यो का मत है कि 'राजविहार' की अपेक्षा 'देशविहार' अधिक खतरनाक होता है। क्योंकि देशवासियों के मौजमस्ती में डूबे रहने के कारण कृषि आदि कार्यो में सदैव विघ्न पड़ता है। जबकि 'राजविहार' से कर्मकार, शिल्पकार, गायक, चारण, वेश्या तथा व्यापारी आदि को लाभ होता है। किन्तु उक्त मत पर आचार्य कौटिल्य को आपत्ति है। उनके अनुसार 'देशविहार' की अपेक्षा 'राजविहार' अधिक घातक होता है। क्योंकि प्रजा की मौज मस्ती थोडे ही खर्च में हो जाती है तथा उस मौजमस्ती से ताजगी पाकर प्रजा फिर दुगुने उत्साह के साथ अपने काम में जुट जाती है। जबकि 'राजविहार' में अपनी मौजमस्ती को पूरा करने के लिए स्वयं राजा के द्वारा तथा राजा के प्रिय व्यक्तियों के द्वारा अवैध रूप से धन प्राप्त कर, पण्यशाला से धन प्राप्त कर तथा रिश्वत आदि प्राप्त कर प्रजा को सताया जाता है।

'सुभगा–विहार' (रानी का विलासप्रिय होना) तथा 'कुमार विहार' (युवराजका विलासप्रिय होना) के संबंध में प्राचीन आचार्यो का मत है कि 'सुभगा–विहार' की अपेक्षा 'कुमार–विहार' अधिक कष्टकर होता है। क्योंकि विलासी युवराज के द्वारा उसके खुशामदी व्यक्तियों के द्वारा अवैध रूप से धन प्राप्त कर, पण्यशाला से धन प्राप्त कर तथा रिश्वत आदि

53. स्वचक्रपरचक्रयोः. . . . . भवतीत्याचार्याः। उपरोक्त पृष्ठ 574–75

प्राप्त कर प्रजा को पीड़ित किया जाता है। जबकि विलासिनी रानी केवल भोग विलास की सामग्री द्वारा ही प्रजा को पीड़ित करती है।[54] किन्तु आचार्य कौटिल्य को उक्त मत स्वीकार नहीं है। उनके अनुसार 'कुमार विहार' की अपेक्षा 'सुभगा विहार' अधिक भयावह होता है। क्योंकि विलासी युवराज को तो अनर्थकारी कार्यो से अमात्य तथा पुरोहित आदि रोक सकते है। लेकिन विलासिनी रानी को रोकना आसान नहीं है। क्योंकि एक तो वह प्रायः नारी हठताजन्य मूर्खता से ग्रस्त रहती है, दूसरे वह अनर्थकारी पुरुषों की कुसंगति में फँसी रहती है।

'श्रेणी पुरुष' (आयुधजीवी पुरुष) तथा 'मुख्य पुरुष' (सरकार के भ्रष्ट मुख्य अधिकारी) के संबंध में प्राचीन आचार्यो का मत है कि 'मुख्य पुरुष' की अपेक्षा 'श्रेणी पुरुष' अधिक हानिकारक होते हैं। क्योंकि वह चोरी–डकैती आदि के द्वारा प्रजा को पीडित करते हैं तथा बहुसंख्यक होने के कारण उन्हें रोका भी नहीं जा सकता है। जबकि 'मुख्य पुरुष' केवल रिश्वत आदि न मिलने के कारण ही प्रजा को परेशान करते हैं। किन्तु आचार्य कौटिल्य को उपरोक्त मत मान्य नहीं है। उनके अनुसार 'श्रेणी पुरुष' की अपेक्षा 'मुख्य पुरुष' ही अधिक कष्ट पहुँचाते हैं। क्योंकि श्रेणी पुरुषों को तो चोरी, डकैती आदि से सरलतापूर्वक रोका जा सकता है। कारण, एक तो जहाँ वे चोरी डकैती आदि करते हैं वे लोग भी प्रायः उन्हीं के स्वभाव एवं व्यवसाय के होते हैं; दूसरे, उनके मुखिया को वश में करके भी उनको चोरी–डकैती आदि से रोका जा सकता है। जबकि 'मुख्य पुरुष' बड़े हठी होते हैं तथा वे दूसरों के प्राण एवं धन का अपहरण करके उन्हें पीडित करते हैं।

'सन्निधाता' तथा 'समाहर्ता' नामक उच्च अधिकारियों के संबंध में प्राचीन आचार्यो का मत है कि 'समाहर्ता' की अपेक्षा 'सन्निधाता' अधिक कष्टकर होता है। क्योंकि वह राजकार्यो में भ्रष्टाचार करके तथा प्रजा से अनुचित कर वसूल करके प्रजा को पीडित करता है। जबकि 'समाहर्ता' विधिवत् अपने दायित्वों का निर्वाह करता हुआ केवल 'वेतनभोगी' मात्र

---

54. नेति कौटिल्यः शक्यः प्रकृतिविवादः. . . . . सुभगा विलासोपभोगेनत्याचार्याः। कौ0 अर्थ0 8/130–32/4 पृष्ठ 575–76

ही होता है।[55] जबकि कौटिल्य का मत इससे भिन्न है। उनके अनुसार 'सन्निधाता' की अपेक्षा 'समाहर्ता' अधिक कष्टप्रद होता है। क्योंकि 'सन्निधाता' तो दूसरे कर्मचारियों द्वारा वसूले गए राज–कर को संगृहीत कर कोश में जमा कर देता है। जबकि 'समाहर्ता' पहले अपनी रिश्वत लेकर फिर राज–कर को वसूल करता है। अथवा उसमें से भी कुछ चुरा लेता है। इस प्रकार प्रजा से कर–संग्रह करने में वह सदैव अपनी मनमानी करता है।

'अन्तपाल' तथा 'वैदेहक' नामक उच्च अधिकारियो के संबंध में पूर्ववर्ती आचार्यो का मत है कि 'वैदेहक' की अपेक्षा 'अन्तपाल' अधिक कष्टकारी होता है। क्योंकि वह चोरो से मिलकर तथा मनमाना मार्ग–कर वसूल करके व्यापारियों को पीडित करता है। जबकि 'वैदेहक' क्रय–विक्रय की जाने वाली वस्तुओं पर अधिक लाभ प्रदान कर राज्य की व्यापारिक उन्नति करता है। लेकिन आचार्य कौटिल्य उक्त मत को उचित नहीं मानते हैं। क्योंकि 'अन्तपाल' तो एक साथ लाये गए विक्रेय पदार्थो पर उचित मार्ग कर (वर्तनी) वसूल करता है। जबकि 'वैदेहक' आपस में सलाह करके व्यापारिक माल का मूल्य घटा–बढा कर एक पण के सौ पण तथा एक कुम्भ के सौ कुम्भ लाभ उठाते हैं।

'अभिजातोपरुद्धा भूमि' (विजिगीषु के पारिवारिक जनों से घिरी भूमि) तथा 'पशुव्रजोपरुद्धा भूमि' (पशुओं से घिरी हुई भूमि) में कौन सी भूमि त्याज्य अथवा अत्याज्य होती है ? इस संबंध में प्राचीन आचार्यो का मत है कि यदि 'अभिजातोपरुद्धा भूमि' अत्यन्त उपजाऊ, लाभदायक तथा सैन्यबल द्वारा उपकारिणी हो तो वह अत्याज्य होती है। क्योंकि शत्रु द्वारा आक्रमण के समय यदि किसी भूमि पर सैन्य वल न हो तो वह भूमि कष्टकारी हो जाती है। इसके विपरीत यदि 'पशुव्रजोपरुद्धा भूमि' कृषि योग्य हो तो वह त्याज्य होती है। क्योंकि चरागाह खेती की अपेक्षा कम लाभप्रद होता है।[56] किन्तु आचार्य कौटिल्य को उक्त मत स्वीकार नहीं है। उनके अनुसार 'अभिजातोपरुद्धा भूमि' महान उपकारिणी होने पर भी त्याज्य होती है क्योंकि उस पर शत्रु द्वारा आक्रमण किए जाने का भय सदैव बना रहता है। जबकि 'पशुव्रजोपरुद्धा भूमि' कोश तथा बैल, घोडे इत्यादि वाहन प्रदान कर अत्यन्त उपकार

---

55. नेति कौटिल्यः शक्यः कुमारो. . . . . .भवतीत्याचार्योः। कौ0 अर्थ0 8/130–32/4 पृष्ठ 576–77
56. नेति कौटिल्यः सन्निधाता. . . . .हि क्षेत्रेण बाध्यते। इंत्याचार्याः। कौ0 अर्थ0 8/130–32/4 पृष्ठ 577–78

करने वाली होने के कारण 'अत्याज्य' होती है। लेकिन उसके पास यदि अनाज के खेत हों और चारागाह के कारण उनका नाश हो तो फिर वह भूमि त्याज्य है अन्यथा नहीं।

'प्रतिरोधक पुरुष' (लूटपाट करने वाले व्यक्ति) तथा 'आटविक पुरुष (जंगली व्यक्ति) में कौन अधिक कष्टकारी होता है ? इस संबंध में प्राचीन आचार्यो का मत है कि 'आटविक' की अपेक्षा 'प्रतिरोधक' पुरुष अधिक कष्टप्रद होते हैं। क्योंकि वे रात्रि में तथा घने जंगलो में घूमने वाले, राहगीरों के शरीर पर आक्रमण करने वाले, सैकड़ो–हजारों का अपहरण करने वाले तथा राज्य के प्रमुख व्यक्तियों को अपनी हिंसक गतिविधियो से कुपित करने वाले होते हैं। जबकि 'आटविक' दूरस्थ–समीवर्ती जंगलों में रहने वाले, प्रकट रूप में दृश्य होकर रहने वाले, होते हैं। तथा उनके द्वारा देश के केवल किसी एक क्षेत्र विशेष को क्षति पहुँचायी जाती है। किन्तु आचार्य कौटिल्य को उक्त मत पर आपत्ति है। उनके अनुसार 'प्रतिरोधक' की अपेक्षा 'आटविक पुरुष' अधिक कष्टप्रद होते है। क्योंकि 'प्रतिरोधक' पुरुष तो केवल असावधान व्यक्ति के यहाँ से ही चोरी करते हैं। इसके अलावा वे अल्पसंख्यक तथा भयभीत होने के कारण सरलता से पहचाने तथा पकड़े जा सकते हैं। जबकि 'आटविक' पुरुषों के अपने निजी देश होते हैं तथा वे बहुसंख्यक एवं पराक्रमी होते हैं, प्रकट रूप में युद्ध करते हैं, अपहरण करते हैं, हत्याऐं करते हैं तथा निरंकुश होने के कारण उनकी स्थिति देशी राजाओं के समान होती है।[57]

'मृगवन' तथा 'हस्तिवन' के संबंध में आचार्य कौटिल्य का मत है कि 'हस्तिवन' की अपेक्षा 'मृगवन' श्रेष्ठ होता है। क्योंकि बडी संख्या में पाये जाने वाले मृगों में माँस तथा चर्म अधिक निकलता है। वे अल्पाहारी, किसी को क्लेश न पहूँचाने वाले तथा जल्दी ही वश में हो जाने वाले होते हैं। जबकि हाथियों की स्थिति ठीक इसके विपरीत होती है। अर्थात् वे हिरणों की अपेक्षा कम संख्या में पाये जाते हैं, उनमें माँस और चर्म कम उपयोगी निकलता है, उनका आहार बहुत भारी होता है, बेकावू होने पर दूसरो को क्लेश पहुँचाते हैं, कठिनाई के साथ पकड़े जाते हैं और पकड़े जाने पर दुष्टता दिखाते हुए कई लोगों को मार भी डालते है।

---

57. नेति कौटिल्यः अभिजातोपरुद्धा. . . . .देशानां राजसर्धाण इति। कौ0 अर्थ0 8/130–32/4, पृ0 578–79

'स्वस्थानीयोपकार' (अपने नगर का उपकार करना) तथा 'परस्थानीयोपकार' (शत्रु नगर का उपकार करना) के सबंध में आचार्य कौटिल्य का निर्देश है कि इन दोनों में 'स्वस्थानीयोपकार' ही श्रेष्ठ है। क्योंकि इसमें धान्य, पशु, हिरण्य, तथा कुप्य आदि पदार्थों के क्रय–विक्रय द्वारा तथा जनपदवासियों के आपात्काल में उनकी रक्षा के द्वारा उपकार किया जाता है। जबकि 'परस्थानीयोपकार' में यही कार्य शत्रु नगर में करने से उनके परिणाम सदैव विपरीत ही होते हैं।

(2) आर्थिक अवरोध :

आर्थिक अवरोधों को आचार्य कौटिल्य ने 'स्तम्भवर्ग' के अन्तर्गत रखते हुए उन्हें दो उप वर्गों में वर्गीकृत किया है– (i) आभ्यन्तर स्तम्भ तथा (ii) बाह्य स्तम्भ। विजिगीषु राजा के अपने ही मुख्य सरकारी अधिकारियों/कर्मचारियों के द्वारा अर्थ का रोका जाना 'आभ्यन्तर स्तम्भ' कहलाता है। जबकि उसके मित्र तथा आटविक जैसे बाहरी पुरुषों द्वारा अर्थ का रोका जाना 'बाह्य स्तम्भ' कहलाता है।[58]

(3) वित्तीय घोटाले :

वित्तीय घोटालों को कौटिलीय अर्थशास्त्र में 'कोशसङ्गवर्ग' के अन्तर्गत परिगणित किया गया है। वित्तीय घोटाले कई प्रकार के हो सकते है। जैसे– उपरोक्त दोनों प्रकार के आर्थिक अवरोध–आभ्यन्तर स्तम्भ तथा बाह्य स्तम्भ, से होने वाले घोटाले, मुख्य अधिकारियों द्वारा किये गए गबन से होने वाले घोटाले, कर छूट संबंधी नियमों के उल्लंघन से होने वाले घोटाले, वसूली नियमों के उल्लंघन से जहाँ–तहाँ शेष पड़े देयों से होने वाले घोटाले, अवैध ढंग से अकूत सम्पत्ति अर्जित करने से होने वाले घोटाले, तथा सामन्त एवं आटविक पुरुषों द्वारा अपहृत किये गए धन से होने वाले घोटाले आदि।[59]

इस प्रकार आचार्य कौटिल्य ने विभिन्न प्रकार की आपदाओं (पीडनवर्ग), आर्थिक अवरोधों (स्तम्भवर्ग) तथा वित्तीय घोटालों (कोशसङ्गवर्ग) की सम्यक् विवेचना करने के उपरान्त विजिगीषु राजा को निर्देश दिया है कि देश की सुख समृद्धि हेतु प्रथम तो वह अपने

58. मृगहस्तिवनयोर्मृगाः. . . . . . . .इति स्तम्भवर्गः। कौ0 अर्थ0 8/130–32/4 पृष्ठ 579–80
59. ताभ्यां पीडनैर्यथोक्तैश्च. . . . . .सामन्ताटवीहृत कोषसङ्ग। 8/130–32/4 पृष्ठ 580

राज्य में उक्त आपदाओं (पीडनवर्ग) को उत्पन्न हीन होने दें, यदि वे किसी कारणवश उत्पन्न भी हो जायें तो उनका वह तत्काल निवारण करे। इसी प्रकार आर्थिक अवरोधों (स्तम्भवर्ग) तथा वित्तीय घोटालों (कोशसङ्गवर्ग) को समाप्त करने के लिए भी वह सतत् प्रयत्नशील रहे।[60]

(च) कौटिल्य के व्यसन एवं आपदा चिन्तन की आधुनिक युग में प्रासंगिकता:

(1) प्रासंगिकता :

आचार्य कौटिल्य ने राज्य तथा समाज के 'योगक्षेम' की आदर्श परिकल्पना प्रस्तुत करते हुए उसे व्यसन–मुक्ति के यथार्थ धरातल पर साकार करने का स्तुत्य प्रयास किया है। कौटिल्य द्वारा प्रस्तुत व्यसन एवं आपदा चिन्तन सम्बन्धी तथ्य आज भी बडे सटीक एवं प्रासंगिक हैं। उन्हें निम्न प्रकार रेखांकित किया जा सकता है–

(i) कौटिल्य का यह दृष्टिकोण केवल वर्तमान युग के लिए ही नहीं, अपितु सदा–सदा के लिए एक सार्वभौमिक सत्य के रूप में स्वीकार करने योग्य है कि 'अपनय' नामक मानुष कर्म (अर्थात जिस कर्म से विपत्ति उत्पन्न होने की सम्मावना हो) तथा 'अनय' नामक दैव कर्म (अर्थात जिस कर्म से प्रतिकूल फल की प्राप्ति होती हो) के कारण ही राज्य में सभी प्रकार के व्यसन उत्पन्न होते हैं।[61] वर्तमान युग के आतंकवाद, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता जैसे गम्भीर राज्य–व्यसन 'अपनय' नामक मानुष कर्म की देन है; जबकि वर्ष–प्रतिवर्ष अथवा यदा–कदा होने वाले अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष तथा महामारी आदि व्यसन 'अनय' नामक दैवकर्म के प्रतिफल हैं। इन्हें हम आधुनिक सन्दर्भ में मानुषजन्य आपदा एवं दैवी आपदा कह सकते हैं। इन्हीं आपदाओं के कारण राज्य को विभिन्न क्षेत्रों में न केवल घोर संकट का सामना करना पड़ता है वरन् देश की सभ्यता एवं प्रगति को भी क्षति पहुँचती है।

(ii) आचार्य कौटिल्य का यह मत आज भी प्रासंगिक है कि एक विजिगीषु राजा को निरालस्य होकर अपने प्रकृति वर्ग में व्यसनों के उत्पन्न होने से पहले ही उनके कारणों का प्रतिकार कर देना चाहिए।[62] किसी भी व्यसन की पराकाष्ठा आ जाने पर उसके

---

60. पीडनानामनुत्पत्तावत्पन्नानां . . . . . . स्तम्भसङ्गयोः। कौ0 अर्थ0 8/130–32/4 पृष्ठ 580
61. दैवं मानुषं वा. . . . . . .व्यस्यत्येनं श्रेयस इति व्यसनम्। कौ0 अर्थ0 8/127/1 पृष्ठ 555
62. यतो निमित्तं व्यसनं. . . . . . . तन्निमित्तमतन्द्रितः। कौ0 अर्थ 8/133–34 पृष्ठ 586

निवारण–उपाय तलाशने की वर्तमान राजनीति के लिए आचार्य कौटिल्य का उक्त मत एक जागरण–मन्त्र सिद्ध हो सकता है।

(iii) कौटिलीय अर्थशास्त्र का यह मत आज भी नितान्त प्रासंगिक है कि राज्य की सप्त प्रकृतियों (स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, सेना और मित्र) में स्वामी (राजा) नामक राज्य–प्रकृति की व्यसन–ग्रस्तता सर्वाधिक चिन्ताजनक एवं हानिकारक होती है। क्योंकि वही समस्त प्रकृतियों में प्रधान (कूटस्थानीय) होता है।[63] वही अन्य प्रकृतियों का दिग्दर्शन करता है। अतः उसमें प्रमाद उत्पन्न होने पर अन्य प्रकृतियों के कार्य भी प्रभावित होते हैं। इसलिए शासन–प्रधान के चरित्रवान एवं कर्त्तव्यशील होने संबंधी निर्देश आज के सन्दर्भ में भी प्रासंगिक हैं।

(iv) आचार्य कौटिल्य का यह मत आज भी प्रासंगिक है कि राज्य में व्याप्त बाह्य–कोप की अपेक्षा आभ्यन्तर–कोप घर में छिपे सर्प की तरह अत्यन्त घातक होता है।[64] मौजूदा भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिक हिंसा, प्रशासनिक अव्यवस्था, दलगत प्रतिस्पर्द्धा, गुटवन्दिता, सामाजिक विषमता तथा गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाली राज्य की एक चौथाई जनता के नारकीय जीवन से आम जनता में जो विकराल आभ्यन्तर कोप फैल रहा है, उसकी भयावहता के प्रति राज्य–नियन्ताओं को बिना समय गँवाये सावधान होने की आवश्यकता है। आज के नेतागण जबकि येनकेन प्रकारेण सत्ता प्राप्ति और शासन संचालन को ही अपना लक्ष्य मानते हैं, आभ्यन्तर कोप के प्रति सर्वथा उदासीन दिखाई पड़ते हैं। ये आभ्यन्तर कोप किसी राजा को भीतर ही भीतर खोखला एवं कमजोर बना देते हैं, आभ्यन्तर कोप से बाह्य कोप की सम्भावना भी बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त आभ्यन्तर कोप राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता को कमजोर कर देते हैं। अतः इसके प्रति सजग होने की आवश्यकता सर्वथा प्रासंगिक है।

---

63. नेति कौटिल्यः. . . . . . . तत्कूटस्थानीयो हि स्वामीति। कौ0 अर्थ0 8/127/1 पृष्ठ 556
64. 'अहिभयादभ्यन्तरकोपो बाह्यकोपात्पापीयान' इत्युक्तं पुरस्तात्। कौ0 अर्थ 9/143/5 पृष्ठ 616

(v) कौटिल्य का यह मत वर्तमान इक्कीसवीं सदी के लिए नितान्त प्रासंगिक है कि मनुष्य के समस्त व्यसनों की मूल जड अशिक्षा है। क्योंकि अशिक्षित व्यक्ति व्यसनों से पैदा होने वाले दोषों को समझ ही नहीं पाता है।[65] इसलिए यदि हम अपने समाज और राज्य का सर्वथा व्यसनमुक्त स्वरूप देखना चाहते हैं तो हमें निरक्षर जनता को साक्षर बनाने के लिए 'सर्व शिक्षा अभियान' जैसे कागजी घोड़े दौड़ाने की वजाय कुछ ठोस और कारगर भगीरथ–उपाय करने होंगे। शिक्षा के प्रसार से ही जागरूकता आती है और व्यक्ति अपने दोषों को समझने में समर्थ होता है।

(vi) आचार्य कौटिल्य का यह निष्कर्ष आज भी बडा महत्वपूर्ण है कि 'काम' और 'क्रोध' से उत्पन्न होने वाले मानवीय व्यसन सर्वाधिक गम्भीर एवं घातक होते हैं। उसके मतानुसार 'काम' दुर्जनों के सत्कार का हेतु है तथा 'क्रोध' सज्जनों के तिरस्कार का हेतु है।[66] वर्तमान में 'राजनीति के अपराधीकरण' तथा 'अपराधों के राजनीतिकरण' का जो खतरनाक दौर चल रहा है, उसके मूल में हमारे अन्दर अन्तर्निहित कामतृप्ति की असीम लालसा तथा क्रोधजन्य भयावह अग्निदाह है। अतः राष्ट्र हित में इन दोनों घातक मानवीय व्यसनों पर सुशिक्षा, सुसंस्कार एवं सदाचार के माध्यम से तत्काल अंकुश लगाए जाने की आवश्यकता है। क्योंकि वही राष्ट उन्नति कर सकता है जिसके नागरिक चारित्रिक व्यसनों से सर्वथा मुक्त होते हैं।

(vii) स्त्री व्यसन एवं मद्यपान कौटिल्य काल की भाँति वर्तमान युग के लिए भी अत्यन्त अनर्थकारी हैं। इनमें भी कौटिल्य के द्वारा स्त्री व्यसन की अपेक्षा मद्यपान को अधिक घातक बताया जाना[67] आज भी पूरी तरह प्रासंगिक है। क्योंकि मद्यपान एक ऐसा सामाजिक व्यसन है जिसने प्राचीन काल से लेकर आज तक अनगिनत राजा और रंक दोनों का विनाश किया है। इस व्यसन पर प्रभावी अंकुश लगाए जाने की नितान्त आवश्यकता है। परन्तु आज राज्य की नीति मद्य व्यवसाय द्वारा अधिकाधिक राजस्व–संग्रह

65. अविद्याविनयः पुरुषव्यसनहेतुः। अविनीतो हि व्यसनदोषान्न पश्यति। कौ0 अर्थ0 8/129/3 पृष्ठ 566
66. असतां प्रग्रहः कामः. . . . .वृद्धसेवी जितेन्द्रियः। उपरोक्त पृष्ठ 572
67. नेति कैटिल्यः. . . . .चार्थघ्नेषु प्रसङ्ग इति। उपरोक्त पृष्ठ 571

करने की है और मद्यपान के घातक परिणामों की अनदेखी की जा रही है। एक ओर मद्य निषेध अभियान ओर दूसरी ओर मद्य व्यवसाय को प्रोत्साहन देने की आधुनिक दोहरी नीति बनाने वालों के लिए कौटिल्य के मद्यपान सम्बन्धी विचार प्रासंगिक हो सकते हैं।

(viii) आचार्य कौटिल्य द्वारा इंगित दूष्ययुक्त (राजद्रोहियों से युक्त) सेना हमारे लिए आज एक राष्ट्रीय चिन्ता का विषय बन गई है। हाल ही में विदेशी जासूसों द्वारा हमारी सेनाओं में घुसपैठ करने तथा हमारी अत्यन्त गोपनीय सैन्य सूचनाओं की गोपनीयता भंग कर उन्हें दूसरे देशो में पहुँचाने सम्बन्धी ताजा समाचारों से सारा राष्ट्र स्तब्ध एवं उद्विग्न है। अतः हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा में घातक सेंध लगाने वाले इस सैन्य–व्यसन पर सर्वोच्च वरीयता के साथ अंकुश लगाये जाने की आवश्यकता है। इस विषय में कौटिल्य के विचारों से प्रासंगिक दिशा निर्देश मिल सकता है।

(ix) आचार्य कौटिल्य का यह दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के लिए आज भी बडा प्रासंगिक है कि विजिगीषु राजा को अपने मित्र राजाओं के साथ संबंध बनाये रखने में बडा सूक्ष्मदर्शी एवं दूरदर्शी होना चाहिए। भूल से भी विजिगीषु की किसी भी गतिविधि के द्वारा मित्र राजा के पारस्परिक विश्वास को ठेस न पहुँचने पाये। क्योंकि एक बार टूटे हुए विश्वास-तन्तु एक तो दुबारा जुडते नहीं है और यदि जुडते भी हैं तो बडी कठिनाई से। इस प्रकार आज भी विदेशनीति के बारे में कौटिल्य का यह दृष्टिकोण सर्वथा उपयोगी है।[68]

(x) आचार्य कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट देवी आपदाओं के निवारण–उपाय आज भी बड़े प्रासंगिक हैं। उदाहरणार्थ अग्निशमन के प्रति आम नागरिक द्वारा वरती जाने वाली असावधानी एवं उदासीनता को कौटिल्य द्वारा एक दण्डनीय अपराध घोषित किया जाना आज भी बडा महत्वपूर्ण है।[69] क्योंकि अग्निशमन के प्रति बरती जाने वाली असावधानी एवं उदासीनता को दुर्भाग्यवश हमारे देश में आज भी दण्डनीय अपराध घोषित नहीं किया जा सका है। जिसका दुष्परिणाम यह है कि जिनकी असावधानी से

68. उपेक्षितमशक्त्या वा. . . . . .मित्रं सिद्धं चाशु विरज्यति। कौ0 अर्थ0 8/133–34/5 पृष्ठ 586
69. प्रदीप्तमनभिधावतो. . . . . . चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः। कौ0 अर्थ0 2/55/36 पृष्ठ 247

घर में आग लगती है, उन्हें दण्डित होने का तो कोई भय नहीं होता; बल्कि शासकीय आपदा–राहत–कोष से उन्हें सहायता राशि पाने का अधिकार अवश्य प्राप्त होता है। अतः आचार्य कौटिल्य से प्रेरणा लेते हुए जनहितार्थ इस दिशा में कानूनी संशोधन करने की पर्याप्त गुंजाइश है। साथ ही इस दिशा में जनता को अपेक्षित जानकारी एवं प्रशिक्षण देकर उसे जागरूक बनाना भी आवश्यक है।

(xi) इसी प्रकार आचार्य कौटिल्य के द्वारा दुर्भिक्ष आपदा निवारण हेतु दुर्भिक्ष पीडितों को काम के बदले अनाज देकर उनसे दुर्ग या सेतु आदि का निर्माण कराये जाने का सुझाव आज भी पूर्णतया प्रासंगिक है।[70] वर्तमान सरकारों द्वारा चलाये जा रहे 'काम के बदले अनाज' कार्यक्रम के पीछे सम्भवतः 'कौटिलीय अर्थशास्त्र' की सम्प्रेरणा ही अन्तर्निहित है। गरीबों या पीड़ितों को सहायता देकर बदले में देश का काम करवाना अपने आप में एक व्यावहारिक नीति है; जिससे सहायता का महत्व भी बढ़ जाता है। यह सुझाव व्यावहारिक होने के साथ ही उपयोगी भी है।

अप्रासंगिकता :

कौटिलीय अर्थशास्त्र में व्यसन एवं आपदा चिन्तन के सम्बन्ध में जो भी दिशा निर्देश दिए गए हैं प्रायः वे सभी आधुनिक युग के लिए प्रासंगिक एवं उपयोगी हैं। सघन छानबीन एवं प्रयास के बाद भी उक्त चिन्तन का कोई भी अंश अप्रासंगिक प्रतीत नहीं होता है। इस विषय में कौटिल्य के विचार सर्वथा विवेकपूर्ण व व्यावहारिक हैं। राज्य की सुरक्षा एवं प्रगति के लिये लाभदायक भी हैं। केवल राज्य–व्यसनों के विवेचन में द्वैराज्य (ऐसा राज्य जिसके दो राजा हों) तथा वैराज्य (ऐसा राज्य जिसमें केवल किसी एक विजेता राजा का शासन हो) की तुलना करते समय 'द्वैराज्य' का अस्तित्व ही आधुनिक सम्प्रभुतासम्पन्न राज्यों के लिए अप्रासंगिक माना जा सकता है। इसका कारण यह है कि इस समय की राजनैतिक परिस्थितियाँ कौटिल्य के काल से पूर्णतया भिन्न हो चुकी हैं। आज का युग प्रजातंत्र का युग है न कि राजतंत्र का। अतः कौटिल्य के तत्कालीन कुछ राजतन्त्रात्मक विचारों का आज के प्रजातंत्र-युग में अप्रासंगिक हो जाना सहज स्वाभाविक है।

---

70. दुर्भिक्षे राजा वीजभक्तोपग्रहं कृत्वाऽनुग्रहं कुर्यात्। दुर्गसेतुकर्म वा भक्तानुग्रहेण। कौ0 अर्थ0 4/78/3 पृष्ठ 357

सप्तम अध्याय- कौटिल्य के राजदर्शन का आधुनिक सन्दर्भ में मूल्यांकन

"It should not be forgotten that his *Arthaśāstra,* in addition to its being a book of guidance for his royal master, was a manual on state craft for the whole country and for all time."

- B. A. Saletore

(क) कौटिल्य की कूटनीति

आचार्य कौटिल्य ने 'कूटनीति' को 'नय' की संज्ञा दी है।[1] उसके अनुसार नयज्ञ (कूटनीति का ज्ञाता) राजा सम्पूर्ण पृथिवी पर विजय प्राप्त कर लेता है।[2] वस्तुतः प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक की यह एक बड़ी भारी विसंगति रही है कि यद्यपि युद्ध कभी किसी का अभीष्ट नहीं रहा; फिर भी उसका सर्वथा त्याग कर पाना भी किसी शासक के लिये संभव नहीं रहा। इस दृष्टि से सम्राट अशोक जैसे कुछ ऐतिहासिक शासकों के 'युद्ध विराम' संबंधी स्तुत्य प्रयास भी पूर्णतया सफल नहीं हो सके। इस विसंगति के गर्भ से विश्व राजनीति में 'कूटनीति' नामक एक अनूठे तत्व का उद्भव हुआ। जिसके माध्यम से राजा–महाराजाओं द्वारा युद्ध की सम्भावना यथासम्भव न्यूनतम करने के भरसक प्रयास किये गये। प्रत्येक बुद्धिमान राजा ने यथासम्भव युद्ध से दूर रहने तथा शान्तिमय उपायों से अपनी समस्याओं का समाधान तथा अभीष्ट सिद्धि का भरसक प्रयास किया है। युद्ध का आश्रय तो केवल तभी लिया गया है जब अभीष्ट–सिद्धि के अन्य सारे युद्धेतर उपाय असफल हो गये। कौरवों और पाण्डवों में अन्त तक सुलह–समझौते के प्रयास होते रहना तथा पाण्डवों के द्वारा केवल पाँच गाँव लेकर ही सन्तुष्ट हो जाने की मनोदशा से सिद्ध होता है कि प्राचीन भारत में युद्ध को यथासम्भव टालने का प्रयास किया जाता था। वशभर कूटनीतिक उपायों से ही प्रत्येक समस्या का युद्धेतर समाधान खोजने का प्रयास किया जाता था।

इस प्रकार परस्पर युद्ध की नैसर्गिक अनिवार्यता को देखते हुये प्राचीन भारतीय चिन्तकों ने उसकी भयावहता को कम करने हेतु पर्याप्त मार्गदर्शन किया है। इस हेतु उन्होंने धर्मयुद्ध के उच्च आदर्श की प्रतिस्थापना की है। लेकिन धर्मयुद्ध के आदर्श नियमों का अनुपालन केवल तभी तक हो पाया जब तक दोनों पक्षों में बराबर का जोड़–तोड़ रहा और

1. तस्मिन् योगक्षेमनिष्पत्तिर्नयः। कौ0 अर्थ0 6/97/2, पृष्ठ 445
2. नयज्ञः पृथिवीं कृत्स्नां जयत्येव न हीयते। कौ0 अर्थ0 6/96/1 पृष्ठ 444

पराजय के बाद राज्य अपहरण की आशंका नगण्य रही। परन्तु जब साम्राज्यवाद की भावना ने जोर पकड़ा तब आत्म रक्षा की चिन्ता प्रबल हो उठी तथा युद्ध में सफलता पाने के लिये उचित–अनुचित, नैतिक–अनैतिक सभी साधन और उपाय ठीक समझने जाने लगे। ऐसी परिस्थितियों में आचार्य कौटिल्य ने अपनी विशिष्ट 'कूटनीति' प्रतिपादित करते हुए निर्दिष्ट किया है कि जब तक अपना पक्ष सभी दृष्टियों से मजबूत रहे तब तक तो धर्म युद्ध के आदर्श पर चलने में कहीं कोई हानि नहीं। लेकिन इसके विपरीत जैसे ही अपनी स्थिति शत्रु की अपेक्षा कमजोर प्रतीत हो तो जिस उपाय से भी सफलता मिले वही उपाय अपनाना उचित है; चाहे वह धार्मिक हो अथवा अधार्मिक।[3] ऐसे उपायों को आचार्य कौटिल्य ने 'कूट युद्ध' की संज्ञा दी है।

कूट युद्ध में किसी भी समय किसी भी स्थिति में शत्रु पर आक्रमण करना अनुमन्य था। उस समय धर्मयुद्ध के आदर्श–नियमों की चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नही रहती है। इसके अतिरिक्त युद्ध की सम्भावना यथासम्भव कम करने के लिये आचार्य कौटिल्य जैसे भारतीय चिन्तकों ने विविध राज्यों के 'मण्डल' बनाकर उनमें शक्ति सन्तुलन स्थापित करने का प्रयास किया है। उसका प्रख्यात 'मण्डल सिद्धान्त' शक्ति सन्तुलन के सिद्धान्त पर ही आधारित था। विभिन्न राज्यों के बीच जो सम्बन्ध सम्भव हो सकते हैं उन्हें समझाते हुये दुर्बल राज्यों को अपने अधिक शक्तिशाली पड़ौसी राज्यों से सावधान रहने की सलाह दी गई तथा उनकी विस्तार नीति से ही अपनी रक्षा हेतु अन्य समान न्यूनाधिक बल वाले राज्यों से मैत्री स्थापित करके ऐसा मण्डल बनाने हेतु निर्दिष्ट किया गया जिस पर आक्रमण करने का शत्रु साहस ही न कर सके। हर एक राजा को अपने 'राजमण्डल' के विभिन्न राजाओं की विदेश नीति कैसी है, उनमें कितनी सामर्थ्य या असामर्थ्य है, उनके अधिकारी व प्रजा उनसे कितने सन्तुष्ट अथवा रूष्ट हैं, इत्यादि बातों पर सदा अपनी पैनी नजर रखना चाहिये। उन्हें आपस में इस तरह की सन्धि करनी चाहिये कि दो गुटों में परस्पर शक्ति सन्तुलन बना रहे; ताकि एक गुट दूसरे गुट पर आक्रमण न कर सके।

---

3. बलविशिष्टः....... प्रकाशयुद्धमुपेयात् विपर्यये कुटयुद्धम्। कौ0 अर्थ0 10/150–52/3 पृष्ठ 644

उपरोक्त 'मण्डल सिद्धान्त' के अन्तर्गत विजिगीषु को अपने सामर्थ्य और शक्ति के अनुरूप 'षाड्गुण्य नीति' (1. सन्धि, 2. विग्रह, 3. यान, 4. आसन, 5. संश्रय तथा 6. द्वैधीभाव) का प्रयोग करने की सलाह दी गई है। इस संबंध में आचार्य कौटिल्य का निर्देश है कि जब विजिगीषु राजा स्वयं को अपने शत्रु राजा से दुर्बल समझे तो उसे 'सन्धि' कर लेना चाहिये; जब वह स्वयं को अपने शत्रु राजा से सबल समझे तो उसे 'विग्रह', अथवा 'यान' गुण का आश्रय लेना चाहिये; अपना प्रतिकूल समय होने पर अनुकूल समय की प्रतीक्षा में बैठकर उसे 'आसन' गुण का आश्रय लेना चाहिये; जब कोई राजा अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो तथा वह अपने शत्रु को हानि नही पहुँचा सकता हो तो उसे किसी बलवान राजा का सहारा लेकर 'संश्रय' नामक गुण का आश्रय लेना चाहिये; तथा अपनी अभीष्ट पूर्ति के लिये जब एक राजा से सन्धि करने की और दूसरे राजा से युद्ध (विग्रह) करने की आवश्यकता हो तो उस समय उसे 'द्वैधीभाव' गुण का आश्रय लेना चाहिये। इस प्रकार कौटिल्य ने षाड्गुण्य सिद्धान्त द्वारा कूटनीति के विविध रूप दर्शाये हैं।

उपरोक्त छैः गुणों वाली 'षाड्गुण्य नीति' के सफल क्रियान्वयन हेतु आचार्य कौटिल्य ने उपाय चतुष्टय – 1. साम, 2. दान, 3. भेद, तथा 4. दण्ड के यथोचित प्रयोग हेतु निर्दिष्ट किया है। इस संबंध में उनका स्पष्ट मत है कि दुर्बल राजाओं को 'साम' और 'दान' उपाय द्वारा तथा सबल राजाओं को 'भेद' और 'दण्ड' उपाय द्वारा वश में करना चाहिये। इसके अतिरिक्त कूटनीतिक सफलता हेतु कौटिल्य ने 'दूत व्यवस्था' एवं 'गुप्तचर व्यवस्था' पर भी विशेष बल दिया है। इस संबंध में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि कौटिल्य के द्वारा जो तीन प्रकार के दूत – निःसृष्टार्थ, परिमितार्थ तथा शासनहार, निर्धारित किये गये हैं उनकी योग्यतायें अमात्य जैसे अति विशिष्ट पदों के बराबर ही निर्धारित की गई हैं। उनकी योग्यता का निर्धारण करते हुये कहा गया है कि जो इन अमात्य पद की समस्त अर्हतायें धारण करता है वह 'निःसृष्टार्थ दूत'; अमात्य पद की तीन–चौथाई अर्हतायें धारण करने वाला 'परिमितार्थ दूत'; तथा उसकी आधी अर्हता धारण करने वाला 'शासनहर दूत' होता है।[4]

---

4. अमात्यसम्पदोपेतो निसृष्टार्थः, पादगुणहीनः परिमितार्थः, अर्धगुणहीनः शासनहरः। कौ0 अर्थ0 1/11/15, पृष्ठ 49

इसी प्रकार गुप्तचर व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने हेतु आचार्य कौटिल्य ने विभिन्न वेषभूषाओं में कार्य करने वाले नौ प्रकार के गुप्तचर निर्दिष्ट किये है – 1. कापटिक, 2. उदास्थित, 3. गृहपतिक, 4. वैदेहक, 5. तापस, 6. सत्री, 7. तीक्ष्ण, 8. रसद, 9. भिक्षु। ये सभी गुप्तचर देश–विदेश की छोटी–बड़ी तथा अच्छी बुरी सूचनायें संग्रहीत करके उन्हें राज्य हित में निर्भीकतापूर्वक राजा तक पहुँचाते थे। इस प्रकार गुप्तचरों के माध्यम से राज्य की आन्तरिक तथा बाह्य गतिविधियों पर राजा की सदैव पैनी नजर रहती थी। राज्य में किसी प्रकार की कोई अवांछनीय गतिविधि होते ही वह तत्काल राजा के संज्ञान में आ जाती थी तथा यथासमय उसका प्रभावी शमन एवं दमन कर दिया जाता था।

हम देखते हैं कि आचार्य कौटिल्य की उपरोक्त दूरदर्शी कूटनीति हजारों वर्ष लम्बी अवधि बीतने के बाद वर्तमान युग में भी राज्य एवं अन्तर्राज्य स्तर पर किसी न किसी रूप में निःसंकोच रूप से प्रयुक्त हो रही है। 25 अगस्त 1945 को संयुक्त राष्ट्र–संघ की स्थापना इस उद्देश्य से हुई थी कि संसार के विभिन्न देशों को युद्ध जैसी विभीषिका से बचाया जा सकेगा। लेकिन जैसा कि सभी जानते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ का यह महान उद्देश्य पूरा नहीं हो सका। उसकी स्थापना के बाद विश्व के कई देशों के बीच हुये अनगिनत युद्ध आचार्य कौटिल्य की 'षाड्गुण्य नीति' के 'विग्रह' एवं 'यान' नामक गुणों की सम्पुष्टि करने के लिये पर्याप्त हैं। 'सन्धि' नामक गुण का प्रयोग तो प्रत्येक राष्ट्र–राज्य के द्वारा हो ही रहा है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में विश्व का ऐसा कोई देश नहीं है जिसे किसी दूसरे देश के साथ सन्धि करनी न पड़ी हो। वास्तविकता यह है कि आज विभिन्न देशों के बीच उत्तरोत्तर बढ़ती प्रतिस्पर्द्धा बड़ा सार्थक प्रतिफल दे रही है। इस प्रतिस्पर्द्धा में विश्व का प्रत्येक देश अपने पंसदीदा सहयोगी देशों के साथ विभिन्न समुचित लाभदायक सन्धि–समझौतों के जरिये अपना अधिकाधिक हित करने का प्रयास कर रहा है।

अपने अनुकूल समय की प्रतीक्षा में युद्ध न करके केवल चुपचाप बैठे रहने की 'आसन' नामक नीति का प्रयोग भी आज प्रायः सभी देशों के द्वारा किया जा रहा है। द्वितीय

विश्व युद्ध के दौरान भी मुख्य भूमिका निभाने वाले जर्मनी तथा इटली जैसे राष्ट्रों के द्वारा प्रथम विश्व युद्ध में अपनी पराजय के बाद कुछ समय तक चुपचाप बैठकर कौटिल्य की 'आसन' नीति का अनुसरण किया गया था। बाद में अपेक्षित शक्ति संचय करके उन्होंने द्वितीय विश्व युद्ध में कौटिल्य के 'विग्रह' एवं 'यान' गुणों का अनुगमन किया था। इसके अतिरिक्त शीत युद्ध के दौरान सारा विश्व जो दो गुटों में बँटा था उसके परिप्रेक्ष्य में आचार्य कौटिल्य की 'संश्रय' नामक कूटनीति का ही अनुसरण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। क्योंकि उस समय चीन सहित अधिकांश पश्चिमी यूरोपीय देशों ने सोवियत सैन्य खतरे को अनुभूत कर अमेरिका की शरण तथा रक्षाकवच धारण करने का प्रयत्न किया था। दूसरी ओर अन्य देशों को सोवियत रूस का आश्रय लेना पड़ा था। इसका परिणाम यह हुआ कि अमेरिका और सोवितय संघ के नेतृत्व वाले दो गठबन्धन एक दूसरे के खिलाफ हो गये।[5]

आचार्य कौटिल्य की 'द्वैधीभाव' नामक नीति का अनुसरण आज विश्व के अमेरिका जैसे विकसित, समर्थ एवं शक्तिशाली राष्ट्र कर रहे है। उदाहरणार्थ अभी कुछ समय पूर्व अमेरिका एक ओर इराक पर आक्रमण कर रहा था तो दूसरी ओर वह अपने पुराने मित्र–राष्ट्रों– जर्मनी तथा फ्रांस से इस युद्ध में सहयोग की अपेक्षा कर रहा धा तथा वहाँ अन्य देशों के अतिरिक्त सैन्य–दल भेजने का प्रयास कर रहा था।[6] अमेरिका की यह कार्यवाही आचार्य कौटिल्य की 'द्वैधीभाव' नीति का ही प्रतिरूप है।

इसी प्रकार कौटिलीय कूटनीति का 'मण्डल सिद्धान्त' वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भी प्रासंगिक बना हुआ है। शीत–युद्ध काल की विश्व राजनीति में तथा उसके परवर्ती काल में आचार्य कौटिल्य का 'मण्डल सिद्धान्त' किसी न किसी रूप में प्रतिबिम्बित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। शीतयुद्ध काल में दो विजिगीषु राष्ट्र थे – अमेरिका तथा सोवियत रूस। इन्हीं के नेतृत्व में अलग–अलग 'राजमण्डल' गठित हुये थे। भौगोलिक दृष्टि

---

5. के० सुब्रहमण्यम्, विश्व में शक्ति का नया संतुलन – दैनिक जागरण, झाँसी दि० 09–01–2006 में प्रकाशित
6. के० सुब्रहमण्यम्– मनमोहन सिंह की ठोस पहल, दैनक जागरण, झाँसी दि० 31–10–2005 में प्रकाशित

से अपने सीमावर्ती पड़ोसी राज्य को 'शत्रु राज्य' मानने का कौटिलीय सिद्धान्त विश्व राजनीति में आज भी चरितार्थ हो रहा है। कोई राज्य राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय मंचों से अपने पड़ौसी राज्यों के साथ सद्भाव एवं सौहार्द्रपूर्ण संबंध होने की कैसी भी, कितनी भी उद्घोषणाऐं एवं प्रतिबद्धतायें प्रकट करता रहे, किन्तु कटु सत्य यही है कि उनके अन्दरूनी प्राकृतिक द्वेषभाव कभी समाप्त नही हो सकते हैं। यह बात भारत के सभी सीमावर्ती पड़ौसी राज्यों—पाकिस्तान, अफगानिस्तान, चीन, नेपाल, भूटान, वर्मा तथा बांग्लादेश के यथार्थ आचरण एवं व्यवहार से स्वतः प्रमाणित है। वर्तमान कूटनीतिज्ञ इस बात से अत्यधिक चिन्तित है कि भारत के अन्य पड़ौसी राज्यों को तो जाने दीजिये, भूटान एवं बांग्लादेश जैसे पड़ौसी राज्य भी भारत के प्रति द्वेष एवं दुर्भावना से ग्रस्त है, जिनके जन्म और उद्भव में ही भारत का विशेष योगदान रहा है।[7]

केवल भारत और उसके पड़ौसी राज्य ही नहीं, अपितु विश्व के अन्य पड़ौसी राज्यों का द्वेषपूर्ण राजनीतिक इतिहास भी आचार्य कौटिल्य के उक्त मत की पुष्टि करता है। उदाहरणार्थ फ्रांस व जर्मनी, पोलैण्ड व रूस तथा चीन व जापान के बीच अतीतकाल में परस्पर द्वेष एवं शत्रुभाव रहना आचार्य कौटिल्य के उपरोक्त सिद्धान्त को ही परिपुष्ट करता है।[8] आचार्य कौटिल्य के 'मण्डल सिद्धान्त' के अनुसार शत्रु राज्य की सीमा से लगा हुआ अगला राज्य विजिगीषु राजा का मित्र होता है। इस मत का अनुसरण भी आधुनिक विश्व राजनीति में दृष्टिगोचर होता है। इंग्लैण्ड के द्वारा पोलैण्ड की स्वतंत्रता कायम रखने के लिये उसके साथ 1937 में की गई सन्धि आचार्य कौटिल्य के उपरोक्त मत का ही अनुसरण है।[9]

कुछ विचारकों के मतानुसार आधुनिक राजनीति में गुटनिरपेक्षता का अनुसरण करने वाले राज्यों को कौटिलीय 'राजमण्डल' का 'मध्यम' राज्य कहा जा सकता है। यद्यपि शीतयुद्ध के बाद प्रादुर्भूत वैश्वीकरण एवं भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में अब गुट निरपेक्षता के अस्तित्व पर ही राजनीतिवेत्ताओं द्वारा तरह—तरह के प्रश्न चिन्ह लगाये जाने लगे हैं।[10]

---

7. विनय कौडा, उपमहाद्वीप में भारतीय नेतृत्व, दैनिक जागरण, झाँसी दि0 28—02—05 में प्रकाशित लेख
8. प्रो0 अनंत सदाशिव अलतेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृष्ठ 230
9. उपरोक्त
10. के0 सुब्रहमण्यम्, गुजरे जमाने की गुटनिरपेक्ष नीति, दैनिक जागरण, झाँसी दि0 7—11—2005 में प्रकाशित निर्गुट आंदोलन की प्रासंगिकता, दैनिक जागरण झाँसी दि0 4—9—2005 में प्रकाशित

वर्तमान विश्व राजनीति में अमेरीका ही एकमात्र ऐसा राज्य है जिसे 'उदासीन' राज्य कहा जा सकता है जो एक मण्डल के सभी राज्यों को एक साथ अनुग्रह या विग्रह करने में समर्थ है। वास्तव में ऐसे उदासीन राज्यों की संख्या का कम होना ही स्वभाविक है जो आज सम्पूर्ण विश्व राज व्यवस्था का नियामक बना बैठा है।

राजदूत एवं गुप्तचर व्यवस्था भी कौटिलीय कूटनीति का एक अभिन्न अंग थी। जैसा कि पूर्व में इंगित किया जा चुका है कि वर्तमान में भारत की राजदूत व्यवस्था तो संतोषजनक कही जा सकती है। लेकिन गुप्तचर व्यवस्था हमारी आन्तरिक एवं बाह्य चुनौतियों तथा संकटों का शमन/दमन करने में अक्षम सावित हो रही है। यह एक राष्ट्रीय चिन्ता का विषय है कि देश में राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के हिंसक एवं मर्मान्तिक वीभत्स काण्ड प्रायः होते रहते हैं और ऐसे प्रत्येक काण्ड के बाद हमारे देश के शीर्षस्थ नेता उसकी पुनरावृत्ति रोकने हेतु भारतीय गुप्तचर व्यवस्था को चुस्त-दुरूस्त एवं चाक चौबन्द करने की प्रतिबद्धता जताते हैं।[11] लेकिन उसका क्रियान्वयन जनता जनार्दन के लिये आज तक प्रतीक्षारत ही है। इसलिये राष्ट्रहित में यह नितान्त आवश्यक है कि आचार्य कौटिल्य के दिशा निर्देशों के अनुरूप देश की गुप्तचर व्यवस्था को विकसित एवं सुदृढ़ किया जाये। क्योंकि प्रभावशाली शासन की विश्वसनीयता केवल घोषणाओं और उपदेशों से नहीं, बल्कि साहसिक कार्यवाही से ही उत्पन्न होती है।

(ख) कौटिल्य एवं मैकियावली

विचारधारा एवं कार्यपद्धति की दृष्टि से प्राचीन भारतीय चिन्तक कौटिल्य की तुलना पाश्चात्य विचारक मैकियावली से की जाती है। शासनकला और कूटनीति के क्षेत्र में दोनों विद्वानों का अपने-अपने देश में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व-राजनीति में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। कौटिल्य का ख्यातिलब्ध प्राचीन ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' तथा मैकियावली का महान आधुनिक ग्रन्थ 'दि प्रिंस' प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक भारत तक के शासकों,

---

11. मुम्बई बम विस्फोटों के बाद प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह का दि0 17-7-2006 के समाचार पत्रों में प्रकाशित वक्तव्य दृष्टव्य है।
के0 सुब्रहमण्यम्, आतंकवाद से खोखली लड़ाई, दैनिक जागरण झाँसी दि0 11-9-06 में प्रकाशित लेख।

राजनीतिज्ञों तथा सैन्य वैज्ञानिकों के लिये मार्गदर्शक ग्रन्थ रहे हैं। दोनों चिन्तकों ने शासकों को ऐसा मार्गदर्शन किया है जिसके द्वारा राज्य को सुदृढ़ बनाया जा सके और उसका विस्तार भी किया जा सके। कौटिल्य और मैकियावली शासन कला और कूटनीति के पारंगत विद्वान हैं और दोनों ने इस संबंध में लौकिक तथा व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया है। मैकियावली के समान ही कौटिल्य ने राजाओं के राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवहार के विविध विधि–विधानों का प्रतिपादन किया है। यही कारण है कि कुछ विचारक कौटिल्य को 'प्राचीन भारत का मैकियावली' कहते हैं तो कुछ उसे 'मैकियावली का अग्रदूत' कहते है।[12] दूसरी ओर कुछ विद्वान मैकियावली को 'इटली का चाणक्य' कहते हैं।[13] 'अर्थशास्त्र' तथा 'दि प्रिंस' के अध्ययन से जहाँ कौटिल्य तथा मैकियावली के राजनीतिक विचारों में अनेकानेक समानताओं का संज्ञान होता है, वहीं पाठकों को उनके अनगिनत वैचारिक मतभेद/असमानतायें भी परिलक्षित होते हैं। अतः यहाँ पर उक्त दोनों चिन्तकों की प्रमुख वैचारिक समानताओं एवं विषमताओं का उल्लेख आवश्यक है।

यद्यपि कौटिल्य भारत का तथा मैकियावली इटली का निवासी था और दोनों के कार्यकाल में लगभग 1400 वर्षों का विराट अन्तर था। फिर भी दोनों के विचार एवं समस्या–निवारण के उपाय प्रायः एक जैसे हैं।

वैचारिक समानता

1. आचार्य कौटिल्य तथा मैकियावली दोनों राजनीतिक चिन्तकों ने राजनीति तथा कूटनीति संबंधी अपने मत का प्रतिपादन करते समय लौकिक, व्यावहारिक एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है।
2. दोनों विचारकों का मानवीय स्वभाव के संबंध में समान मत है। दोनों के अनुसार मानव स्वार्थी एवं लोभी प्रकृति का होता है। उसमें विवेक की अपेक्षा भावना की प्रबलता होती है। इसलिये राजा को मानवीय भावनायें राज्य हित में मोड़ने के लिये सदैव प्रयत्नशील होना चाहिये।

---

12. डा0 लल्लनजी सिंह, कौटिल्य का युद्ध दर्शन, पृष्ठ 229
13. डा0 पुखराज जैन, राजनीतिक चिन्तन का इतिहास, पृष्ठ 189

3. राज्य की उत्पत्ति के संबंध में दोनों विचारकों का समान मत है। उनके अनुसार राज्य का उद्भव मानवीय असुरक्षा को दूर करने के लिये समझौता के उपरान्त हुआ है।

4. दोनों विचारकों का इस संबंध में एक मत है कि राज्य में सुख, शान्ति, सुरक्षा एवं सुव्यवस्था के लिये दण्ड (शक्ति) का प्रयोग अत्यावश्यक है।

5. दोनों ही विचारक साम्राज्यवाद के समर्थक रहे है। क्योंकि दोनों ही येन केन प्रकारेण राज्य के सीमा–विस्तार को जायज ठहराते हैं।[14]

6. दोनों विचारकों ने साम्राज्य विस्तार के लिये युद्ध को अनिवार्य माना। दोनों ही शक्ति के पुजारी थे और उनका मत था कि यदि कोई राजा अपने शक्तिशाली शत्रु से पराजित हो जाये तो समय आने पर उसे पुनः शत्रु पर आक्रमण कर देना चाहिये। दोनों में से किसी ने युद्ध को त्याज्य नहीं माना है।

7. दोनों ही विचारक गुप्तचरों पर बड़ा विश्वास करते थे और उनके एक प्रबल संगठन के पक्ष में थे। आन्तरिक शान्ति एवं सुरक्षा के लिये तथा बाह्य आक्रमण से शत्रु को रोकने के लिये वे गुप्तचरों को राजा का महान सहायक मानते थे।

8. दोनों विचारकों ने धर्म एवं नैतिकता को विशेष महत्व नहीं दिया है। इन दोनों की मान्यता है कि राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये सभी प्रकार के साधन उचित होते हैं। दोनों ही राजनीति में नैतिकता का बन्धन अनिवार्य नहीं मानते। उनकी मान्यता है कि राजा को दयालु एवं प्रजावत्सल होते हुये भी इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिये कि कोई उसकी उदारता, दयालुता और क्षमाशीलता का अनुचित लाभ न उठाने पाये। आवश्यकता पड़ने पर उसे क्रूरता, अनैतिकता, छल, कपट तथा विश्वासघात आदि सभी का प्रयोग करना चाहिये।

9. दोनों विचारकों का मत है कि राजा का व्यक्तित्व दोहरा होना चाहिये। उसे केवल सज्जनता की प्रतिमूर्ति बनकर नहीं बैठना चाहिये, बल्कि दुष्टों के साथ दुष्टता तथा

---

14. अशोक कुमार, राजनीति विज्ञान, पृष्ठ 17ए, 18 ए

चालाक लोगों के साथ चालाकी बरतने में उसे कोई संकोच नहीं करना चाहिये। इस संबंध में आचार्य कौटिल्य की 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' वाली उक्ति तथा मैकियावली की यह उक्ति कि राजा में एक शेर की शूरता तथा लोमड़ी की चतुराई दोनों होना चाहिये, विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[15]

10. कौटिल्य और मैकियावली दोनों सुदृढ़ राष्ट्र राज्य के समर्थक थे। दोनों ही अपने–अपने देश–क्रमशः भारत और इटली को एक सशक्त, सुरक्षित एवं सुदृढ़ राष्ट्र–राज्य के रूप में देखना चाहते थे।

11. दोनों ही चिन्तकों ने अपने जो सैद्धान्तिक मत प्रतिपादित किये हैं, महत्वपूर्ण राजनीतिक पदों पर रहकर उन्होंने अपने उन सिद्धान्तों को व्यावहारिक स्वरूप भी प्रदान किया है। उदाहरणार्थ आचार्य कौटिल्य सम्राट चन्द्रगुप्त के महामंत्री तथा मैकियावली इटली के प्रधान सचिव एवं अनेक यूरोपीय देशों के राजदूत जैसे महत्वपूर्ण पदों पर कार्यरत रहते हुये अपने राजनीतिक सिद्धान्तों का सफल प्रयोग करते रहे हैं।[16]

12. दोनों ही विचारकों की मान्यता है कि साम्राज्य को स्थापित करने के बाद पराधीन देश के लोगों के कल्याण हेतु राजा को प्रयत्नशील रहना चाहिये और वहाँ के लोगों के धार्मिक एवं सामाजिक मूल्यों–मान्यताओं में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये; बशर्ते ऐसा करने में उसकी स्वयं की राजनीतिक हानि न हो।

13. कौटिल्य और मैकियावली दोनों ही इतिहास के अध्ययन पर समान बल देते हैं। वे इतिहास को केवल वर्तमान बुराइयों का कारण खोजने के लिये ही उपयोगी नहीं मानते; वरन उसमें इन बुराइयों के निराकरण–उपाय भी खोजे जा सकते हैं। इसी दृष्टिकोण से जहाँ कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में स्थान–स्थान पर प्राचीन

---

15. डा० लल्लनजी सिंह, कौटिल्य का युद्ध दर्शन, पृष्ठ 229–30
One must be fox to recognise traps and a lion to frighten wolves.
The Prince-Machiavelli, Ch- 18
(डा० पुखराज जैन, राजनीतिक चिन्तन का इतिहास, पृष्ठ 194 से उद्घृत)
16. अशोक कुमार, राजनीति विज्ञान, पृष्ठ 18ए

ऐतिहासिक राजाओं का महत्वपूर्ण उल्लेख किया है, वहीं मैकियावली ने 'दि प्रिंस' में अपने सिद्धान्तों की पुष्टि रोम के प्राचीन इतिहास से की है।[17]

14. दोनों ही चिन्तकों ने राजा को वित्तीय प्रशासन में व्यावहारिक और न्यायसंगत नीति अपनाने हेतु निर्दिष्ट किया है। कौटिल्य प्रजाजनों से उनकी क्षमता और आर्थिक स्थिति के अनुकूल ही कर निर्धारित करने की व्यावहारिक सलाह देता है तथा केवल आपात स्थितियों को छोड़कर वह अधिक करों के संग्रह के पक्ष में नहीं है। इसी प्रकार मैकियावली ने भी राजा को अधिक कर नहीं वसूलने का परामर्श दिया है। दोनों की यह मान्यता है कि अधिक कर वसूली से प्रजाजनों में असन्तोष और विद्रोह की भावना उत्पन्न हो सकती है। इस संबंध में मैकियावली का यह कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि 'कोई व्यक्ति अपने पिता की हत्या को तो एक बार भूल सकता है लेकिन राजा द्वारा अपनी सम्पत्ति के अपहरण (अधिक कर ग्रहण) को वह कभी नहीं भूल सकता।[18]

15. विदेश नीति के संबंध में भी कौटिल्य और मैकियावली के बीच समानता के कुछ बिन्दु मिलते हैं। दोनों की मान्यता है कि पड़ौसी राज्य प्रायः शत्रु होते हैं; इसलिये उन्होंने पड़ौसी राज्यों को दुर्बल बनाने के लिये तथा उनका दमन करने के लिये राजा को सदैव सचेष्ट रहने हेतु निर्दिष्ट किया है। इतना ही नही, पड़ौसी राज्यों की उन्नति को वे सदैव सन्देह की दृष्टि से देखते हैं।[19]

वैचारिक विषमता

1. मैकियावली का विचार–दर्शन केवल राजनीति से ही संबंधित है; जबकि कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' का अध्ययन–क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत है। उन्होंने 'अर्थशास्त्र' के अन्तर्गत राजनीति के साथ–साथ ज्ञान–विज्ञान के अन्य विषयों जैसे–अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, सैन्य–विज्ञान, कामशास्त्र और मन्त्र–शास्त्र आदि को भी समाविष्ट किया है।

---

17. डा0 ए0 अवस्थी एवं डा0 आर0 के0 अवस्थी, मारंतीय राजनीतिक चिन्तन, पृष्ठ 93
डा0 बी0 एल0 फड़िया, भारती राजनीतिक चिन्तन, पृष्ठ 75
18. The Prince- Machiavelli, Chap. I. p. 62
(डा0 मणिशंकर प्रसाद, कौटिल्य के राजनीतिक एवं सामाजिक विचार, पृष्ठ 185 से उदघृत)
19. डा0 मणिशंकर प्रसाद, कौटिल्य के राजनीतिक एवं सामाजिक विचार, पृष्ठ 186

2. कौटिल्य ने राजनीति को धर्म और नैतिकता से पूर्णतया पृथक नहीं किया। उन्होंने राजनीति में व्यक्तिगत नैतिकता को पर्याप्त महत्व दिया है; जबकि मैकियावली ने व्यक्तिगत नैतिकता को कोई महत्व नहीं दिया।[20]

3. मैकियावली के दर्शन का मूलभूत उद्देश्य राज्य की सुरक्षा के सिद्धान्त का प्रतिपादन करना था; जबकि कौटिल्य का उद्देश्य एक व्यापक व सुदृढ़ राज्य तथा उसकी सुचारू शासन–व्यवस्था का प्रतिपादन करना था।[21]

4. कौटिल्य अपनी रचना 'अर्थशास्त्र' में कानून के संबंध में स्पष्ट एवं विस्तृत विवरण देता है; जबकि मैकियावली अपनी रचनाओं में कानून संबंधी विचारों का उतना स्पष्ट एवं विस्तृत प्रतिपादन नहीं करता है।[22]

5. कौटिल्य अपने 'अर्थशास्त्र' में सिर्फ राजतंत्र का वर्णन एवं समर्थन करता है जबकि मैकियावली अपनी रचनाओं में राजतंत्र का वर्णन और समर्थन तो करता ही है, साथ ही साथ वह गणतंत्रीय शासन प्रणाली को राजतंत्र से भी श्रेठ मानता है, बशर्ते उस राज्य के नागरिक सदाचारी, ईमानदार एवं देशभक्त हों।[23]

6. कौटिल्य प्रशासन, कूटनीति एवं युद्ध के बारे में जितनी स्पष्टता एवं विशदता के साथ लिखता है, उक्त विषयों पर वैसी स्पष्टता एवं विशदता मैकियावली की रचनाओं में उपलब्ध नहीं होती।[24]

7. कौटिल्य एक अनुशासित सामाजिक व्यवस्था की संभावना की कल्पना करता है; जबकि मैकियावली केवल दाण्डिक शक्ति के प्रयोग द्वारा प्रजा के व्यवहार को नियंत्रित करने की परिकल्पना करता है।[25]

8. राज्य के कार्यों के विषय में मैकियावली की व्याख्यायें कौटिलीय राज्य के लोककल्याणकारी स्वरूप से मेल नहीं खाती हैं।[26]

---

20. डा0 मणिशंकर प्रसाद, कौटिल्य के राजनीतिक एवं सामाजिक विचार, पृष्ठ 184
21. डा0 बी0 एल0 फडिया, भारतीय राजनीतिक चिन्तन, पृष्ठ 75
22. अशोक कुमार, राजनीतिविज्ञान, पृष्ठ 18 ए,
23. ओ0 पी0 गावा, राजनीति–चिन्तन की रूपरेखा, पृष्ठ 95–96
24. अशोक कुमार, राजनीति विज्ञान (द्वितीय प्रश्न पत्र), पृष्ठ 18 ए,
25. Prof. R. K.'Choudhary, Kautilya's Political Ideas & Instituions, p. 385
26. डा0 मंजुलता शर्मा, कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राज्यदर्शन, पृष्ठ 66

9. शासकीय शक्ति पर कौटिल्य द्वारा प्रतिस्थापित नियन्त्रणों की परिधि व्यापक है, तथा इसमें अनेक प्रकार के नियन्त्रण जैसे – नैतिक, सैद्धान्तिक, संस्थागत तथा प्रक्रियात्मक नियंत्रण आदि सम्मिलित हैं। लेकिन मैकियावली ने राज्य–शासन पर किन्ही संस्थागत और प्रक्रियात्मक नियंत्रणों की आवश्यकता प्रतिपादित नहीं की।[27]

10. युद्ध के विषय में कौटिल्य तथा मैकियावली की धारणाओं में पर्याप्त वैषम्य है। कौटिल्य ने 'प्रकाश युद्ध' (धर्मयुद्ध) में युद्ध जैसी शत्रुतापूर्ण गतिविधि को अमर्यादित रीति से संचालित करने का निषेध किया है। उसने युद्धरत पक्षों के आचरण को नियंत्रित करने हेतु एक 'आचार संहिता' का सृजन किया है। जिसके नियमों का उल्लंघन करना निषिद्ध था। लेकिन मैकियावली युद्धरत पक्षों के आचरण–नियमों के विषय में प्रायः मौन है। उसके अनुसार युद्ध में किसी शासक के लिये शत्रु पक्ष के प्रति किसी मानवीय या मर्यादित व्यवहार प्रदर्शित करने की अपेक्षा येन केन प्रकारेण विजय प्राप्त करना अधिक महत्वपूर्ण है।[28]

11. मैकियावली का दृष्टिकोण आधुनिक था, जबकि प्राचीन चिन्तक होने के कारण आचार्य कौटिल्य आधुनिकता से अनभिज्ञ था।

12. आचार्य कौटिल्य यथार्थवादी होने के साथ–साथ एक सीमा तक परम्परावादी चिन्तक भी था। उसने अपने चिन्तन में वर्णाश्रम व्यवस्था जैसी प्राचीन परम्परा को कायम रखने पर बल दिया है जबकि मैकियावली का चिन्तन नितान्त परिवर्तनवादी तथा वैज्ञानिक आधार वाला था।

13. कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' की रचना तब की जब वह अपने उद्देश्य में सफल हो चुका था तथा भारत में एक केन्द्रीकृत राज्य की स्थापना कर चुका था। उसने 'अर्थशास्त्र' का अनुसरण कर अपने देश को उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचाया था।

---

27. डा0 मंजुलता शर्मा, कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राज्यदर्शन, पृष्ठ 67
28. उपरोक्त, पृष्ठ 136–37

इस प्रकार वह अपने जीवन में एक सफल राजनीतिज्ञ सिद्ध हुआ। इसके विपरीत मैकियावली अपने लक्ष्य में सफल नहीं हो सका। उसने अपना ग्रन्थ 'दि प्रिंस' तब लिखा जब वह निराश हो चुका था तथा राजनीतिक जीवन से निष्कासित हो चुका था। इस प्रकार वह अपने जीवन में एक असफल कूटनीतिज्ञ सिद्ध हुआ।[29]

(ग) कौटिल्य के राजनीतिक व्यक्तित्व में आदर्शवाद एवं यथार्थवाद का समन्वय

कौटिलीय अर्थशास्त्र के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उसमें अन्य पूर्ववर्ती धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों की भाँति केवल ऐसे नियम एवं सिद्धान्त नही है जो पूर्णतया सैद्धान्तिक हो तथा हमारे जीवन की यथार्थ आवश्यकताओं से उनका कोई सम्बन्ध न हो। बल्कि उसमें युग–युगान्तर तक राजनयिकों तथा प्रशासन-तंत्र के अनुकरण एवं अनुसरण हेतु महत्वपूर्ण दिशानिर्देश हैं। मनुस्मृति तथा अन्य धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ हमें सभी पारम्परिक आदर्शों का अनुपालन करने हेतु निर्दिष्ट करते हैं। किन्तु 'अर्थशास्त्र' इन आदर्शों की अधिक परवाह न करता हुआ विजिगीषु राजा के लिये विजय प्राप्ति, शत्रु–दमन तथा साम्राज्य विस्तार हेतु छल–छद्म तथा कपट आदि उपायों के प्रयोग की निःसंकोच अनुमति देता है। इस दृष्टि से जहाँ उसने पूर्ववर्ती आचार्यों के विवेक सम्मत सिद्धान्तों का अनुसरण किया है; वहीं प्रजा, राज्य एवं विजिगीषु के हित में आवश्यकता होने पर उन सिद्धान्तों का खण्डन कर अपने नवीन व्यावहारिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी किया है। यह उसके यथार्थवादी एवं स्वतंत्र राजनीतिक चिन्तक होने का जीवन्त प्रमाण है।

वर्णाश्रम धर्म के सम्बन्ध में आचार्य कौटिल्य ने प्रथम तीन वर्णों–ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य, का धर्म–निर्धारण करते समय अपना आदर्शवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया हैं; तथा उनके लिये प्राचीन एवं पारम्परिक धर्म ही निर्धारित किया है।[30] किन्तु अन्तिम वर्ण 'शूद्र' के धर्म–निर्धारण में उन्होंने यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है। 'द्विज सेवा' के अतिरिक्त कृषि, पशुपालन, व्यापार, शिल्पकारी तथा गायन–वादन आदि कलाकारी के कार्य करना 'शूद्र' वर्ण

29. डा० ए० पी० अवस्थी, भारतीय राजनीतिक विचारक, पृष्ठ 70
30. स्वधर्मो ब्राह्मणस्य. . . . . . कृषिपशुपाल्ये वाणिज्या च। कौ० अर्थ० 1/1/2, पृष्ठ 10

का धर्म निर्धारित किया गया है।[31] इस सम्बन्ध में आधुनिक समीक्षकों का यह निष्कर्ष उचित ही प्रतीत होता है कि आचार्य कौटिल्य द्वारा किया गया यह एक बहुत बड़ा सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन था। किन्तु उन्होंने यह युगान्तकारी परिवर्तन किसी अतिवादिता का रंग चढाये बिना, किसी विशेष शोर–शराबे के बिना ही कर डाला, तथा एक बहुत बड़े सुधार की यह सुदृढ़ नींव उन्होंने बिल्कुल चुपके से रख दी।[32] व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में उन्होंने प्रत्येक प्रकार के अतिवाद का निराकरण करते हुये मध्यम मार्ग अपनाने हेतु निर्दिष्ट किया है। इसलिये न केवल राजाओं को, बल्कि जन सामान्य को भी उन्होंने यह व्यावहारिक परामर्श दिया है कि न तो उन्हें सुखरहित नीरस जीवन बिताना चाहिये और न धन–दौलत में लिप्त होकर 'काम' का ही अति सेवन करना चाहिये। बल्कि उन्हें परस्पर अनुवद्ध धर्म, अर्थ और काम, इस त्रिवर्ग का सन्तुलित उपयोग करना चाहिये। क्योंकि उनका असन्तुलित उपभोग बड़ा दुःखदायी और अनिष्टकारी होता है।[33]

दूसरी ओर वर्तमान युग की अर्थ–प्रधानता के यथार्थ का पूर्वाभास भी आचार्य कौटिल्य को आज से दो–ढाई हजार वर्ष पूर्व हो चुका था। इसीलिये उसने उद्घोष किया था कि धर्म, अर्थ और काम–इस त्रिवर्ग में अर्थ ही प्रधान होता है; धर्म और काम तो अर्थ के आश्रित रहने वाले हैं।[34] सभी वर्णों एवं आश्रमों का आदर्शवादी पारम्परिक धर्म–निर्धारण करने के बाद आचार्य कौटिल्य ने अपना यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रदर्शित करते हुये उन सभी के लिये अहिंसा, सत्यता, पवित्रता, अद्वेषभाव, उदारता तथा क्षमा आदि उच्च गुणों को अपरिहार्य मानव–धर्म के रूप में निर्धारित किया है।[35] प्राचीन भारतीय राजदर्शन में राजा, मंत्री तथा उच्च प्रशासनिक अधिकारी आदि के लिये पर्याप्त विधि–विधानों के निर्धारण का आदर्श तो रहा है; किन्तु 'दास' तथा 'श्रमिक' जैसे निम्न वर्ग के लिये अभीष्ट प्राविधानों के यथार्थ का वहाँ

31. शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा वार्ता कारुकुशीलवकर्म च। कौ० अर्थ० 1/1/2, पृष्ठ 10
32. आचार्य दीपंकर, कौटल्यकालीन भारत, भूमिका पृष्ठ XXXVII
33. धर्मार्थाविरोधेन कामं. . . . . च पीडयति। कौ० अर्थ० 1/3/6 पृष्ठ 18
34. अर्थ एवं प्रधान इति कौटिल्यः, अर्थमूलौ हि धर्मकामाविति। उपरोक्त पृष्ठ 19
35. सर्वेषामहिंसा सत्यं शौचमनसूयाऽनृशंस्यं क्षमा च। कौ० अर्थ० 1/1/2, पृष्ठ 11

सर्वथा अभाव है। इस अभाव की सम्पूर्ति करते हुये आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में पूरे के पूरे दो अध्याय स्वतंत्र रूप से केवल 'दास' तथा 'श्रमिक' संबंधी विधि–विधानों के लिये ही निर्धारित किये है।[36] कौटिल्य सेना में शूद्र वर्ण की भर्ती का भी समर्थन करता है। इससे सिद्ध होता है कि एक यथार्थवादी चिन्तक के रूप में आचार्य कौटिल्य 'दास', 'श्रमिक' तथा भृत्य वर्ग के हित–संरक्षण के प्रति कितना सजग था।

राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत आचार्य कौटिल्य ने राजा को सर्वाधिक अधिकार देते हुये जहाँ प्राचीन परम्परा एवं आदर्श का निर्वाह किया है, वहीं उसने राजा को अनेक प्रकार के दायित्वों तथा नियमों–उपनियमों द्वारा नियंत्रित एवं अनुशासित रखकर अपना यथार्थवादी दृष्टिकोण भी परिपुष्ट किया है। उदाहरणार्थ राजा की मर्यादा को वह स्वयं नहीं अपितु उसके गुरूजन एवं अमात्यगण निर्धारित करते थे। उन्हें राजा को अनिष्टकारी कार्यों से रोकने का अधिकार भी था।[37] इस संबंध में आचार्य कौटिल्य ने एक व्यावहारिक 'प्रशासनिक आचार संहिता' प्रस्तुत की है। जिसके अन्तर्गत प्रत्येक कार्यार्थी को बेरोकटोक राजदरबार में प्रवेश करने की व्यवस्था थी।[38] आवश्यक तथा अपरिहार्य राज्यकार्य आ पड़ने पर राजा को तत्काल मंत्रियों तथा मन्त्रि परिषद की बैठक बुलाना पड़ती थीं। उस बैठक में उसे अपने मन्त्रियों के बहुमत वाले अथवा यथाशीघ्र कार्य सिद्ध करने वाले परामर्श के अनुसार ही निर्णय लेना पड़ता था।[39] राजा को उन मामलों की सुनवाई पहले करना पड़ती थी जिनकी मियाद समाप्त हो रही हो। ऐसे मामलों में राजा अधिक विलम्ब नहीं कर सकता था। क्योंकि राजा यह जानता था कि किसी भी प्रकरण की मियाद समाप्त हो जाने पर या तो वह कष्ट साध्य हो जाता है अथवा असाध्य हो जाता है।[40] कौटिल्य के यथार्थवादी चिन्तन में राजा–महाराजाओं की सुख–सुविधाओं पर उतना ध्यान नहीं दिया गया है जितना प्रजा की

---

36. 'दासकर्मकरकल्पम' नामक अध्याय, कौ0 अर्थ0 3/69/13, पृष्ठ 311–15
'कर्मकर कल्पः, सम्भूयसमुत्थानम' नामक अध्याय, कौ0 अर्थ0 3/70/14, पृष्ठ 316–19
37. मर्यादां स्थापयेद. . . . . .एनमपायस्थानेभ्यः वारयेयुः। कौ0 अर्थ0 1/3/6, पृष्ठ 19
38. उपस्थानगतः कार्यार्थिनामद्वारासङ्गं कारयेत्। कौ0 अर्थ0 1/14/18, पृष्ठ 63
39. आत्ययिके कार्ये. . . . . . .वा ब्रूयुस्तत् कुर्यात्। कौ0 अर्थ0 1/10/14, पृष्ठ 47
40. सर्वमात्ययिकं कार्यं. . . . . . अतिक्रान्तमसाध्यं वा विजायते। कौ0 अर्थ0 1/14/18 पृष्ठ 63

सुख–सुविधाओं पर दिया गया है। उसका स्पष्ट कथन है कि 'प्रजा के सुख में ही राजा का सुख तथा प्रजा के हित में ही राजा का हित है। स्वयं को अच्छे लगने वाले कार्य करने में राजा का हित नहीं; अपितु उसका हित तो प्रजा को अच्छे लगने वाले कार्य करने में है।[41] यही कारण है कि कौटिलीय अर्थशास्त्र में राजा की जो दिनचर्या निर्धारित की गई है उसमें राजा को दिन में सोने तथा विश्राम करने का कहीं कोई प्राविधान नही है। केवल रात में ही लगभग 4–5 घण्टे सोने का प्राविधान किया गया है। उसकी व्यस्ततम दिनचर्या के शेष 19–20 घाटे केवल राज्य–हित तथा प्रजा–हित के चिन्तन एवं क्रियान्वयन में ही बीतते थे।[42]

इसके अतिरिक्त आचार्य कौटिल्य के द्वारा तीन प्रकार के राजाओं–धर्मविजयी, लोभविजयी तथा असुरविजयी,[43] का प्राविधान किया जाना उसके राजनयिक व्यक्तित्व में आदर्शवाद एवं यथार्थवाद के समन्वय को प्रतिध्वनित करता है। आचार्य कौटिल्य में एक ओर धर्म परायणता का आदर्श है[44] तो दूसरी ओर प्रजा–परायणता का यथार्थ भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।[45] कौटिल्य अकेला एवं प्रथम एक ऐसा प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तक है जिसने अपने राजदर्शन को धर्म से अलग करने का साहस दिखाया है। वह पूरे 'अर्थशास्त्र' में राज्य की नीतियों एवं कार्यों का विश्लेषण तथा मूल्यांकन कहीं भी शुद्ध धार्मिक दृष्टिकोण से नहीं करता है। वास्तव में उसकी रचना 'अर्थशास्त्र' राजनीति से धर्म का आवरण हटाने का एक साहसिक प्रयास है। उसका राजनीतिक चिन्तन केवल धार्मिक मान्यताओं तथा पुरातन परम्पराओं के आदर्श पर आधारित नहीं है, अपितु तर्क और विवेक के यथार्थ पर आधारित है। दूसरे शब्दों में आचार्य कौटिल्य ने अपनी मेधा एवं तर्कशक्ति की कुञ्जी से व्यावहारिक राजदर्शन रूपी महान कोषागार के बन्द द्वार खोलने का स्तुत्य प्रयास किया है।

आचार्य कौटिल्य ने जहाँ एक ओर राज्य कर्मचारियों और अधिकारियों में योग्यता तथा सत्यनिष्ठा आदि गुणों के आदर्श की अपेक्षा की है; वही दूसरी ओर उनके अन्दर

---

41. प्रजासुखे सुखं . . . . तु प्रियं हितम्। कौ० अर्थ० 1/14/18, पृष्ठ 64
42. तत्र पूर्वे दिवसस्य. . . . . . .प्रदक्षिणीकृत्योपस्थानं गच्छेत्। उपरोक्त, पृष्ठ 61–62
43. त्रयोऽभियोक्तारो धर्मलोभासुरविजयिन इति. . . . . .प्रतिकुर्वीत। कौ० अर्थ० 12/162/1, पृष्ठ 680
44. स्वधर्मः स्वर्गाय. . . . . . .प्रसीदति न सीदति। कौ० अर्थ० 1/1/2, पृष्ठ 11
45. विद्याविनीतो राजा हि. . . . . . .सर्वभूतहिते रतः। कौ० अर्थ० 1/2/4, पृष्ठ 15

स्वाभाविक रूप से विद्यमान रिश्वतखोरी एवं भ्रष्टाचारी जैसी दुष्प्रवृत्तियों का यथार्थ भी उजागर किया है। तभी तो वह कहता है कि 'जैसे जीभ पर रखे हुये मधु अथवा विष का स्वाद लिये बिना नहीं रहा जा सकता, उसी प्रकार राज्य कार्यों में नियुक्त व्यक्ति धन का थोड़ा भी स्वाद न लें, यह सम्भव नहीं हो सकता है।[46] जैसे पानी में रहने वाली मछलियाँ कभी पानी–पीती हुई दिखायी नहीं देती, उसी प्रकार राज्य कार्यों में नियुक्त कर्मचारी भी धन का अपहरण करते हुये नही जाने जा सकते हैं लेकिन करते अवश्य हैं। आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की गतिविधि का तो पता लगाया जा सकता है किन्तु धन का अपहरण करने वाले कर्मचारियों की गतिविधि से पार पाना कठिन है।[47] कौटिल्य स्वयं को भाग्यवादी नहीं अपितु कर्मवादी एवं यथार्थवादी प्रदर्शित करते हुये लिखता है कि 'कार्यारम्भ करते समय जो व्यक्ति नक्षत्र, तिथि, लगन तथा मुहूर्त आदि को अधिक पूछता है वह मूर्ख धन आदि अभीष्ट को कभी प्राप्त नहीं कर सकता है। क्योंकि धन का नक्षत्र तो धन आदि संसाधन ही होते हैं, उसमें ये तारे और गृह नक्षत्र आदि क्या करेंगे ? अर्थ–संसाधनों से ही अर्थ उसी प्रकार हस्तगत होता है, जैसे हाथी को हाथी के माध्यम से ही बाँधा (पकड़ा) जाता है। इसलिये अर्थ–संसाधनों से हीन व्यक्ति सैकड़ों यत्न करने पर भी अभीष्ट अर्थ को कभी प्राप्त नहीं कर सकता।[48]

आचार्य कौटिल्य ने यथार्थवादी एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण के साथ शस्त्र विद्या का पुनरूद्धार किया था। क्योंकि यह उस काल की समयोचित माँग थी। इतिहास साक्षी है कि कौटिल्य के पूर्व शस्त्रास्त्रों की कितनी गम्भीर उपेक्षा हुई थी। सर्वप्रथम वैदिक कर्मकाण्ड तथा यज्ञानुठानों की बहुलता ने शस्त्रास्त्रों को चिरकाल तक उपेक्षित रखा। उसके बाद बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म के 'अहिंसा' सिद्धान्त ने उनमें जंग लगाने का काम किया। इस विकृति से चिन्तित होकर आचार्य कौटिल्य ने राज्य–हित में सैन्य शक्ति को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से चिरकाल के बाद, शस्त्रास्त्रों का पुनरूद्धार किया था।[49] लेकिन सैन्य शक्ति को

---

46. यथा ह्यनास्वादयितुं. . . . . . स्वल्पोऽप्यनास्वादयितुं न शक्यः। कौ० अर्थ० 2/25/9, पृष्ठ 117
47. मत्स्या यथान्तः सलिले. . . . . . .युक्तानां चरतां गतिः। कौ० अर्थ० 2/25/9, पृष्ठ 117
48. नक्षत्रमतिपृच्छन्तं. . . . . . . .गजाः प्रतिगजैरिव। कौ० अर्थ० 9/142/4, पृष्ठ 612
49. येन शास्त्रं च शस्त्रं च. . . . . . तेन शास्त्रमिदं कृतम्। कौ० अर्थ० 15/180/1 पृष्ठ 771

सुदृढ़ करने के बाद भी आचार्य कौटिल्य ने पुनः यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते हुये सैनिक युद्ध को कभी अधिक महत्व नहीं दिया। बल्कि उन्होंने 'कूट युद्ध' तथा 'तूष्णी युद्ध' को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया है। क्योंकि इसमें जन–धन की हानि कम होती है। इसलिये सैनिक युद्ध को उन्होंने केवल अन्तिम विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया है। इस सम्बन्ध में कौटिल्य का यह तर्क आधुनिक सैन्य वैज्ञानिकों को भी प्रभावित करने वाला है कि धनुर्धारी के धनुष से छोड़ा गया बाण तो किसी एक ही व्यक्ति को मारता है तथा निशाना चूकने पर संभव है कि वह उसे भी न मार सके। किन्तु बुद्धिमान व्यक्ति के द्वारा किया गया बुद्धि का प्रयोग तो गर्भस्थ प्राणियों को भी नष्ट कर देता है।[50] इसलिये आधुनिक जगत में यह जानकर लोग चकित रह जाते हैं कि आज से लगभग 2300 वर्ष पहले भारत में एक व्यक्ति ऐसा भी हुआ है जो युद्ध के साथ–साथ कूट युद्ध और शीत युद्ध से भी परिचित था तथा उन्हें सशस्त्र युद्धों से भी अधिक कारगर एवं प्रभावशाली मानता था।[51] आचार्य कौटिल्य का यथार्थवादी दृष्टिकोण उसके कृषि विषयक चिन्तन में भी प्रतिबिम्बित होता है। वह अपने राजा और प्रजा को मन्दिर तथा देवालय निर्माण के लिये प्रेरित करता दिखाई दे या न दे; लेकिन बाँध और जलाशय बनवाने की सम्प्रेरणा वह अवश्य देता है। तभी तो वह लिखता है कि फसलोत्पादन का मुख्य स्रोत बाँध और जलाशय हैं। प्राकृतिक जल–वृष्टि के द्वारा जो फसलें हम एक निश्चित अवधि में पैदा कर पायेंगे, बाँधों ओर जलाशयों के द्वारा वही फसलें हम सदैव प्राप्त कर सकते हैं।[52]

आचार्य कौटिल्य ने सिद्धान्त तथा आदर्श के रूप में 'शक्ति सम्पन्नता' को यथेष्ट महत्व दिया है। लेकिन यथार्थ रूप में उसके सामने 'गुण सम्पन्नता' की रंचमात्र भी उपेक्षा नहीं होने दी है। बल्कि उसने 'गुण सम्पन्नता' को पर्याप्त महत्व दिया है। इसीलिये वह लिखता है कि 'आत्मसम्पन्न गुणी राजा अपनी गुणहीन प्रकृतियों को भी गुणी बना लेता

---

50. एकं हन्यान्न वा. . . . . . . हन्याद गर्भगतानपि। कौ0 अर्थ0 10/158–59/6, पृष्ठ 666
51. आचार्य दीपंकर, कौटल्यकालीन भारत, पृष्ठ 67
52. सेतुबन्धः सस्यानां योनिः। नित्यानुषक्तो हि वर्षगुणलाभः सेतुवापेषु। कौ0 अर्थ0 7/118/4, पृष्ठ 525

है; जबकि आत्मविपन्न अवगुणी राजा अपनी गुणवती तथा अनुरक्त प्रकृतियों को भी नष्ट कर लेता है। यही कारण है कि दुष्ट प्रकृति राजा चारों समुद्र पर्यन्त पृथिवी का अधिपति होता हुआ भी या तो अपनी प्रकृतियों द्वारा ही नष्ट कर दिया जाता है या शत्रु के कब्जे में चला जाता है। किन्तु आत्मसम्पन्न नीतिज्ञ राजा अल्प भूमि का स्वामी होता हुआ भी आत्म प्रकृतियों द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी का आधिपत्य प्राप्त कर लेता है और वह कभी भी क्षीण नहीं होता है।[53]

(घ) अर्थशास्त्र : एक सार्वकालिक राजनीतिक ग्रन्थ

'अर्थशास्त्र' में प्रतिध्वनित आचार्य कौटिल्य की दूरदर्शिता एवं विषय व्यापकता से स्पष्ट होता है कि उनकी यह अनुपम रचना किसी काल विशेष, स्थल विशेष अथवा व्यक्ति–विशेष के लिये लिखा गया कोई साधारण ग्रन्थ नहीं है; अपितु यह एक सार्वकालिक, सार्वभौमिक एवं सार्वजनीन रचना है। यद्यपि कौटिलीय अर्थशास्त्र नव–स्थापित मौर्य साम्राज्य के कुशल राज्य संचालन हेतु ई. पू. तृतीय–चतुर्थ शताब्दी में लिखा गया ग्रन्थ है, लेकिन उसके राजदर्शन संबंधी दिशा–निर्देश किसी भी कालखण्ड में, किसी भी स्थान पर तथा किसी भी व्यक्ति के लिये उपादेय हो सकते हैं। इसलिये आधुनिक समीक्षकों ने कौटिलीय अर्थशास्त्र की सार्वभौमिकता को उसकी महानतम विशेषताओं में से एक माना है। डा. वी. ए. स्मिथ जैसे विद्वानों का यह विचार कि कौटिलीय अर्थशास्त्र में केवल मौर्य साम्राज्य की स्थापना के पूर्व की राजनीतिक स्थितियों को ध्यान में रखकर ही राजनीतिक एवं कूटनीतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, सर्वमान्य नही हो सकता। इसी तरह उनका यह विचार कि कौटिलीय अर्थशास्त्र की रचना अन्य सभी साम्राज्यों को लक्ष्य करके नहीं, अपितु छोटे छोटे सामन्ती राज्यों से घिरे हुये एक अल्पदेशीय मौर्य साम्राज्य को लक्ष्य करके की गई थी, विद्वानों के बीच सहमति नहीं, अपितु आलोचना एवं पुनर्विचार का विषय बना है।[54] क्योंकि कौटिल्य ने जिस साम्राज्य का उल्लेख किया है वह कोई छोटा मोटा साम्राज्य नहीं, अपितु ऐसा चक्रवर्ति क्षेत्र है जिसकी सीमायें उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में समुद्र पर्यन्त तथा पूर्व–पश्चिम में एक हजार योजन तक फैली हुई थी।[55]

---

53. सम्पादयत्यसम्पन्नाः प्रकृ[illegible]तीरात्मवान्नृपः. . . . . जयत्येव न हीयते। कौ० अर्थ० 6/96/1, पृष्ठ 444
54. B. A. Saletore, Ancient Indian Ploitical Thought and Institutions, pp 532-33 से उद्घृत
55. देशः पृथिवी। तस्यां. . . . . . तिर्यक चक्रवर्तिक्षेत्रम्। कौ० अर्थ० 9/135–36/1, पृष्ठ 590

कौटिलीय अर्थशास्त्र में केवल मौर्य साम्राज्य और उसकी राजधानी–पाटलिपुत्र को ही एक आदर्श 'राजगढ़' बनाने का संकीर्ण दृष्टिकोण नहीं अपनाया गया है। कौटिल्य कोई विद्याभिमानी पण्डित मात्र ही नहीं था जिसने केवल अपने राजा–चन्द्रगुप्त मौर्य के बौद्धिक विकास एवं राजनीतिक कौशल के लिये ही अर्थशास्त्र की रचना की हो; अपितु उसकी रचना तो प्रत्येक युग के प्रत्येक राजा के उपयोगार्थ की गई है।[56] कौटिलीय अर्थशास्त्र में उपलब्ध 'इहलोक' तथा 'परलोक' विषयक अनेक उक्तियाँ[57] प्रकारान्तर से उसकी सार्वभौमिकता एवं सार्वजनीनता को अभिव्यंजित करती है। राजनीति के मान्य सिद्धान्तों के रूप में आचार्य कौटिल्य ने जो मापदण्ड स्थापित किये हैं, आज 2500 वर्ष बाद भी संसार उन्हें यथावत् स्वीकार कर रहा है और संभवतः आगे भी करता रहेगा। यहाँ पर आचार्य कौटिल्य के कुछ ऐसे सार्वभौमिक, सार्वकालिक एवं सार्वजनीन विचार प्रस्तुत करना उचित होगा जो प्रत्येक काल में, प्रत्येक व्यक्ति के लियें, प्रत्येक परिस्थिति में, सहज स्वीकार्य हो सकते हैं। उन्हें अमान्य करने का जोखिम कदाचित् ही कभी कोई उठाना चाहे। उदाहरण के लिये कौटिल्य के अनुसार –

1. अजितेन्द्रिय एवं इन्द्रिय–लोलुप राजा सारी पृथिवी का अधिपति होता हुआ भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।[58]
2. क्रोधी, लोभी, भयभीत तथा अपमानित लोग सहज ही शत्रु के वश में हो जाते हैं।[59]
3. अपने पुत्रों से स्वयं की रक्षा करने के लिये राजा को चाहिये कि वह जन्म से ही राज–पुत्रों की कड़ी निगरानी रखे। क्योंकि केंकड़े की भाँति राजपुत्र भी कभी–कभी अपने पिता के भक्षक बन जाते हैं।[60]
4. जिस प्रकार घुन लगी लकड़ी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है उसी प्रकार अशिक्षित राजकुमारों का कुल बिना युद्ध आदि के ही नष्ट हो जाता है।[61]

---

56. B. A. Saletore, Ancient Indian Political Thought and Institutions, p- 556
57. स्वधर्म संदधानो हि प्रेत्य चेह च नन्दति। कौ0 अर्थ0 1/1/2, पृष्ठ 11, 259, 537, 612, 770
58. तद्विरुद्धवृत्तिरवश्येन्द्रियश्चातुरन्तोऽपि राजा सद्यो विनश्यति। कौ0 अर्थ0 1/3/5, पृष्ठ 16
59. कुद्धलुब्धभीतावमानिनस्तु परेषां कृत्याः। कौ0 अर्थ0 1/8/12, पृष्ठ 39
60. पुत्ररक्षणं जन्मप्रभृति. . . . . . जनकभक्षाः राजपुत्राः। कौ0 अर्थ0 1/12/16, पृष्ठ 53
61. काष्ठमिव हि घुणजग्धं राजकुलमविनीतपुत्रमभियुक्तमात्रं भज्येत। उपरोक्त, पृष्ठ 54–55

5. राजा द्वारा अपने पुत्र और शत्रु को उनके अपराध के अनुसार दिया गया समान दण्ड ही लोक और परलोक की रक्षा करता है।[62]

6. कोई भी दैवी आपदा आने पर राजा को प्रजा की रक्षा एक पिता की तरह करना चाहिये।[63]

7. आय–व्यय पर समुचित ध्यान देने वाले राजा पर कभी भी आर्थिक एवं सैनिक आपत्तियाँ नहीं आ पातीं।[64]

8. यदि समान शक्ति वाला राजा सन्धि न करना चाहे तो वह जितनी क्षति पहुँचाये उतनी ही क्षति उसे भी पहुँचाना चाहिये। क्योंकि सन्धि का कारण तो तेज होता है। लोहे को गर्म किये बिना वह दूसरे लोहे से कभी नहीं मिल (चिपक) सकता है।[65]

9. अकारण गत और अकारण आगत मित्र को जो आश्रय देता है वह निश्चय ही अपनी मौत को आमंत्रण देता है।[66]

10. समुद्र में नाव के फट जाने से जो दशा सवार की होती है, ठीक वही दशा मन्त्रणा की गोपनीयता भंग होने पर राजा की होती हैं।[67]

11. जिसके पास अच्छा सैन्य बल होता है उसके मित्र तो मित्र होते ही हैं, शत्रु भी मित्र बन जाते हैं।[68]

12. अशिक्षित व्यक्ति व्यसनी हो जाते है। क्योंकि वे व्यसनों से उत्पन्न होने वाले दोषों को नहीं समझ पाते हैं।[69]

13. शक्ति, देश और काल, ये तीनों ही प्रबल तथा एक दूसरे के पूरक होते हैं। यही कारण है कि जमीन पर कुत्ता घड़ियाल को खींच लेता है और जल में वही घड़ियाल

---

62. दण्डो हि केवलो लोकं........यथादोषं समं घुतः। कौ0 अर्थ0 3/56–57/1, पृष्ठ 259
63. सर्वत्र चोपहतान् पितेवानुगृह्णीयात्। कौ0 अर्थ0 4/78/3, पृष्ठ 360
64. एवमवेक्षितायव्ययः कोशदण्डव्यसनं नावाप्नोति। कौ0 अर्थ0 5/91/3, पृष्ठ 424
65. समश्चेन्न सन्धिमिच्छेत्........नातप्तं लोहं लोहेन सन्धत्त इति। कौ0 अर्थ0 7/101–02/3, पृष्ठ 461
66. कारणाकरणध्वस्तं..........मृत्युमुपगूहति। कौ0 अर्थ0 7/115/9, पृष्ठ 498
67. असंवृतस्य कार्याणि प्राप्तान्यपि........भिन्नप्लव इवौदधौ। कौ0 अर्थ0 7/117/13, पृष्ठ 521
68. दण्डवतो मित्रं मित्रभावे तिष्ठत्यमित्रो वामित्रभावे। कौ0 अर्थ0 8/127/1, पृष्ठ 560
69. अविद्याविनयः पुरुषव्यसनहेतुः। अविनीतो हि व्यसनदोषान्न पश्यति। कौ0 अर्थ0 8/129/3, पृष्ठ 566

कुत्ते को खींच लेता है। इसी प्रकार दिन में कौआ उल्लू को मार लेता है और रात में उल्लू कौए को मारता है।[70]

14. विजिगीषु राजा के द्वारा दो शत्रु–सेनाओं को आपस में भिड़ा देने से उसे वैसा ही लाभ होता है जैसे कुत्ते और सुअर की लड़ाई में किसी भी एक के मर जाने पर चाण्डाल को लाभ होता है।[71]

15. अनर्थ सूचीमुख हुआ करते हैं अर्थात् पहले तो उनका रूप सुई के मुख (छिद्र) जैसा सूक्ष्म होता है किन्तु बाद में वे भयावह रूप धारण कर लेते हैं।[72]

16. बाह्य कोप की अपेक्षा आभ्यन्तर कोप घर में छिपे सर्प की तरह अत्यधिक भयानक होता है।[73]

17. यदि कोई शक्तिशाली राजा किसी दुर्बल राजा से जबर्दस्ती धन आदि का अपहरण करता है तो निर्बल राजा को अपना वह धन सन्धि आदि के बहाने उसी को दे देना चाहिये। क्योंकि धन की अपेक्षा अपने प्राणों की रक्षा करना अधिक श्रेयस्कर है। प्राणों की तुलना में अनित्य धन के प्रति मोह कैसा ?[74]

18. छठवें कान (अर्थात् तीसरे व्यक्ति) तक जाते ही मंत्रणा की गोपनीयता भंग हो जाती है।[75]

19. बछड़ा भी दूध पाने के लिये अपनी माता (गाय) के थनों पर आघात करता है।[76]

20. किसी का भी सीमा से अधिक विश्वास कभी नहीं करना चाहिये।[77]

21. यदि अपने हाथ में विष फैल जाये तो उसे भी कटवा देना चाहिये।[78]

---

70. स्थलगतो हि श्वा नक्रं. . . . . हि शक्तिदेशकालाः। कौ0 अर्थ0 9/135–36/1, पृष्ठ 591–92
71. प्रभूतं मे शत्रुबलं. . . . . . . चण्डालस्येवान्यतरसिद्धिर्मविष्यति। कौ0 अर्थ0 9/137–39/2, पृष्ठ 597
72. सूचीमुखा ह्यनर्था इति लोकप्रवादः। कौ0 अर्थ0 9/140–41/3, पृष्ठ 602
73. अहिभयादभ्यन्तरकोपो बाह्यकोपात्पापीयान्। कौ0 अर्थ0 9/143/5, पृष्ठ 616
74. यत्प्रसह्य . . . . .ह्यनित्ये धने दया। कौ0 अर्थ0 12/162/1, पृष्ठ 682
75. षट्कर्णाद भिद्यते मन्त्रः। कौ0 अर्थ0 पृष्ठ 776 (चाणक्य प्रणीत सूत्र सं. 34)
76. क्षीरार्थी वत्सो मातुरूधः प्रतिहन्ति। कौ0 अर्थ0 पृष्ठ 780 (चाणक्य प्रणीत सूत्र सं. 127)
77. मर्यादातीतं न कदाचिदपि विश्वसेत। कौ0 अर्थ0 पृष्ठ 783 (चाणक्य प्रणीत सूत्र सं. 172)
78. स्वहस्तोऽपि विषदिग्धश्छेद्यः। कौ0 अर्थ0 पृष्ठ 786, (चाणक्य प्रणीत सूत्र सं. 248)

22. शत्रु का दुख सुनकर कानों को सुख मिलता है।[79]

23. कल मिलने वाले मोर की अपेक्षा आज मिलने वाला कबूतर ही अच्छा है।[80]

24. ऋण, शत्रु और रोग को जड़ मूल से मिटा देना चाहिये।[81]

25. न्याय परायण राजा को प्रजा अपनी माता के समान मानती है।[82]

इतिहास साक्षी है कि आचार्य कौटिल्य की व्यावहारिक नीतियों और सिद्धान्तों का पालन करने पर जहाँ राज्यों का अभीष्ट विकास हुआ है वहीं उनका उल्लंघन करने पर परिणाम बड़े हानिकारक रहे हैं। उदाहरणार्थ चन्द्रगुप्त मौर्य तथा बिन्दुसार के शासनकाल में कौटिल्य के दिशा निर्देशों के अनुरूप संचालित मौर्य साम्राज्य ने बहुमुखी विकास करके अभूतपूर्व प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। जबकि उसी मौर्य साम्राज्य के अन्तिम सम्राट वृहद्रथ ने उसके विपरीत आचरग करके अपने पूर्वजों का गौरवशाली साम्राज्य तहस नहस करवा डाला। अन्त में उसी के सेनापति पुष्यमित्र ने उसका वध कर दिया। उसके बाद शुंगवंश ने कौटिल्य की नीतियों और सिद्धान्तों पर चलते हुये लगभग 150 वर्षों तक कुशलतापूर्वक अपना साम्राज्य सँभाला। लेकिन उसके बाद फिर वही दुःखद इतिहास दुहराया गया। शुगवंश के अन्तिम सम्राट देवभूति ने भी कौटिल्य के सिद्धान्तों की उपेक्षा की तथा वृहद्रथ की भाँति उसका भी दुःखद अन्त ही हुआ। उसी के प्रधान सेनापति वासुदेव ने उसका वध कर दिया। वासुदेव द्वारा स्थापित काण्ववंश का साम्राज्य भी कुछ काल तक तो सम्यक् रूप से चला। लेकिन अन्तिम सम्राट सुशर्मा में कौटिल्य के अभीष्ट गुणों का अभाव तथा अनभीष्ट दुर्गुणों का प्रादुर्भाव हो जाने के कारण उसकी भी वही दुर्गति हुई जो देवभूति की हुई थी। उसी के मंत्री शिमुक (अथवा सिन्धुक) ने उसका वध कर दिया।[83] इस प्रकार उपरोक्त सभी ऐतिहासिक तथ्य यह सत्यापित करने के लिये पर्याप्त हैं कि जिस देश और काल में जिस किसी राजा

---

79. शत्रुव्यसनं श्रवणसुखम्। कौ0 अर्थ0 पृष्ठ 788 (चाणक्य प्रणीत सूत्र सं0 348)
80. श्वोमयूरादद्य कपोतो वरः। कौ0 अर्थ0 पृष्ठ 790 (चाणक्य प्रणीत सूत्र सं.348)
81. ऋणशत्रुव्याधिष्वशेषः कर्तव्यः। कौ0 अर्थ0 पृष्ठ 794 (चाणक्य प्रणीत सूत्र सं. 435)
82. न्याययुक्तं राजानं मातरं मन्यन्ते प्रजाः। कौ0 अर्थ0 पृष्ठ 800 (चाणक्य प्रणीत सूत्र सं. 559)
83. आचार्य दीपंकर, कौटल्यकालीन भारत, पृष्ठ 97–98
    डा0 राजबली पाण्डेय, भारतीय इतिहास का परिचय, पृष्ठ 62–70

ने कौटिल्य के व्यावहारिक सिद्धान्तों का विधिवत् अनुसरण किया है उसे अभीष्ट सिद्धियाँ प्राप्त हुई हैं और जिसने उनका उल्लंघन किया है उसे अनभीष्ट दुष्परिणाम भुगतने पड़े हैं। अतः कहा जा सकता है कि कौटिलीय अर्थशास्त्र एक सार्वभौमिक, सार्वकालिक एवं सार्वजनीन रचना है।

(ङ) मूल्यांकन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में अब तक 'कौटिल्य के राजदर्शन की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता' को लक्ष्य करके पर्याप्त तथ्यपरक सामग्री प्रस्तुत करने का यथाशक्य प्रयास किया गया है। अब यहाँ पर उपरोक्त शोधाध्ययन से निःसृत कतिपय महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है; जिससे प्रस्तुत शोध विषय का मूल्यांकन करने में सुविधा हो सके।

आचार्य कौटिल्य द्वारा स्थापित मौर्य साम्राज्य के बाद यहाँ शुंग, शक, कुषाण गुप्त तथा मुगल आदि अनेक साम्राज्यों का उदय और अन्त हुआ। तदनन्तर यहाँ एक ऐसी सत्ता भी आई जिसके साम्राज्य में कभी सूर्यास्त न होने की किम्बदन्ती प्रचलित थी, लेकिन वह अंग्रेजी सत्ता भी आई और गई। लगभग 2500 वर्षों के इस सुदीर्घ अन्तराल में यदि कोई सर्वाधिक विस्मयकारी तथ्य है तो वह यह है कि यहाँ से बड़े–बड़े शक्तिशाली साम्राज्य विदा हो गये; एक से एक राजमुकुट धूल में मिल गये; लेकिन आचार्य कौटिल्य ने अपने गम्भीर ज्ञान एवं विविधतापूर्ण अनुभव के आधार पर जो विलक्षण राजनीतिक सूत्र, सिद्धान्त एवं नियम मौर्य–नरेशों के साथ–साथ विश्व के राजनीतिज्ञों को प्रदान किये थे; उनमें से यदि सभी नहीं तो अधिकांश आज भी अपनी मौलिकता एवं प्रासंगिकता बनाये हुये है। इतना ही नही, उनके कुछ नियम व सिद्धान्त तो ऐसे हैं जो वर्तमान राजनीति में कौटिल्य काल से भी अधिक उपयोगी एवं सार्थक सिद्ध हो रहे हैं।

प्रत्येक अध्याय की विषय वस्तु की आधुनिक राजनीति में प्रासंगिकता को उसके अन्त में यथास्थान स्पष्ट करने का प्रयास किया जा चुका है। इसलिये उसकी

पुनरावृत्ति करना यहाँ उचित नहीं है। यहाँ पर तो केवल उन सात महत्वपूर्ण बिन्दुओं का पुनरावलोकन किया जाना उचित होगा, जिनका उल्लेख इस शोध प्रबन्ध की प्रस्तावना में किया गया है। क्योंकि वही सात जिज्ञासापरक बिन्दु इस शोध प्रबन्ध के लक्ष्य व सार हैं तथा उन्हीं के आधार पर इस शोध-कार्य का सही मूल्यांकन किया जा सकेगा।

प्रथम बिन्दु : एक सार्वभौमिक, सार्वकालिक एवं सार्वजनीन रचना होने के कारण 'कौटिलीय अर्थशास्त्र' हमारी वर्तमान समस्याओं के समाधान हेतु क्या मार्गदर्शन करता है ?

समाधान–उत्तर :

1. राज्य की अनेकविध व्यसनग्रस्तता आज हमारे समक्ष अनेक प्रकार के गम्भीर राष्ट्रीय संकट खड़े कर रही है। इस घातक व्यसनग्रस्तता की गहरी तह में जाकर आचार्य कौटिल्य ने पर्याप्त चिन्तन मनन के बाद हमें एक महामंत्र दिया है–'समस्त व्यसनों की जड़ अशिक्षा है।' क्योंकि अशिक्षित व्यक्ति व्यसनों से उत्पन्न बुराइयों को समझ ही नहीं पाता है।[84] इसलिये वह राजा को सर्वप्रथम अपनी प्रजा को साक्षर एवं शिक्षित बनाने हेतु निर्दिष्ट करता है।[85] अतः यदि हमें इस अशिक्षा जन्य व्यसनग्रस्तता को दूर करना है तो कौटिल्य के उक्त शिक्षा–मंत्र का ध्यान करते हुये अपने देश की असंख्य निरक्षर जनता को साक्षर बनाने के लिये 'सर्व शिक्षा अभियान' जैसे कागजी घोड़े दौड़ाने की बजाय ठोस एवं कारगर नीति अमल में लाने का भागीरथ–प्रयास करना होगा। स्मरण रहे, कौटिल्य के निर्देशों का परिपालन करते हुये जब तक मूल जड़ पर प्रहार नहीं किया जायेगा, तब तक लाख प्रयास करने के बाद भी व्यसनों का यह भयावह विषवृक्ष अमरबेल की तरह सदा हरा–भरा बना रहेगा, मिटने का कभी नाम ही नहीं लेगा। अतः आवश्यक है कि शिक्षा के प्रसार की योजना व्यावहारिक हो और उसे निष्ठापूर्वक लगाू किया जाये।

---

84. अविद्याविनयः पुरुषव्यसनहेतुः। अविनीतो हि व्यसनदोषान्न पश्यति। कौ0 अर्थ0 8/129/3, पृष्ठ 566
85. विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनये रतः। कौ0 अर्थ0 1/2/4, पृष्ठ 14

2. व्यसन–निवारण के सम्बन्ध में कौटिल्य का एक अन्य मत आज बड़ा ही अनुकरणीय प्रतीत होता है। वह लिखता है कि राजा को निरालस्य होकर अपने राज्य में व्यसनों के उत्पन्न होने के पहले ही उनके कारणों का प्रतिकार कर देना चाहिये। अर्थात् रोग उत्पन्न होने से पहले उसका पूर्वाभास होते ही उस रोग की जड़ को समाप्त कर देना चाहिये।[86] लेकिन हमारे वर्तमान नीति–नियन्ताओं की स्थिति इससे बिल्कुल भिन्न है। यह जानकर दुखद आश्चर्य होता है कि कभी–कभी वे व्यसन और रोग पैदा करने का परिवेश स्वयं ही सृजित करते है तथा रोग पैदा होने के बाद उसकी पराकाष्ठा आने पर उपचार शुरू करते हैं, और दुर्भाग्यवश उस उपचार में वे प्रायः विफल रहते हैं।

उदाहरण के रूप में एक वर्तमान सामाजिक व्यसन 'गर्भपात' को लिया जा सकता है। हमारे नीति निर्माताओं ने पहले तो जनसंख्या विस्फोट से घबड़ाकर 'गर्भपात' को विधिक मान्यता प्रदान कर दी। आम जनता को संचार–प्रचार माध्यमों से इस कार्य के प्रति खूब प्रेरित किया। सरकारी अस्पतालों में गर्भवती महिलाओं को बुला–बुलाकर उन्हें सभी सुविधायें और प्रोत्साहन दिये गये। किन्तु गर्भपात की परिणति कन्या भ्रूण हत्या के रूप में सामने आयी। बाद में जब स्त्री–पुरुष का लिङ्गानुपात असन्तुलन की ओर बढ़ने लगा तो उन्हें वर्षों बाद, दशकों बाद होश आया कि गर्भपात को विधिक मान्यता देकर हमसे चूक हो गई। आज जब यह व्यसन अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका तो उसका उपचार शुरू किया गया; गर्भपात को कानूनी अपराध घोषित किया गया।

इसलिये यदि हम चाहते हैं कि व्यसन निवारण के प्रति भविष्य में हमसे ऐसी आत्मघाती चूकें न हों तो हमारे नीति नियन्ताओं को कौटिल्य से प्रेरणा लेकर व्यसनों पर पैनी नजर रखते हुये उनके उत्पन्न होने पर नहीं अपितु उनका पूर्वाभास होते ही उनके मूल कारणों को दूर करने का निरालस्य होकर निष्ठापूर्वक प्रयास करना होगा। ताकि हमारे

---

86. यतो निमित्तं व्यसनं. . . . . . . तन्निमित्तमतन्द्रितः। कौ० अर्थ० 8/133–34/5, पृष्ठ 586

दुर्व्यसन ग्रस्त राज्य की वह स्थिति न हो जो आकस्मिक चिकित्सा कक्ष में भेजे गये उस रोगी की होती है जिसकी नाड़ियों और धमनियों ने काम करना बन्द कर दिया हो।

3. आचार्य कौटिल्य का यह चेतावनीपरक निर्देश हमारी चिर–निद्रा और तन्द्रा को भंग करने के लिये पर्याप्त है कि राज्य में व्याप्त बाह्य कोप की अपेक्षा आभ्यन्तर कोप घर में छिपे सर्प की तरह अत्यन्त खतरनाक होता है; इसलिये आभ्यन्तर कोप को पहले शान्त किया जाना आवश्यक है।[87] हमारे देश के वर्तमान भ्रष्टाचार, आतंकवाद, साम्प्रदायिक हिंसा तथा सामाजिक विषमता के कष्टप्रद दलदल में गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाली राज्य की लगभग एक चौथाई जनता के नारकीय जीवन से यहाँ की आम जनता में जो विकराल आभ्यन्तर कोप फैल रहा है, उसके प्रति हम आखिर कब तक अपनी आँखे बन्द किये रहेंगे ? इसलिये आज हमें कौटिल्य की उपरोक्त चेतावनी से सम्प्रेरित होकर आभ्यन्तर कोप को बढ़ाने वाली अपनी उपरोक्त राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान हेतु और अधिक समय गँवाये बिना तत्काल सजग और सावधान होने की आवश्यकता है। अन्यथा हमारी स्थिति वही होगी जो घर में छिपे सर्प की विषाक्त फूत्कारों की अनसुनी और अनदेखी करके सोने वाले किसी निद्रालु ग्रहस्थ की होती है।

4. राजतंत्र तथा प्रजातंत्र दोनों ही शासन प्रणालियों में मंत्रियों की स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है तथा राज्य संचालन में वे धुरी का काम करते हैं। लेकिन यह जानकर आश्चर्य होता है कि वर्तमान प्रजातंत्र में इतने महत्वपूर्ण पद पर नियुक्ति से पूर्व उसकी योग्यता एवं चारित्रिक शुचिता का वास्तविक पता लगाने के लिये किसी भी प्रकार की परीक्षण प्रणाली का प्राविधान नहीं है। संभवतः यही कारण है कि वर्तमान में कई मंत्री ऐसे भी देखे–सुने गये हैं जिन पर अनेक गम्भीर अपराधों के मामले दर्ज हैं और 'दागी मंत्री' के रूप में उनकी एक अलग ही श्रेणी व पहचान है। लेकिन

---

87. 'अहिभयादभ्यन्तरकोपो बाह्यकोपात्पापीयान्' इत्युक्तं पुरस्तात्। कौ0 अर्थ0 9/143–5, पृष्ठ 616

कौटिल्य जैसे दूरदर्शी चिन्तक ने मंत्री जैसे महत्वपूर्ण पद पर नियुक्ति के लिये बड़ी कठोर परीक्षण प्रणाली का प्राविधान किया है जिसे अर्थशास्त्र में 'उपधा परीक्षा' कहा गया है। धर्मोपधा, अर्थोपधा, कामोपधा तथा भयोपधा नामक चार-चार क्लिष्ट परीक्षायें उत्तीर्ण करने के बाद ही मंत्री नियुक्त किया जाता था।[88] इतनी कठिन परीक्षाओं के द्वारा जाँचे-परखे गये ऐसे सुपरीक्षित मंत्री अपने आचरण एवं चरित्र में सदैव खरे उतरते थे; तथा राज्य-हित एवं प्रजा-हित के लिये निस्वार्थ एवं निर्लिप्त भाव से सदैव समर्पित रहते थे। वर्तमान मंत्रियों की चारित्रिक गिरावट को दृष्टिगत रखते हुये हमें कौटिल्य से प्रेरणा लेकर उनके लिये किसी ऐसी प्रभावी परीक्षा प्रणाली प्रारम्भ करने पर विचार करना नितान्त आवश्यक है जो उनकी चारित्रिक शुचिता को एक 'तप्त कुन्दन' की तरह खरा प्रमाणित कर सके। क्योंकि राज्य में जैसे मंत्रीगण होंगे, वैसे ही उनके अधीनस्थ अधिकारी और कर्मचारी होंगे तथा वैसी ही राज्य की कार्य-संस्कृति सृजित एवं विकसित होगी।

5. वर्तमान में सम्पूर्ण देश के सामने भ्रष्टाचार एक दुर्निवार समस्या एवं चुनौती बनकर खड़ा है। उसको उखाड़ फेकने की बातें तो सभी करते हैं किन्तु उपाय किसी के पास नही है। सभी ओर से निराश होने के बाद 'अर्थशास्त्र' जैसे प्राचीन ग्रन्थ में भ्रष्टाचार निवारण के कुछ ठोस एवं कारगर उपाय दिखाई देते हैं। कौटिल्य के अनुसार भ्रष्टाचार किसी युग विशेष या काल विशेष की समस्या नहीं रही है; बल्कि इसका जन्म तो संभवतः राज्य के उद्भव के साथ ही हुआ है। राज्य बनने के बाद उसमें नियुक्त अधिकारियों और कर्मचारियों द्वारा भ्रष्टाचार को जन्म दिया गया। भ्रष्टाचार निवारण हेतु आचार्य कौटिल्य ने जो उपाय निर्दिष्ट किये हैं, उन सभी का पूर्ण विवेचन इस शोध प्रबन्ध में सम्भव नहीं हो सका है। उसके लिये तो एक स्वतंत्र शोध कार्य किये जाने की आवश्यकता है।[89] यहाँ पर तो भ्रष्टाचार के संबंध में

---

88. सर्वोपधाशुद्धान् मन्त्रिणः कुर्यात्। कौ0 अर्थ0 1/5/9, पृष्ठ 27
89. हरिओमशरण निरंजन, भ्रष्टाचार निवारण हेतु 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' के कुछ कारगर उपाय 'शोध यात्रा' पत्रिका (ग्वालियर) अक्टूबर-जून 05 में प्रकाशित शोध आलेख

कौटिल्य का नजरिया कितनी तार्किक विलक्षणता से भरा है, केवल उसको इंगित करना ही पर्याप्त होगा। भ्रष्टाचारियों के प्रति चेतावनी पर चेतावनी देता हुआ वह आगाह करता है कि जैसे जीभ पर रखे हुये मधु अथवा विष का स्वाद लिये बिना नहीं रहा जा सकता, उसी प्रकार राज्य कार्यों में नियुक्त लोग अर्थ का थोड़ा भी स्वाद न लें, यह असंभव है।[90] वह अगली चेतावनी देता हुआ फिर कहता है कि जिस प्रकार पानी में रहने वाली मछलियाँ पानी पीती हुई दिखाई नहीं देती है, उसी प्रकार राज्य कार्यों में नियुक्त लोग धन का अपहरण करते हुये नहीं जाने जा सकते है, लेकिन करते अवश्य हैं।[91] भ्रष्टाचारियों पर आगे और करारी चोट करता हुआ वह फिर कहता है कि आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की गतिविधि का पता लगाना तो सम्भव है किन्तु धन का अपहरण करने वाले राज्यकर्मियों की गतिविधि से पार पाना बड़ा कठिन है।[92] कौटिल्य द्वारा किये गये उपरोक्त तीक्ष्ण कटाक्ष सिद्ध करते हैं कि भ्रष्टाचारियों पर उसकी बड़ी पैनी नजर रही है; जिससे बचकर उनकी कोई भी गतिविधि निकल नहीं सकी है। ऐसी तीक्ष्ण दृष्टि वाले दूरदर्शी चिन्तक आचार्य कौटिल्य ने भ्रष्टाचार निवारण के उपाय भी बड़ी बारीकी से ढूँढ़–ढूँढ़ कर उसी प्रकार खोज निकाले हैं जैसे कोई ईमानदार और मेधावी पुलिस अधिकारी शातिर से शातिर अपराधी को खोज निकालता है। अतः भ्रष्टाचार निवारण की दृष्टि से कौटिलीय अर्थशास्त्र का स्वतंत्र शोधाध्ययन किये जाने की नितान्त आवश्यकता है; ताकि दुर्निवार बनी इस विकराल भ्रष्टाचार समस्या के निवारण हेतु सभी सम्भव कारगर उपाय हमारे समक्ष आ सकें।

6. वित्तीय संकट से जूझ रहे आधुनिक राज्यों को कौटिलीय अर्थशास्त्र से कुछ खास नसीहत मिल सकती है। इस संबंध में आचार्य कौटिल्य का यह निर्देश कि वित्तीय प्रशासन की सफलता 'अर्थानुशासन' पर निर्भर करती है, हमारे लिये एक प्रकाश–स्तम्भ

---

90. यथा ह्यनास्वादयितुं न ...... स्वल्पोऽप्यनास्वादयितुं न शक्यः। कौ० अर्थ० 2/25/9, पृष्ठ 117
91. मत्स्यां यथान्तः सलिले....... न शक्या धनमाददानाः। उपरोक्त
92. अपि शक्या गतिर्ज्ञातुं .... युक्तानां चरतां गतिः। उपरोक्त

का काम कर सकता है। अपने इस महत्वपूर्ण मत को क्रियान्वित करते हुये उसने राजा को स्पष्ट निर्देश दिया है कि वह उद्यमशील होकर सर्वप्रथम 'वित्तीय अनुशासन' कायम करे।[93] उनके अनुसार वित्तीय अनुशासन की पहली शर्त है – मितव्ययिता। उसका स्पष्ट कहना है कि व्यय करते समय आय का अवश्य ध्यान रखा जाये। कहीं ऐसा न हो कि आय कम और व्यय अधिक हो जाये। इस सम्बन्ध में उसका यह निर्देश विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि ऐसा कोई कार्य न किया जाये जिससे 'धर्म' और 'अर्थ' को क्षति पहुँचे।[94] उक्त निर्देश से उसका स्पष्ट आशय यही है कि न तो कभी आय से अधिक व्यय हो और न कभी व्यय की मितव्ययिता के पीछे जनकल्याण का कोई कार्य अवरूद्ध हो। इसलिये जनहित तथा मितव्ययिता की उपयोगिता को इंगित करते हुये आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि इस प्रकार ध्यानपूर्वक आय–व्यय करने वाले राजा पर कभी भी आर्थिक या सैन्य व्याधियाँ नहीं आ पातीं।[95]

इस संबंध में आचार्य कौटिल्य का यह प्राविधान भी आज विशेष रूप से अनुकरणीय है कि राज्य के अधिकारियों/कर्मचारियों के वेतन पर राज्य की आय के चौथाई भाग से अधिक व्यय नहीं किया जाना चाहिये।[96] वर्तमान में अधिकारियों/कर्मचारियों के वेतन–भत्ते पर्याप्त होने तथा सरकार की वित्तीय स्थिति अत्यन्त नाजुक होने के बाद भी वेतनमानों को पुनरीक्षित कराये जाने हेतु जो छठवें वेतन आयोग के गठन की घोषणा किसी दबाववश की गई है, वह कौटिल्य के उपरोक्त व्यावहारिक मत से मेल नहीं खाती है। अतः इस संबंध में सरकार तथा कर्मचारियों दोनों को कौटिल्य–मत के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय दृष्टिकोण से पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। कौटिलीय अर्थशास्त्र की उपरोक्त सभी व्यवस्थाओं की मूल भावना यही है कि राज्य का बजट कभी घाटे का नहीं होना चाहिये। अतः असहनीय वित्तीय घाटों एवं संकटों से जूझ रहे वर्तमान राज्यों के लिये कौटिल्य की उपरोक्त

---

93. तस्यान्नित्योत्थितो राजा कुर्यादर्थानुशासनम्। कौ0 अर्थ0 1/14/18, पृष्ठ 64
94. कार्यासाधनसहेन वा. . . . . . न धर्मार्थौ पीडयेत। कौ0 अर्थ0 5/91/3, पृष्ठ 420
95. एवमवेक्षितायव्ययः कोशदण्डव्यसनं नावाप्नोति। कौ0 अर्थ0 5/91/8, पृष्ठ 424
96. दुर्गजनपदशक्त्या भृत्यकर्म समुदयपादेन स्थापयेत्। उपरोक्त, पृष्ठ 420

वित्तनीति 'संकटमोचन' का काम कर सकती है। यद्यपि वर्तमान में घाटे के बजट की अवधारणा का ही अधिक प्रचलन है फिर भी कौटिल्य के विचारों का महत्व आज भी है।

7. वित्तीय घाटे की पूर्ति के लिये आधुनिक राज्य जन भावनाओं तथा क्षमताओं का विचार किये बिना मनमाने तरीके से प्रजा पर कर–वृद्धि तथा नूतन कराधान करने के अभ्यस्त हो गये हैं। भावी दुष्परिणामों से बेखबर उन राज्यों को कौटिल्य का यह मत अपने संज्ञान में लेना चाहिये कि प्रजा से धन संग्रह उसी तरह किया जाये जैसे बगीचे से केवल पके फल लिये जाते हैं तथा कच्चे फल छोड़ दिये जाते हैं। कच्चे फल के समान प्रजा को कष्ट पहुँचाकर धन संग्रह करना प्रजा के कोप का तथा राजा के आत्मनाश का कारण बनता है।[97] प्रजा का कोप राज्य के लिये आभ्यन्तर कोप बनकर घर में छिपे सर्प की तरह कितना खतरनाक होता है, इसका संकेत पूर्व में किया जा चुका है।

8. सुदृढ़ गुप्तचर प्रणाली कौटिल्यकालीन राज्य व्यवस्था की सफलता के प्रमुख कारणों में से एक थी। सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं था जहाँ कुशल एवं हुनरबाज गुप्तचर नियुक्त न हों। अपने–अपने क्षेत्र में घटित होने वाली प्रत्येक छोटी–बड़ी और अच्छी बुरी घटना की जानकारी उचित माध्यम से यथासमय राजा तक पहुँचाना उनका प्रमुख दायित्व था। राज्य में जहाँ भी, जो भी अवांछनीय गतिविधि होती उस पर वे अपनी पैनी निगाह रखते तथा उसका उन्मूलन कराने के बाद ही चैन से बैठते। तत्कालीन गुप्तचर व्यवस्था की व्यापकता देखकर आश्चर्य होता है जिसका जाल राज्य की राजधानी, राजभवन और अन्तःपुर से लेकर गाँवों के किसानों, ग्वालों और चरवाहों तक देश के कोने–कोने में बिछा हुआ था। कुछ मिलाकर राज्य की विदेश नीति एवं गृहनीति की सफलता वहाँ की गुप्तचर व्यवस्था पर ही आश्रित थी। लेकिन वर्तमान में हमारी लचर गुप्तचर व्यवस्था के

---

97. पक्वं पक्वमिवारामात्. . . . . .वर्जयेत् कोपकारकम्। कौ0 अर्थ0 5/90/2, पृष्ठ 419

कारण यहाँ की विदेशनीति एवं गृहनीति–दोनों के कुछ पक्ष पूर्णतः या अंशतः नाकाम हो रहे हैं। फलस्वरूप विदेशी गुप्तचर एजेन्सियाँ हमारे यहाँ आतंकवादियों के प्रशिक्षण शिविर चला रही हैं; आये दिन सार्वजनिक एवं धार्मिक स्थलों पर बम विस्फोट कराकर निर्दोष नागरिकों को मरवा रही हैं; महत्वपूर्ण स्थलों और नेताओं को उड़ाने की धमकियाँ दे रही है; धमकियों के अनुरूप संसद भवन पर हमला करवा रही हैं ....। इसलिये यदि हम चाहते हैं कि देश के अन्दर और बाहर हो रही राजद्रोही गतिविधियों पर प्रभावी अंकुश लगे तो हमें कौटिल्य से प्रेरणा लेकर सभी क्षेत्रों में अपनी गुप्तचर व्यवस्था को विकसित एवं चुस्त–दुरूस्त करना नितान्त आवश्यक है।

द्वितीय बिन्दु : मौर्य साम्राज्य के शक्तिशाली सम्राट अशोक ने कौटिलीय सिद्धान्तों के विपरीत 'सैन्य विजय' की उपेक्षा करते हुये 'धर्म विजय' को वरीयता देना जिस दिन से प्रारंभ किया था, मानों उसी दिन मौर्य साम्राज्य की ह्रास–कथा का 'आमुख' लिखा गया था। सम्राट अशोक के धर्म–विजय और अहिंसा सिद्धान्तों से हमारे सैन्य बल की दयनीय उपेक्षा हुई जिसका अन्तिम परिणाम मौर्य साम्राज्य का पतन था। इतिहासकारों की दृष्टि में सैन्य बल की उपेक्षा करना भारतीय नरेशों की बड़ी भारी भूल थी। इसी भूल के कारण आगे चलकर 1962 में हमें चीनी हमले के समय पराजय का सामना करना पड़ा। प्रश्न है कि ऐसी और कौन सी भूलें है जो वर्तमान में हम से हो रही हैं तथा कौटिल्य से प्रेरणा लेकर राष्ट्र–हित में उन्हें कैसा सुधारा जा सकता है ?

समाधान–उत्तर :

1. आचार्य कौटिल्य ने राज्य की सुख समृद्धि एवं योगक्षेम हेतु 'चरित्र–बल' पर सर्वाधिक बल दिया है। तभी तो वह आगाह करता है कि एक दुष्ट प्रकृति राजा चारों समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का अधिपति होता हुआ भी या तो अपनी प्रकृतियों द्वारा नष्ट हो जाता है या फिर वह शत्रु के अधिकार में चला जाता है। किन्तु आत्मसम्पत् गुणों से सम्पन्न चरित्रवान एवं नीतिज्ञ राजा अल्प भूमि का स्वामी होता हुआ भी अपनी प्रकृतियों द्वारा

सारी पृथ्वी का आधिपत्य प्राप्त कर लेता है और वह कभी भी क्षीण नहीं होता है।[98] इस संबंध में वर्तमान में हमसे भारी चूक हो रही है। 'धन बल' और 'बाहुबल' पर पूर्ण भरोसा करने वाली हमारी दृष्टि में अब 'चरित्र–बल' कोई बल नही रहा; वह तो केवल आज निर्बलों और बुझदिलों द्वारा बनाई गई एक मगगढन्त परिभाषा मात्र मानी जाने लगी है। लेकिन कौटिल्य से प्रेरणा लेकर हमें अपनी इस भूल को सुधारना होगा। क्योंकि 'चरित्र–बल' को पैरों तले रौदंते हुए केवल 'धन बल' और 'बाहुबल' के सहारे विजय–पताका फहराने वाले वर्तमान राजनयिकों के लिये कौटिल्य की उपरोक्त चेतावनी के रूप में खतरे की घण्टी निरन्तर बज रही है; जिसकी अनदेखी अधिक समय तक नहीं की जा सकती।

2. कौटिल्य ने धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों के सन्तुलित सेवन पर बल दिया है। क्योंकि इन तीनों का असन्तुलित उपभोग बड़ा अनिष्कारी होता है। इन में यदि एक का भी अधिक सेवन किया गया तो वह अतिसेवित पुरुषार्थ स्वयं तो नष्ट होता ही है, अन्य दो पुरुषार्थों को भी नष्ट कर देता है।[99] लेकिन दुर्भाग्यवश यहाँ भी हमसे भूल हो रही है। हमारी दृष्टि में अब तीन का नहीं अपितु केवल अर्थ और काम, इन दो ही पुरुषार्थों का महत्व रह गया है। धर्म का तो अब जैसे कोई मतलब ही नहीं। यदि थोड़ा बहुत महत्व है भी तो वह केवल मन्दिरों में जाकर देवदर्शन करने तथा पूजा–पाठ आदि करने तक सीमित होकर रह गया है। अथवा आज धर्म का अर्थ 'सम्प्रदाय' से लिया जा रहा है। मन, वचन, कर्म से भी दूसरों को पीड़ा न पहुँचाने वाला जो 'अहिंसा परमो धर्मः' था, वह असली धर्म तो वर्तमान समाज एवं राजनीति से बिल्कुल ओझल हो चुका है। उसे खोजने या यथास्थान वापस लाने की कोई सदिच्छा भी दिखाई नहीं देती। अब तो 'धर्म' को दरकिनार करके दिन–रात केवल 'अर्थ' का सेवन और 'अर्थ' के बल पर 'काम' का सेवन करना ही परम लक्ष्य बन गया

---

98. ततः स दुष्टप्रकृति. . . . . . . जयत्येव न हीयते। कौ0 अर्थ0 6/96/1, पृष्ठ 444
99. समं वा त्रिवर्गमन्योन्यानुबन्धम. . . . धमार्थकामानात्मानमितरौ च पीडयति। कौ0अर्थ0 1/3/6, पृ.18

है। लेकिन कौटिल्य से सबक सीखकर हमें अपनी इस भूल का सुधार करना होगा। देश से निर्वासित हो रही धर्म की मूल भावना को वापस लाना होगा। अर्थजन्य तथा कामजन्य लिप्साओं और लालसाओं को नियंत्रित करके धर्म, अर्थ और काम के सन्तुलित सेवन की आदर्श जीवन–पद्धति को पुनर्जीवित करना होगा। यही आचार्य कौटिल्य की मंशा है; भारतीय संस्कृति की अपेक्षा भी यही है। धर्म के प्राचीन अर्थ की पुनर्स्थापना करनी होगी जो वास्तव में कर्त्तव्यपालन है। धर्म के सम्प्रदायिकता से सम्पृक्त दूषित अभिप्राय को जनमानस से मिटाने का प्रयास आवश्यक है।

3. सैन्य बल और सैन्य शिक्षा की उपेक्षा प्राचीन बौद्ध काल में हुई और वर्तमान में भी हो रही है। लेकिन दोनों में जो गम्भीर अन्तर है उसे समझने की आवश्यकता है। प्राचीनकाल में सम्राट अशोक जैसे दयालु शासकों तथा बौद्ध एवं जैन धर्मों के अहिंसा सिद्धान्त ने सैन्य बल की उपेक्षा की थी। लेकिन वर्तमान में सैन्य बल की उपेक्षा के कारण बिल्कुल भिन्न हैं। आधुनिक कम्प्यूटर एवं संचार क्रान्ति की चकाचौंध से दिग्भ्रमित वर्तमान युवा पीढ़ी सैन्य विज्ञान की शिक्षा के प्रति तथा सैन्य–सेवाओं में जाने के प्रति एक चिन्ताजनक उपेक्षा भाव रख रही है। इस संबंध में हाल ही में संचार माध्यमों से यह एक दुःखद तथ्य सामने आया है कि भारतीय सेनाओं में अधिकारियों के कई हजार पद इसलिये रिक्त पड़े हैं कि उन पर उपयुक्त अभ्यर्थी ढूँढे नहीं मिल रहे हैं। कारण स्पष्ट है; आधुनिक युवा पीढ़ी के लिये जब आकर्षक वेतन भुगतान करने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में रोजगार के जोखिम शून्य बेहतर अवसर उपलब्ध हैं तो वे आखिर जोखिम भरी सैन्य–सेवाओं में अपेक्षाकृत अल्प वेतन पर काम करने क्यों जायेंगे। इस कारण युवकों में सैन्य शिक्षा एवं सैन्य सेवाओं के प्रति गम्भीर अरुचि उत्पन्न हो रही है। हमारे लिये यह स्थिति एक राष्ट्रीय चिन्ता का विषय होना चाहिये।

आचार्य कौटिल्य ने पग–पग पर सैन्य शिक्षा एवं सैन्य बल को समृद्ध रखने पर बल दिया है। किसी भी परिस्थिति में वह उनकी उपेक्षा किये जाने की अनुमति नहीं देता

है। क्योंकि उनकी उपेक्षा से राज्य दुर्बल होता है। इसलिये हमारा विनम्र सुझाव है कि रक्षा मंत्रालय से सम्बद्ध उच्च अधिकारियों, सैन्य विशेषज्ञों, रक्षा विशेषज्ञों एवं सैन्य विज्ञान से सम्बद्ध शिक्षाविदों को आपस में मिल बैठकर इस गम्भीर विषय पर चिन्तन–मनन करना चाहिये। उन उपायों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये जिनसे वर्तमान युवा पीढ़ी में सैन्य शिक्षा तथा सैन्य सेवाओं के प्रति उत्पन्न हुई अरुचि को दूर किया जा सके; तथा राष्ट्र–रक्षा एवं देश हित की भावना के साथ उसमें उक्त विषयों के प्रति स्वाभाविक रुचि उत्पन्न की जा सके। जैसे भी हो, कौटिल्य के दिशा निर्देशों के अनुरूप सैन्य शिक्षा एवं सैन्य बल को सुरुचिपूर्ण ढंग से समृद्ध करने में ही राष्ट्र की भलाई है।

4. आचार्य कौटिल्य ने 'कूट युद्ध' तथा 'तूष्णी युद्ध' (गुप्तचरों द्वारा विष, औषधि तथा विस्फोट आदि के प्रयोग द्वारा शत्रु का नाश करना) की जिन तकनीकों का शत्रु–राज्य के साथ निःसंकोच प्रयोग करने हेतु निर्दिष्ट किया है; उनके प्रयोग की व्यवस्था करने में संकोच करके हमारे द्वारा पुनः एक गम्भीर चूक की जा रही है। कौटिलीय मत के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से आज हमें उन तकनीकों के प्रयोग पर पुनर्विचार करने की बलवती आवश्यकता है। क्योंकि हमारे समक्ष आज बड़ी विषम परिस्थितियाँ हैं। एक ओर विदेशी गुप्तचर एजेन्सियाँ तथा आतंकवादी संगठन इन विध्वंसक तकनीकों का हमारे देश में भरपूर प्रयोग कर रहे हैं तथा आये दिन सैकड़ों–हजारों बेगुनाह नागरिकों का नरसंहार कर रहे हैं। दूसरी ओर हम अपने आदर्शों, सिद्धान्तों तथा नैतिकता के नाम पर इनका प्रयोग करने में भारी संकोच कर रहे हैं। फलस्वरूप विरोधी शक्तियों का मनोबल उत्तरोत्तर बढ़ता चला जा रहा है। तथा हमारी आन्तरिक एवं राष्ट्रीय सुरक्षा निरन्तर कमजोर पड़ती जा रही है। इसलिये समय की प्रबल माँग है कि हर प्रकार का संकोच त्याग कर हम भी युद्ध की इन कूट तकनीकों का प्रयोग कम से कम भारत के अन्दर तथा बाहर चलाये जा रहे भारत विरोधी आतंकी प्रशिक्षण शिविरों एवं अन्य आतंकी ठिकानों पर इस दृष्टि से अवश्य

करें कि वहाँ राजद्रोही विध्वंसक शक्तियों का सफाया हो। हाँ, ऐसा करते समय इतना ध्यान अवश्य रखा जाये कि निर्दोष एवं बेगुनाह लोग किसी भी रूप में प्रभावित न होने पायें।

तृतीय बिन्दु : संस्कृत के प्रायः सभी ग्रन्थों की विषय वस्तु पारम्परिक रही है। उनमें विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरने वाला वैज्ञानिक पक्ष नगण्य ही है। लेकिन जब कुछ समय पूर्व पता चला कि कौटिलीय अर्थशास्त्र पर 'रक्षा अनुसन्धान विकास संगठन (D.R.D.O.) के रक्षा वैज्ञानिक तथा पूना विश्वविद्यालय के रसायन वैज्ञानिक कोई गम्भीर वैज्ञानिक शोध कर रहे हैं तो सभी को विश्वास करना पड़ा कि 'अर्थशास्त्र' का वैज्ञानिक पक्ष भी अत्यन्त समृद्ध तथा अनुसंधान करने योग्य है। यहाँ पर विचारणीय बिन्दु यह है कि 'अर्थशास्त्र' के वे कौन से विषय एवं प्रकरण हैं जिन पर वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन एवं अनुसंधान किये जाने की संभावना है ?

समाधान–उत्तर :

1. कौटिलीय अर्थशास्त्र में दैवी एवं मानुषी आपदाओं के निवारण हेतु पग–पग पर अथर्ववेद के ज्ञाताओं से मार्गदर्शन एवं सहायता लेने का निर्देश दिया गया है।[100] इससे यह सम्भावना बलवती होती है कि अथर्ववेद में आपदा–प्रबन्धन संबंधी प्रचुर सामग्री उपलब्ध है, जिसकी अभी तक लोगों को कोई विशेष जानकारी नहीं हैं। इसलिये आज आपदा–प्रबन्धन की दृष्टि से अथर्ववेद के वैज्ञानिक अनुसन्धान की नितान्त आवश्यकता है। 'अर्थशास्त्र' में भी आपदा प्रबन्धन संबंधी पर्याप्त सामग्री है।[101] अतः अथर्ववेद तथा अर्थशास्त्र जैसे पारम्परिक ग्रन्थों से तद्विषयक सामग्री संकलित करके 'आपदा–प्रबन्धन' को ज्ञान–विज्ञान की एक स्वतंत्र शाखा के रूप में विकसित किया जा सकता है। तथा उसे उच्च शिक्षा/तकनीकी शिक्षा के पाठ्यक्रम में निर्धारित किया जा सकता है। ताकि देश में 'आपदा–प्रबन्धन' के विषय विशेषज्ञ पर्याप्त मात्रा

---

100. देखें– कौ० अर्थ० का 'उपनियातप्रतीकारः' नामक अध्याय, 4/78/3, पृष्ठ 356–60
101. हरिओमशरण निरंजन, आचार्य कौटिल्य का दैवी आपदा प्रबन्धन 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका (इलाहाबाद) जनवरी–मार्च 2005 में प्रकाशित शोध आलेख

में तैयार हो सकें।

2. कौटिलीय 'अर्थशास्त्र का 'औपनिषदिक' नामक पूरा का पूरा चौदहवाँ अधिकरण वैज्ञानिक दृष्टि से अनुसन्धान किये जाने योग्य है। क्योंकि इसमें विभिन्न वनस्पतियों के बीज, छाल, फल, फूल, पत्ते, राख और जड़ी बूटियों, विभिन्न जीवों के मल, मूत्र, रक्त, दूध, घी, अण्डे, खाल, सींग, खुर, दाँत, हड्डियाँ और केंचुल; तथा विभिन्न प्रकार के रस, विष और औषधि आदि का रासायनिक प्रयोग करके उनके मिश्रण से एक से एक चूर्ण, क्वाथ (काढा), दवा, गैस, धुआँ, तेल और अंजन आदि तैयार किये जाते हैं; कीटयोग, मदनयोग, दंशयोग, विरूपकरणयोग, श्वेतीकरणयोग, प्रस्थापनयोग तथा अन्तर्धान योग जैसे अनेक विलक्षण योग तैयार किये जाते हैं। कौटिल्य के ये प्रयोग इतने अद्भुत हैं कि इनके परिणाम देखकर आज के वरिष्ठ वैज्ञानिक भी हतप्रभ हो सकते हैं। उदाहरणार्थ जब जिसका चाहो रंगरूप बदल दो; चाहो तो किसी अच्छे खासे चलते फिरते मनुष्य की छाया और काया–दोनों गायब कर दो; चाहो तो झुण्ड के झुण्ड लोगों को असमय में ही सुला दो; जब जिसको चाहो अन्धा, गूँगा, बहरा, पागल और बेहोश बना दो; कोढी, प्रमेह रोगी और क्षय रोगी बना दो; जिसे चाहो उसे बिना अस्त्र–शस्त्र के ही पल भर में मार दो; चाहो तो सौ योजन (800 मील) तक बिना किसी थकावट के एक ही चाल में चलते जाओ; जिसे चाहो उसे एक माह तक भूख ही नहीं लग सकती। इस संबंध में उल्लेखनीय तथ्य यह है कि उक्त सभी रसायन योग मुख्य रूप से दो रूपों में तैयार किये गये हैं। प्रथम श्रेणी में वे रसायन आते हैं जिनका प्रयोग विजिगीषु राजा अपने शत्रु को बिना युद्ध आदि के ही क्षति पहुँचाने के लिये कर सकता है। दूसरे प्रकार के वे रसायन हैं जिनका प्रयोग विजिगीषु राजा द्वारा तब किया जाता है जब उसका शत्रु उस पर पूर्वोक्त घातक रसायनों का प्रयोग करके उसे क्षति पहुँचाता है। निश्चित ही कौटिल्य के उपरोक्त प्रयोग विज्ञान की आधुनिक प्रयोगशालाओं में परीक्षण तथा तद्विषयक अग्रेतर

अनुसन्धान किये जाने योग्य हैं। समाज एवं राष्ट्र को उनसे अनेक लाभकारी परिणाम मिलने की सम्भावना है।

3. कौटिलीय अर्थशास्त्र का 'आशुमृतक परीक्षा' नामक अध्याय (4/82/7, पृष्ठ 372–75) भी वैज्ञानिक अनुसन्धान की अपेक्षा रखता है। इसमें मृत व्यक्ति के शव–परीक्षा की वैज्ञानिक तकनीकों के साथ–साथ उसकी हत्या या आत्महत्या जैसी जटिल गुत्थियों को सुलझाने की व्यावहारिक तरकीबें दी गई हैं। आत्महत्या की स्थिति में तद्विषयक विषम परिस्थितियों को उजागर करने तथा हत्या की स्थिति में कातिलों और षड़यंत्रकारियों का पता लगाने की कारगर युक्तियाँ दी गई है। आज के सामाजिक एवं राजनीतिक अपराधीकरण के दौर में कातिल लोग मृतक का कत्ल करने के बाद उसकी लाश को एक अज्ञात एवं लावारिश लाश के रूप में फेंक देते हैं। चिकित्सा विज्ञान की आधुनिक नवीनतम तकनीकें भी उस पर पड़े इन रहस्यमय पर्दो को नहीं हटा पाती हैं कि आखिर मृतक की हत्या किन परिस्थितियों में ओर किन कारणों से हुई है। इस कारण जॉच एजेन्सियाँ अपराध की तह तक नहीं पहुँच पाती हैं तथा अपराधी बिना कोई दण्ड पाये छूट जाते हैं। इस प्रकार समाज में अपराधवृत्ति निरकुंश होकर बढ़ती चली जा रही है। इसलिये आवश्यक है कि कौटिल्य ने अपने उपरोक्त अध्याय में शव परीक्षण की तकनीकें तथा हत्या जैसे संगीन अपराध की तह तक जाने की जो सूक्ष्म पगडण्डियाँ दिखाई हैं उन पर आधुनिक चिकित्सा वैज्ञानिक तथा अपराध शास्त्री मिलकर अध्ययन एवं अनुसन्धान करें; तथा निरंकुश अपराधों पर प्रभावी अंकुश लगाने का मार्ग प्रशस्त करें।

चतुर्थ बिन्दु : अर्थशास्त्र जैसे राजतन्त्रीय ग्रन्थ से हम अपनी लोकतन्त्रीय कमियों को कैसे दूर कर सकते हैं ?

समाधान–उत्तर :

1. कौटिल्य ने राजतंत्र को स्वीकृति देते हुये भी प्रजाहित एवं प्रजा–सुख को ही सर्वोपरि माना है। किन्तु वर्तमान प्रजातंत्र में प्रजाहित गौण हो गया है। भूमण्डलीकरण और

उदारीकरण के दौर में अब बाजार–हित, पूँजी–हित, नियोजक–हित एवं कम्पनी–हित सर्वोपरि हो गये हैं। कौटिलीय अर्थशास्त्र का नियंत्रित बाजार एवं नियंत्रित अर्थव्यवस्था अब मुक्त बाजार और मुक्त अर्थव्यवस्था बन गये हैं। जिनमें बाजार, व्यापारी और विदेशी कम्पनियों को अब मनचाहा लाभ कमाने की, पूँजी क्षेत्र बढ़ाने की तथा प्रजा का आर्थिक शोषण करने की पूरी आजादी है। सरकारी और गैर सरकारी एजेन्सियों की सर्वेक्षण रिपोर्ट आगाह कर रही है कि वर्तमान अर्थव्यवस्था से रोजगार के अवसर घटे हैं; बेरोजगारी और विषमता की खाई बढ़ी है, गरीबों की गरीबी बढ़ी है, भुखमरी बढ़ी है, जन–असन्तोष उभरा है। निश्चित रूप से यह हमारे वर्तमान लोकतंत्र की बहुत बड़ी कमी है। इसी कमी को हम कौटिलीय अर्थशास्त्र से प्रेरणा लेकर, प्रजाहित को ही सर्वोच्च वरीयता देकर तथा मुक्त अर्थव्यवस्था के स्थान पर नियंत्रित अर्थव्यवस्था अपनाकर दूर कर सकते है।

2. प्राचीनकाल से ही भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है। कृषि एवं पशुपालन यहाँ की आम जनता के दो मुख्य व्यवसाय एवं आजीविका के साधन रहे हैं। यहाँ की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था भी कृषि पर ही आधारित रही है। इसलिये कौटिल्य ने राजा को उक्त दोनों व्यवसायों में आने वाली सभी प्रकार की बाधाओं को दूर करने हेतु निर्दिष्ट किया है। ताकि उनके समुचित विकास से अपना राज्य भी समुन्नत एवं समृद्ध बन सके।[102] लेकिन हमारे वर्तमान लोकतंत्र में कौटिल्य के उक्त निर्देशों के अनुपालन का स्पष्ट अभाव दिखाई देता है। सरकार को किसानों और पशुपालकों की कठिनाइयों से अब कोई सरोकार नहीं है। नई सुविधायें देने के स्थान पर सब्सिडी जैसी उनकी पूर्व प्रदत्त सुविधायें छीनी जा रही हैं। इसलिये उनकी कठिनाइयाँ दिनों–दिन बढ़ती जा रही है। खेती की लागत बढ़ रही है और पैदावार घट रही है। फसल–मूल्य स्थिर हैं। इस कारण उन्हें अपने श्रम एवं लागत का उचित मूल्य नहीं मिल पा रहा है। फलस्वरूप किसान वर्ग कर्ज में डूब रहा है और आर्थिक तंगी का शिकार होकर आत्म

---

102. दण्डविष्टिकराबाधैः. . . . . . .व्याधिभिश्च पशुव्रजान्। कौ0 अर्थ0 2/17/1, पृष्ठ 81

हत्यायें करने को विवश हो रहा है। यह हमारे वर्तमान लोकतंत्र की दूसरी कमी हैं, जिसे कौटिल्य से प्रेरणा लेकर दूर किया जा सकता है। राष्ट्र की रीढ़ कहे जाने वाले किसानों की कठिनाइयों को दूर करने के उद्देश्य से कोई ठोस एवं कारगर 'कृषि नीति' बनाकर कृषि क्षेत्र में दूसरी हरित क्रान्ति लायी जा सकती है।

3. कौटिलीय अर्थशास्त्र में वर्णित राजतंत्र व्यवस्था इसलिये प्रभावी एवं सफल थी कि तत्कालीन प्रशासनिक कार्य–संस्कृति का मूलाधार–त्वरित कार्यवाही, त्वरित निर्णय एवं यथोचित दण्ड था। किसी भी प्रकरण पर किसी भी परिस्थिति में वहाँ विलम्बित कार्यवाही, विलम्बित निर्णय एवं अनुचित/अपर्याप्त दण्ड अनुमन्य नहीं था। इसीलिये उस व्यवस्था के अन्तर्गत सच्चे अर्थों में न्याय और कानून का शासन था। सभी क्षेत्रों में अमन चैन था। लेकिन कौटिलीय अर्थशास्त्र की उस व्यावहारिक कार्य–संस्कृति की उपेक्षा के कारण हमारे लोकतंत्र में एक अन्य कमी अनधिकृत रूप से घुसपैठ कर चुकी है। हमारी वर्तमान कार्य–संस्कृति विलम्बित कार्यवाही, विलम्बित निर्णय एवं अनुचित/अपर्याप्त दण्ड के कारण पंगु हो चुकी है। उसमें कानून और न्याय के क्षेत्र में बड़ी कारुणिक विसंगति देखने को मिलती है। यथार्थ के धरातल पर वहाँ कानून केवल गरीबों और निर्बलों के लिये है; अमीरों और बाहुबलियों के लिये कोई कानून नहीं है। जबकि न्याय की स्थिति इससे भिन्न है। वहाँ न्याय केवल अमीरों के लिये है, गरीबों के लिये कोई न्याय नहीं है। इस कमी को दूर करने के लिये अर्थशास्त्र हमें पर्याप्त मार्गदर्शन देता है। अपनी त्वरित कार्यवाही का आदर्श नमूना प्रस्तुत करता हुआ वह कहता है कि कोई भी अपराध घटित होने के बाद तीन दिन के अन्दर सभी सन्दिग्ध लोगों से पूँछताछ पूरी कर ली जाना चाहिये। तीन दिन के बाद उस संबंध में किसी भी संदिग्ध व्यक्ति को गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। क्योंकि इतने दिन बीतने के बाद फिर उससे सही बातें मालूम नहीं हो सकती हैं।[103]

---

103. त्रिरात्रादूर्ध्वमग्राह्यः शङ्कितकः पृच्छाभावादन्यत्रोपकरणदर्शनात्। कौ० अर्थ० 4/83/8, पृष्ठ 376

इस प्रकार त्वरित निर्णय के लिये प्रत्येक कार्य की समय सीमा एवं समयबद्धता निर्धारित थी। उस समय सीमा के अन्दर निर्णय किया जाना अपरिहार्य था। किसी भी परिस्थिति में निर्णय के पहले उसकी मियाद नहीं निकलना चाहिये, बल्कि मियाद के अन्दर ही निर्णय हो जाना चाहिये। इसलिये कौटिल्य ने राजा को निर्दिष्ट किया है कि वह उन मामलों की सुनवाई पहले करे जिनकी मियाद निकल रही हो। क्योंकि मियाद निकल जाने पर कोई भी मामला या तो कष्ट साध्य हो जाता है अथवा सर्वथा असाध्य हो जाता है।[104] 'अर्थशास्त्र' में उचित एवं पर्याप्त दण्ड का आदर्श उदाहरण यह है कि एक ओर वह राजा को अपने पुत्र एवं शत्रु–दोनों के लिये समान दण्ड से दण्डित करने का निर्देश देता है।[105] तो दूसरी ओर अनियमितता या भ्रष्टाचार का आरोप सिद्ध पाये जाने पर कोषाध्यक्ष जैसे उच्च अधिकारी को भी प्राणदण्ड देने का प्राविधान करता है।[106] कौटिलीय अर्थशास्त्र में उपलब्ध ऐसे ही अन्य विधि विधानों से प्रेरणा लेकर हम त्वरित कार्यवाही, त्वरित निर्णय एवं उचित/पर्याप्त दण्ड व्यवस्था वाली व्यावहारिक कार्य–संस्कृति को पुनर्स्थापित कर सकते हैं।

4. कौटिलीय राजतंत्र की भाँति वर्तमान लोकतंत्र में भी अनेकानेक प्रशासनिक पद सृजित हैं; जिन पर नियुक्त अधिकारी अपने दायित्व–निवर्हन का प्रयास करते हैं किन्तु 'अर्थशास्त्र' के अध्ययन से अनुभव होता है कि उसमें सृजित कुछ महत्वपूर्ण पद ऐसे हैं जो वर्तमान व्यवस्था में नहीं है किन्तु समाज व राज्य को उनकी किसी न किसी रूप में आवश्यकता है। यदि वर्तमान में इन पदों को कुछ नाम परिवर्तन के साथ सृजित करके उपयोग में लाया जाये तो समाज व राज्य की पर्याप्त भलाई संभव है। अर्थशास्त्र में वर्णित ऐसे कुछ महत्वपूर्ण पद निम्न प्रकार हैं–

---

104. सर्वमात्ययिकं कार्यं. . . . . . . असाध्यं वा विजायते। कौ0 अर्थ0 1/14/18, पृष्ठ 63
105. राज्ञा पुत्रे च शत्रौ च यथादोषं समं धृतः। कौ0 अर्थ0 3/56–57/1, पृष्ठ 259
106. कोशाधिष्ठितस्य कोशावच्छेदे घातः। कौ0 अर्थ0 2/21/5, पृष्ठ 97

(अ) पुरोहित

कौटिल्य ने दैवी आपदा–नियंत्रण को उच्च वरीयता प्रदान करते हुये उसके प्रबन्धन हेतु अपने सर्वोच्च अठारह अधिकारियों (अष्टादश तीर्थ) में 'पुरोहित' का एक स्वतंत्र पद निर्धारित किया था। लेकिन दुर्भाग्यवश वर्तमान शासन पद्धति में इस कार्य को उतनी वरीयता नही दी जा रही है। इस कारण केन्द्रीय सरकार में दैवी आपदा प्रबन्धन के लिये किसी स्वतंत्र मंत्रालय का प्राविधान नहीं है। अतः आचार्य कौटिल्य से प्रेरणा लेते हुये यदि विभिन्न विनाशकारी दैवी आपदाओं से निपटने के लिये स्वतंत्र 'आपदा प्रबन्धन मंत्रालय' का गठन कर दिया जाये तो देश को प्रतिवर्ष होने वाली जान–माल की असीम क्षति से बचाने में अपेक्षित सहायता मिल सकती है।

(ब) देवताध्यक्ष

कौटिलीय अर्थशास्त्र में 'देवताध्यक्ष' का एक महत्वपूर्ण पद था जो मन्दिरों की आय–व्यय का लेखा जोखा तथा वहाँ की प्रबन्धन व्यवस्था के प्रति उत्तरदायी था।[107] लेकिन वर्तमान में ऐसा कोई प्रशासनिक पद नहीं है। जबकि हमारे धर्मप्राण देश भारत के कोने कोने में ऐसे हजारों ख्यातिलब्ध मन्दिर है जहाँ प्रतिदिन विपुल धनराशि चढोत्तरी के रूप में एकत्रित होती है। इतनी भारी धनराशि का वहाँ के पण्डे–पुजारी क्या करते है, इसका किसी को कुछ भी पता नहीं होता हैं। हाल ही में एक साप्ताहिक पत्रिका के द्वारा काशी विश्वनाथ मन्दिर में करोड़ों की हेराफेरी का खुलासा किया गया है।[108] आचार्य कौटिल्य से प्रेरणा लेते हुये हम 'देवताध्यक्ष' जैसा कोई पद सृजित करके तिहरा लाभ उठा सकते हैं –

(अ) मन्दिरों से होने वाली आय का दुरूपयोग रूकेगा।

(ब) मन्दिरों की आय को जनकल्याण एवं विकास कार्यों में लगाया जा सकेगा।

(स) मन्दिरों की अकूत सम्पदा हथियाने के लालच में वहाँ के पुजारियों और मन्दिर प्रभारियों की हत्या जैसे संगीन अपराधों पर अंकुश लग सकेगा।

---

107. देवताध्यक्षो दुर्गराष्ट्रदेवतानां यथास्वमेकस्थं कोशं कुर्यात्। कौ0 अर्थ0 5/90/2, पृष्ठ 415
108. योगेश मिश्र, चढावे की मलाई, आउट लुक (साप्ताहिक) 24 जुलाई, 2006 में प्रकाशित लेख

(स) सुवर्णाध्यक्ष

सर्राफा व्यवसाय के नियन्त्रण हेतु कौटिलीय अर्थशास्त्र में 'सुवर्णाध्यक्ष' नामक महत्वपूर्ण पदाधिकारी का प्राविधान किया गया था। उसके द्वारा सर्राफा व्यवसाय के अनेक महत्वपूर्ण नियम निर्धारित किये जाते थे जिनका पालन करना प्रत्येक सुनार के लिये आवश्यक था। उन नियमों का किसी भी रूप में उल्लंघन किये जाने पर सम्बन्धित व्यक्ति को समुचित दण्ड का प्राविधान था।[109] लेकिन वर्तमान व्यवस्था में ऐसा कोई प्रशासनिक पद नहीं है। इस कारण आज सोना चाँदी जैसी कीमती धातुओं के व्यवसाय पर सरकार का कोई सीधा नियंत्रण न होने से स्वर्णकार लोग अपने व्यवसाय में पूर्ण स्वतंत्र हैं। इस कारण उनके हाथों केवल अशिक्षित एवं अल्प शिक्षित लोग ही नहीं, अपितु सुशिक्षित एवं प्रतिष्ठित लोग भी बड़े पैमाने पर ठगे जाते हैं। इसलिये वर्तमान में सर्राफा जैसे कीमती व्यवसाय के सुनियंत्रण हेतु तथा आम जनता की ठगी एवं शोषण रोकने हेतु 'सुवर्णाध्यक्ष' जैसा पद सृजित किया जा सकता है।

पञ्चम बिन्दु : भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद – इन दो प्रवृत्तियों/विकृतियों से जहाँ सारा संसार ग्रस्त है, वहीं आचार्य कौटिल्य ने इन दोनों विकृतियों से बचने में विलक्षण सफलता प्राप्त की है। वस्तुतः उन्होंने अपने चिन्तन में इन दोनों विकृतियों को परिष्कृत करते हुये भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद में समन्वय का मध्यमार्ग प्रस्तुत किया है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में इस भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद के समन्वय का मध्यमार्ग किस रूप में प्रस्तुत हुआ है ?

समाधान–उत्तर :

1. अर्थशास्त्र ग्रन्थ खोलते ही उसके मंगलाचरण का प्रथम वाक्य– 'ॐ नमः शुक्रबृहस्पतिम्याम' इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि इस ग्रन्थ का रचयिता आचार्य कौटिल्य भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद के समन्वय का प्रयास करता हुआ चल रहा है। क्योंकि उपरोक्त वाक्य में वह सर्वप्रथम जिन दो महान गुरूओं को नमन करता है उनमें उसने

---

109. देखें– कौ0 अर्थ0 का 'अक्षशालायां सुवर्णाध्यक्षः' नामक अध्याय, 2/29/13, पृष्ठ 143–49

अपनी किसी गहरी सोच के तहत राक्षसों के गुरू शुक्राचार्य को प्रथम स्थान प्रदान किया है तथा देवताओं के गुरू बृहस्पति को द्वितीय स्थान दिया है। ये दोनों क्रमशः भौतिकवाद एवं अध्यात्मकवाद के प्रतीक हैं। शुक्राचार्य जहाँ शक्ति एवं यथार्थ के समर्थक हैं वही बृहस्पति अध्यात्म एवं आदर्श के पोषक हैं।[110]

कौटिल्य ने भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद के प्रतीक इन दोनों गुरूओं–शुक्र एवं बृहस्पति को ग्रन्थारम्भ में ही एक साथ नमन करके प्रमाणित किया है कि उनकी चिन्तनधारा में भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद के समन्वय की पयस्विनी प्रवाहित हो रही है।

2. कौटिल्य द्वारा प्रस्तुत विद्या–संगणना से भी भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद का समन्वय प्रतिध्वनित होता है। कौटिल्य से पूर्ववर्ती आचार्य मनु, बृहस्पति और शुक्र आदि चिन्तकों ने भौतिकवादी विद्या 'आन्वीक्षकी' विद्या को मान्यता प्रदान नहीं की है। कौटिल्य ही ऐसे प्रथम प्राचीन चिन्तक है जिन्होंने त्रयी, वार्ता और दण्डनीति के साथ–साथ चौथी 'आन्वीक्षकी' विद्या को भी मान्यता प्रदान करते हुये नास्तिक दर्शन (लोकायत) को उसमें अन्तर्निहित किया।[111] इतना ही नहीं, उन्होंने इस नास्तिक दर्शन से युक्त आन्वीक्षकी विद्या को सभी विद्याओं में सर्वोपरि रखा तथा निर्दिष्ट किया कि यह आन्वीक्षकी विद्या सर्वदा ही सभी विद्याओं की दीपक स्वरूप है, सभी कर्मों का साधन है तथा सभी धर्मों का आश्रय मानी गई है।[112] इस प्रकार कौटिल्य ने अपनी चार विद्याओं में त्रयी विद्या (ऋग्वेद, सामवेद तथा यजुर्वेद आदि तीन वेद) को मान्यता देकर अध्यात्मवाद का तथा आन्वीक्षिकी, वार्ता (कृषि, पशुपालन और व्यापार) और

---

110. पौराणिक मान्यताओं के अनुसार शुक्राचार्य के पास अपने मृत राक्षस–शिष्यों को पुनर्जीवित करने की अद्भुत मंत्रशक्ति थी; जबकि बृहस्पति की स्थिति यह थी कि चन्द्रमा के द्वारा अपनी पत्नी–तारा का अपहरण कर लिये जाने पर वे उसे भी नहीं छुड़ा सके। अन्त में जाकर उन्हें ब्रह्मा जी से अनुनय विनय करना पड़ी।

(वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी कोश, पृष्ठ 427 व 1023 पर क्रमशः 'तारा' एवं 'शुक्र' का विवरण)

111. त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति. . . .साङ्ख्यं योगो लोकायतं चेत्यान्वीक्षकी। कौ0 अर्थ0 1/1/1, पृष्ठ 8

112. प्रदीपः सर्वविद्यानाम्. . . . . . शश्वदान्वीक्षकी मता। कौ0 अर्थ0 1/1/1, पृष्ठ 9

दण्डनीति विद्याओं को मान्यता देकर भौतिकवाद का समन्वय करने का सफल प्रयास किया है।

3. उपरोक्त विद्याओं में अन्तर्निहित विषयों के विवेचन में भी भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद का समन्वय प्रदर्शित किया गया है। कौटिल्य के अनुसार आन्वीक्षकी विद्या में अन्तर्निहित विषय हैं–सांख्य दर्शन, योगदर्शन तथा लोकायत दर्शन (नास्तिक दर्शन)। इनमें प्रथम दो दर्शन अध्यात्मवादी है तथा तीसरा दर्शन भौतिकवादी है। त्रयी विद्या के विषय हैं–धर्म और अधर्म। इनमें धर्म अध्यात्मवाद से एवं अधर्म भौतिकवाद से जुड़ा होता है। वार्ता विद्या के विषय हैं–अर्थ और अनर्थ; जिनमें पहले का संबंध अध्यात्मवाद से तथा दूसरे का भौतिकवाद से है। इसी प्रकार दण्डनीति विद्या के विषय हैं–नीति एवं अनीति;[113] जो क्रमशः अध्यात्मवाद एवं भौतिकवाद से सम्पृक्त हैं। इससे स्पष्ट होता है कि कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट चारों विद्याओं के वर्ण्य विषयों में भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद का समन्वय है।

4. अपने 'अर्थशास्त्र' में आचार्य कौटिल्य जब चारों वर्णों और चारों आश्रमों के लोगों को अपने–अपने धर्म–कर्म में प्रवृत्त रहने का निर्देश देते है[114] उस समय उनके समक्ष अध्यात्मवाद होता है और वहीं पर जब वे चारों वर्णों और चारों आश्रमों की रक्षा के लिये राजा के 'दण्ड' की अपरिहार्यता स्वीकार करते हैं तो उसी समय उनके समक्ष भौतिकवाद भी होता है।[115] इस रूप में भी वह अध्यात्मवाद एवं भौतिकवाद का समन्वय करने का प्रयास करते हैं।

5. कौटिलीय अर्थशास्त्र में अनेक बार 'इहलोक' तथा 'परलोक' का उल्लेख आया है। यदि 'इहलोक' को भौतिकवाद का और 'परलोक' को अध्यात्मवाद का प्रतीकात्मक स्वरूप माना जाये तो भी वहाँ पर भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद का समन्वय सहज स्वीकार्य होता है।

---

113. . . . . . नयापनयौ दण्डनीत्याम्। उपरोक्त, पृष्ठ 8
114. स्वधर्मः स्वर्गायानन्त्याय च। तस्यातिक्रमे लोकः सङ्करादुच्छिद्येत्। कौ0 अर्थ0 1/1/2, पृष्ठ 11
115. चतुर्वर्णाश्रमो लोको राज्ञा दण्डेन पालितः। कौ0 अर्थ0 1/1/3, पृष्ठ 13

षष्ठम बिन्दु : यह सच है कि कौटिलीय अर्थशास्त्र हमारी हरेक वर्तमान समस्या का समाधान नहीं कर सकता; और न उसके सभी विधि विधान वर्तमान राजनीति के लिये प्रासंगिक हो सकते है। ऐसी स्थिति में जिज्ञासा उठती है कि अर्थशास्त्र के वे कौन से नियम व सिद्धान्त हैं जो कौटिल्यकाल में भले ही प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण रहे हों किन्तु वर्तमान राजनीति की दृष्टि से अप्रासंगिक, असामयिक एवं अव्यावहारिक हैं। ताकि वर्तमान पीढ़ी उनके अन्धा-नुकरण की त्रुटि से बच सके।

समाधान–उत्तर :

1. कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट नितान्त केन्द्रीयकृत शासन प्रणाली आधुनिक युग के लिये अप्रासंगिक एवं अव्यावहारिक मानी जा सकती है। उस व्यवस्था में निर्णय लेने एवं न्याय करने की अन्तिम शक्ति राजा में ही निहित की गई है। जैसा कि पूर्व में इंगित किया जा चुका है कि कौटिल्य की यह नीति प्राचीन काल में भी सदैव उपयोगी सिद्ध नही हुई है। बल्कि इस नीति ने एक ऐसी द्विधारी तलवार का काम किया है जिसकी एक धार ने यदि अनुकूल परिस्थितियों में शत्रुओं को मारा है तो उसी की दूसरी धार ने प्रतिकूल परिस्थितियों में स्वयं राजा को भी मार गिराया है। जब तक राजा सबल एवं नीति निपुण रहा तब तक तो कौटिल्य की यह नीति सफल होती रही। लेकिन जैसे ही कोई निर्बल एवं अकुशल राजा सत्ताहीन हुआ तो केन्द्रीय सत्ता भी दुर्बल होती गई। इतिहास इस बात का साक्षी है कि दुर्बल सत्ता को समाप्त करने में शत्रु को कभी कोई कठिनाई हुई। मौर्य साम्राज्य के साथ भी यही हुआ। चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार और अशोक जैसे शक्तिशाली एवं नीतिवेत्ता राजा जब तक मौजूद रहे, इस साम्राज्य का कोई बाल–बाँका भी नहीं कर सका। लेकिन उनके बाद जैसे ही कुदाल और दशरथ जैसे दुर्बल एवं अकुशल राजाओं का दौर शुरू हुआ तो फिर इस साम्राज्य को कोई बचा भी नहीं सका। अतः कौटिल्य द्वारा स्थापित राजा के प्रति इतना अधिक केन्द्रीकृत शासन का स्वरूप आधुनिक राजनीति के लिये प्रासंगिक नहीं है।

2. कौटिल्य काल में न्यायपालिका स्वतंत्र नहीं थी। 'प्रदेष्टा' नामक न्यायिक अधिकारी को राजा और अमात्यों की सहमति लेना पड़ती थी।[116] न्यायपालिका की स्वतंत्र सत्ता के पक्षधर वर्तमान युग के लिये उक्त मत प्रासंगिक नहीं हो सकता है।

3. कौटिल्य द्वारा एक ही अपराध के लिये भिन्न–भिन्न वर्णों को भिन्न–भिन्न प्रकार के दण्डों का प्रयोग तथा ब्राह्मण का सभी प्रकार के अपराधों में अनुत्पीडनीय होने संबंधी प्राविधान आधुनिक युग के लिये प्रासंगिक नहीं है। क्योंकि वर्तमान प्रजातंत्र–युग में 'कानून के समक्ष समानता' के सिद्धान्त को जनतंत्र का मुख्य आधार माना जाता है।

4. ज्योतिष, शकुन तथा धार्मिक अनुष्ठान हेतु राजा को परामर्श देने वाला जो 'पुरोहित' पद कौटिल्य काल में अत्यन्त महत्वपूर्ण था, आधुनिक युग में वह अप्रासंगिक हो चुका है। किन्तु एक सलाहकार, मार्गदर्शक एवं दैवी आपदा नियंत्रक के रूप में पुरोहित का पद आज भी महत्व रखता है।

5. कौटिलीय शासन में राजा के द्वारा अपने गुप्तचरों के माध्यम से जनता को तरह–तरह के ढोंग, पाखण्ड एवं मिथ्याडम्बर दिखाते हुये उसे मूर्ख बनाकर, धोखा देकर धन संग्रह किये जाने का जो परामर्श दिया गया है, उसे आधुनिक युग में प्रासंगिक नही माना जा सकता है। बल्कि इसे तो जनता के अन्धविश्वासों को प्रोत्साहन देना और उसका शोषण करना कहा जायेगा।

6. चूँकि आज के युग में राजतंत्र अप्रासंगिक हो चुका है, अतः राज परिवार के युवराज, राजमाता, तथा पटरानी (महारानी) आदि अति विशिष्ट व्यक्तियों को सर्वोच्च वेतन भुगतान किया जाना वर्तमान लोकतांत्रिक राजनीति के लिये प्रासंगिक नहीं है। सम्भवतः इसीलिये भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में पुराने राजा–महाराजाओं के प्रिवीवर्स बहुत पहले ही समाप्त किये जा चुके हैं।

7. सता सताकर प्राणदण्ड दिये जाने (चित्रघात) तथा अंग--भंग के कठोर शारीरिक दण्ड को आधुनिक मानवाधिकारवादी युग में प्रासंगिक नहीं माना जा सकता है। क्योंकि ये अमानवीयता के परिचायक हैं।

---

116. पुरुषं चापराधं च....... कल्पयेदन्तरा स्थितः। कौ0 अर्थ0 4/85/10, पृष्ठ 388

8. कौटिलीय नीति के अनुसार राजा का नीति–अनीति एवं शुभ–अशुभ का विचार किये बिना येन केन प्रकारेण राज्य विस्तार करने का जो परम लक्ष्य था वह आधुनिक राजनीति में प्रासंगिक नहीं माना जा सकता है। क्योंकि आधुनिक राज्य का चरम लक्ष्य राज्य विस्तार नहीं अपितु उसकी सम्प्रभुता, एकता एवं अखण्डता को सुरक्षित रखते हुये उसका बहुमुखी विकास करना है। 'राज्य विस्तार' का एकमात्र लक्ष्य बनाकर हम अपने 'शान्तिपूर्व सह–अस्तित्व' के सिद्धान्त पर नहीं चल सकते हैं।

9. आचार्य कौटिल्य ने अपने मण्डल सिद्धान्त के अन्तर्गत भौगोलिक आधार पर जो शत्रु–मित्र आदि बारह राजाओं वाले 'द्वादशराज मण्डल' का गठन किया है, आधुनिक राजनीति में वह हर स्थिति में प्रासंगिक नहीं माना जा सकता है। क्योंकि आज किसी भी राष्ट्र के शत्रु या मित्र होने का निर्धारण भौगोलिक आधार पर नहीं, अपितु उसकी नीति, नीयत, कार्यप्रणाली तथा उद्देश्य के आधार पर किया जाता है। यही कारण है कि कौटिलीय अवधारणा के विपरीत आज एक दूसरे की सीमा से लगे हुये अनेक राष्ट्र मित्र भी हैं तथा सीमा से दूरवर्ती अनेक राष्ट्र सिद्धान्ततः/व्यहारतः एक दूसरे के विरोधी भी हैं। दूसरे, यह मत इस आधार पर भी प्रासंगिक नहीं माना जा सकता कि कोई भी अन्तर्राज्य संबंध कभी नित्य एवं स्थायी नहीं होते हैं। संभव है, जो राष्ट्र आज हमारे शत्रु हैं, समस्याओं और शिकायतों का समाधान हो जाने पर कल वही राष्ट्र हमारे मित्र भी बन जायें। इसी प्रकार जो राष्ट्र आज हमारे मित्र हैं, राष्ट्रीय हित संरक्षण की प्रतिस्पर्द्धा में कल वही हमारे विरोधी बन जायें। इसलिये केवल भौगोलिक आधार पर किसी राज्य को नित्य शत्रु या नित्य मित्र मान लेना आधुनिक राजनीति के लिये प्रासंगिक नहीं है। यह उस युग में अधिक प्रासंगिक था जब राज्य विस्तार को राज्य का लक्ष्य माना जाता था।

10. भूमण्डलीकरण एवं वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में जबकि सारी दुनियाँ 'विश्व ग्राम' (Global Village) के रूप में एक छतरी के नीचे आ रही है, केवल दर्जन भर राजाओं

के बीच अन्तर्राज्य सम्बन्ध स्थापित करने वाला कौटिलीय मण्डल सिद्धान्त प्रासंगिक नहीं हो सकता। इसे एक निश्चित संख्या सीमा में नही बाँधा जा सकता है।

11. आचार्य कौटिल्य का यह मत आधुनिक राजनीति के लिये प्रासंगिक नहीं माना जा सकता है कि जन–धन का कितना भी क्षय–व्यय क्यों न हो, हर हाल में शत्रु का नाश करना ही उद्देश्य होना चाहिये।[117]

12. कौटिलीय गुप्तचर व्यवस्था कुछ सीमा तक आधुनिक राजनीति में अत्यन्त उपयोगी होने के बाद भी उसके कुछ पक्ष अप्रासंगिक भी हैं। उदाहरणार्थ समाज में ढोंग, पाखण्ड एवं मिथ्याडम्बर फैलाने वाले 'तापस' जैसे गुप्तचर वर्तमान में प्रासंगिक नही माने जा सकते हैं। दूसरे, कौटिल्य द्वारा विकलांगों को गुप्तचरी के अत्यन्त जोखिम भरे कामों में लगाया जाना वर्तमान राजनीति में प्रासंगिक नहीं माना जा सकता है। इसलिये कुछ आलोचकों ने तो कौटिल्य के इस मत की यह कहकर तीव्र आलोचना की है कि विकलांगों को गुप्तचरी के काम में लगाकर उन्होंने ऐसा काम किया है मानो नाजीवादी हिटलर ने दूसरे विश्वयुद्ध में रैडक्रास की एम्बुलैस गाड़ियों में परमाणु बम ढोना शुरू कर दिये हों।[118]

सप्तम बिन्दु : कौटिलीय अर्थशास्त्र के अध्ययन एवं अनुसन्धान से हमें क्या सम्प्रेरणा मिल सकी है ?

समाधान–उत्तर :

1. दर दर भटकने तथा ठोकरे खाने वाली दो मानव इकाइयों–कौटिल्य और चन्द्रगुप्त ने जिनके कोष क्या; हाथ भी एक दम खाली थे; केवल अपनी बौद्धिक शक्ति तथा इच्छा शक्ति के बल पर एक युगान्तरकारी कार्य करके दिखा दिया, नया इतिहास रचकर दिखा दिया। मात्र इन्हीं दो प्रतिभाओं की बदौलत न केवल शक्तिशाली नन्द साम्राज्य का उन्मूलन हुआ, अपितु भारत में सिकन्दर के सफल विजय–अभियानों से

---

117. नेति कौटिल्यः। सुमहतापि क्षयव्ययेन शत्रुविनाशोऽभ्युपगन्तव्यः। कौ0 अर्थ0 7/117/13, पृष्ठ 520
118. डा0 धर्मवीर, कौटिल्य का सामाजिक वैर, पृष्ठ 27

स्थापित यूनानी शासन का भी तख्ता पलट कर रख दिया गया। उनके द्वारा न केवल विशाल मौर्य साम्राज्य की स्थापना की गई अपितु उसे स्थायित्व भी प्रदान किया गया। कौटिलीय अर्थशास्त्र के हम जैसे जिज्ञासु अध्येताओं एवं अनुसिन्धित्सुओं के अर्न्तमन में यह तथ्य बड़ी दृढ़ता के साथ प्रतिष्ठापित होता है कि जब मात्र दो साधनहीन व्यक्ति अपनी बौद्धिक शक्ति तथा इच्छाशक्ति के बलवूते एक विशाल लोकहितकारी शासन की स्थापना कर इतना बड़ा क्रांतिकारी परिवर्तन करके दिखा सकते है तो हम असंख्य भारतीय कौटिल्य के बताये मार्ग पर चलकर अपनी वर्तमान राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान भी अवश्य कर सकते हैं, एक नये सशक्त एवं विकसित भारत का निर्माण अवश्य कर सकते है, कौटिलीय अर्थशास्त्र से ऐसी सम्प्रेरणा एवं आत्मविश्वास प्रादुर्भूत होता है।

2. कौटिल्य एवं चन्द्र गुप्त की अपेक्षा हमारे समक्ष 'नव सृजन' की सम्भावनायें अधिक प्रबल हैं। उक्त दोनों महाविभूतियों के दैवी संयोगवश पारस्परिक मिलन, शत्रु साम्राज्य का उन्मूलन तथा 'अर्थशास्त्र' जैसे कष्टसाध्य ग्रन्थ के सृजन जैसी अनेक दुरुह कठिनाइयाँ पार करने के बाद ही उन्हें उपरोक्त सफलता प्राप्त हो सकी थी। लेकिन हमारे सामने तो आज ऐसी कोई कठिनाई नहीं है, बल्कि एक बेहतर वर्तमान हमारे सामने विद्यमान है; जिसमें न तो अच्छे गुरूओं का अभाव है, न मेधावी युवा शक्ति की कमी है और न हमारे ऊपर कोई विरोधी/विदेशी सत्ता शासन कर रही है। इन सारी सुखद एवं अनुकूल परिस्थितियों के साथ–साथ एक और सबसे बड़ा सकारात्मक पक्ष हमारे साथ जुड़ा हुआ है। आचार्य कौटिल्य ने अपनी प्रखर मेधा एवं श्रमशक्ति के द्वारा प्रायः सभी प्राचीन अर्थशास्त्रीय ग्रन्थों का गहन अध्ययन, मनन, चिन्तन, खण्डन–मण्डन एवं मन्थन करने के बाद उनसे निःसृत सारभूत 'नवनीत' के रूप में हमें अपना 'अर्थशास्त्र जैसा महनीय ग्रन्थ पहले ही प्रदान कर रखा है। ध्यान रहे, 'अर्थशास्त्र' की संरचना में आचार्य कौटिल्य ने नवनीत–मन्थन की प्राकृतिक शैली का सफल प्रयोग

किया है। जिस प्रकार नवनीत–मंथन की प्रक्रिया के बाद नवनीत जैसी सारवस्तु को तो ले लिया जाता है किन्तु तक्र (छॉछ और मट्ठा) जैसी तुच्छ वस्तुओं को छोड़ दिया जाता है, उसी प्रकार आचार्य कौटिल्य को प्राचीन आचार्यों के जो मत उपयोगी लगे, उन्हें तो उन्होंने स्वीकार कर लिया; लेकिन जो मत उन्हें अनुपयोगी एवं असामयिक प्रतीत हुये उन्हें 'नेति कौटिल्यः' (यह मत कौटिल्य को स्वीकार नही) कहकर अमान्य कर दिया। आज वही शैली अपनाते हुये हमें कौटिलीय अर्थशास्त्र के जो सिद्धान्त वर्तमान परिदृश्य के लिये उपयोगी प्रतीत हों, उन्हें हम राष्ट्र हित में स्वीकृत एवं क्रियान्वित कर सकते हैं। लेकिन जो मत वर्तमान राजनीति के लिये अप्रासंगिक है उन्हें 'नेदानीम्' (कौटिल्य का यह मत इस समय प्रासंगिक नहीं है) कहकर हम छोड़ सकते हैं। ऐसा करके हम कौटिल्य की अवधारणा के अनुरूप अपनी वर्तमान समस्याओं का कण्टक–शोधन करके एक संकट मुक्त आदर्श भारत के निर्माण की दिशा में सामयिक एवं सार्थक पहल प्रारम्भ कर सकते हैं। कौटिलीय अर्थशास्त्र से ऐसी ही कुछ सम्प्रेरक अनुभूति एवं जागृति उत्पन्न होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) मूल ग्रन्थ (संस्कृत)

1. अग्नि पुराण – चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी–1, 1966
2. अथर्ववेद – स्वाध्याय मण्डल, किल्ला पारडी (वलसाड़), गुजरात, 1950
3. ईशावास्योपनिषद – डा0 हरि नारायण यादव, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा–2
4. ऋग्वेद – स्वाध्याय मण्डल, किल्ला पारडी (वलसाड़), गुजरात
5. कामन्दकीय नीतिसार – खेमराज श्रीकृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
6. कौटिली अर्थशास्त्र – वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी–1, 2000
7. कौटिलीय अर्थशास्त्र – उदयवीर शास्त्री, लाहौर, 1925
8. कौटिल्य अर्थशास्त्र – प्राणनाथ वेदालंकार, लाहौर, 1923
9. कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम् – डा0 रघुनाथसिंह, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी–1, 1993
10. दीघ निकाय – पाली पब्लिकेशन बोर्ड, विहार
11. ब्रह्म पुराण – हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1976
12. मनुस्मृति – डा0 चमन लाल गौतम, संस्कृति संस्थान, बरेली–3
13. महाभारत – गीता प्रेस, गोरखपुर, 1955
14. मुद्राराक्षसम् – निरूपण विद्यालंकार, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1962
15. याज्ञवल्क्य स्मृति (बीस स्मृतियाँ) – श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, बरेली–3, 1980
16. वाल्मीकि रामायण – गीता प्रेस, गोरखपुर
17. विष्णु पुराण – गीता प्रेस, गोरखपुर
18. शुक्रनीति – ब्रह्मशंकरमिश्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी–1,1968

(ख) सहायक ग्रन्थ (हिन्दी)

1. प्रो0 अनन्त सदाशिव अलतेकर, – प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी–1, 2001

2. अशोक कुमार – राजनीति विज्ञान, उपकार प्रकाशन, आगरा–2

3. आचार्य दीपंकर – कौटिल्यकालीन भारत, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उ0प्र0

4. डा0 आनन्द प्रकाश अवस्थी – भारतीय राजनीतिक विचारक, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा–2, 2003–04

5. डा0 ए0 अवस्थी एवं आर0 के0 अवस्थी – भारतीय राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर–2 1993

6. डा0 उमाशंकर प्रसाद श्रीवास्तव – कौटिल्य का अर्थशास्त्र : समीक्षात्मक अध्ययन, प्रकाशन संस्थान, दरियागंज, नई दिल्ली–2, 1988

7. ओ0 पी0 गावा – राजनीति–चिन्तन की रूपरेखा, मयूर पेपरवैक्स, नोएडा–1, 1996

8. डा0 कमलेश अग्रवाल – कौटिल्य अर्थशास्त्र एवं शुक्रनीति की राज्यव्यवस्थाऐं, राधा पब्लिकेशन्स, दरियागंज, नई दिल्ली–2, 2001

9. डा0 काशीप्रसाद जायसवाल – हिन्दू राजतन्त्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1942

10. डा0 किरण टण्डन – संस्कृत साहित्य में राजनीति : श्रीकृष्ण और चाणक्य के सन्दर्भ में, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, जवाहर नगर, दिल्ली–7, 1990

11. के0 ए0 नीलकण्ठ शास्त्री – नन्द–मौर्ययुगीन भारत, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली–7, 2000

12. टी0 एन0 शेषन – बोझिल मन की व्यथा कथा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली–2,1995

13. डा0 धर्मवीर – कौटिल्य का सामाजिक वैर, संगीता प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली–32, 1996

14. पी0 वी0 काणे – धर्मशास्त्र का इतिहास (अनुवादक–अर्जुन चौबे कश्यप) उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1980

15. डा0 पुखराज जैन – राजनीतिक चिन्तन का इतिहास

16. डा0 प्रेमकुमारी दीक्षित – प्राचीन भारत में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 1977

17. डा0 बी0 एल0 फड़िया – अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा–3, 1998
पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास, साहित्य भवन, आगरा

18. भगवान दास केला – कौटिल्य के आर्थिक विचार, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन,1933
कौटिल्य की शासन पद्धति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

19. डा0 भुवनेश्वरीदत्त मिश्र – कौटिलीय राजनीति, वैशाली प्रकाशन, गोरखपुर, 1969

20. डा0 एम0 बी0 कृष्णराव – कौटिलीय अर्थशास्त्र का सर्वेक्षण, रतन प्रकाशन मन्दिर, राजामण्डी, आगरा, 1961

21. मणिशंकर प्रसाद – कौटिल्य के राजनीतिक एवं सामाजिक विचार, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली–7, 1998

22. डा0 मंजुलता शर्मा – कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राज्यदर्शन, ज्योति प्रकाशन, जयपुर,–15, 2003

23. रजनीकान्त पाण्डेय – कौटिल्य अर्थशास्त्र में सत्ता एवं राजनीति, राधा पब्लिकेशन्स, दरियागंज, नई दिल्ली–2

24. डा0 राजवली पाण्डेय – भारतीय इतिहास का परिचय, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी–1, 1963

25. राधाकुमुद मुखर्जी – चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2, 1996

26. रामचन्द्र शुक्ल – मैगास्थिनीज का भारत वर्णन, शब्द महिमा प्रकाशन, जयपुर, 2003

27. एल0 मुखर्जी – भारत का इतिहास (प्राचीन काल), दि अपर इंडिया पब्लिसिंग हाउस, लखनऊ, 1952

28. डा0 लल्लनजी गोपाल – प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारधारा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी–1, 1999

29. डा0 लल्लनजी गोपाल – कौटिल्य का युद्धदर्शन, प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली, 1984

30. डा0 बसन्त पटवर्धन – आर्य चाणक्य, विद्या प्रकाशन मन्दिर, दरियागंज, नई दिल्ली–2, 1994

31. वामन शिवराम आप्टे – संस्कृत–हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली–7, 1969

32. डा0 श्यामलाल पाण्डेय – कौटिल्य की राज्य व्यवस्था, पवन प्रिंटिंग प्रेस लखनऊ, सं. 2013 विक्रमी
भारतीय राजशास्त्र प्रणेता, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1989

33. डा0 सत्यकेतु विद्यालंकार पाटलीपुत्र की कथा (मागध साम्राज्य का उत्थान और पतन), हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1949
प्राचीन भारत की शासन पद्धति और राजशास्त्र, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली–29, 2004

34. डा0 सुरेन्द्र कुमार जायसवाल – हिन्दू राजशास्त्र, साहित्य प्रकाशन, मालीबाड़ा, दिल्ली–6, 1998

(ग) सहायक ग्रन्थ (अंग्रेजी)

1. B. A. Saletore - Ancient Indian Political Thought & Institutions. Asia Publishing House, Bombay, 1963

2. C. V. Vaidya - History of Medieval Hidnu India, Vol. III, Poona,

3. F. W. Thomas' - Cambridge History of India (E. J. Rapson) Cambridge, 1922

4. H. L. Chattergee - International Law & Inter-State Relations in Ancient India, Firma K. L. M., Calcutta-12, 1958

5. J. Jolly and R. Schmidt - Arthashastra, Lahore, 1924

6. K. P. Jayswal - Hindu Polity, Bangalore, 1943

7. K. V. Rangaswamy Ayangar - Some Aspects of Ancient Indian Polity, Madras, 1935

8. M. B. Chande - Kautilyan Arthasastra, Atlantic Publishers' & Distributors, New Delhi, 1998

9. N. P. Unni - Kautilya Arthasastra : A Study, Bhartiya Vidya Prakashan, Delhi, 1983

10. Dr. Radhavallabh Tripathi - Kautilyas' Arthasastra and Modern World, Pratibha Prakashan, Shakti Nagar, Delhi-7, 1997

11. Rajendra Prasad - Politico-Geographical Analysis of the Arthastastra, New Delhi-15, 1989

12. Ritu Kohli - Kautilya's Political Theory, Deep & Deep Publications, New Delhi-27, 1995

13. R. P. Kangle - The Kautilya Arthasastra, Motilal Banarasidas, Delhi-7, 2000

14. R. Shama Shastri - Arthashastra of Kautily, Mysore, 1923

15. R. S. Sharma - Aspects of Political Ideas and Institutions in Ancient India, Motilal Banarasidas, Delhi-7,1991

16. Prof. R. K. Choudhary - Kautilya's Political Ideas and Institutions, Chowkhamba Sanskrit Series office, Varanasil-1, 1971

17. S. V. Viswanath - International Law in Ancient India, Longmans, Green & Co., London, 1925

18. T. B. Mukherjee - Inter-state Relations in Ancient India, Meenakshi Prakashan, Meerut 1967

19. T. Ganapati Shastri- Arthashastra of Kautilya, Trivandrum, 1924-25

20. V. K. Gupta - Kautilyan Jurisprudence B. D. Gupta, Sitaram Bazar, Delhi-6, 1987

21. V. P. Verma - India Political Thought : Ancient of Medieval, Laxmi Narain Agrawal, Agra, 1993

22. V. R. R. Dikshitar - Mauryan Polity, University of Madras, 1932

(घ) पत्र–पत्रिकाऐं / आलेख

1. अब कौटिल्य के अर्थशास्त्र से युद्ध कला सीखेंगे भारतीय जवान,
(दैनिक जागरण, कानपुर, 1–8–2002)

2. भारतीय सेना की क्षमता बढ़ाने के लिए चाणक्य रचित अर्थशास्त्र पर शोध
(दैनिक जागरण, झाँसी, 3–11–2002)

3. सत्ता मद ऐसा ही होता है (चाणक्य से प्रेरणा लेने का परामर्श) राजनाथ सिंह सूर्य
(दैनिक जागरण झाँसी, 24–4–2003)

4. महाभारत ने दिया चक्रवात से निबटने का नुस्खा
(दैनिक जागरण, लखनऊ, 31–10–2003)

5. आर्थिक चिन्तन का आधार : मौजूदा दौर में कौटिल्य के अर्थशास्त्र की प्रासंगिकता पर चर्चा
(दैनिक जागरण, झाँसी, 22–03–2006)

6. संकल्प के धनी चाणक्य – डा0 राजेन्द्र दीक्षित, (दैनिक जागरण, झाँसी, 29–6–2006)

7. महत्व महापुरुषों के मिलन का (चाणक्य और चन्द्रगुप्त के सन्दर्भ में) डा0 महीप सिंह
(दैनिक जागरण, झाँसी, 22·5-03)

8. शत्रुघात हेतु आचार्य कौटिल्य के युद्धेतर उपाय– हरिओम शरण निरंजन
(ऋतावरी, दिसम्बर, 2004, गोरखपुर)

9. आचार्य कौटिल्य का शिक्षा दर्शन– हरिओम शरण निरंजन
(परिप्रेक्ष्य, दिसम्बर, 2004, नई दिल्ली–16)

10. आचार्य कौटिल्य का दैवी आपदा–प्रबन्धन– हरिओम शरण निरंजन
(हिन्दुस्तानी, जनवरी–मार्च, 2005 इलाहाबाद)

11. भ्रष्टाचार निवारण हेतु 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' के कुछ कारगर उपाय–
हरिओम शरण निरंजन)
(शोध यात्रा, अक्टू.–जून 2005, ग्वालियर)

12. प्राचीन अर्थशास्त्र की अर्वाचीन उपादेयता– हरिओम शरण निरंजन
(सम्मेलन पत्रिका, भाग–90, संख्या–3, इलाहाबाद)